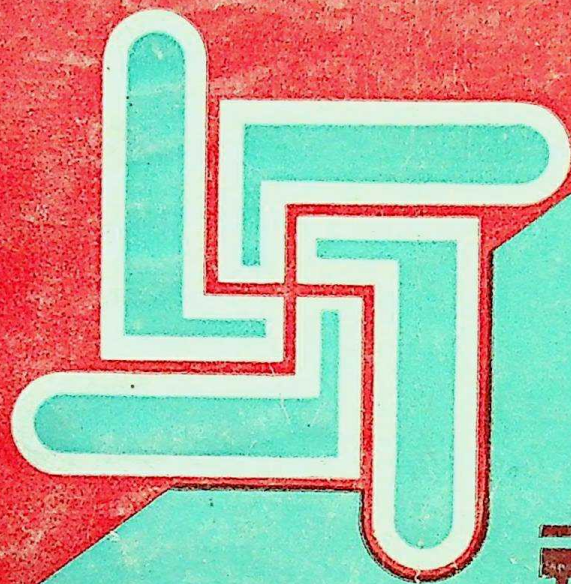


डा. विगम शर्मा

एम.ए. पी.एच.डी.

३५४



चतुर्वेद
ऋक्सूक्त
संग्रह

५२५
५२६

R

स्टूडेंट स्टोर, बरेली



$$\frac{212}{354}$$

110353

ऋक्-सूक्त-संग्रह

(RIKH-SUKTA-SANGRAH)

वैदिक-साहित्य विषय को लेकर भारत के प्रमुख-विश्वविद्यालयों के
पाठ्य-क्रमों के अनुरूप ऋक्-सूक्तों की सरल-सुबोध
व्याख्या तथा अथर्व-वेद का पृथिवी-सूक्त,
व्याख्या-सहित ।

व्याख्याकार—

डा० निगम शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०,
साहित्याचार्य, स्वर्ण-पदक प्राप्त,
रीडर-अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग,
गुरुकुल-कांगड़ी, विश्वविद्यालय,
हरिद्वार (उ० प्र०)

R212,SHA-R



150353

स्टूडेंट स्टोर
बरेली ।

प्रकाशक :

स्टूडेंट स्टोर

रामपुर बाग, बरेली ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण १९८२

भारत सरकार द्वारा उपलब्ध कराये गये नियन्त्रित मूल्य के कागज पर मुद्रित ।

मूल्य :

मुद्रक : दया प्रिंटिंग प्रेस

खुर्जा

प्राक्कथन

वेद-साहित्य की सांस्कृतिक-गरिमा को देखते हुए विश्व के विश्वविद्यालयों ने यथा रुचि उचित पाठ्य-क्रम को अपनाया है। बीस वर्ष से अध्यापन करते-करते अपने अनुभव तथा छात्रों की कठिनाई के समाधान के लिए यह पाठ्य-क्रम मैंने बनाया है। आशा है, छात्र तथा विद्वान् विद्या-रसिक उपाध्याय महानुभाव इस ऋक्-सूक्त-मंजरी को अपना प्यार तथा सहानुभूति देंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन में अनेक विपत्तियां तथा कठिनाइयां आयीं पर आयुष्मान अजय कुमार जी ने बड़ी धीरता और सहृदयता के साथ उन समस्त कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। मैं उनकी सराहना करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि उनका 'स्टुडेंट स्टोर' उत्तर-भारत में अपना श्रेयस्कर स्थान प्रकाशन-संस्थान के रूप में प्राप्त कर लेगा।

इस पुस्तक के छपने में अनेक अशुद्धियां आ गयी हैं। मेरी व्यस्तता तथा स्थानीय समस्याएँ इनमें प्रमुख कारण हैं। प्रार्थना करता हूँ, विद्वान् और कृपालु पाठक उन अशुद्धियों से तथा उचित परामर्श से कृतार्थ करें ताकि दूसरी आवृत्ति में वे दोष दूर किये जा सकें तथा इस ऋक्-सूक्त-मंजरी को प्रगुण-गन्ध से सुरभित बनाया जा सके।

CHAPTER

The first part of the book is devoted to a general survey of the subject, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race. The second part is devoted to a detailed examination of the evidence which is now available, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race.

The third part of the book is devoted to a detailed examination of the evidence which is now available, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race. The fourth part is devoted to a detailed examination of the evidence which is now available, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race.

The fifth part of the book is devoted to a detailed examination of the evidence which is now available, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race. The sixth part is devoted to a detailed examination of the evidence which is now available, and to a discussion of the various theories which have been advanced to explain the origin of the human race.

विषयानुक्रमणी

क्रमांक	विषय	पृ० सं०
१	आमुख	१
२	मंत्रार्थ-प्रक्रिया	३
३	वैदिक-भाषा	४-५
४	वैदिक-वाङ्मय	५-७
५	एक देवोपासना	८
६	मंत्रार्थ-निर्वचन	८-९
७	धर्म	९-१०
८	आजीविका	१०
९	समाज	१०-११
१०	विज्ञान	११
११	औषधि	११
१२	रचना-काल	११-१४
१३	वेदों के माध्यकार	१४
१४	सायण	-१५
१५	ऋषि दयानन्द के माध्य की विशेषता	१५-१७
१६	पाश्चात्य माध्यकार	१७-१८
१७	वेदों के देवता	१८
	(१) इन्द्र	१८-१९
	(२) अग्नि	१९-२१
	(३) सूर्य	२१-२२
	(४) वरुण	२२-२३
	(५) यम	२३-२४
	(६) रुद्र	२४-२५
	(७) मरुद्गण	२५-२६
	(८) विष्णु (९) सोम (१०) पुरुष	२६-२८
	(११) उषा (१२) पूषा (१३) पर्जन्य	२८-३०
	(१४) आयः (१५) सविता (१६) वात	
	(१७) मित्र (१८) अश्विनी (१९) वाक्	
	(२०) वास्तोष्पति	३०-३३
१८	छन्द	३४-३६

क्रमांक	विषय	मण्डल	सूक्त	पृ० सं०
१९	अग्नि-सूक्तम्	१	१	३७-४१
२०	अग्नि मरुतश्च	१	१९	४१-४७
२१	वरुण-सूक्तम्	१	२५	४७-५९
२२	इन्द्र-सूक्तम्	१	३२	६०-७४
२३	सवितृ-सूक्तम्	१	३५	७४-८४

क्रमांक	विषय	मण्डल	सूक्त	पृ० सं०
२४	उषः-सूक्तम्	१	४८	८५-८७
२५	इन्द्र-सूक्तम् (स्वराज्य-सूक्तम्)	१	८०	८८-११०
२६	मरुत्-सूक्तम्	१	८५	११०-१२२
२७	उषः-सूक्तम्	१	८२	१२२-१३८
२८	सूर्य-सूक्तम्	१	१५५	१३८-१४५
२९	अग्नि-सूक्तम्	१	१४३	१४५-१५३
३०	विष्णु-सूक्तम्	१	१५४	१५३-१५९
३१	धावा पृथिवी-सूक्तम्	१	१६०	१६०-१६५
३२	इन्द्र-सूक्तम्	२	१२	१६५-१८१
३३	रुद्र-सूक्तम्	२	३३	१८१-१९७
३४	अश्वि-सूक्तम्	२	३९	१९७-२०५
३५	नदी-सूक्तम्	३	३३	२०५-२१८
३६	मित्र-सूक्तम्	३	५९	२१९-२२५
३७	उषः-सूक्तम्	३	६१	२२६-२३२
३८	उषः-सूक्तम्	४	५१	२३३-२४३
३९	सवितृ-सूक्तम्	४	५४	२४३-२४९
४०	पर्जन्य-सूक्तम्	५	८३	२५०-२५९
४१	पूषा-सूक्तम्	६	५३	२५९-२६६
४२	पूषा-सूक्तम्	६	५४	२६६-२७२
४३	आयः-सूक्तम्	७	४९	२७२-२७६
४४	वास्तोष्पति-सूक्तम्	७	५४	२७६-२७९
४५	वरुण-सूक्तम्	७	८६	२८०-२८८
४६	मण्डूक-सूक्तम्	७	१०३	२८८-२९७
४७	सोम-सूक्तम्	८	४८	२९८-३११
४८	यम-सूक्तम्	१०	१४	३११-३२७
४९	अक्ष-सूक्तम्	१०	३४	३२७-३४१
५०	देव-सूक्तम्	१०	७२	३४१-३४८
५१	पुरुष-सूक्तम्	१०	९०	३४९-३६१
५२	हिरण्यगर्भ-सूक्तम्	१०	१२१	३६१-३७१
५३	वाक्-सूक्तम्	१०	१२५	३७२-३८०
५४	नासदीय-सूक्तम्	१०	१२९	३८०-३९२
५५	परिशिष्टम्— पृथिवी-सूक्तम् सूक्त—१	अथर्व वेद मंत्र—१-६३	द्वादश काण्डम्	पृ० सं० १-५७

परिशिष्टम्

पुस्तकालय

पृथिवी-सूक्तम्

पृथिवी के अभिनन्दन में यह सूक्त बहुत ही सुन्दर और सुखद है। आर्य-जाति के योग्यतम पूर्वजों ने इस सूक्त को प्राप्त किया, अभिनन्दन किया और सुख तथा आनन्द का जीवन व्यतीत किया।

पृथिवी के अभिनन्दन में ५-८४ सूक्त ऋग्वेद का दृष्टव्य है जहाँ उदार वाणी में पृथिवी के लिये मंगल-वचन कहे गये हैं। ५-८५-५ में वरुण देवता सूर्य के द्वारा पृथिवी का माप लेते रहते हैं। यहीं पर पूर्व के मंत्रों में बताया गया है कि पूजनीय देवता पृथिवी को कोमल, भावाद्र तथा उर्वर बनाये रखते हैं। २-१२-२ में कहा गया है कि इन्द्र देवता पृथिवी की अव्यवस्था तथा अनवस्था को दूर करते रहते हैं। इन्द्र के ही शासन में यह पृथिवी अवनत तथा सुशील रहती है। १-८५ में अपने को नाना प्रकार के अलंकरणों से सजाने वाले मद्गण को पृथिवी का पुत्र कहा गया है। इसी सूक्त के दूसरे मंत्र में पृथिवी को 'गी' तथा 'पृश्नि' कहा गया है। १-६७ में अग्नि के अभिनन्दन में कहा गया है कि पृथिवी का धारण-पोषण वही करते तथा कर सकते हैं। १-६३-१ में इन्द्र को ही पृथिवी का धारक कहा गया है अथवा पृथिवी को धारण करने में इन्द्र का सामर्थ्य अपेक्षित बताया गया है। १-३५-८ में कहा गया है कि पृथिवी की आठों दिशाओं का नियमन सविता देव करते रहते हैं। १-३४-८ में अश्विनी देवों की प्रशस्ति में कहा गया है कि स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण रूप में अवस्थित पृथिवी का संधान तथा संस्थापन वे ही करते हैं। १-१३-६ में इडा, सरस्वती के साथ मही अर्थात् महिमा से मण्डित पृथिवी का स्तवन किया गया है।

सायणाचार्य ने 'ग्रामपत्तनादि रक्षणार्थम्' ग्राम, नगर राष्ट्र की रक्षा के लिये पृथिवी की स्तुति का अभिनन्दन उच्च माना है। नक्षत्र कल्प-१७ में 'पाथिवीं भूमि-कायस्य' कहकर पृथिवी की अशान्ति को दूर करने के लिए सत्प्रयासों का अभिनन्दन किया गया है। कौशीतकी ५-२ में 'भूमिपस्य दति कर्मणि' दति कर्मणि अर्थात् आदर-कार्य में विजयोत्सव अथवा मंगलोत्सव के प्रयोजन में पृथिवी-सूक्त द्वारा पृथिवी का अभिनन्दन रुचिकर तथा उचित माना गया है।

इस पृथिवी-सूक्त में बहुत सी सूक्तियाँ पृथिवी के महत्व तथा मंगलमय संस्पर्श की सूचना देती हैं। बारहवें मन्त्र में कहा गया है कि 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'

भूमि माता है और मैं इसका पुत्र हूँ । ऋग्वेद में भी ५-५६-६ में 'सुजातासो जनुषा पृथिनि माताः' जो पृथिवी को माता समझते हैं वे ही पुण्यात्मा, कुलीन तथा शालीन हैं । ५-६०-५ में भी बताया गया है कि कोई बड़ा नहीं है, कोई छोटा नहीं है; सभी सौभाग्य की समृद्धि के लिये बन्धु-प्रेम के साथ एक दूसरे का सम्बर्धन करें ।

यह पृथिवी सूक्त बड़े महत्व का है । राष्ट्र-प्रेम, मानव-प्रेम, प्राणि-प्रेम तथा औषधि-वनस्पतियों के प्रति प्रेम-भावना के साथ समग्र पृथिवी का नाना प्रकार से वर्णन है । जिस पृथिवी पर नाना प्रकार से बहती हुई नदियाँ जल लाकर उर्वर, कोमल भावना का सूत्रपात करती रहती हैं । नाना प्रकार के रसायन जहाँ प्राप्त होते हैं, जहाँ पर मणि, माणिक्य, मोती, स्वर्ण आदि प्रकट होते हैं, जहाँ पर समुद्रों से जल लाकर मेघ घन-गर्जना के साथ कृषि-जगत् को मंगल-शब्द सुनाते रहते हैं, जहाँ पर मानव जिज्ञासा-वश उत्तम अनुसन्धान करते हैं, वह हमारी पृथिवी 'वर्धयद् वर्धमाना' निरन्तर सम्पदा को प्राप्त करे और हमें सम्पन्न बनाये । वह पृथिवी—'असपत्नुं मा पृथिवी कृणोतु', ४१ मुझे शत्रु-रहित बनावे । जिस प्रकार माता बच्चे के लिए दुग्ध-दान करके उसे पुष्ट तथा सम्पन्न बनाती है उसी प्रकार 'सा नो भूमि विसृजतां माता पुत्राय ये पयः' १०; यह पृथिवी मुझे दुग्ध-दान से हृष्ट-पुष्ट बनाये ।

जिस पृथिवी पर हमारे यशस्वी नेता, उपाध्याय तथा ऋषिगण नाना प्रकार के संकलन-व्यवकलन से ऐतिहासिक कार्य करके पृथिवी का महत्व बढ़ाते हैं, उसी प्रकार हम भी यज्ञ और तप के आवरण से पृथिवी को सुप्रतिष्ठित करें । ३६

इस पृथ्वी को अपने प्रज्ञान के बल से मनीषी लोग संभूषित करते हैं । ८। इस पृथ्वी की वे ही रक्षा करते, कर सकते हैं जो प्रमाद-रहित हैं । देवगण अतन्द्र (अस्वप्न) होकर इस पृथ्वी की रक्षा करते हैं—७ । यह राष्ट्र तभी उत्तम, उज्ज्वल तथा श्री सम्पन्न हो सकता है जबकि यहाँ के लोग फिर उस अभिनन्दन को हृदय प्रदान करें जहाँ कि ऋचा कहती है—'सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातुत्तमं'—८ वह भूमि हमारे राष्ट्र में कान्ति, दीप्ति, ओज और बल को धारण करे जिससे कि हमारा राष्ट्र उत्तम = उच्चतम बना रहे ।

अथर्व-वेद

(द्वादशं काण्डम्)

पृथिवी-सूक्तम्

सत्यं बृहत्तमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति ।

सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

पद-पाठः—सत्यम् । बृहत् । ऋतम् । उग्रम् । दीक्षा । तपः । ब्रह्म । यज्ञः ।

पृथिवीम् । धारयन्ति । सा । नः । भूतस्य । भव्यस्य । पत्नी । उरुम् । लोकम् ।

पृथिवी । नः । कृणोतु ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—इयम् अस्माकं कल्याणरमणीया सुखानन्द—प्रवर्धनशीला मातृभूमिः सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तां प्रति प्रणतोऽस्मि । इमां भूमिं सत्यं बृहत् ऋतं यथार्थं ज्ञानं कर्म चोग्रं दीक्षा विद्योपादानव्रतं तपः कष्टसहनं ब्रह्म संयमं नियमपूर्वकं व्रतं यज्ञः शुभं हवनदानादिकर्मानुष्ठानम् एतानि पवित्राचरणानि धारयन्ति, धारणे समर्थानि भवन्ति । सा विशिष्टा गुणकर्मस्वभावाऽस्माकं मातृभूमिः भूतस्य अतीतस्य कालस्य भव्यस्य अनागतस्य समयस्य वर्तमानस्य च पत्नी पालिकाऽस्ति । सा पृथिवी नः अस्मभ्यम् उरुं विस्तीर्णं लोकं स्थानं कृणोतु सम्पादयतु ।

टिप्पणी—सत्यम्—सत्तु भवम् । सत्यमेव जयते । बृहत्—वर्धते वर्धते इति बृहत् । बृह + कति । ऋतम्—ऋच्छति—प्राप्नोतीति ऋतम् । क्तः । यथार्थं ज्ञानम् । उग्रम्—उच्यति समवतीति उग्रम् । बलम् । ब्रह्म—वृंहति वर्धते तद् ब्रह्म । महेश्वरो वेदो व्रतंतपोवा यज्ञः—यज्ञ न नङ् । पृथिवी—प्रथते विस्तीर्णा भवतीति पृथिवी । प्रथ + धिवन् । भूतस्य—भू + क्त । भव्यस्य—अचोयत् । पत्नी—पा + द्रति=पतिः, डीप्. तुक् । उरुम्—ऊर्णम् अच्छादने । ऊकारस्य ह्रस्वत्वम् । ऊर्णोत्पाच्छादयति ह्रस्वान् इति उरु महत् ।

हिन्दी व्याख्या—यह हमारी मातृ भूमि कल्पाण और आनन्द की जननी है । इसके प्रति निरन्तर हमारी नमन-भावना बनी रहे । इस पृथिवी को सत्य, ऋत, दीक्षा, तप, ब्रह्म, यज्ञ आदि शिष्टाचार तथा पावन-व्रत रक्षा करते हैं । वह भूत तथा भविष्यत् क्री देख-रेख करने वाली पृथिवी सदैव हमारे लिए यशस्वी लोकों का सृजन करे । हम सदैव नम्रता और ओजस्विता के साथ अभ्युदय और आनन्दप्रद कार्यों का निर्माण करते रहें ।

२—

असंबंधं मध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु ।

नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी न प्रथतां राध्यतां न ॥२॥

पद-पाठः—असम्बाधम् । मध्यतः । मानवानाम् । यस्याः । उत्पतः ।

प्रवतः । समम् । बहु । नानावीर्याः । ओषधीः । या । बिभर्ति । पृथिवी । नः ।

प्रथताम् । राध्यताम् । नः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः पृथिव्या मानवानां मध्ये प्रवतः उद्वतः उच्चावचे सत्यपि (केचन श्रेष्ठाः केचन लघव स्तथापि) गुणयोगात् सर्वे दक्षतामधिगन्तुमुत्सहन्ते । यत्र बहु आधिक्येन समम् साम्यमैक्यभावोऽस्ति । असंबाधम् कूचिदपि बाधाविरोधो नास्ति । या पृथिवी नानाप्रभावा रोगनिवारिका ओषधीः धारयति सा नोऽस्मभ्यं निरन्तरं दानादिना जायमानां कीर्तिम् उत्पादयेत्, शौर्यादिना च जायमानं यशः प्रकटयेत् ॥२॥

टिप्पणी—उद्वतः, प्रवतः—‘उपसर्गाच्छन्दसि धात्वर्थे’ इति वतिः । मध्यतः—मध्य + तस् । बध्यत इति पाठभेदः । असंबाधम्—संबाधारहितम् । ओषधीः—उष दाहे—ओषः, ओषो धीयतेऽत्र ओष + धा + किः, द्वितीया बहुवचने ओषधीः । प्रथताम्—प्रथ—विस्तारे । राध्यताम्—संसिद्धौ । उभयत्र लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस मातृभूमि के मननशील मनुष्यों के माध्यम में (योग्यता, पद, क्षमता, धन, ऐश्वर्य आदि के कारण) ऊँच-नीच की भावना रहने पर

भी बाधा-रहित साम्य रहता है। एक दूसरे की प्रीति तथा पूर्ति के लिये एक-भावना से जहाँ कार्य किये जाते हैं। जो पृथिवी प्रभावपूर्ण गुणकारी औपधियों को धारण करती है। पृथ्वी की ही कृपा से हम निरामय (रोग-रहित) होकर उत्साहवर्धक कार्य करते हैं। वह पृथ्वी सदैव हमारे लिये दानादि से उत्पन्न कीर्ति तथा शीर्य आदि से उत्पन्न यक्ष को सम्पन्न करें।

३—

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यामन्नं कृष्टयः संवभूवुः ।

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

पद-पाठः—यस्याम् समुद्रः । उत । सिन्धुः । आपः । यस्याम् । अन्नम् ।

कृष्टयः । सम्भवभूवुः । यस्याम् । इदम् जिन्वति । प्राणत् । एजत् । सा । नः ।

भूमिः । पूर्वपेये । दधातु ॥ ३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यां मुखप्रदां भूमि मासाद्य समुद्रः स्वाश्रयं प्रान्नोति स्यन्दन शीला नद्यश्च यां प्राप्य प्रवोहोपेता जायन्ते यां च लब्ध्वा अन्याः कूप—कूल्या—निर्भरगता जलधारा रसायनानि उगिरन्ति, यस्यां पृथिव्यां स्वभावजन्यम् अन्नं लभते यस्यां च कृषिजन्यानि धान्य—गोधूमेक्षुशाक प्रभृतीनि जीवन जीविकोप—युक्तानि अन्नफलमूलानि वस्तूनि सुखसाध्यानि भवन्ति, यस्यां 'प्राणत् एजत् जिन्वति' स्वसन क्रियायुक्तो गति—सम्पन्नश्च लोकः प्रीति तृप्तिं चानुभवति शिल्प कर्माणि उद्योगांश्च स्थापयति । सा माता पृथिवी नः अस्मान् 'पूर्वपेये' पूर्वत एव सिद्धे स्थले स्थापयतु संसिद्धांश्च सन्पादयतु येन वयं शरीर मनोविषये चात्मविषये सर्वप्रकाराम् उर्वरां भूमिं प्राप्नुयाम ।

टिप्पणी—सिन्धुः—'स्यन्देः सम्प्रसारणं घश्च' । स्यन्दन्ते प्रसवन्त्युदकान्य स्मिन्निति सिन्धुः । आपः—'लाप्लट व्याप्तौ' विकृप् । अस्य नित्यं बहुवचनत्वं स्त्रीत्वं च । कृष्टयः—कृष + क्तृन् । प्रथमाबहुवचने । पूर्वपेये—पूर्व पेयं भोग्यजातं यत्र । प्राणत्—प्र + अन् + शतृ । एजत्—एज् कम्पने शतृ ।

हिादी-व्याख्या—जिस सुखप्रद प्रथिवी का आश्रय पाकर स्वाश्रित-प्राणियों के साथ समुद्र निश्चलता को प्राप्त होता है । स्यन्दन शील नदियाँ जिस पृथिवी से सम्बल पाकर जन-कल्याण के लिए विचरण करती है । अन्य प्रकार के जल कूप,

बावली, ताल, राजवाह आदि के आश्रय से जहाँ मनुष्यों को प्रसन्न और तृप्त करते हैं। जहाँ पर स्वयम् उत्पन्न अन्न अथवा कृषि-उद्योग आदि से प्राप्त अन्न-धन प्राणियों के कल्याण में कारण बनता है जहाँ पर सभी प्राणधारी और गतिशील लोग नाना प्रकार के उद्यम से जीवन-साफल्य प्राप्त करते हैं। वह माता भूमि हमें पूर्व से ही सिद्ध उर्वर स्थानों में शारीरिक और बौद्धिक उर्वरना का सम्पादन करने में पूर्ण करे ॥३॥

४—

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

या बिभति बहुधा प्राणदेजत् सानो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

पद-पाठः—यस्याः चतस्रः । प्रदिशः पृथिव्याः । यस्याम् । अन्नम् कृष्टयः ।

सम् ५ बभूवुः । या । बिभति । बहुधा । प्राणत् । एजत् । सा । नः । भूमिः । गोषु

। अपि । अन्ने । दधातु ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः पृथिव्या मानार्थं चतस्रो दिशः प्रदिशश्च प्रबोधयन्ति । यस्यां पृथिव्यां नाना विधान्यन्नानि जायन्ते कृषियोग्यानि च धान्यादीनि प्रादुर्भवन्ति । या मातृभूमि बहुधा बहुप्रकारान् प्राणधारिणः कम्पनशीलान् गतिमतो जीवांश्च दीनान् दक्षांश्च पोषयति । सा करुणामयी भूमिर्गोषु निमित्तभूतासु अन्नेषु च निमित्तभूतेषु अस्मान् बुद्धिसमृद्धान् कुर्यात् । विविध-बुद्धि वृद्धिव्यवहारेषु प्रवृत्ता वयं सुखं सौजन्यं शान्तिं च लभेमहि ।

टिप्पणी—गोषु—अन्ने = 'निमित्तात्कर्मयोगे सप्तमी वक्तव्या' इति सप्तमी । कृष्टयः—कर्मवन्तो मनुष्याः । भूमिः—भवन्त्यस्यां भूतानि । 'भुवः कित्' । मिप्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—जिस पृथिवी का मान-संकेत चार दिशायें-उपदिशायें कर रही हैं । जिस पृथिवी पर नाना प्रकार के अन्न स्वयम् अथवा कृषि-कर्म की विपुलता के कारण उत्पन्न होते हैं । जो पृथिवी नाना प्रकार के उद्योग-धंधों में लगे लोगों को गतिशील-उन्नति तथा प्रगति देती है । वह माता भूमि गायों के निमित्त से अथवा अन्न के निमित्त से हमें निरन्तर उद्बोधन देती रहे । ('अन्ने' यहाँ पर समुदाय—अभिप्राय से एकवचन है' ।

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन् ।

गवामश्वत्नां वयसश्च विष्ठा भगंवर्चः पृथिवी नो दधातु ॥५॥

पद-पाठः—यस्याम् । पूर्वे । पूर्वजनाः । विचक्रिरे । यस्याम् । देवाः ।

असुरान् । अभिऽ अवर्तयन् । गवाम् । अश्वानाम् । वयसः । च विऽस्था । भगम् ।

वर्चः । पृथिवी । नः । दधातु ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां ज्ञानधना ब्राह्मणाः शौर्यधनाः क्षत्रियाः कोशलधना वैश्याः कर्मधनाः शिल्पिनश्च स्वानि कर्माणि विक्रमगर्भाणि सम्पादयन्ति । यस्यां दिव्य भूमौ देवगणाः—असुरान् अभिभवन्ति । या धात्री गवाम् अश्वानाम् पक्षिणां च निवासस्थानीयाऽस्ति । सा पृथिवी सौभाग्यम् अस्माकं तेजश्च सर्वदा प्रवर्धयेत् ।

टिप्पणी—पूर्वजनाः—पूर्वपुरुषाः, पूर्वे च ते जनाश्च । विचक्रिरे—वि + कृ + लिट् । अश्वः—अश् + कृन् । अश्नुतेव्याप्लोती—ति अश्वः । वयसः—वेति गच्छतीति वयः पक्षी, तस्य । वेतेः—अमुन् । विष्ठा—वि + स्था + क + टाप् । भगम्—ऐश्वर्यादिकम् ।

हिन्ही-व्याख्या—जिम मातृभूमि से सम्बल पाकर आत्मवान् पुरुष ज्ञान शौर्य-कृषि-व्यापार-शिल्प आदि कार्यों को उत्साह के साथ सम्पन्न करते हैं । जिस पृथिवी पर देवों ने असुरों पर विजय प्राप्त की । जहाँ केर गौ, अश्व, पक्षी आदि नाना प्रकार के प्राणी स्थाय्य प्राप्त करते हैं; वह माता भूमि हमारे लिए भी धन-ऐश्वर्य-ज्ञान आदि से विभूषित करके तेजास्पर्शता का समगदन करे ।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी ।

वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्र ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

पद-पाठः—विश्वम्भरा । वसुधानी । प्रतिऽस्था । हिरण्यवक्षाः । जगतः ।

निऽवेशनी । वैश्वानरम् । विभ्रती । भूमिः । अग्निम् । इन्द्रऽऋषभा । द्रविणे । नः ।

दधातु ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—या मुदिनाकारा मातृभूमिः सर्वान् विभर्ति, विविधानां मणिर्त्नादीनां या निकेतभूता, या सर्वेषां प्रतिष्ठा, या स्वर्णपूर्णैस्का या च जगतो गतिप्रदायिनी सर्वेषाम् आश्रयभूता च । या भूमिस्तमग्निं धारयति यो विश्वेषां नेता प्राणधारकश्च । यस्याः गोरुपायाः पृथिव्या इन्द्र एव (सूर्य एव) ऋषभः वृषभस्थातीयः । सा भूमिः सर्वथा सर्वप्रकारा मुन्नतिं श्रियं च नो धारयतु ।

टिप्पणी—विश्वभरा—विश्व + भृ + खच् । मुम् । टाप् । विश्वं विभर्ति । वसुधानी—वसूनि धीयन्ते यस्याम् । वसु + धा + ल्युट् । डीप् । प्रतिष्ठा—प्रति + स्था + क + टाप् । हिरण्यवक्षाः—हिरण्यानि हितरमणीयानि वक्षसि यस्याः सा । निवेशनी—निविशन्ति यस्याम् । नि + विश + ल्युट् + डीप् । वैश्वानरम्—विश्वे नरा यस्यासौ विश्वानरः, विश्वानर एव वैश्वानरः । इन्द्र ऋषभा—इन्द्र ऋषभो यस्याः सा ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी समस्त भुवन को धारण करने वाली है, जिसमें नाना प्रकार के रत्न विद्यमान हैं, जो सकल जगत् की एक मात्र प्रतिष्ठा है, जिसके वक्षस्थल पर नाना प्रकार के स्वर्ण-रत्न-मणि-मुक्ता आदि के आकर (खान) हैं । जो जगत् को विश्राम देती है । जो विश्व-प्रिय अग्नि को धारण करती है, जिस गोरुप पृथिवी के लिए वृषभ रूप में इन्द्र (सूर्य) ही अवस्थित है । वह पृथिवी हमें रत्न-धन से सदा सम्पन्न रकवे ॥६॥

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीम् प्रभादम् ।

सा नो मधु प्रियं दुहामथौ उक्षतु वर्चसा ॥ ७ ॥

पद-पाठः—याम् । रक्षन्ति । अस्वप्नाः । विश्वदानीम् । देवाः । भूमिम् ।

पृथिवीम् । अ प्र s मादम् । सा । नः । मधु । प्रियम् । दुहाम् । अथौ इति । उक्षतु ।

वर्चसा ॥ ७ ॥

संस्कृत व्याख्या—यां मधुप्रसविनी दक्षाम् उदारां विश्वदानीं समग्रपूरयित्रीं सावित्री भूमि देवाः स्वप्नराहित्येन निरन्तरं सावधानाः पालयन्ति न कदाचित् कुत्रापि प्रमादमालस्यां वा कुर्वन्ति । सा कल्याणिनी भूमि नोऽस्मभ्यं मधु दोग्धु । प्रियं मधुरं च दोग्धु । अथ च निरन्तरं वर्चसा तेजसाऽऽनन्दं सिञ्चतु ।

टिप्पणी—अस्वप्नाः—स्वप्नरहिताः, निरालसाः । विश्वदानीम्—विश्व + दा + ल्युट् । डणेप् । दुहाम्—दुग्धाम् । लोटि प्रथमयुसपैकवचने छन्दसि प्रयोगः ।

हिन्दी-व्याख्या—वैज्ञानिकों, विद्वानों, शिल्पियों और विशेषज्ञों से रक्षित पृथिवी निरन्तर आनन्द का सम्पादन करती है, इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—जिस दानशील, प्रसवित्री पृथ्वी की रक्षा में देवगण प्रमाद-रहित होकर जागरूक रहते हैं । वह पृथिवी सदा हमारे लिए प्रिय-मधु का दोहन करती रहे और हम पर अमृत का सिंचन करती रहे ।

८—

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीद् यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः ।

यस्या हृदयं परमे व्योमन् तस्येनावृतममृतं पृथिव्याः ।

सानो भूमि स्त्विषिं बलं राष्ट्रं दधातुत्तमे ॥ ८ ॥

पद-पाठः—या । अर्णवे । अधि । सलिलन् । अग्रे । आसीत् । याम् ।

मायाभिः अनुऽअचरन् । मनीषिणः । यस्याः । हृदयम् । परमे । विऽओमन् । सत्येन ।

आऽवृतम् । अमृतम् । पृथिव्याः । सा । नः । भूमिः । त्विषिम् । बलम् । राष्ट्रं ।

दधातु । उत्तमे ॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—या भूमिरग्रे ऽर्णवे प्रशस्ते समुद्रे सलिलम् सरणशीलेव जलमयं रूपमास्थाय आसीत् कारण प्रपञ्चे लीनेव व्यवस्थिताऽऽसीत् यां मायाभिः शिल्पसहस्रगुणैर् मनीषिणः भुङ्गीराः पुरुषा अन्वचरन् अनुकूलतया परिचर्यया सेवितवन्तः । यस्या भूमे हृदयं परमे व्योमन् उत्कृष्टे गगनेऽमृतमिव सत्य संकल्पबलेन

अभिव्याप्रमस्ति । सा भूमिरस्मान् उत्कृष्टे राष्ट्रे त्विषिं कमनीयां कान्तिं बलं शौर्यं
सैन्यं शक्तिं चार्पयतु ॥ ८ ।

टिप्पणी—अर्णवे—प्रशस्तान्यर्णांसि विद्यन्ते यत्र, सोऽर्णवः, समुद्रः, तस्मिन् ।
वकारो मत्वर्थीयः । सलिलम्—सरिरम्—सरण—शीलमुदकम् । पृथिव्याः करण-
प्रपंचरूपम् । अग्ने—सृष्टेः प्राक् । मायाभिः—प्रज्ञानैः । मनीषिणः—मत्वर्थे इति ।
व्योमन्—सप्रमया लोपः छान्दसः । अन्वचरन्—अनु + चर + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—सृष्टि के प्रारम्भ में जो पृथिवी अतिशय जल-युक्त महासागर
में सरणशील बनकर सलिल रूप में ही अपने कारण—प्रपंच में अवस्थित थी । जिस
पृथिवी की शुश्रूषा में अत्यन्त मनीषी, ऋषि आदि सहस्रों गुणों तथा शिल्पों के साथ
तल्लीन रहे हैं, जिस पृथिवी का हृदय परम—गगन में अमृतरूप में अपने शुभ—सत्य
संकल्प के साथ अवस्थित है वह भूमि हमारे उत्तम राष्ट्र में कान्ति, तेज, बल, साहस
तथा आत्म—शक्ति धारण करे । (पृथिवी के परमाणु आकाश में अनश्वर—स्थिति में
रहते हैं और अगली सृष्टि के लिए कारण बनते हैं)

९—

यस्यामापः परिचराः समानी रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ।

सा नो भूमि भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥ ९ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । आपः । परिचराः । समानीः । अहोरात्रे इति ।

अप्रमादम् । क्षरन्ति । सा । नः । भूमिः । भूरिधारा । पयः । दुहाम् । अथो इति ।

उक्षतु । वर्चसा ॥ ९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां परितश्चरणशीलाः समस्वभावाः आपः जल-
धारा अहोरात्रे नक्तन्दिवम् अप्रामादं प्रमादेन विना निरन्तरं क्षरन्ति प्रवहन्ति । सा
कल्याणी पृथिवी भूरिधारा बहुधारा युक्ता नाना विधैरुपायैः प्रवर्तमाना पयो दोग्धु ।
अथ च वर्चसा तेजसाऽस्मान् उक्षतु तिचतु ॥ ९ ॥

टिप्पणी—परिचराः—परितश्चरन्तीति चरेष्टः । अहोरात्रे—अदृश्च रात्रि-
श्य इति अहोरात्रम् 'हेमन्तशिशिरावहोरात्रे चच्छन्दसि' इत्यर्थातिदेशात् २-४-२८
अप्रमादम्—प्रमाद आलस्य तद्रहितम् । दुहाम्—दुग्धाम् । छान्दसः प्रयोगः । समानी-
समन्तादानयति—आनयतेः (ण्यन्ताद् 'अन प्राणने') डः । (३-२-१०१ वा०)

हिन्दी व्याख्या—सभी प्रकार से आनन्द प्रद जलधारा में जिस पृथिवी पर निरन्तर निरालस होकर बहती रहती हैं, वह पृथिवी हमें नाना प्रकार से—नाना स्रोतों से सुखदायक दुग्ध का दोहन करती रहे और सर्वदा तेज की वर्षा करती है ।

१०—

याम॒श्विना॒वमि॒मातां॒ विष्णु॒ र्यस्यां॑ वि॒चक्र॒ये ।

इन्द्रो॒ यां च॒क्र आ॒त्मने॑नमि॒त्रां श॒चीप॑तिः ।

सा नो॒ भूमि॒ वि सृ॑जतां॒ माता॒ पुत्राय॑ मे॒ पयः॑ ॥ १० ॥

पद-पाठः—याम् । अश्विनौ । अमिमाताम् । विष्णुः । यस्याम् । विचक्रमे ।

इन्द्रः । याम् । चक्रे । आत्मने । अनमित्राम् । शचीपतिः । सा । नः । भूमिः । वि ।

सृजताम् । माता । पुत्राय । मे । पयः ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्या मान—वर्धनं कर्तुम् अश्विनौ सूर्यो देवश्चन्द्रश्च अमिमाताम् सक्षमौ भवतः, अश्विनावेव समर्थौ ज्ञातम् इयं पृथ्वी इयती, ईदृशी वा । यस्यां पृथिव्यां भगवान् विष्णुः समस्तं जगद् वेवेष्टि स्वकीयं शौर्यबलं च प्रख्यापयति यां रमणीयां रणसमर्थां वा पृथिवी रणरणककर्मणि योग्यां मत्वा शतक्रतुर्वज्रबाहुरिन्द्र आत्मने कामयते । या पृथिवी सर्व—पोषकत्वहेतुना शत्रुरहिता राजते । साऽभिनन्दनीया मे माता जननी पय आप्यायनरूपं दुग्धं विसृजताम् । वितरतु ।

टिप्पणी—शची पतिः—शची इन्द्राणी, शक्तिः, वाक्—तस्याः पतिः । विचक्रमे—विपूर्वस्य क्रमे लिट् । अनमित्राम्—नास्त्यमित्र यस्मां साऽनमित्रा, ताम् । अमिमाताम्—माङ् माने शब्दे च लङ् । प्रथम पुरुष द्विवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी की नाप-तोल 'अश्विनौ' सूर्य और चन्द्र करते रहते हैं । जिससे पृथिवी को आधार मान कर पराक्रम शाली विष्णु देवता अपने शौर्य कार्य करते रहते हैं । रमणीय रण के लिए समर्थ मान कर जिस पृथिवी को इन्द्र देवता अपनाते हैं । जो पृथिवी सबके प्रति स्नेहदायिनी होने के कारण शत्रु-बाधा से रहित है वह माता पृथिवी हम पुत्रों के लिए सर्वदा दुग्धपान कराती रहे ।

११— गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु ।

बभ्रुः कृष्णां रोहिणी विश्वरूपां ध्रुवा भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम् ।

अजीतोहतो अक्षतोध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥ ११ ॥

पद-पाठः—गिरयः । ते पर्वताः । हिमवन्तः । अरण्यम् । ते पृथिवी । स्योनम् ।

अस्तु । बभ्रुम् । कृष्णाम् । रोहिणीम् । विश्वरूपां । ध्रुवाम् । भूमिम् । पृथिवीम् ।

इन्द्रगुप्ताम् अजीतः । अहतः । अक्षतः । अधि । आस्याम् । पृथिवीम् । अहम् ॥ ११ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वया संधृता वयं ग्रामे नगरेऽरण्ये गहने कान्तारे घने पर्वते दुर्गमे हिमवत्प्रदेशे त्व सर्वत्रैव सुखिनो निरुपद्रवा भवेम । त्वं च सनतं कल्याणोपाया स्याः । अलं पृथिवीम् अध्यष्ठां—प्रतिष्ठया स्थितो भवेयम् । या पृथिवी कचिद् बभ्रुवर्णा कुत्रचित् कृष्णवर्णा कूप्य रोहिणी लोहितवर्णाऽस्ति । यद्वा ता पृथिवी बभ्रुः—भरणशीला, कृष्णा—कृषि कर्म योग्या—रोहिणी—स्वतः पिप्पल—वटोदुम्बर—पर्कटी—वित्वादिवनस्पतिभिः संयुक्ता रोहण स्वभावा । ताम् इन्द्र गुप्ताम् इन्द्रेण ऐश्वर्यशालिना देवेन रक्षितां विश्वरूपां नानारूपां ध्रुवां स्वकीये नियमे नियतां भूमि महमाश्रये । तथा पृथिव्या पालितो रक्षितोऽहं सदैव सशक्तो भूयासम्, जयशीलो भूयासम्, अक्षतोऽपीडितो भूयासम् ॥ ११ ॥

टिप्पणी—गिरयः—गिरित गृणाति वा गिरिः, इप्रत्ययः किञ्च । पर्वताः—पर्वति पूर्णो भवतीति पर्वतः । पर्वं विद्यतेऽस्मिन् इतिवा । अत्र यत्त्वर्थीयस्तकारः । अरण्यम्—ऋच्छन्ति यत्रतद् अरण्यम् । नास्ति रण्यं रकणीयं वा यत्र । स्योनम्—बाहुलकान्नप्रत्यये ऊठि यणि गुणे सिद्धम् । बभ्रु—बिमर्ति सर्वमिति भृधातोः कुः प्रत्ययो द्वित्वं च । रोहिणी—रुहेः इनन् । स्त्रियां डीष् । अजीतः—ह्रस्वत्व छान्दसत्वात् । अध्यष्ठां—‘गातिस्थान’ इति सिचो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता, पृथिवी ! आपकी कृपा से समस्त पहाड़ियों, हिमवान् पर्वत, वन—कान्तार आदि हमारे लिए शान्त, सुखदायक तथा निरुपद्रव हैं । मैं पृथिवी का ही आश्रय लेता हूँ जो सर्वदा इन्द्र—देवता से सुरक्षित है । जो

भरण शील, कृपियोग्य तथा रोहण स्वभाव वाली (उर्वर) है। जो अपने नियमों में निश्चल, नाना रूपों वाली तथा विस्तीर्ण है। मैं सर्वदा जयशील, पीडा—बाधा—रहित होकर प्रगति—पथ पर अग्रसर रहूँ ॥११॥

१२-

यत्ते मध्यं पृथिवी यच्च नम्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।

तासु नो ह्यभि नः धेपवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।

पर्जन्यः पिता स ड नः पिपतु ॥ १२ ॥

पद-पाठः—यत् । ते । मध्यम् । पृथिवी । यत् । च । नम्यम् । याः । ते । ऊर्ज

स्तन्वः । सम् । बभूवुः । तासु । नः । धेहि । अभि । नः । पवस्व । माता । भूमिः ।

पुत्रः । अहम् । पृथिव्याः । पर्जन्यः । पिता । स । ऊँ इति । नः । पिपतु ॥ १२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! यद् रमणीयं वस्तु तव मध्यदेशस्य भूषणभूत-मस्ति यद्वा वस्तु ते नाभिप्रदेशम् अलङ्करोति । या वा ते मनुजादिरूपा बलवर्णवृद्धिकराः तन्वः (शरीराणि) सन्ति । तासु पूजार्हासु अस्मानपि प्रशस्तान् विधाय पोषय । अभिनः पवस्व—पवित्रानस्मान् विधेहि । भूमिरस्माक माता मातृरूपा, अहं च भूमे मर्तुः पुत्रोऽस्मि । वृष्टे देवः पर्जन्य एव अस्माकं पिता पालयिताऽस्ति । स देवः पर्जन्यः सदैव समये वृष्टिप्रदानेनास्मान् पिपतु सुखयतु ॥ १२ ॥

टिप्पणी—नम्यम्—‘नाभि नमं च’ ‘उगवादिभ्यो यत्’ ५-१-२ इति यत् । नाभये हितं नम्यं स्थानम् । पिपतु—पृ पालन—पूरणयोः लोटि । पर्जन्यः—पर्वति सिचतीति पर्जन्यः । षकारस्य जकारो निपातनात् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथ्वी मां ! आपका अलङ्कृत मध्यभाग, अथवा नाभि-प्रदेश अथवा बल-वर्ण आदि में विभज्य जो आपके नाना रूप हैं, उन शरीरों में हमें भी आस्था, प्रतीष्ठा से युक्त कीजिये और मनसा, वाचा, कर्मणा हमें भी पवित्र-पावन बना दीजिये । निश्चय ही यह भूमि माता है और मैं इसका भाग्यवान् पुत्र हूँ । पर्जन्य (मेघ का अभिमानी देव) हमारा पालक पिता है, वह हमारी तृप्ति—पूर्ति करता रहे ॥१२॥

१३-

यस्यां वेदिं पारिगृह्णन्ति भूम्यां यस्यां यज्ञं तन्वते विश्वकर्माणः ।

यस्यां मीयन्ते स्वरवः पृथिव्यामुर्ध्वाः शुक्रा आहुत्याः पुरस्तात् ॥

सा नो भूमि वर्धयद् वर्धमाना ॥ १३ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । वेदिम् । परिगृह्णन्ति । भूम्याम् । यस्याम् । यज्ञम् ।

तन्वते । विश्वऽकर्माणः । यस्याम् । मीयन्ते । स्वरवः । पृथिव्याम् । उर्ध्वाः शुक्राः ।

आहुत्याः । पुरस्तात् । सा । नः । भूमिः । वर्धयत् । वर्धमाना ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां सर्वतो वेदिं स्वीकुर्वन्ति । यस्यां विश्वकर्माणो नानाकर्माणः शिल्पिनो विविधान् संकलन-व्यवकलनरूपान् यज्ञान् विस्तारयन्ति । यस्यां स्वरवः यज्ञस्तम्भान् कीर्तयूपान् निर्मान्ति यशस्विनः । ये खलु कीर्तिस्तम्भा उर्ध्वाः शुक्रा दीप्तिमन्तः आहुत्याः शोभनाह्वानयुक्ताः सर्वेषां पुरतः गुणकर्माणि गायन्ति । सा सततं वर्धमाना भूमिरस्मान्नापि वर्धयत श्रेष्ठे कर्मणि योजयतु ॥ १३

टिप्पणी - विश्वकर्माणः—विरवानि कर्माणि येषां ते । शिल्पिनः । स्वरवः—स्वशब्दोपतापयोः, उप्रत्ययः, । यज्ञस्तम्भाः, कीर्तिस्तम्भा वा । स्वयन्ते यशस्विन—एभिः वर्धमाना—वृधु + शानच् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी पर अपनी विद्यमानता के लिए वेदी की रचना की जाती रही है, जिस पृथिवी पर शिल्पी लोग नाना प्रकार के चमत्कार युक्त कार्य करते हैं, जिस पृथ्वी पर ऊँचे, कान्तिमान्, आहुतियों के साथ कीर्ति—स्तम्भ स्थापित किये जाते हैं । वह पृथ्वी निरन्तर समृद्धि को प्राप्त करे और इस पृथ्वी की कृपा से हम भी धन-धान्य से परिपूर्ण हों ।

१४

यो नो द्वेषत् पृथिवि यः पृतन्याद् योऽमिदासां मनसा यो वर्धेन ।

तं नो भूमे रन्ध्रं पूर्वकृत्विर ॥ १४ ॥

पद-पाठ—यः । नः । द्वेपत् । पृथिवि । यः । पृतन्यात् । यः । अभिऽदासात्

मनसा । यः । वधेन । तम् । नः । भूमे । रन्धय । पूर्वऽकृत्वरि ॥ १४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! योऽस्मान् द्रष्टुं यो वाऽस्याक्रमते सेनायाऽभिषेणयति । यो वाऽमाकं कर्माणि कर्म—व्यवहारन् नाशयति, मनसा वा कर्मणा वा यः शत्रुसंचारं चरति । हे पूर्वकृत्वरि पूर्वमेव कर्तुं शीले तं तथा भूतं दुष्टं रन्धय विगलितशरीरं कुरु ॥ १४ ॥

टिप्पणी—द्वेपत्—द्विप् + लेट् । पृतन्यात्—पृतना = सेना, तथा याति पृतन्यति—लिङ् । अभिदासात्—अभि + दसु उपक्षये, लिङ् । पूर्वकृत्वटि—पूर्वमेव कर्तुं शीलं यस्याः सा—पूर्व + कृ + कुरप् + डीप् । ॥ १४ ॥

हिन्दो-व्याख्या—हे माता पृथिवी ! जो सस्कार-हीन व्यक्ति हमसे द्वेष—बुद्धि रखते हैं और जो हम पर नाना प्रकार के अभियान चलाते हैं, जो प्रत्यक्ष रूप से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से (मनसा योजनाओं द्वारा) आयुध के साथ अथवा निरायुध होकर हमारी कल्याण प्रद योजनाओं को आहत करते हैं, उन्हें पूर्व ही निष्फल कर दे । हे मां हमारी योजनायें और प्रतिभायें सदा उज्ज्वल तथा उर्वर रहें ॥ १४ ॥

१५—

त्वज्जातास्त्वयि चरन्ति मर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः ।

तवमे पृथिवि पंचमानवा येम्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्यः ।

उच्चन्तसूर्यो रश्मिभिरातनोति ॥ १५ ॥

पद-पाठ—त्वत् । जाताः । त्वयि । चरन्ति । मर्त्याः । त्वम् । बिभर्षि ।

द्विऽपदः । त्वम् । चतुऽपदः । तव । इमे । पृथिवि । पञ्च । मानवाः । येम्योः ।

ज्योतिः । अमृतम् । मर्त्येभ्यः । उत्स्यन् । सूर्यः । रश्मिऽभिः । आऽतनोति ॥ १५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! एते सर्वे प्राणिनस्त्वदेव उत्पन्ना अथ च त्वयि एवाधारभूतार्या जीवनव्यापारं साधयन्ति । त्वमेव द्विपद्भूतान् मनुष्यादीन् अथ च चतुष्पद्भूतान् पशून् पोषयसि । एते निषादपंचमा इक्ष्वाकरो वर्णा ज्ञानिनः शूरा व्यवसायिनः सेवापरायणाश्च शिल्पिनः सर्वे वयं तवैवात्म भूताः; येभ्योऽमृतं ज्योतिः प्रयच्छन् रश्मिभिः सूर्यो भैभवं विस्तारयति ॥१५॥

टिप्पणी—त्वत् जाताः—त्वमेवोपादानभूता, अतः त्वत् इमें जाता उत्पन्नाः । मर्त्याः—मरणधर्माणः, मनुष्याः । पंच मानवाः—पंच—गुण कर्मस्वभावाः उद्यन्—उत् + इ + जृत् ॥१५॥

हिन्दी व्याख्या—हे पृथिवि ! इन समस्त प्राणियों के निर्माण में आप ही उपादान कारण हैं, अतः सारी सृष्टि के आधार रूप में आप ही सम्बल देती हो । समस्त प्राणी आपके ही अवलम्बन में अपना-अपना कार्य-व्यवसाय करते हैं । आप ही द्विपद्—चतुष्पद् जीवों को धारण-पोषण कर रही हो । पाँच स्वभाव के मानव आपके ही आत्म-भूत हैं जिनके लिये भगवान् सूर्य भी अमृतमय ज्योति का सृजन और विस्तार करते हैं ॥१५॥

१६—

ता नः प्रजाः सं दुहतां समग्रा वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम् ॥१६॥

पद-वाचः—ताः । नः प्रजाः । सम् । दुहताम् । सम्सग्राः । वाचः । मधु ।

पृथिवि । धेहि । मह्यम् ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! वयं सर्वे तवैव पुत्रभूताः परस्परं व्यवहारान् आनन्ददायिनः कुर्याम । मह्यमपि हे पृथिवि ! वाचो मधु रसायनं देहि यया परितृप्तः पूर्णोऽहं सुखमानन्दं च विन्देयम् ॥ १६ ॥

टिप्पणी—वाचः मधु—सत्यं हितं प्रियं ध्यातमास्नातं च वाचो मधु । धेहि—धा + लोट् । सं दुहताम्—‘बहुलं द्दन्दसि’ ७-१-८ इति रुडागमः ॥१६॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवि ! हम सभी आपके ही पुत्र हैं । हम परस्पर अपने व्यवहार को पवित्र, आकर्षक और सावधान रखें जिससे सभी प्रसन्न और सानन्द रहें । हे मां ! आपकी प्रेरणापूर्ण कृपा से मैं वाणी के मधु को प्राप्त करूँ जिससे सभी के साथ विवेकपूर्ण, सत्य, प्रिय और हितकर एवं मधुर वाणी में व्यवहार कर सकूँ ॥ १६ ॥

१७-

वि॒श्वस्व॑मा॒तर॒मोष॑धीनां ध्रु॒वां भूमि॑ पृथि॒वीं धर्म॑णा धृ॒ताम् ।

शि॒वां स्यो॒नाम॑नु चरेम॒ विश्व॑हा ॥१७॥

पद-पाठः—वि॒श्वः स्वः॑म् । मा॒तरम् । ओष॑धीनाम् । ध्रु॒वाम् । भूमि॑म् ।

पृथि॒वीम् । धर्म॑णा । धृ॒ताम् । शि॒वाम् । स्यो॒नान् । अनु॑ । चरेम॒ । विश्व॑हा ॥१७॥

संस्कृत-व्याख्या—या पृथिवी विश्वस्य स्वभूता स्वत्वाधायिनी वर्तते । या ओषधीनां माताऽस्ति । तां धर्मेण संधृतां नियतां शिवां कल्याणप्रदां भूमिं विश्वहा सर्वदावयं तन्मयेन चेतसाऽनु चरेम । सदाचारतया पूजयेम ॥१७॥

टिप्पणी—विश्वस्वम्—विश्वस्य सर्वस्वभूताम् । धर्मणा—धृ + मनिन् । तृतीया । धृताम्—धृ + त + टाम् । विश्वहा—विश्वेषु अहः सुः ॥१७॥

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी सर्वस्व रूप में सबकी प्रतिष्ठा का कारण है, जो ओषधियों की जननी है । उस नियमनशील पृथ्वी की अनुकूलता में हम सदा सदाचार का सेवन करें । यह पृथ्वी धर्म से ही धारण की जा सकती है । धर्म से ही यह पृथिवी दुःखनाशक, कल्याणप्रद और समस्त सुखों की जननी है ॥१७॥

१८-

मह॑त्स॒धस्थं॑ मह॒ती बभू॑विथ॒ महान्॑ वे॒ग एज॑थु॒ वेप॑थु॒ष्टे ।

महाँ स्त्वेन्द्रो॑ रक्ष॒त्यप्र॑मादम् ।

सा नो॑ भू॒मे प्र॒रोच॑य॒ हिर॑ण्यस्येव॒ संद॑शि॒ मा नो॑ द्वि॒क्षत॑ कश्चन ॥१८॥

पद-पाठ—मह॑त् । स॒धःस्थम्॑ । मह॒ती । बभू॑विथ । महान् । वे॒गः । एज॑थुः । वेप॑थुः ।

वेप॑थुः । ते । महान् । त्वा । इन्द्रः । रक्ष॒ति । अ॒प्र॒मादम् । सा । तं । भू॒मे । प्र ।

रोचय । हिरण्यस्यऽइव । सम्ऽदृशि । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वदीयं सधस्थं सह स्थान भूत निवास योग्यं स्थलं महदस्ति । आश्रयदानेन त्वं च महती विशालाऽसि । तव एजथु वेषथुः क्षणमात्र-कम्पनमपि न स्वल्पाय नाशाय भवति, अतस्त्वं सर्वथैव प्राणभूताऽसि । महान् एवेन्द्रः खलु यश्च अप्रमादं सावधानतया तव रक्षां विदधाति । हिरण्य संदर्शनेव भूमे ! त्वं नोऽस्यभ्यं प्ररोचय रुचिकरी भव । न कश्चन पुरुषोऽस्मान् प्रति द्वेषं कुर्यात् ॥१८॥

टिप्पणी—सधस्थम्—सह स्थानम् = निवास स्थानम् । बभूविथ—भू + लिट्, मध्यमपुरुषैकवचने । एजथुः—एज् कम्पनेअथुच् प्रत्ययः । वेषथुः—टुवेप् कम्पने + अथुच् । अप्रमादम्—प्रमादरहितम् । सदृशि—संदर्शने, सम् + दृश् + क्विप् ॥१८॥

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! आपकी कृपा से प्राप्त हमारा निवास-स्थान विशाल, विमल और विपुल है । सबसे लिये आश्रय देने के कारण आप सर्वर और विपुल सम्पदाओं की स्वामिनी हैं । आपका क्षण-मात्र का कम्पन भी विशाल-विध्वंस का कारण बनता है, अतः आप ही सबकी प्राणदायिनी हैं । वह इन्द्र भी महान् है जो निरन्तर आपके रक्षा-विधान में संलग्न है । स्वर्ण-पुरुषों से आप सर्वत्र अलङ्कृत हैं, अतः हमारे लिए सर्वत्र ही मनोरजन और आनन्द का सृजन कीजिये । हे मां ! आपका कोई पुत्र (पृथ्वी-पुत्र) हमसे द्वेष-भावना न रखे ॥१८॥

१९—

अग्नि भूम्यामोषधीष्वग्निभापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।

अग्निरन्तः पुरुषेषु गोवश्वेष्वग्नयः ॥१९॥

पद-पाठः—अग्निः भूम्याम् । ओषधीषु । अग्निम् । आपः । बिभ्रति । अग्निः

अश्नऽसु । अग्निः । अन्तः । पुरुषेषु । गोषु । अश्वेषु । अग्नयः । ॥१९॥

संस्कृत-व्याख्या—पृथिवीस्थानीयो ऽ धुता प्रधानभूतोऽग्निः सः स्तूयते । अग्निरेव भूम्यां भूमे निमित्तभूतोऽवस्थितोऽस्ति सर्वास्वोषधीषु चाग्निरेव पक्वतां पुष्टिं च निदधाति । इमा आपश्च विद्युद्रूपमग्निं स्वे दमे बिभ्रति धारयन्ति । अश्वसु स्वर्ण-मणि-हीरकरत्नेष्ववस्थितोऽग्निं मंहते कल्याणाय सिद्धयति । पुरुषेषु गोषु

अश्वेषु सर्वत्र यत्र कूचन विभूतिमत्तेजो वर्तते तत्सर्वमग्नेरेव परमात्मनो ज्योतिषा द्योतते ॥१९॥

टिप्पणी—जीवनोपायभूतोऽग्निरेव स च पृथित्यामेव अवस्थितो विराजते ।

हिन्दी-व्याख्या—समस्त जीवन का उपाय अग्नि में ही सन्निहित है । भूमि, ओषधि, जल, पत्थर, पुरुष, गौ, अश्व आदि सभी की स्थिति और विभूति का मूल कारण अग्नि ही है । अग्नि ही मानव-जीवन का ओज है और अग्नि ही परम विवेक का उत्पादक है जिससे मानव मोक्ष की प्राप्ति करता है ॥१९॥

२०—

अग्निं दिव आतपत्यग्ने देवस्स्योर्व १ न्तरिक्षम् ।

अग्निं मर्तासि इन्धते द्यवाहं घृतप्रियम् ॥२०॥

पद-पाठः—अग्निः । दिवः । आ । तपति । अग्नेः । देवस्य । उरु । अन्त-

रिक्षम् । अग्निम् । मर्तासिः । इन्धते । दृव्यवाहम् घृतप्रियम् ॥२०॥

संस्कृति-व्याख्या—द्योतनात्मके द्युलोके सूर्यरूपोऽग्निरेव परितपन् प्रकाशं तेजश्च स्थापयति येन लोकः पुष्टइष्टश्च जायते । अग्निना एव देवेन प्रकाशितं विभु विशालम् अन्तरिक्षं विद्योतते । दीप्त्यर्थं प्रीत्यर्थं रोगनिवारणाय सुखाय चायमेव घृतप्रियो दृव्यवाहनोऽग्निं हूयते स्तूयते च मानवसमूहेन ॥२०॥

टिप्पणी—देवस्य—दीव्यति इति देवः, तस्य । दिवु + घृत् । दृव्यवाहम्—दृव्यं वहति, दृव्य + वह + अण् । घृतप्रियम्—घृतं प्रियं यस्य तम् । इन्धते—ज्वाइन्वी दीप्तौ । । प्रथमपुरुष बहुवचने ॥२०॥

हिन्दी-व्याख्या—द्युलोक में विराजमान सूर्यरूप में अग्नि ही अपना प्रकाश और तेज स्थापित कर रहा है जिसके कारण समस्त लोक पुष्ट और परितृप्त है । अग्नि देवता के ही कारण प्रकाशित यह विशाल अन्तरिक्ष धारण और पोषण में सक्षम हुआ है । दीप्ति, प्रीति, कीर्ति, रोगनिवारणार्थ और सुखार्थ यही घृत—प्रिय, द्रव्य—वाहन अग्नि हवन के लिए तथा स्तुति के लिए पात्र बनता है ॥२०॥

२१—

अग्निवासाः पृथिव्यसितज्ञू स्त्विषीमन्तं

संशितं मा कृणोतु ॥२१॥

पद-पाठः—अ॒ग्नि॒ऽवा॒साः । पृ॒थि॒वी । अ॒सि॒तऽज्ञूः । त्वि॒षी॑ऽमन्तम् । सम्॒स

शि॒तम् । मा । कृ॒णो॒तु ॥२१॥

संस्कृत-व्याख्या—अग्निनाऽऽच्छादितेयं च असितज्ञूः पृथिवी असिते जानुनी यस्याः कृष्णवर्णेत्यर्थः । यहा असितज्ञूः—बन्धनरहिते असिते जानुनी यस्याः सर्व-समर्था कठोरावयवा सशक्ताऽस्माकं पृथिवी सा मां त्विषीमन्तं कान्तिमन्तं संशितं प्रशंसितं सशक्तमुदारं सुवीरं कृणोतु सम्पादयतु ॥२१॥

टिप्पणी—अग्निवासाः—अग्निरेव वासःस्थानीयो यस्याः, स्ववीर्यगुप्ता । असितज्ञूः—असिते कृष्णे बन्धन-रहिते वा जानुनी यस्याः । न सिते असिते । यद्वा षिञ् बन्धने क्त प्रत्ययः । संशितम्—सम् + शो + क्तः ॥२१॥

हिन्दी-व्याख्या—अग्नि रूप वस्त्र से आच्छादित यह पृथ्वी सदैव आकर्षक = कृष्णवर्ण वाली और बन्धन रहित है । यह पृथिवी हमें कान्तिमान्, यशस्वी और प्रशंसनीय तथा तीक्ष्ण बुद्धि से संपन्न करे ॥२१॥

२२—

भू॒म्यां॑ दे॒वेभ्यो॑ द॒दति॑ य॒ज्ञं ह॒व्यम॑रं कृतम् ।

भू॒म्यां मनु॑ष्याऽजी॒वन्ति॑ स्व॒धया॑न्नेन॒ मर्त्याः॑ ।

सा नो॒ भूमिः॑ प्रा॒णमायु॑र्द॒धातु॑ ज॒रद॑ष्टिं मा पृ॒थि॒वी कृ॒णो॒तु ॥२२॥

पद-पाठः—भू॒म्याम् दे॒वेभ्यः॑ । द॒दति॑ । य॒ज्ञम् । ह॒व्यम् । अ॒रम॑ऽकृतम् ।

भू॒म्याम् । मनु॑ष्याः । जी॒वन्ति॑ । स्व॒धया॑ । अ॒न्नेन॑ । म॒र्त्याः । सा । नः । भूमिः॑ ।

प्रा॒णम् । आ॒युः द॒धातु॑ । ज॒रत्ऽअ॑ष्टिम् । मा पृ॒थि॒वी । कृ॒णो॒तु ॥२२॥

संस्कृत-व्याख्या—अलंकृतं यज्ञं होतुं वस्तु च मानवाः पृथिव्यामेव देवेभ्यः समर्पयन्ति । स्वधया स्वत्वधारणशक्याऽन्नेन च मानवाः पृथिव्यामेव जीवन्ति ।

स्वसामर्थ्यं प्रकटयन्ति । सा एवंरूपा पृथिवी नोऽस्मभ्यं प्राणशक्तिं स्वास्थ्यम् आयुश्च दधातु पोषयतु । मां पृथिवी जरदष्टिं जरन्ती स्तुत्या अष्टिः देह्यष्टिं यस्य तथा कृणोतु करोतु । यथाऽहं प्रतिष्ठितः प्रशंसितश्च भूयासम् ॥२२॥

टिप्पणी—अरंकृतम्—अलङ्कृतम् । दृव्यम्—यत् प्रत्ययः । स्वधया—स्वं दधातीति स्वधा, तथा । जरदष्टिम्—जरन्ती स्तुतियोग्या वृद्धत्वमापन्ना वाऽष्टिः शरीरं यस्य असौ जरदष्टिः, तम् ॥२२॥

हिन्दी-व्याख्या—भूमि के ही आधार पर मानव अलङ्कृत यज्ञ तथा पूज्य पूजा-सामग्री को देवों तक ले जाते हैं । भूमि के ही अवलम्बन से मानव स्वत्व की धारणा-शक्ति एवम् अन्न से जीवन-लाभ करते हैं । वह भूमि हमारे भीतर सदा प्राण संचार करती रहे, प्रशंसनीय आयु दे । मेरे शरीर को पुष्टपक्व तथा स्तुत्य बनादे जिससे मन, वचन और कर्म से मैं निष्ठावान् बना रहूँ ॥२२॥

२३—

यस्ते॑ गन्धः॑ पृथिवि॑ सं॒व॒भू॒व॒यं बिभ्र॑त्योषधयो॑ यमापः॑ ।

यं गन्ध॑र्वा अप्सर॑सश्च भेजिरे॑ तेन॑ मा सुर॑भिः कृणु ।

मा नो॑ द्वि॒क्षत॑ कश्चन॑ ॥२३॥

पद-पाठः—यः । ते । गन्धः । पृथिवि । सम् । वभूव । यम् । बिभ्रति ।

औषधयः । यम् । आपः । यम् । गन्धर्वाः । अप्सरसः । च भेजिरे । तेन । मा ।

सुरभिम् । कृणु । मा नः । द्वि॒क्षत॑ । कः । चन॑ ॥२३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! येन गन्धेन त्वं गन्धवतीति विख्याता । यसिस्त्विनः पुरुषा येन गन्धेन पुष्टिवर्धना जायन्ते । औषधीषु जलेषु यस्ते गन्धः प्रभावं पुष्पाति येन गन्धेन गन्धर्वाः स्वरसाधनसमर्था अप्सरसश्च येन गन्धेन नृत्य-दुग्ध सुग्धा भवन्ति । तेनैव गन्धेन मामपि कलाकौशलपूर्णं विधेहि । वयं सर्वे कला-सौष्ठवयुक्ता गहना उन्नताशया भवेम । न कश्चन दोषद्वेषशंकाकलङ्कदीनो विहीनो वा भवेत् ॥२३॥

टिप्पणी—गन्धः—यशो वै पुरुषस्य गन्धः । गन्धर्वः—गच्छतीति गम् स्वर-
विद्या तां धरतीति गन्धर्वः—स्वरशास्त्रपारंगतः । अप्सरसः—अप्सु नृत्यकर्मसु सरन्तीति
अप्सरसः । ओषधयः—ओषोऽन्नधीयते । ओषः पुनः रोगदहनकारी ॥२३॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथ्वी ! जिस गन्ध के कारण आपको गन्धवती कहा गया
है । यशस्वी लोग जिस गन्ध के कारण पुष्ट और प्रख्यात हुए हैं । ओषधियों और
जल-तरंगों में जो आपका गन्ध है, जिस गन्ध से गन्धर्व गान-कला में तथा अप्सरायें
नृत्य कला में प्रवीण मानी गयी हैं । उसी गन्ध से मुझे भी यशस्वी बना दीजिये ।
हम परस्पर प्रेम से रहें । कोई आपस में द्वेष-बुद्धि न रखे ॥२३॥

२४—

यस्ते॑ गन्धः पु॒ष्कर॑ मा॒वि॒वेश॒ यं संज॑भ्रुः सूर्या॑या वि॒वाहे॑ ।

अम॑र्त्याः पृथि॒वि गन्ध॑म॒ग्रे तेन॑ मा॒ सुर॒भिं कृ॑णु ।

मा नो॑ द्वि॒क्षत॑ कश्चन॒ ॥२४॥

पठ-पाठः—यः । ते गन्धः । पुष्करम् । आ॒वि॒वेश । यम्सम्सजभ्रुः । सूर्यायाः ।

वि॒वाहे॑ । अम॑र्त्याः । पृथि॒वि । गन्ध॑म् । अग्रे॑ । तेन॑ । मा । सुर॒भिम् । कृ॒णु । मा ।

नः । द्वि॒क्षत॑ । कः । चन॒ ॥२४॥

संस्कृत व्याख्या—हे मातः । पृथिवि ! यो गन्धस्ते पुष्करे । पुष्टिकरे पद्मे आविवेश
प्रविष्टोऽस्ति । यं च गन्धं सूर्याया उपसो विवाह काले विबह्नसमयेऽग्रेऽमर्त्या देवा
दिव्या इमेधारयन्ति । नासिकारन्ध्रं प्रभातवेलायां सुरभिवायुना प्रपूरयन्ति । तेनैव मनः
प्रसादकारिणा गन्धेन समापि प्राणमात्मानं सुरभिमयं कृणु कुरु । अहमपि प्रकाशानन्द-
जुषाऽरविन्दवायुनाऽऽत्मानं सुखयेयम् न कश्चनास्मान् प्रति द्वेषभावं कुर्व्यात् ॥२४॥

टिप्पणी—पुष्पकरम्—पुष्पातीति पुष्करम् । अरविन्दम् । पुष्प + करन् ।
कित् । सूर्यायाः—‘सूर्यादेवतायां चाव्यक्तव्यः ।’ ४-१-४८ इति वातिकेन सूर्या, ततः
षष्ठी । अमर्त्याः—देवाः, मरणरहिताः । मृति + यत् । न मर्त्याऽमर्त्यः । आविवेश—
आ + विश + लिट् । संजभ्रुः—सम् + भ्रु + लिट् । बहुवचने ॥२४॥

हिन्दी-व्याख्या—हे मां पृथिवी ! आपके ही गन्ध से गन्धवान् कमल का पुष्प जिस कोमल-आनन्द को वहन कर रहा है अथवा जिस गन्ध को उषा के विवाह-काल (प्रभात-वेला) में वायु आदि देवता धारण करते हैं । उसी आनन्दप्रद गन्ध से आप मुझे भी सुरभित कीजिये । मैं कीर्ति-गन्ध से विकसित और सदा आनन्दित रहूँ । कोई कभी हमसे द्वेष-भावना न करे ॥२४॥

२५—

यस्ते॑ गन्धः॑ पुरुषेषु॑ स्त्रीषु॑ पुं॒सु॑ भगो॑ रुचिः॑ ।

यो अश्वेषु॑ वीरेषु॑ यो मृगेषू॑त हस्तिषु॑ !

कन्यास्यां॑ वर्चो॑ यद् भूमे॑ तेनास्माँ॑ अपि स॑ सृज॑ ।

मा नो॑ द्विक्षत॑ कश्चन॑ ॥ २५ ॥

पद-पाठः—यः । ते । गन्धः । पुरुषेषु । स्त्रीषु । पुं॒सु॑ । भगः । रुचिः ।

यः । अश्वेषु । वीरेषु । यः । मृगेषु । उत । हस्तिषु । कन्यास्याम् । वर्चः । यत् ।

भूमे । तेन । अस्मान् । अयि । सम् । सृज । मा । नः । द्विक्षत । कः । चन ॥ २५ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे मातः ! भूमे ! पौरुष प्रधानेषु शूरेषु स्त्रीषु पुरुषेषु अश्वेषु विजयशीलेषु मृगेषु हस्तिषु यस्ते गन्धोऽभिव्याप्तोऽस्ति येन गन्धेन ते चकुरा मानिनो मनस्विन स्तेजस्विनः प्रभवन्ति । येन गन्धेन कन्या कमनीया ब्रह्मचारी च कान्तिमाञ्ज् जायते, तेन गन्धेन अस्मान् अपि पूर्णान् वीरान् समरसहान् विधेहि । वयं धीराः कान्तिमन्तो मनस्विनो मनीषिणश्च भवेम । नैव कश्चन अस्मान् प्रति द्वेष-बुद्धिं धारयेत् । सर्वे प्रियाः प्रेयांसः श्रेष्ठा जायेरन् ॥२५॥

टिप्पणी—रुचिः—रुच् दीप्ती, कि प्रत्ययः । वर्चः वर्च + असुन् ॥२५॥

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! पौरुष से युक्त शूरों में, तारियों में, मानवों में, अश्वों में, जयशील वीरों में, मृगों में, हस्तियों में तथा अन्य वैभव युक्त प्राणियों

में जो ऐश्वर्य तथा कान्ति है। कन्याओं में अथवा ब्रह्मचारियों जो में कान्ति तथा ब्रह्म तेज है, उससे हम हम सबको भी कान्तिमान् तथा तेजस्वी बना दीजिये। सभी स्नेह और निष्ठा से परस्पर योग देकर उन्नति करें। कोई पुरुष अन्य पुरुष से अथवा हम लोगों से द्वेष-भावना न रखे ॥२५॥

२६—

शिला भूमिरश्मा पांसुः सा भूमिः संधृता धृता ।

तस्यै हिरण्यवक्षसे पृथिव्या अकरं नमः ॥ २६ ॥

पद-पाठः—शिला । भूमिः । अश्मा । पांसुः । सा । भूमिः । सम्ऽधृता ।

धृता । तस्यै । हिरण्यवक्षसे । पृथिव्यै । अकरम् । नमः ॥ २६ ॥

संस्कृत व्याख्या—शिला, भूमिः मृण्मयी पृथिवी, अश्मा प्रस्तरयुक्तो भूखण्डः, पांसुः धूलिप्रदेशः ; इत्येतावन्मात्रमेव नैवास्माकं मातृस्थानीयेन जननि भवति, अपितु इयं देवर्षिभि र्यहर्षिभी राजर्षिभिः संधृता सम्यक् पाषिता पालिता अवि चित्करी खल्वपि विश्वंभरा मातृचरणा चिन्मयी । अस्यै हिरण्यवक्षसे स्वर्णाभरणायै पृथिव्यै श्रद्धयाऽहं नमोवचनेन मनीषया स्तौमि, अभिवादयेऽभिनन्दामि ॥ २६ ॥

टिप्पणी—हिरण्यवक्षसे—हिरण्यं स्वर्णमयं भूषणोपेतं वक्षो यस्याः सा, तस्यै ॥ २६ ॥

हिन्दी-व्याख्या—शिला, भूमि, मिट्टी, पत्थर, धूल, इतने मात्र को ही पृथिवी नहीं कहा जा सकता । यह पृथिवी हमारी माता (निर्माता=निर्मात्री) है । यह देवर्षि, महर्षि और राजर्षियों से पालित, वन्दित और अभिनन्दित चिन्मयी (चैतन्य रूपा) शक्ति है । देवताओं ने इसे सराहा और शुभाधार दिया है । इस स्वर्णाभरण से जगमगाने वाली मातृभूमि का मैं अभिनन्दन करता हूँ ॥२६॥

२७—

यस्यां वृक्षा वानस्पत्या ध्रुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा ।

पृथिवीं विश्वधायसं धृतामच्छा वदामसि ॥ २७ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । वृक्षाः । वानस्पत्याः । ध्रुवाः । तिष्ठन्ति । विश्वहा ।

पृथिवीम् । विश्वधायसम् । धृताम् । अच्छ ५ आ वदामसि ॥ २७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां फलच्छायासमन्विता गन्धाद्व्या नानाकारा वृक्षाः सुखानन्ददायिनः स्थिताः सन्ति । मूल-पत्र-पुष्प-दुग्धोपेता वनस्पत्यश्च यस्यां स्थित्वा रोगान् निवारयन्ति निरन्तरं च सर्वेषु दिनेष्ववस्थिताः सर्वत्र सुखवर्धनानि निरूपद्रवाणि निष्पापानि रक्षणानि तन्वन्ति । तां विश्वधायसं सर्वपोषिकां मातरं पवित्रामात्यबलेन अवस्थिताम् अच्छ आवदामसि । प्रियं हितं मधुरं बुद्धिगम्यं वचनं वदामः । तां प्रति तत्पुत्रान् प्रति च सदैव स्निग्धेन व्यवहरामः ॥२७॥

टिप्पणी—विश्वहा—विश्वेषु अहः सु, सर्वेषु दिनेषु । विश्वधायसम् —विश्वं दधाति । विश्व + धा + अयमुन् ॥२७॥

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथ्वी पर फल—छाया से युक्त गन्ध से भरे हुए नाना प्रकार के वृक्ष हैं, जहाँ पर नाना प्रकार से ओषधि वनस्पति के वृक्ष अवस्थित हैं, जो हमारी रोग-मुक्ति तथा पुष्टि में निमित्त बनते हैं । उन सब जड़ी-बूटियों, वृक्षों, वनस्पतियों, रसायनों को धारण करने वाली पृथ्वी की हम निष्ठा के साथ स्तुत्य-वचनों के द्वारा स्तुति करते हैं ॥२७॥

२८—

उदीराणा उतासीना स्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।

पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महिभूम्याम् ॥ २८ ॥

पद-पाठः—उत्सईराणाः । उत । आसीनाः । तिष्ठन्तः । प्रक्रामन्तः ।

पत्भ्याम् । दक्षिणसव्याभ्याम् । मा । व्यथिष्महि । भूम्याम् ॥ २८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मातः पृथिवि ! भूम्यां का व्यथिष्महि न कदापि कमपि ते पुत्रं पीडयेम । न मत्तः कोऽपि दुःखभाग् भवेत् । यदि वयम् उद् ईराणाः किमपि प्रयोजनमुखिष्य वत्रापि व्रजामः, उद्वा यद् आसीनाः स्थिता वयम्, यद्वा लब्धस्थानाः, यद्वा मिश्रप्रयोजनाः प्रतिद्वन्द्वितामापन्ताः संघर्षकर्मणि प्रक्रामन्तः अभिभवभावनया

उत्कटकोटि स्थितिं भजमानाः, यद्वा वामेतरचरणाभ्यां धीरोद्धतां गतिमापन्नाः कदापि
क्वापि न कोऽपि जनः पीडास्यमद् अनुभवेत् । सर्वे कुशलाः सुखिनः सानन्दा वसेयुः ॥२८॥

टिप्पणी—उदीराणाः—उत् पूर्वस्य ईर् गतौ शानच्, आने मुक् । प्रक्रामन्तः
प्र + क्रम + शतृ । दक्षिण सव्याभ्याम्—सव्य शब्दों वाम पर्यायः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! हम आपके किसी भी पुत्र को कभी
किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचायें । किसी को कष्ट या वेदना न पहुँचें । यदि हम किसी
आन्तरिक प्रयोजन के कारण कहीं जा रहे हों अथवा बैठ कर कोई मन्त्रणा कर
रहे हों या प्रतिष्ठा अथवा पद-प्राप्ति के अनन्तर आनन्द में अवस्थित हों अथवा
सम-तुल्य प्रयोजनों के कारण आपस में प्रतिद्वन्द्विता चल पड़ी हो अथवा संघर्ष में
एक दूसरे के प्रति आश्रय लेते हुए भी अभिभूत हो रहे हों कहीं किसी भी दशा
में किसी के प्रति भय अथवा दुःख में हम कारण न बनें । दाहिने-वायें चरणों
से चलते हुए हम कभी उद्धत न बने । हम सदा अनुशासित, शिष्ट और सन्तुलित
होकर सुख—आनन्द की प्राप्ति करें ॥२८॥

२९—

विभृग्वरीं पृथिवीमा वदामि क्षमां भूमिं ब्रह्मणा वावृधानाम् ।

ऊर्जं पुष्टं बिभ्रतीमन्नभागं घृतं त्वाभि नि सीदेम भूमे ॥२९॥

पद-पाठः—विभृग्वरीम् । पृथिवीम् । आ वदामि । क्षमाम् । भूमिम् ।

ब्रह्मणा । वावृधानाम् । ऊर्जम् पुष्टम् । बिभ्रतीम् । अन्नभागम् । घृतम् । त्वा ।

अभि । नि । सीदेम । भूमे ॥ २९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—विभृग्वरीं गवेषणाबुद्ध्या मार्गणशीलां प्रचेतनेन चेतयन्तीम्
पृथिवीमहमावदामि, इयमेव भूमि मुक्तिमुक्तिप्रदायिनीति गिरा संभृतया प्रशंसामि ।
इयं भूमिः समर्थाऽपि क्षमाशीला, सर्वेषां मातृभूता ब्रह्मणा वेदेन परमेश्वरेण च वावृ-
धाना प्रवर्धनशीला वृद्धित्वमापन्ना ऊर्जं मनोबलं पुष्टं शरीरबलं च बिभ्रती धारयन्ती
नानाविधान्यन्नानि पोषयन्ती दीप्तं घृतं च रक्षन्ती स्तुत्या खल्वियं सुखरमणीया
भूमिः । हे पृथिवि ! वयं सदैव तव सकेतान् पालयेम ॥२९॥

टिप्पणी—विभृग्वरीम्—विविधेन प्रकारेण मृग्वरीम्—मार्गणशीलाम्—
वि + मृजू + क्वरप् । डीप् । वावृधाना—वृध् + कानच् । बिभ्रती—डुभृञ् + शतृ +
ङीप् ॥२९॥

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथ्वी निरन्तर चेतना दे रही है, कीतूहल तथा जानोद्गम के लिए जो सदा उकसाती रहती है। उस पृथ्वी की मैं हृदय से सराहना करता हूँ। यह पृथ्वी क्षमाशील, प्राणियों का अश्रय, वेद तथा परमात्मा के द्वारा सम्बर्धनशील, मनोबल तथा शारीरिक बल को बढ़ाने वाली, नाना प्रकार के अन्तों से प्रजाओं का पालन करने वाली, घृत जैसे तत्व के लिए जो मूल-कारण है, उस पृथ्वी के प्रति हम सदा उदार और पवित्र बन कर रहें। हे पृथिवी ! आपके मनोरम सकेतों का हम सदा पालन करते रहें ॥२६॥

३०—

शुद्धा न आप स्तन्वे ऽ क्षरन्तु यो नः सेदुरप्रिये तं नि दध्मः ।

पवित्रेण पृथिवी मोत् पुनामि ॥ ३० ॥

पद-पाठः—शुद्धाः । नः । आपः तन्वे ऽ । क्षरन्तु । यः । नः । सेदुः । अप्रिये ।

तम् । नि । दध्मः । पवित्रेण । पृथिवी । मा । उत् । पुनामि ॥ ३० ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्मभ्यम् आपः शान्ताः शुद्धा निरुपद्रवाः क्षरन्तु निष्पतन्तु । यो नः सेदुः शोकोद्भव स्तम् अप्रिये नि दध्मः । समस्तां विकृतिं नियम्य प्रकृतीं स्थापयामः । स्वे महिम्नि चात्मानम् । शोकः शत्रौ हर्षप्रकर्षश्चात्मनि । हे पृथिवी ! तव सुरभिणा पवित्रेण निरन्तरम् आत्मानं शोधयामि । यशो वै मनुष्यस्य सुरभिः । सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् इति श्रुतेः ॥३०॥

टिप्पणी—तन्वे—शरीराय । सेदुः—‘पद्लट विशरण गत्यवसादनेषु’ उप्रत्ययः, अकारस्य एत्वम् । शोकः । पवित्रेण—पुत्रः इव । पवित्रेण = ऋषिवद् आचरणेन ।

हिन्दी-व्याख्या—हमारे लिए शान्त, निर्मल, रमणीय, निरुपद्रव जल सदा प्रसन्नता के साथ प्राप्त हो । शोक, मन्ताप, ग्लानि, शका आदि मानसिक कष्ट निरन्तर दूर होते रहें जिससे कि हमें स्वाभाविक रूप से स्थिरता प्राप्त हो । हे पृथ्वी ! ऋषियों समान आचरण करता हुआ मैं सर्वदा अपनी आत्मा को प्रसन्न और पवित्र बनाता रहूँ ॥३०॥

३१—

यास्ते प्राचीः प्रदिशो या उदीची यास्ते भूमे अधराद् याश्च पश्चात् ।

स्योनास्ता मह्यं चरते भवन्तु सा नि पत्तं भुवने शिश्रियाणः ॥३१॥

पद-पाठः—याः । ते । प्राचीः प्रदिशः । याः उदीचीः । याः । ते । भूमे ।

अधरात् । याः । च । पश्चात् । स्योनाः । ताः । मह्यम् । चरते । भवन्तु । मा । नि ।

पप्तम् । भुवने । शिश्रियाणः ॥ ३१ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे भूमे ! यास्ते प्राची—दक्षिण—प्रतीची—उदीची चतस्रो दिशः सन्ति., या वा आग्नेय—नैऋत्य—वायव्य—ईशाना—ख्याः प्रदिशः सन्तिः याश्च तवाधोभागे पृष्ठभागे वा दिशः सन्तिः ताः सर्वा दिशः प्रदिशचरते मह्यं स्योना भवन्तु सुखसम्पादयिष्यः सम्भवन्तु । हे भूमे ! अस्मिन् भुवनेऽहम् आश्रयं भिक्षमाणः कदापि पतनं न स्वीकुर्याम् ॥३१॥

टिप्पणी—प्राचीः, उदीचीः—प्र, उत् पूर्वस्य अञ्चतेः 'अञ्चतेश्चो—पसंख्यानम्' इति डीप् । क्विन् । = प्र + अञ्चु + क्विन् + डीप् । एवमेव उदीचीः । स्योनाः—सिबु धातोः न प्रत्ययः । 'ऊठ्' आदेशे कृते स्योनं सुखम् । सन्तनोति, सीव्यति वा सुखान्तून् । मा नि पप्नम्—पत् लृ गतौ, लृदित्वात् अङ् 'पुवादि०' अङि० परतः 'पतः पुम्' इति पुमागमः । 'न माङ् योगे' इत्यङ् अभावः । शिश्रियाण.—श्रि धातोः लिङर्थे कानच् ॥३१॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! आपके ही कारण पूर्व-दक्षिण-पश्चिम-उत्तर दिशाओं की तथा आग्नेय-नैऋत्य-वायव्य-ईशान नाम वाली प्रदिशाओं की प्रतीति होती है, इसी प्रकार ऊपर और नीचे (भूगोल और खगोल) का ज्ञान प्राप्त होता है । यह सभी दिशायें ज्ञान के लिए गवेषणा करने वाले उत्सुक मुझ मानव के लिए कल्याण-प्रद हों । मैं इस महान् भुवन में ज्ञान-विज्ञान के लिए तरसता हुआ कहीं पतनावस्था को न प्राप्त कर सकूँ ॥३१॥

३२—

मा नः पश्चात्मा पुरस्तान्नुदिष्टा मोत्तरादधरादुत ।

स्वस्ति भूमे नो भव मा विदन् परिपन्थिनो

वरीयो यावया व्रधम् ॥ ३२ ॥

पद-पाठः—मा । नः । पश्चात् । मा । पुरस्तात् । नुदिष्ठाः । मा । उत्तरात् ।

अधरात् । उत । स्वस्ति । भूमे । नः । भव । मा । विदन् । परिडान्धिनः । वरीयः ।

यवय । वधम् ॥ ३२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! पश्चात् पुरस्ताद् वा ऽ शुभे कर्मणि अस्मान् 'मा नुदिष्ठाः' न प्रेरय । उत्तराद् अधाराद् वा देशात् अस्मान् न दुःख बहुले सम्पाते पातय । हे भूमे ! सदैव नः अश्मस्य सुखप्रदा भव । सुमनस्कास्त्वां सदैव मित्रभूतां पश्येम । न च प्रगुणे कर्मणि वर्तमानान् परिपन्थिनों दुष्टा अस्मपून् जातारो भवन्तु । घातकस्य विघातकम् अस्त्रं हे पृथिवी ! यावय क्षिप्रं दूरे निक्षिप ॥३२॥

टिप्पणी—पुरस्तात्—अस्ताति प्रत्ययः । नुदिष्ठाः—नुद प्रेरणे । लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने । परिपन्थिनः—परिपथ शब्द—पर्यायः परिपन्थशब्दोऽस्ति । तस्मादिनिः, परिपन्थिन् । बहुवचने । परिपन्थिनः । चोराः । वरीयः—ईयसुन् प्रत्ययः । अतिशयिते ॥३२॥

हिन्दी व्याख्या—हे पृथ्वी ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, नीचे, ऊपर किसी ओर से भी हमें अशुभ-मार्ग की ओर प्रवृत्त मत होने दो । हमारे लिए सदैव आनन्द प्रद प्रेरणा देती रहो । हमें शुभ मार्ग में तत्पर जान कर कभी भी चोर-दस्यु हमारा पीछा न करे । दुष्टों के घातक आघात से हे पृथिवी ! हमें सदा दूर रक्खो ॥३२॥

३३—

यावत् तेऽभि विपश्यामि भूमे सूर्येण मेदिना ।

तावन्मे चक्षु र्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ३३ ॥

पद-पाठः—यावत् । ते । अभि । विपश्यामि । भूमे । सूर्येण मेदिना । तावत् ।

मे । चक्षुः । मा । मेष्ट । उत्तराम् ऽ उत्तराम् । समाम् ॥ ३३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! यावत्ते रहस्यं द्रष्टुं ममाधिकारोऽस्ति तावत् स्तिग्धेन सूर्येण सहास्माकं नेत्रमुज्ज्वलं ज्योतिर्घृतुं समर्थं विमलं सशक्तं च तिष्ठेत् ।

चक्षु मँ बहिरन्तश्च अवस्थितं स्थूलं सूक्ष्मं च चक्षुः सदैव सम्पन्नाम् उर्वरां पुष्कलां च समृद्धिमाप्नुयात् । न कदाचन क्षीणताया अनुभवो भवेत् । उत्तरामुत्तरां समाम्— अतीतकालवद् भाविन्यपि काले नेत्रज्योतिः सदैव अन्यैरवयवैरिन्द्रियैश्च सह प्रसन्नं स्वस्थ सावधानं विलसेत् ॥३३॥

टिप्पणी—मेदिना—त्रिमिदा स्नेहने—इति प्रत्ययः । मा मेष्ट—मिष धातुः स्पाद्वयां तुदादौ दृश्यते । घञि कृते निमेष इति भवति । अनेकार्था धातवो भवन्तीति मा येष्ट = निमेषोन्मेषक्रियायां चक्षुः ह्रासं न व्रजेदित्यभिप्रायः । छान्दसत्वात् लुङि आत्मनेपदत्वम् । समाम्—वर्षपर्यायः समाशब्दः । मा माने, 'आतश्चोप सर्गे' ३-३-१०६ इति अङ् । यद्वा—षम ष्टम वैकल्ये । समति विक्लवं करोति—पचाद्यचि, टाप् । यद्वा—अमा शब्दोऽमावास्यायां श्रूयते । समानस्य स भावो विदितः । अमया सह वर्तते, इति समा । यद्वा मा शब्दो लक्ष्मीवाचकः । सह मया वर्तते इति समा ॥३३॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! विविध—दृष्टियों से जहाँ तक मेरी सामर्थ्य है, आपके विविध ऐश्वर्यों की गवेषणा मैं करता रहूँ । चमकता हुआ सूर्य सर्वदा हमको प्रकाश प्रदान करता रहे । हमारे निमेष—उन्मेष की प्रक्रिया में अन्तर्दृष्टि और बाह्य—दृष्टि सदैव शान्त और सावधान रहे । कभी भी मुझे क्षीणता अथवा शैथिल्य का अनुभव न हो ॥३३॥

३४—

यच्छयानः पर्यावर्ते दक्षिणं सव्यमभि भूमे पार्श्वम् ।

उत्ताना स्त्वा प्रतीची यत् पृष्ठीभिरधिशेमहे ।

मा हिंसीस्तत्र नो भूमे सर्वस्य प्रतिशीवरी ॥ ३४ ॥

पद-पाठः—यत् । शयानः । परिऽआवर्ते । दक्षिणम् । सव्यम् । अभि । भूमे ।

पार्श्वम् । उत्तानाः । त्वा । प्रतीचीम् । यत् पृष्ठीभिः । अधिऽशेमहे । मा हिंसीः ।

तत्र । नः । भूमे । सर्वस्य । प्रतिऽशीवरि ॥ ३४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे भूमे ! निद्राकामो यदाऽहं दक्षिणं दक्षिणैतरं वा पार्श्वं पर्यावर्ते परिवर्तनं करोमि यद्वा यदा वयं उत्तानाः सन्तः पृष्ठतो वा शायनं कुर्मः ।

तदऽसावधानान् अस्मान् विजाय सर्वतो रक्ष । सर्वेषां त्वमेव विश्रामदायिनी विश्वस्ता
मातेवावलम्बनभूता, अतः त्वामेव शरणं गता वयं त्वय्येव वीतशोकायां लब्धप्रति-
ष्ठायां स्थितिं याचामहे ॥३५॥

टिप्पणी—शयानः—शीङ् स्वप्ने । लटि शानच् । पर्यावर्ते—परि + आ +
वर्ते उत्तानः—उत् + तन + अण् । प्रतिशीवरी—प्रति + शी + क्वरप् ।

हिन्दी व्याख्या—हे पृथ्वी ! निद्रा के कारण जब कभी मैं दायीं—बायीं
करवट लेटूँ अथवा यदि हम उतान सो रहे हों अथवा पीठ के सहारे लेट रहे हों,
आप सर्वदा हमारी रक्षा करना । कभी किसी प्रकार की क्षति अथवा पीड़ा हमें न
हो । हे पृथिवी ! आप ही सब का एक मात्र सम्बल हो, इस कारण हम सर्वदा ऐसा
वातावरण बनायें कि एक-दूसरे को एक-दूसरों से पीड़ा, शका कलह—कष्ट का
उद्भव न हो ।

३५—

यत् ते भूमे विखन॑मि क्षिप्रं॑ तदपि॑ रोह॑तु ।

मा ते म॑र्म विमृ॑ग्वरि मा ते हृद॑यमपिप॑म् ॥ ३५ ॥

पद-पाठः—यत् । ते । भूमे । विखन॑मि । क्षिप्रं॑ । तत् अपि । रोह॑तु ।

मा । ते । म॑र्म । विमृ॑ग्वरि । मा । ते हृद॑यम् । अपिप॑म् ॥ ३५ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे दयावति भूमे ! भैषज्यार्थं पुष्पार्थं रोगनिवारणार्थं
वा यत् किमपि जडं मूलं क्षुपं लतां वा विविधया धिया खनमि तदपि विनष्टं तत्त्वं
पुनः क्षिप्रं प्ररोहमाप्नोतु । तद् विश्वस्तं वस्तु यथा पुनरुपलब्धं भवेत् । हे मार्गणशीले
त्वदीयं मर्मस्थलं न कदाप्यहं पीडयेया । त्वदीयमन्तरालं रहस्यभूतं वा स्थलं नैवाहं
विदारमेयम् ।

टिप्पणी—विमृग्वरि—विविधेन प्रकारेण मार्गणशीला, तत्सम्बुद्धौ । वि +
मृज + क्वरप् । डीप् । हृदयम्—‘वृहोः षुदुको च’ इति कयन् प्रत्यये दुगागमः ।
मा अहम् अहम् अपिपम्—‘उर्कत्’ इति पक्षे गुणात्यवादः । णिलोपस्य ‘द्विर्वचनेऽचि’
इति स्थानिवत्वात् पिशब्दस्य द्विर्वचनम् । ऋकाराभावपक्षे गुणे ‘नन्दाः’ इति रेफस्य
द्विर्वचनं निषेधात् पिशब्दस्य द्विर्वचनं ‘मा अहम् अपिपम्’ इति सिद्धचति ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दया, दान की अधिष्ठात्री मां पृथिवी ! औषध—उपचार
के लिए, पुष्टि के लिए अथवा रोग-निवारण के लिए जो कुछ जड़ी-बूटी, पौधा,

लता आदि मैं नाना प्रकार के विचारों से उत्पादन (उखाड़ूँ) करूँ । वह शीघ्र ही पुनः जम जाय जिससे भविष्य में भी उसकी पूर्ति होती रहे—निरर्थक विनाश न करूँ । हे पृथ्वी ! आपके अन्तराल में हमारी गवेषणा-बुद्धि सदा जागरूक रहे पर मुझसे कभी भी आपको मामिक-कष्ट न पहुँचे । कभी भी मैं आपके हृदय को परिक्लेशित न करूँ ॥ ३५ ॥

३६—

ग्रीष्मस्ते भूमे व वर्षाणि शरद्धेमन्तः शिशिरो वसन्तः ।

ऋतवस्ते विहिता हायनीरहोरात्रे पृथिवि नो दुहाताम् ॥ ३६ ॥

पद-पाठः—ग्रीष्मः । ते भूमे । वर्षाणि । शरत् । हेमन्तः । शिशिरः । वसन्तः ।

ऋतवः । ते । विहिताः । हायनीः । अहोरात्रे इति । पृथिवि । नः । दुहाताम् ॥ ३६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! षड् ऋतवः ग्रीष्मो, वर्षा, शरत् हेमन्तः वसन्तः, एतेऽवस्थिता पुष्पेण फलेन पत्रेण मूलेन चास्मान् निरन्तरं शोभयन्ति सुखयन्ति संबर्धयन्ति च । एकस्मिन्नेव हायने वर्षे एते षड्वोऽस्माकमेव भारतं देशं यशसा भूयसा भोगेन अन्नेन च पोषयन्ति । हे पृथिवि ! एवमेव सम्पन्ने अहोरात्रे । अहोरात्रेऽपि युगलम्) सुखं रसं च प्रपूरयेताम् ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—ग्रीष्मः—ग्रसते शीतं रसादिकं वा । ग्रसधातो ग्रीभावः । षुगागमः । निपातनात् । वर्षम् = वर्षाणि—वृणोति—आवृणोति घनेन गगनमिति वर्षम् । वृ + स । 'वृतृवदि' इति सप्रत्ययः । शरत्—'षट्दृढभसोऽदिः' इति शृधातोः आदिः प्रत्ययः । शृणाति हिनस्त्यस्मिन् इति शरत् । हेमन्तः—यो हन्ति शीतेन स हेमन्तः । हन्ते मुट्हि च । हन् + झच् + मुट् । हन्ते हि भावः । शिशिरः—शश + किरच् । शशति दिनाल्पत्वात् शीघ्रं गच्छति—इति शिशिरः । निपातनात् । वसन्तः—यो वसति यत्र वा वसन्ति स वसन्तः । वस + झच् ॥ ३६ ॥

हिन्दी-व्याख्या—हे माता भूमि ! आपकी कृपा से भारत को ही यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि ग्रीष्म, वर्षा, शरत्, हेमन्त, शिशिर और वसन्त—ये छैः ऋतुयें अपने-अपने अवसर पर पुष्प, पौधे, अन्न, पत्र, फल आदि से इस देश को विभूषित, प्रपूर्ण और सम्पन्न करती हैं । हे माता ! प्रतिदिन और हर रात ऐसे ही शोभाशाली बने रहें जिससे देश सदा भरा-पूरा सम्पन्न और सानन्द रहे ॥ ३६ ॥

३७— । । ।
याप सर्प विजमाना विमृग्वरी-

यस्याभासन्तग्नयो ये अप्सवश्न्तः ।

परा दस्यून् ददती देवपीयून्-

इन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रम् ।

शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे ॥ ३७ ॥

पद-पाठः—या । अप । सर्पम् । विजमाना । विमृग्वरी । यस्याम् । आसन् ।

अग्नयः । ये । अप्सु । अन्तः परा । दस्यून् । ददती । देवपीयून् । इन्द्रम् । वृणाना ।

पृथिवी । न । वृत्रम् । शक्राय । दध्रे । वृषभाय । वृष्णे ॥ ३७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—या पृथिवी विमृग्वरी सदैव गवेपणाविधौ धृतोपकारा । चलन्तीव स्थिरा दरोहश्यते । इमामेव भूमिमाश्रित्य अप्सु अन्तः विद्युद् रूपा अग्रयः प्रादुर्भवन्ति । या देवपीयून् दिव्यापहारकान् शत्रून् पराकरोति = विनाशयति । इयं पृथ्वी वीरभोग्या, अतएव ऐश्वर्यशालिनम् इन्द्रम् इयं वृणोति नावरणकारिणं वृत्रम् । इयं पृथिवी वर्षणशीलाय धर्माचारिणे शुभाचाराय एवात्मानं धारयति ॥ ३७ ॥

टिप्पणी—शक्रः—शक्र + रक् । शक्नोति समर्थो भवति सशक्रः । विमृग्वरी—विविधेन प्रकारेण मणिषा योग्या = रहस्यभूता, औत्सुक्य-प्रदायिनी—वि + मृज् + क्वरप् । डीप् । दस्युः—दस्यति नाशयति परपदार्थान् इति दस्युः । दस + युच् । देवपीयून् = देव शक्ते, हसिकान् देव + पा + उण् । देवान् पिबतीति शोषयति देवपीयुः । दैत्यस्वभावः । युगागमो निपातनात् ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथ्वी निरन्तर औत्सुक्य प्रदान करने से 'विमृग्वरी' है । जो चंचल रहने पर भी स्निग्ध और स्थिर है । जिस पृथ्वी के आश्रय से जलाश्रम

(भेद्य) में विद्युत् के रूप में अग्नि का प्रादुर्भाव होता रहता है। जो पर-पदार्थ के नाशक तथा अपहारक (=दस्यु=नाशक, देवपीयु=अयहारक) शत्रुओं का विनाश करती रही है। जो पृथ्वी सदैव इन्द्र सरीखे वीर का वरण करती है, आवरण फैलाने वाले वृत्र का वरण कदापि नहीं करती। जो पृथ्वी निरन्तर शुभाचारी सज्जन पुरुषों का पालन-पोषण करती है। वह पृथिवी सर्वदा हमको शुभ-मार्ग में प्रेरणा देती रहे ॥ ३७ ॥

३८—

यस्यां स॒दो॒ह॒वि॒र्ध॒नि॒ यू॒पो॒ यस्यां॑ नि॒र्मी॒य॒ते ।

ब्र॒ह्मा॒णो॒ यस्या॒मर्च॑न्त्य॒ग्निः॒ सा॒म्ना॒ यजु॑र्विदः ।

यु॒ज्यन्ते॒ यस्या॒मृ॒न्वि॒जः॒ सो॒ममि॒न्द्राय॒ पा॒त॒वे ॥ ३८ ॥

प॒द-पा॒ठः—यस्या॒म् स॒दो ह॒वि॒र्ध॒नि॒ इति॑ स॒दः ऽ ह॒वि॒र्ध॒नि॒ । यू॒पः । यस्या॒म् ।

नि॒र्मी॒य॒ते । ब्र॒ह्मा॒णः॒ यस्या॒म् । अ॒र्च॑न्ति । ऋ॒क् ऽ मिः । सा॒म्ना । यजुः॒ ऽ वि॒दः ।

यु॒ज्यन्ते॒ । यस्या॒म् । ऋ॒त्वि॒जः । सो॒मम् । इ॒न्द्राय॒ । पा॒त॒वे ॥ ३८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां सदः निवासगृहाणि हविर्धनि हविर्वरतूनि सुरक्षितानि निधीयन्ते यस्यां प्रकाशस्तम्भा विजयस्तम्भा यज्ञस्तम्भा वा निर्मीयन्ते । तत्र भवन्तो ब्राह्मणा यस्यां ऋग्भिः स्मृत्याभिः स्तुतिभिः साम्ना यजुषा वा अर्चन्ति गायन्ति यजन्ति । यस्यां च ऋत्विजः होमकृशला निरन्तरं श्रेष्ठेषु कर्मसु लग्ना भवन्ति । इन्द्राय पातुं च सोमभिषवं कुर्वन्ति । सेयं कल्याण भेषजा पृथिवी सदैव सुख प्रदा शान्तिदायिनी च भूयात् ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—सदः—सभा—सीदन्ति अत्र इति सदः । पदलू—विशरणगत्यव—सादनेषु । अपुन प्रत्ययः । हविर्धनि—(=सदश्च हविर्धनिं च सदो हविर्धनि) हविः—हृ + इतिः=हविः, हविषो धानम्—हविर्धनिम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथ्वी पर निवास-गृह, भोजन-आच्छादन, हविष्य आदि उपकरण सुरक्षित रखे जाते हैं, जहाँ पर यज्ञस्तम्भ, प्रकाशस्तम्भ, विजय स्तम्भ आदि कीर्ति—प्रतीक स्थापित किये जाते हैं । जहाँ पर वेदधारी ब्राह्मण

ऋचाओं से स्तुतियाँ करते हैं, साम-गान से मंगला-धान करते हैं और बड़े-बड़े यज्ञ करते हैं, जहाँ पर ऋत्विक् लोग सदैव यज्ञ-विधि निष्पादन में सावधान तथा तत्पर रहते हैं, जहाँ पर इन्द्र के पानार्थ सोम-रस का निष्पादन किया जाता है वह कल्याण-मयी पृथ्वी सदा ही हमारे लिए मंगल प्रद बनी रहे ॥ ३८ ॥

३९—

यस्यां पूर्वे भूतकृतऋषयो गा उदानृचुः ।

सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह ॥ ३९ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । पूर्वे । भूतऽकृतः । ऋषयः गाः । उत् ५ आनृचुः । सप्त ।

सप्तेण । वेधसः । यज्ञेन । तपसा । सह ॥ ३९ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां विचित्रार्थदर्शिनः पूर्वे सज्जना अतीन्द्रियार्थ-दर्शिन ऋषयश्च विचित्रां वाचम् अर्चितवन्तः यस्याम् वेधसः तत्र भवन्तो ज्ञानिनः सप्त सत्रेण संकलन—व्यवकलन संगति विधानेन यज्ञेन तपसा कष्ट स हिष्णुतया च तपः प्रपेदिरे सेयं जननीव मान्या भूमिः सदैव हस्तावलम्बना स्यात् ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—ऋषयः—अतीन्द्रियार्थदर्शिनः । वेधसः—‘विधाञो वेध च’ इति वेधादेशोऽसिप्रत्ययश्च । विशेषेण दधाति, इति वेधाः । परमेष्ठी । भूतकृतः—भूतस्य कर्मणः कर्तारः । गाः—वाचः । सत्रेण—षड्लट—विशरणादौ ष्टृन् । ‘सत्रं यज्ञे सदादानं च्छादनारण्य—कैतवे’ इति मेदिनी । ‘सत्यमिति सत्यवचा राधीतरः । तप इति तपोनित्यः पौरुषिण्यः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मोद्गल्यः । तद्धि तप स्तद्धि तपः’ इति तैत्तिरीयोपनिषदि ॥ ३९ ॥

हिन्दी-व्याख्या—विचित्र—अर्थों के द्रष्टा ऋषि—महर्षि जिस पृथिवी के आश्रय में अद्भुत वाग्—देवता का दर्शन करके अर्चना करते हैं, जहाँ पर संकलन—व्यवकलन—संगतिकरण आदि विषयों के विद्वान यज्ञ और ज्ञान—सत्र के द्वारा नाना प्रकार से कष्ट उठा कर तप का आचरण करते हैं । वह जननी के समान शुभ गुणों वाली पृथिवी सदैव हमें सम्बल और अवलम्बन देती रहे ॥ ३९ ॥

४०—

सा नो भूमिरादिशतु यद्धनं कामयामहे ।

भगो अनुप्रयुङ्क्ता मिन्द्र एतु पुरोगवः ॥ ४० ॥

पद-पाठः—सा । नः । भूमिः आ । दि॒शतु । यत् । धनम् । कामया॑महे ।

भगः । अनु॑ऽप्रयु॒ङ्क्ताम् । इन्द्रः । एतु॑ । पुरः स गवः ॥ ४० ॥

संस्कृत-व्याख्या—सा एवं गुणरूपसम्पन्ना स स्माकं पृथिवी यद् धनं कामयामहे संकल्पयामस्तद् धनम् सहजतया ss दिशतु प्रापयतु । अस्माकं भगः समग्रैश्वर्यसम्पन्नः देवः सदैव अनुकूलो भवतु । इन्द्रश्चास्माकं देवः पुरोगव एतु प्राप्नोतु । सदैव गोभिः सह आयातु येन अस्माकं गाव इन्द्रियाणि पुष्टिभाजः स्युः ॥ ४० ॥

टिप्पणी—पुरोगवः—पुरस् + गो + टच् ।

हिन्दी-व्याख्या—इम प्रकार निरन्तर माता के ही समान कल्याण की साधना करने वाली हमारी पृथिवी उस—उस धन की प्राप्ति करावे जिस—जिस धन की हम कामना करते हैं । दश्वर्यशाली भग देवता सदैव मंगल-मधुर दृष्टि के साथ अनुकूल रहें और गायों के साथ—किरण, वाणी, इन्द्रिय आदि के साथ ओजस्वी देवता इन्द्र सदैव सहज रूप से हमें प्राप्त होते रहें ॥ ४० ॥

४१—

यस्यां॑ गायन्ति॑ नृत्यन्ति॑ भूम्यां॑ मर्त्या॑ व्यै॑लवाः ।

यु॒ध्यन्ते॑ यस्या॑माक्र॒न्दो यस्यां॑ वदति॑ दु॒न्दुभिः॑ ।

सा नो॑ भूमिः प्रणु॑दतां स॒पत्नान॑स॒पत्नं॑ मा पृथि॑वी कृ॒णोतु॑ ॥ ४१ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । गायन्ति । नृत्यन्ति । भूम्याम् । मर्त्याः । वि॒ऽऐल॑वाः ।

युध्यन्ते । यस्याम् । आ॒ऽक्रन्दः॑ । यस्याम् । वदति । दु॒न्दुभिः॑ । सा । नः । भूमिः ।

प्र । नुदताम् । स॒पत्नान् । अस॒पत्नम् । मा । पृथि॑वी । कृ॒णोतु॑ ॥ ४१ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्याम् आनन्दवर्धनानि क्रियन्ते । गान-नृत्य-क० व्यालायाः शिल्पानिः कला प्रदर्शनानि च यत्र मोदं भरन्ति । मरणमारणसमर्था विशिष्टाः प्रेरिताश्च यत्र संवर्षं तन्वन्ति । यत्र गजा वाजिनः स्वःशब्दः सुखं प्रसार-

यन्ति । यत्र दुन्दुभिर्जयघोषश्च क्रियते । सा विजयिनी भूमिरस्माकं सपत्नान् शत्रून् प्रणुदताम् दूरे क्षिवतु । सा भूमिः सपत्नरहितं शत्रुरहितं मां कृणोतु करोतु । भवेयमहमजातं शत्रुः । ॥४१॥

टिप्पणी—व्यैलवाः—वि+इला (इला=वाक्) विविधं शब्दयितारः वि+इल+वण शब्दे+उः । अण् व्यैलवाः । सपत्नान्—सपत्नीशब्दाद् इवार्थेऽकारः । सपत्नीव सपत्नः । अमित्रः सपत्न—उच्यते । तान् । ॥४१॥

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी पर आनन्द-वर्धन कार्य होते हैं । गान, नृत्य, काव्यालाप, शिल्प और अन्य कलायें जहाँ पर आमोद-प्रमोद का रसायन बिखेरती हैं । जहाँ पर मरण-मारण में समर्थ विशिष्ट और प्रेरित पुरुष नाना प्रकार से जयशील संघर्ष करते हैं । जहाँ पर विशाल गजराज, फुर्तिले अश्व, शक्तिशाली बैल अपने आनन्दप्रद आक्रन्द से प्रसन्न करते हैं । जहाँ पर उत्साह वर्धक नगाड़े बजते हैं । वह जयवर्धन कारिणी, शत्रुशक्ति हारिणी, सुख-समृद्धि प्रसारिणी हमारी मातृ-भूमि हमारे समस्त आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं को हमसे दूर कर दे और हमें शत्रु रहित करके निश्चल, निश्चिन्त तथा आनन्दित बना दे ॥४१॥

४२—

यस्यामन्नं ब्रीहियवौ यस्या इमाः पञ्चकृष्टयः ।

भूम्यै पर्जन्यपत्न्यै नमो ऽस्तु वर्ष मेदसे ॥ ४२ ॥

पद-पाठः—यस्याम् । अन्नम् ब्रीहि ऽ यवौ । यस्याः । इमाः । पञ्च ।

कृष्टयः । भूम्यै । पर्जन्यै ऽ पत्न्यै । नमः । अस्तु । वर्षऽमेदसे ॥ ४२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां जीवननिमित्तभूतायां पृथिव्यां विविधानि पोषण-पराणि भोगसाधनान्यन्नानि जायन्ते । ब्रीहयः, यवाः, गोधूमाः, मसूराः, सर्पपाः, इक्षुप्रभृतयस्तदुत्पादकाः पञ्चकृष्टयः पञ्चजना निषादपञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पादुभूताः सन्ति । तस्यै पर्जन्यपत्न्यै मेघपालितायै वर्षमेदसे वर्षाभिः स्नेहन शीलायै भूम्यै नमो ऽस्तु । अभिनन्दिता भूमिः सदैव स्नेहदायिनी भूयात् ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—पञ्चकृष्टयः—पञ्चप्रकाराः पुरुषा विद्याविनयसम्पन्ना ब्राह्मणा, तद्रक्षकाः शूरवीराः क्षत्रियाः, तत्पूरकाः कृषि व्यवसायोद्योगोयमपरायणा वैश्याः, शिल्पिनः कारुकर्मकुशला आभियंत्रिकाः सेतु-यन्त्र-यान-कारुगृहनिर्माणविदग्धा अथ

सेवापरायणा दासाः, एवं पंचमानवा भवन्ति । पर्जन्यपत्न्यै—पर्जन्यो मेघ—एव पतिः पालको यस्याः सा मूमिः तस्यै । वर्षं मेदसे—डुमिच्, स्नेहने—वर्षाभिः स्नेहनीलायै भूम्यै ॥ ४२ ॥

हिन्दी-व्याख्या—ममस्त जीवन जिस पर निर्भर है, जिस पृथ्वी पर नाना प्रकार के भोग—साधक अन्न, चावल, गेहूँ, जौ, सर्पप, गन्ना आदि तथा इनके उत्पादक कृषक, शिल्पी=कारीगर, व्यवसायी, उद्योगी, उद्यमी, वैश्य, सेवा—परायण दास आदि, सेतु—यान—यन्त्र, जल—नाली—निर्माण में चतुर यन्त्रिक, विद्या—विनय के उपकरण उत्पन्न करने वाले, रक्षक सैनिक आदि प्रकट होते हैं, उस मेघ के अभिमानी देव से पालित और वर्षा—जल से स्नेहिल पृथ्वी का मैं बारम्बार अभिनन्दन करता हूँ ॥ ४२ ॥

४३—

यस्याः १ पुरो देवकृताः क्षेत्रे यस्या १ विकुर्वते ।

प्रजापतिः पृथिवीं विश्वगर्भमाशामाशारण्यां नः कृणोतु ॥ ४३ ॥

पद-पाठ—यस्याः । पुरः । देव ऽ कृताः । क्षेत्रे । यस्याः विऽकुर्वते ।

प्रजाऽपतिः । पृथिवीम् । विश्वऽगर्भम् । आशाम्ऽआशाम् । रण्याम् । नः ।

कृणोतु ॥ ४३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्याः कमनीयबलाहकायाः पृथिव्या पुरः नानाः विधानि पूरकाणि नगराणि कीर्तिं तन्वन्ति । यस्याः क्षेत्रेषु नानाविधानि अन्नानि परिणतानि भवन्ति । तामिमां विश्वगर्भां भुवनस्य पालिकां प्रजापतिः प्रजाया अभिमानी पालकोऽविष्ठाता सदैव रसयतु । सुखवार्धनां वर्धयतु । अस्याः पृथिव्याः सर्वा आशा दिशः कल्याण रमणीया भवन्तु ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—देवकृताः—देवेन विद्वत्समूहेन निष्पादिताः । भगवता च मेधाभिमानिना देवेन सम्पादिताः । आशा—दिशा । रण्याम्—रमणीयाम् । विश्वगर्भम्—विश्वं गर्भं यस्याः सा, विश्वगर्भा नाम विश्वगर्भम् ॥ ४३ ॥

हिन्दी-व्याख्या—सुन्दर वादन्दों वाली इस पृथ्वी पर वैज्ञानिकों से देव-निर्मित निवास अलकृत हो रहे हैं जो पृथ्वी के वर्षव और चमत्कार कर रहे हैं । इस पृथ्वी के सुनहरे खेत नाना प्रकार के अन्नों परिणत कर रहे हैं भगवान् प्रजापति

इस पृथ्वी की हर दिशा में शांति और समृद्धि का स्थापन करें । हमारी हर दिशा आनन्द और औत्सुक्य का सूचक हो ॥ ४३ ॥

४४—

निधि विभ्रती बहुधा गुहा वसु

मणि हिरण्यं पृथिवी ददातु मे ।

वसूनि नो वसुदा रासमाना

देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ ४४ ॥

पद-पाठः—नि॒धिम् । वि॒भ्रती । ब्र॒ह्म॒धा । गु॒हा । वसु॒ । म॒णिम् । हि॒र॒ण्यम् ।

पृ॒थि॒वी द॒दातु । मे । वसू॒नि । नः । वसु॒दा रा॒समा॒ना । दे॒वी । द॒धातु । सु॒म॒न॒स्य॒-

मा॒ना ॥ ४४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—याऽस्माकं गुणरमणीया पृथिवी बहुधा बहुप्रकाराणि स्व-
गुहायामन्तराले वसु वसूनि वामहेतूनि अत्यन्त जीवनहेतूनि वस्तूनि उपादानभूतानि
अन्यानि धारणयोग्यानि आवश्यकतापूरकाणि च निधि निधीनि धन-धान्यानि तदुत्कर्ष-
हेतूनि मणि हिरण्यादीनि रत्नानि च धारयति । मातानि जीवनाय उत्कर्षाय च मह्यं
ददातु । सा कान्तिमती दीप्तिमती रमणीया भूमि सदैव मयि समर्थं सुमनस्यमाना प्रसन्ना
कृपावती भूयात् । उदारा दक्षा अभिरूपा पृथिवी सदैव अनुरूपाय मे वसूनि सुखानि
शुभं च प्रयच्छतु ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—राममाना—ददमाना । निधिः—‘उपसर्गे घोः किः’ इति किः ।
रिण्यम्—हर्यते काम्यते इति हिरण्यम् । ‘हर्यतेः कथ्यन् हिरच्’ ।

हिन्दी-व्याख्या—जो पृथिवी नाना प्रकार से रस-रहस्य, वस्तु, रमणीय धन,
निधि, स्वर्ण, मणि आदि के कारण प्रसन्न और उदार है । वह पृथिवी सदैव मेरे
प्रति आनन्दित होकर सुख और धन की वर्षा करती रहे जिसे मैं सदैव शान्त,
प्रसन्न और कमनीय बना रहूँ और पृथिवी के आनन्दप्रद गुणों को धारण करता
रहूँ ॥ ४४ ॥

४५—

जन विभ्रती बहुधा विवाचसं

नानाधर्माणं पृथिवी यथोक्तसम् ।

सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां

ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती ॥४५॥

पद-पाठः—जनम् । विभ्रती । बहुधा । विवाचसम् । नानाधर्माणम् ।

पृथिवी । यथा स ओक्तम् । सहस्रम् । धाराः द्रविणस्य । ये । दुहाम् ध्रुवा s इव ।

धेनुः । अनप s स्फुरन्ती ॥४५॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् अस्माकं श्रेयः माधनभूता पृथिवी विविधामिवारिभरु-
पेतं पुरुषममूहं विभ्रती पोषयन्ती स्तुतिं भजते । यथोक्तसम् = सुन्दरपरिवारं गृहमिव
नानाधर्मोपेतं जनसमुदायं च धारयति सा पृथिवी सद्यः प्रसूता गौरिव धनमैश्वर्यं ये
दोग्धु । चाञ्चल्यरहिता पृथिवीयं सदैव मम पालन-पोषणे स्थिरा लग्ना च भवेत् ।

दिप्पणी—विवाचसम्—विविधा वाचो यस्य जनसमूहस्य स विवाचाः, तम्
विवाचसम् । नाना धर्माणम्—‘धर्मादिनिच् केवलात्’ इति अनिच् । नानाधर्मा, तम् ।
बहुव्रीहिः । ओक्तसम्—अवति रक्षणहेतुं भवतीति ओक्तः । अवतेः कक् । यद्वा—‘उच्च
समवाये’ असुन् । न्यङ्क्वादिः धेनुः—‘घेठ पाने’ । ‘घेठ इच्छ’ इति नुः । नवं सूतं
प्रसवो यस्याः ।

हिन्दी व्याख्या—यह पृथिवी हमारे लिए समस्त श्रेय और प्रेम को सिद्ध
कराने वाली है और नाना प्रकार की वाणियों को बोलने वाले जन-समूहों को धारण
करती है । इस पृथिवी की कृपा से नाना धर्म के लोग गृह-कुटुम्ब के समान अपना
जीवन-यापन करते हैं । यह पृथिवी ससस्त्रो धाराओं में = अनेक स्त्रियों में हमारे लिए
धनोपलब्धि उपाय निमित्त करे और नवप्रसूता गौ के समान अपने स्निग्ध प्यार से
हमको पूरित और आनन्दित करती रहे ॥४५॥

४६—

यस्ते॑ सर्पो॑ वृ॒श्चिक॑ स्तृ॒ष्टदं॑श्या

हेम॑न्तज॒ब्धो भृ॒मलो॑ गुहा॒शये॑ ।

क्रि॒मि जि॒न्वत् पृथि॒वी यद्य॑देजति प्रा॒वृषि॑—

तन्नः॑ सर्प॑न्मोप॒ सृप॑द् यच्छि॒वं तेन॑ मो मृ॒ड ॥४६॥

पद-पाठः—यः । ते । सर्पः । वृश्चिकः । तृष्टदंशमा । हेमन्तजब्धः ।

भृमलः । गुहा । शय्येकृमिः । जिन्वत् । पृथिवि । यत्स्यत् । एजति । प्रावृषि । तत् । नः ।

सर्पत् । मा । उप । सृपत् । यत् । शिवम् । तेन । नः । मृड ॥४६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! सर्पणशीलो विषधरः, दंशमारको वृश्चिकः तृष्टदंशमा यस्य दंशनेन मुहः पिपासा उत्पद्यते हेमन्तजब्धः यस्य दंशनेन पीनः पुन्येन जड्यमुदेति, यश्च भृमलो त्रिपजन्तुः अथवा यो गुहायां शेते यदा कदा बहिर्निर्गत्य दंशपीडां मुत्पादयति, यो वा वर्षाकाले क्रिमिरूपेण प्रादुर्भवन् वा कष्टं जनयति; ते एते जन्तवो नास्मान् पीडयेयुः । येषां सुखकराः प्राणिनस्तैरस्मान् प्रीतिसम्बहान् कुरु ।

टिप्पणी—तृष्टदंशमा—दंश—मत्तिन् । यस्य दंशनेन तृषा उदेति पीनः पुन्येन । भृमलः—अनवस्थितगमनः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! सरणशील विषधर, डंकमार बिच्छू, तृषा-वर्षक सर्प, जाड़ा लाने वाले विषधर, चंचल भृमल, बिल अथवा गुहा में रहने वाले भयावह जन्तु तथा अन्य प्रकार के गरल उत्पन्न करने वाले प्राणी, रेंगने वाले, सरकने वाले तथा उड़ने वाले विषधर कीट-पतंग और वर्षा काल में उत्पन्न होने वाले भयंकर जीव हमें पीड़ित न करें और जो कल्याणकारी प्राणी हैं उन गौ, अश्व आदि प्राणियों से हमारा सुख-संवर्धन कीजिये ॥४६॥

४७—

ये ते पन्थानो बहवो जनायना—

रथस्य वर्त्यनिसश्च यातवे ।

यैः संचरन्त्युभये भद्रपापा—

स्तं पन्थानं जयेमानमित्रमतस्करं यच्छिवं तेन नो मृड ॥४७॥

पद-पाठः—ये । ते । पन्थानः । बहवः जनाऽयनाः । रथस्य । वर्त्य । अनस

च । यातवे । यैः । सम्ऽचरन्ति । उभये । भद्रऽपापाः । तम् । पन्थान् । जयेय ।

अनमित्रम् । अतस्करम् । यत् शिवम् । तेन । नः । मृड । ॥४७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! जनायना जनानां गतागतनिमित्ता ये जीवन मार्गाः, तत्सिद्ध्यसाधकाश्च रथमार्गाः अस्माकं व्यवहरोपयोगिनः सन्ति । यान् मार्गान् आश्रित्य साधुकारिणः साधुकारिणश्च उभये संचरन्ति संचारं कुर्वते तं जीवनोपायं प्रकारं च वयं जयेम । अस्माकं जीवन मार्गः शत्रुरहितस्तस्कररहितः शिवो भूयात् । यच्चान्यत् सुखकरम् अस्ति तेन सर्वेण सुखसाधनेन अस्मान् सुखय ॥४७॥

टिप्पणी—पन्थानः—पतन्ति गच्छन्ति यत्र स पन्था मार्गः । बहु० । पते-स्थश्च' इतीनिः, यश्चान्तादेशः । यद्वा—पथन्तेऽनेन, 'पथे गतौ' वर्त्म—वर्तन्तेऽनेन । मनिन् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी! यातायात के समस्त साधन जल-स्थल तथा गगन में जो विस्तीर्ण हैं वे समस्ते चौड़े रथमार्ग आदि हमारे गमन-आगमान की सिद्धियों को व्यवस्थित तथा पूर्ण करने वाले हों । जिन मार्गों से भद्र पुरुष अथवा दुर्जन व्यक्ति संचार करते हैं, वह समस्त मार्ग हमारे लिए शत्रु तथा तस्कर रहित हों । हे पृथिवी जो शुभ और कल्याणकारण सिद्धियां हैं उसने हमें पावन तथा पूर्ण कीजिये ॥४७॥

४८—

म॒ल्वं वि॒भ्रती॑ गु॒रुभृ॑द् भ॒द्रपा॒पस्य॑ नि॒धनं॑ ति॒तिक्षुः॑ ।

व॒राहे॑ण पृ॒थिवी॑ सं॒विदा॒ना सू॒कराय॑ वि॒जिही॑ते मृ॒गाय॑ ॥४८॥

प॒दः-पाठः—म॒ल्वम् । वि॒भ्रती॑ । गु॒रुभृ॑त् । भ॒द्र s पा॒पस्य॑ । नि॒ s धन॑म् ।

ति॒तिक्षुः॑ । व॒राहे॑ण । पृ॒थि॒वी । स॒म् s वि॒दा॒ना । सू॒कराय॑ । वि॒ । जि॒ही॒ते ।

मृ॒गाय॑ ॥४७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं पृथिवी गुरुन् पर्वतादीन् यज्ञसंबहान् देवांश्च वहतीति गुरुभृत् भद्राणां पापानां च स्वशरणं तितिक्षते सर्वं सामर्थ्यं च विभ्रति । इयं पृथिवी वराहेण वराहारेण जलाहारेण मेघेन संविदाना चेतनामयी सूकराय सुष्ठुकिरणाय सूर्याय मृगाय मार्गणशीलाय शुभावस्थानं कामयते ॥४८॥

टिप्पणी—मल्वम्—मलधारणे व प्रत्ययः । सामर्थ्यम् । सूकराय सुष्ठु सुखदाः कराः किरणा यस्य तस्मै । मृगाय—अन्वेषकाय । वराहेण—मेघेन । वराहः—वराहारः वरम्—जलम् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह पृथिवी पर्वत आदि गौरवशाली महान् पदार्थों को तथा यज्ञ सम्बन्धी देवताओं को धारण करती है । पुण्याक्ताओं तथा पापियों को स्वाश्रय में नियंत्रित करती है । सर्व प्रकार के सामर्थ्यों से सम्पन्न यह पृथिवी मेघ के साथ सन्नद् रहती हुई अन्वेषण शील सूर्य के लिये शुभ-अवस्थान देती है ॥४८॥

४९—

ये त आ॒रण्या॑ प॒शवो॑ मृ॒गा बने॑

हि॒ताः सि॒हा व्याघ्राः॑ पु॒रुषा॑दश्चरन्ति ।

उ॒लं वृ॒कपृ॑थिवि दु॒च्छुना॑मि॒त-

ऋक्षीकां रक्षो अप बधयास्मत् । ४६ ।

पद-पाठः—ये । ते । आरण्याः । पशवः । मृगाः । वने । हिताः । सिंहाः ।

व्याघ्राः । पुरुषऽदः । चरन्ति । उलम् । वृकम् । पृथिवि । दुच्छुनाम् । इतः ।

ऋक्षीकाम् । रक्षः । अपः बाधय । अस्मत् ॥ ४६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! घोरेशरण्ये ये हिंसका मार्गणशीलाः सिंहा व्याघ्रा नरभक्षिणश्चान्ये क्रूरा जतवः स्थिता अप्रतिहतगया संचारं कुर्वन्ति । उला उष्णस्वभावा उद्वेजका वृका दुष्टा वनश्वानश्च मल्लकां रक्षः स्वभावान्मानयि सर्वान् बहितान् अस्मद् दूरे कुरु । यथा नैतेऽस्मान् बाधन्ते तथा कुरु । ४६ ।

टिप्पणी—उलम्—उष्णस्वभावम् उद्वेजकं वनमार्जारम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवि ! घोर कान्तार में रहने वाले हिंसक सिंह, व्याघ्र तथा अन्य क्रूर नरभक्षी जीव जो कि निर्वाध-रूप से विचरण करते हैं तथा उष्ण स्वभाव वाले उद्वेजक मार्जारआदि, भेड़िये, दुष्ट कुत्ते, भालू, रक्षस-पिशाच स्वभाव वाले = उन समस्त हानिकारक वन-जन्तुओं को हमसे पृथक् ही रखना । ये हिंसक प्राणी हम को कभी हानि न पहुँचायें । ४६ ।

५०—

ये गन्धर्वा अप्सरसो ये चारायाः किमीदिनः ।

पिशाचान् सर्वा रक्षांसि तान् अस्मद् भूमे यावय ॥ ५० ॥

पद-पाठः—ये । गन्धर्वाः । अप्सरसः । ये । च । अरायाः । किमीदिनः ।

पिशाचान् । सर्वा । रक्षांसि । तान् । अस्मत् । भूमे यावय ॥ ५० ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! ये गन्धर्वा अप्सरः—स्वभावाः केवल गाने नृत्ये वा मग्नाः शुह्रप्रयोजन शून्याः, ये च अरायाः अदातारः किमीदिनः परच्छिद्रान्वेषिणः, ये मांसाशिनः पिशाचाः सर्वाणि च रक्षांसि अस्मत् पृथक् कुरु ॥ ५० ॥

टिप्पणी—अरायाः—अदातारः, रादाने । किमीदिनः—किम् इदानीं किम् इदानीम् इति रन्ध्रान्वेषणपरान् ॥ ५० ॥

हिन्दी व्याख्या—हे पृथिवी ! जो केवल नृत्य—गान (=खाओ—पिओ—मौज करो) की भावना से कार्य करते हैं अथवा जो सदा राष्ट के लिए कृपण एवं लुब्धस्वभाव के हैं, जो पर मांसोप-जीवी हैं तथा जो राक्षस-पिशाच आदि हैं—उन सबको जीवन—समूह से पृथक् रखे ॥ ५० ॥

५१—

यां द्विपादः पक्षिणः संपतेन्ति हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ।

यस्यां वातो मातरिश्यते रजांसि कृष्णश्च्यावयश्च वृक्षान् ।

वातस्य प्रवामुपवामनु वात्यर्चिः ॥ ५१ ॥

पद-पाठः—याम् । द्विपादः । पक्षिणः । सम्पतन्ति । हंसाः । सुपर्णाः ।

शकुनाः । वयांसि । यस्याम् । वातः मातरिश्वा । ईयते । रजांसि । कृष्णन् । च्यावयन् ।

च । वृक्षान् । वातस्य । प्रवाम् । उपवाम् । अनु । वाति । अर्चिः ॥ ५१ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यां पृथिवीयाश्रित्य द्विपादः पक्षिणः प्रकाशपूर्णं गगने संचारं कुर्वन्ति । ते हंसाः, सशक्ता गृहादयः अल्पप्राणाश्च क्षुद्रपक्षिणः सदा पृथिवीं सोभाग्य-शालिनीं कुर्वन्ति । यस्यां पृथिव्याम् आकाशे श्वासं पुष्पन् वायू रजांसि उदकवतो मेघान् कुर्वन् निष्पादयन् अभिवर्तते यो हि प्रमंजनरूपेण दृढान् अपि वृक्षां श्च्यावयति । तस्य वातस्य प्रवाय् प्रकृष्टां गतिमुपवाम् अनुकूलां गतिं चाश्रित्य वयं सर्वे सुखिनः स्याम यतोहि तदनु सूर्यस्य प्रकाशो जायते ॥ ५१ ॥

टिप्पणी—प्रवाम्—वा गतो क्विप् । प्रकृष्टां गतिम् । उपवाम्—अनुकूलां गतिम् । रजांसि—उदकवतो मेघान् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस पृथिवी से आश्रय लेकर हंस, सुपर्ण, शकुन, वया आदि बड़े और छोटे पक्षी इधर-उधर विचरण करते हैं । आकाश में श्वास भरने वाला जहाँ पर प्रमंजन (भयंकर वायु—तूफान) जलपूर्ण मेघों को इधर-उधर व्रस्त

करता हुआ अपना अस्तित्व घोषित करता है और बड़े-बड़े वृक्षों को भी धराशायी कर देता है उसी पवन देवता का उत्कृष्ट तथा अनुकूल गति को देखते हुए अपने जीवन-उपाय की गवेषणा हम करते रहें क्योंकि उसी के साथ जीवन को प्रकाश मिलता है ॥५१॥

५२—

यस्यां कृष्णमरुणं च संहिते

अहोरात्रे विहिते भूम्यामधि ।

वर्षेण भूमिः पृथिवी वृतावृता

सा नो दधातु भद्रया प्रिये धामनि धामनि ॥५२॥

पद-पाठः—यस्याम् । कृष्णम् । अरुणम् । च । समऽहिते इति समऽहिते ।

अहोरात्रे इति । विहिते इति विऽहिते । भूम्याम् । अधि । वर्षेण । भूमिः । पृथिवी ।

वृता । आवृता । सा । नः । दधातु । भद्रया । प्रिये । धामनि ऽ धामनि ॥५२॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्यां पृथिव्यां कृष्णा शर्वरी प्रकाशपूर्ण इवेतं च दिनं च सम्यक् प्रकारेण प्राणिनः सुखयन्ति यमयन्ति चर । या पृथिवी वर्षामेघेन पूर्णा सती अन्नोत्पादने समर्था सुखप्रदा च जायते । सा पृथिवी गृहं गृहं प्रति सुखं सृजतु । समन्तभद्रा सा सर्वतः सुख-सम्पदां भावयतु ॥५२॥

टिप्पणी—धामनि—‘डुधाञ् धारणपोषणमोः’ मनिन् । दयाति यत्र स्थानं तेजो वा । भद्रया-भन्दते कल्याणं करोति, इति भद्रा । तथा । नकारलोपः । क्रन् प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—जिस पृथिवी पर काले वर्ण वाली रात तथा उजले वर्ण वाला दिन—दोनों प्राणियों के कल्याण के लिये नियमपूर्वक सुख पहुंचाते तथा नियंत्रित करते हैं । वर्षा-मेघ से परितृप्त हुई पृथिवी सदा अन्नधन का सृजन करती हुई सुख-आनन्द से आवृत रहे और सभी घरों में सुख-शान्ति तथा समृद्धि बनती-वढ़ती रहे ॥५२॥

५३—

द्यो॑श्च॒ म॒ इदं॑ पृथि॒वी चा॒न्तरि॑क्षं च॒ मे व्य॒चः ।

अ॒ग्निः सूर्य॑ आ॒यो मे॒धां वि॒श्वे दे॒वाश्च॑ संद॒दुः ॥ ५३ ॥

पद-पाठः—द्यौः+च । मे । इदम् । पृथिवी । च । अन्तरिक्षम् । च । मे ।

व्यचः । अग्निः । सूर्यः । आपः । मेधाम् । विश्वे । देवाः । च । सम् । ददुः ॥ ५३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! त्वदाश्रया इयं द्यौः, इदम् अन्तरिक्षं च विस्तीर्णम्, अयं पृथिवी स्थानो ऽग्निराकाशनिवासः सूर्यश्च पृथिव्याम् आन्तरिक्षे च स्थितं जलम्; एते सर्वे देवा विश्वे देवाश्च मम हृदये सुखसंभोगोपलक्षणां सम्पदाम्, श्रुतिशास्त्र सम्पन्नाम् इह लोक परलोक सौख्यदायिनी वाग्-देवतां च स्थापयन्तु । येन रोग दोषप्रहीणो ऽहं सुखमानन्दं च लभेय ।

टिप्पणी—मेधाम्—‘मेधसंगमे’ । मेधते सङ्गच्छते सर्वम् अस्याम् । ‘गुरोश्च-हलः’ इत्यकारः । आपः—व्याप्रवृन्तीति । संददुः—‘डुदाञ् दाने’ लिट् । प्रथवाबहुवचने । उस् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! आपके ही आश्रम से यह ऊपर का प्रकाशित आकाश आनन्द—मुकुलित हो रहा है, यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष भी आपके ही सहारे अवस्थित है, आपका अभिमानी देव अग्नि, आकाश का अभिमानी देव सूर्य, पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में विद्यमान जल—ये सभी देव तथा विश्व देव हम पर कृपा करते रहें जिससे सकल-भोगों का विधान करने वाली सम्पदा—लक्ष्मी हमें प्राप्त हो तथा सकल वेदशास्त्र आदि को धारण करने वाली, दोनों लोकों में सुख और आनन्द को देने वाली सरस्वती देवी भी कृपा करती रहें । हम अच्छी प्रगल्भ बुद्धि को प्राप्त करके रोग-दोष से निवृत्ति प्राप्त करें ।

५४—

अ॒हमस्मि॑ स॒हमा॑न उत्त॒रो ना॒म भू॒म्याम् ।

अ॒भीषा॑डस्मि॒ विश्वा॑षाडा॒शामा॑शां वि॒षास॒हि ॥ ५४ ॥

पद-पाठः—अहम् । अस्मि । सहमानः । उत्तरः । नाम । भूम्याम् । अभीषाट् ।

अस्मि । विश्वाषाट् । आशाम् ऽ आशाम् । वि ऽ ससहिः ॥ ५४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अहम् उत्तमां विद्याबुद्धिं संप्राप्य उच्चभावं प्राप्नुयाम् । निरन्तरं सहनशीलः, समग्रं विघ्नबाधादिकम् अवरुध्य सर्वत्र सहनशीलोभूयासम् । सर्वा दिशो मे सुखप्रदा भूयासुः ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—अभीषाट्—छंदसि सहः षहमर्षणे—ष्विप्रत्ययः । ‘अन्येषामपि दृश्यते’ इति पूर्वपदस्य दीर्घः । ‘सहेः साङः सः’ इति पत्वम् । विश्वाषाट्—अयमपि तथैव ।

हिन्दी-व्याख्या—मैं इस पृथिवी देवता की कृपा से उत्तम विद्या—बुद्धि को प्राप्त करके निरन्तर उन्नति करूँ । समस्त विघ्न-बाधाओं पर विजय प्राप्त करके अपनी उच्च सहनशीलता का परिचय दूँ । सभी दिशाएँ मेरे लिए उपायप्रद तथा शान्तिप्रद हों ॥ ५४ ॥

५५—

अदो यद् देवि प्रथमाना पुरस्ताद्

देवैरुक्ता सर्पो महित्वम् ।

आ त्वा सुभूतमविशत् तदानीम्—

अकल्पयथाः प्रदिशश्चतसृः ॥ ५५ ॥

पद-पाठः—अदः । यत् । देवि । प्रथमाना । पुरस्तात् । देवैः । उक्ता ।

वि ऽ असर्पः । महि ऽ त्वम् । आ । त्वा । सु ऽ भूतम् । अविशत् । तदानीम् ।

अकल्पयथाः । प्र ऽ दिशः । चतसृः ॥ ५५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे विस्तीर्णस्वभावे पृथिवि । यथा यथा त्वं प्रथसे तथा तथा यशः सुखं महिमानं च विस्तारयसि । त्वटयेव कल्याणीशब्दः सम्यक् शोभते । त्वयैव एताः चतस्रः प्रकल्पिता दिशः ।

टिप्पणी—सुभूतम्—भूतिस्थास्ति, 'अर्श आदिभ्यः' इति, अच् । तदानीम्—'तदो दा च' । दानीं प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे विस्तीर्ण स्वभाव वाली पृथिवी । जिस प्रकार आय फैली हो उसी प्रकार आपकी सुख—सम्पदा भी विस्तीर्ण हो रही है । आपके लिये ही यह 'कल्याणी' शब्द शोभा को प्रदान करता है । आपने ही इन विस्तीर्ण चारों दिशाओं में अपनी तथा अपने यशस्वी पुत्रों की गरिमा स्थापित की है ।

५६—

ये ग्रामा यदरण्यं या सभा अधिभूम्याम् ।

ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते ॥ ५६ ॥

पद-पाठः—ये । ग्रामाः । यद् । अरण्यम् । याः । सभाः । अधि । भूम्याम् ।

ये । सम् ५ ग्रामाः । सम् ५ इतयः । तेषु । चारु । वदेम । ते ॥ ५६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वदाश्रया ये जनसमूहा जनपदा ग्रामा वा सन्ति यानि वा ऽ रण्यानि ते रम्यानि वन-पुष्पफलैः सह नदीभिश्च सह कीर्तनानि कुर्वन्ति ये रणदुर्मदानां संग्रामा वा सन्ति योश्च सभा—समितयः सन्ति तत्र सर्वत्रैव त्वदर्थे त्वत्सुपुत्रार्थे च कल्याणीम् अलंकृता वाचम् उच्चारयेम ।

टिप्पणी—अरण्यम्—'अर्ते निच्च' । ऋच्छस्ति यत्र शमार्थम् । यद्वा नास्त्यत्र रण्यं रमणीयम् । समितयः—समयन्ति हितस्याम् 'इ गतौ, क्तिन् । सह विद्यमाना मितिः = प्रमा ऽ स्याम् । तत्सम्बुद्धौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी आपके आश्रय से जो ग्राम, जन-पद आदि हैं, पुष्प-फल, सरोवर-नदी आदि से आनन्दप्रद प्रकृति के रमणीय स्थल हैं उन सभी स्थानों पर तथा सभा-समितियों में हम आपके लिए तथा आपके प्रिय-सुपुत्रों के लिए रमणीय-अलंकृत वाणी का उच्चारण करें ।

५७—

अश्व इव रजो दुधुवे वि तान् जनान्

य आक्षियन् पृथिवीं यदजायत ।

मन्द्रा ग्रेत्वरी भुवनस्य गोपा

वनस्पतीनां गृभिरोषधीनाम् ॥ ५७ ॥

यद-पाठः—अश्व । इव । रजः । दुधुवे । वि । तान् । जनान् । ये ।

आ ऽ अक्षियन् । पृथिवीम् । यत् । अजायत । मन्द्रा । अग्र ऽ इत्वरी । भुवनस्य ।

गोपाः । वनस्पतीनाम् । गृभिः । औषधीनाम् । ५७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवि ! रजस्तेऽवधूनोऽश्वस्येव । अस्यां कुल कल्याण गुणायां त्वयि ये जनाः साश्रया निवसन्ति तेवामपि रजस्तमोगुणाः क्षालिताः । यद् यद् उत्पन्नम् उत्पद्यमानं वा तस्य तस्य गुण-शोधनं जातम् । सर्वे शान्ताः स्वच्छा रागद्वेषविवर्जिता जाताः । हे पृथिवि ! त्वं मन्द्रा सर्वथैव कल्याणधना ऽ ग्रेत्वरी भुवनस्य च पालिका भवसि । त्वमेव नाना रसायनानां वनस्पतीनाम् औषधीनां चोपादानभूता सरहस्या तिष्ठसि ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—दुधुवे—धुञ्, कम्पने—लिट् । अग्रेत्वरी—इणगतौ क्वनिप्, 'वनोरच' इतिङीप्, रेफश्च । अग्रगामिनी । गृभिः—ग्रह उपादाने—इन्, कित् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! शुभ गुणों से सम्पन्न आपके आश्रय में जो जन निवास करते हैं उनके रजो गुण और तपो गुण उसी प्रकार धुन कर दूर कर दिये जाते हैं जिस प्रकार अश्व अपने शरीर को रज से स्वच्छ कर लेता है । हे पृथिवी ! आप कल्याण-धन से सदा युक्त हैं, सदा अग्रसर रहती हैं । आप ही भुवनों की अधीश्वरी हैं । समसा रसायन, औषधियों तथा वनस्पतियों की आप ही एक अधिष्ठात्री देवी हैं ।

५८—

यद् वदामि मधुमत् तद् वदामि

यदीक्षे तद् वनन्ति मा ।

त्विषीमानस्मि जूतिमान्—

वान्यान् हन्मि दोधतः ॥ ५८ ॥

पद-पाठः—यत् । वदामि । मधुऽमत् । तत् । वदामि । यत् । ईक्षे । तत् ।

वनन्ति । मा । त्विषि॑ मान् । अस्मि । जूति॑मान् । अव । अन्यान् । हन्मि ।

दोधतः ॥ ५८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्यामेव गुणधर्मसम्पन्नायां पृथिव्यां यत् किमपि वाग्या-
वहाजातमहं करोमि तत्तत्त्वं माधुर्यगुणोपेतं भवतु । यत् किमपि शुभदृष्टया दृष्टीक्षे
पश्यामि तत्तत्त्वं नयन-रंजनमुल्लासकं मे भवतु । अहं सदैव दीप्तिमान् कमनीयः
स्फूर्तिपूर्णो भूयामम् । येऽन्ये हिंसका स्तान् जवाम् अहं दूरे क्षिपामि ॥ ५८ ॥

टिप्पणी—त्विषीमान्—‘त्विष्वदोप्ती’ । मतुप् । जूतिमान्—जु सौत्रो धातुः ।
वेगेवर्तते । स्त्रियां क्तिन् । ‘ऊतियूति०’ इति साधुः । मतुप् । अन्यान्—नीचान्,
शत्रून् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! आपके मधुर आश्रम में मैं जो कुछ बोलूँ वह
माधुर्यपूर्ण हो, जो कुछ देखूँ वह मनोरंजक तथा उल्लास देने वाला हो । मैं सदैव
कान्तिमान्, तेजस्वी तथा गतिशील रहूँ । जो हिंसक-लोग हमारी गतिविधियों में
बाधक हैं उन्हें मैं दूर फेंक दूँ ॥ ५८ ॥

५९—

शान्ति॑वा सुर॒भिः स्यो॒ना की॒लालो॒धनी॑ पयस्वती

भूमि॑रधि ब्रवीतु मे पृथि॒वी पयसा॑ स्नह ॥ ५९ ॥

पद-पाठः—शन्ति॑स्वा । सुर॑भिः । स्यो॒ना । की॒लालऽऊ॒घ्नी । पय॑स्वती ।

भूमिः । अधि॑ । ब्रवी॑तु । मे । पृथि॑वी । पय॑सा । सह ॥ ५६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं रसरसायनपूर्णा सदैव प्रशंसनीया गौरिव दुग्धदोहना कल्याणप्रदा सुगन्धैः पुलकिता भूमि र्ये कल्याणमुपदिशतु । माम् अधिकृत्य प्रेरणा-वाचमुच्चारयतु येन सर्वथैवाह शंसितः प्रशंसितो भूयासम् ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—कीलालोघ्नी—ऊधसोऽनङ् । कीलाल + ऊधस् + अनङ् । 'बहु-व्रीहेरुघसो ङीष्' ४-१-२५ स्योना—'षिवु तन्तुसन्ताने' । बाहुलकान्नः । अन्तरङ्गत्वाद् यण् । सुखदात्री । मन्तनोति सुखतन्तून् ॥ ५६ ॥

हिन्दी व्याख्या—यह रस—रसायन से परिपूर्ण, गौके समान दुग्ध देने वाली, अपनी ही सुगन्ध से पुलकित पृथिवी मुझे सदा कल्याण का उपदेश देती रहे । मेरे कल्याण के लिए प्रेरणा देती रहे जिससे मेरी प्रशंसा बने और बढ़े ॥ ५६ ॥

६०—

याम॑न्वेच्छ॒द्विषा॑ विश्व॑कर्म-

॑न्तर॑र्णवे रज॑सि प्रवि॑ष्टाम् ।

भुजि॑ष्यं॑ पात्रं॑ निहि॑तं गुहा॑ यद्-

आ॒वि भो॑गे अ॒भवन् मातृ॑भ॒भृत्रः ॥ ६० ॥

पद-पाठः—याम् । अनु॑ऽऐच्छत् । ह॒विषा॑ । विश्व॑कर्म । अन्तः । अ॒र्णवे॑ ।

रज॑सि । प्र॒वि॒ष्टाम् । भुजि॑ष्य॒ऽम् । पात्र॑म् । निऽहि॑तम् । गुहा॑ । यत् ।

आ॒विः । भो॑गे । अ॒भवत् । मातृ॑भ॒भृत्ऽभ्यः ॥ ६० ॥

संस्कृत-व्याख्या—स्वहृत्य द्रव्यै र्यां पृथिवीं विश्वकर्मा कामयते । या समुद्रस्य जले प्रविष्टाऽपि ततो विशिष्टा दृश्यते । भोगसाधनं पात्रम् अस्या एव पृथिव्याः सकाशाद् गुहायः रहस्यभूतायां निहितं लभ्यते । प्रशंसिता मातृयन्तः पुरुषाः स्वरूपव्रजादस्यामेव पृथिव्यां भोगाय समर्थाः कृतकृत्याश्च भवन्ति ॥ ६० ॥

टिप्पणी—अर्णवे—अर्णांसि यत्र सन्ति । ‘अणसो लोपश्च’ इति वः, सकार-लोपश्च । मुजिष्यम्—भुंक्ते स्वामिदत्तं भुज्यते वा । ‘रुचिमुजिष्यां किष्यन्’ । मातृमद्भ्यः—प्रशस्ता मातरो येषांते, तेभ्यः ॥ ६० ॥

हिन्दी-व्याख्या—अपने हव्य—द्रव्य ये विश्वकर्मा जिस पृथ्वी की पूजा करते हैं, जो समुद्र में प्रविष्ट होकर भी उससे विशिष्ट रूप से प्रकाशित है । पृथ्वी के रहस्य भूत गुहा में भोग के लिए उपयुक्त साधन निहित है । जिनकी मातायें प्रशंसनीय हैं, उनकी कृपा से प्रशंसनीय पुरुष अपने पौरुष से भोग में समर्थ तथा कृतकृत्य होते हैं ॥ ६० ॥

६१—

त्वमस्यावप॑नी जनाना॑म्

अदि॑तः काम॒दु॒घा प॑प्रथाना ।

यत् त॑ ऊ॒नं तत् त॑ आ पू॒रया॑ति

प्रजा॑ऽपतिः प्रथम॑ऽजा ऋ॒तस्य॑ ॥ ६१ ॥

पद-पाठः—त्वम् । असि । आ s वपनी । जनानाम् । अदितिः । काम॑सदु॒घा ।

प॒प्रथाना॑ । यत् । ते । ऊ॒नम् । तत् । ते । आ । पू॒रया॑ति । प्रजा॑ऽपतिः प्रथम॑ s जाः

ऋ॒तस्य॑ ॥ ६१ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे महनीये ! पृथिवि ! त्वम् एव खलु समस्तानां जनानाम् आवपनी आवपन-साधनभूता s सि । कार्यसिद्धि-भूता s सि । त्वया एव कौतूहलिन्या समस्तो जनः पूज्यते प्रेर्यते च शुभे कर्मणि । त्वमेव वैभवविस्तीर्णा सती सर्वेषां कार्यपूर्तिहेतु गौरिव अदीना शालीना । यत्त ऊनम् यह किमपि ते ऊनम् न्भूतमस्ति तत् समग्रं प्रजापतिः प्रपूरयति यः खलु सत्यस्य प्रथमो देव उत्कृष्टतमः ॥ ६१ ॥

टिप्पणी—आवपनी—‘डु’वप् बीजतन्तुसन्ताने’ ल्युट् । डीप् । आ उप्यते- s त्र । ऊनम्—न्यूनम् । अव + नक् । असम्पूर्णम् । कामदुघा—‘दुहः क्व घश्च’ इति कप् प्रत्ययो दृश्य च घः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथ्वी ! आप ही समस्त मनुष्यों के लिए आवपनी = बीच—सन्तान की धारिका और कार्य-सिद्धि के लिये एक मात्र साधन हो । आपके ही कौतूहल में समस्त प्राणी पूजित और प्रेरित होते रहते हैं । कार्य की पूर्ति और सिद्धि में अदीन—शालीन धेनु के समान आप ही विस्तीर्ण वैभव और सोभाग्य से सम्पन्न हो । आप में जब कभी कुछ न्यूनता आती है उसे हमारे उदार प्रजापति के रूप में भगवान् सूर्य पूर्ण करते रहते हैं । भगवान् सूर्य ही सत्य के प्रथम, उत्कृष्टतम देव हैं जिनकी अमृत-दृष्टि आप पर सदा लगी रहती है ॥ ६१ ॥

६२—

उपस्थास्ते॑ अनमी॒वा अय॑क्ष्मा—

अस्मभ्यं॑ सन्तु॑ पृथिवि॒ प्रसू॑ताः ।

दीर्घं॑ न आयुः॑ प्रतिब॒ध्यमा॑ना

वयं॑ तुभ्यं॑ वलि॒हृतः॑ स्याम ॥ ६२ ॥

पद-पाठः—उप s स्थाः । ते । अनमी॒वाः । अय॑क्ष्माः । अस्मभ्यम् । सन्तु ।

पृथिवि । प्र s सूताः । दीर्घम् । नः । आयुः । प्रति s बुध्यमानाः । वयम् । तुभ्यम् ।

वलि s हृतः । स्याम ॥ ६२ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पृथिवी ! त्वदायत्ताः सर्वे रोगरहिता अयक्ष्याः क्षय-
रहिताश्च स्युः । हे पृथिवी ! अक्षया अरोगाः स्वस्थाः प्रसन्ना वयं निरन्तरं ते
कीर्तिवर्धनाः स्याम । य उत्पन्ना ये च उत्पद्यमानाः सर्वे से प्रमवाय ऐश्वर्याय भवन्तु ।
अस्माकम् आयुः सबलं दीर्घं प्रशस्तं च स्यात् प्रतिदिनं प्रबोधमापन्ना वयं ते बलिहृतः
स्याम । व्यवोपहारेया याजकाः पूजकाः सत्कृताः सत्कारकापिणो भवेम ॥ ६२ ॥

टिप्पणी—उपस्थाः—उपतिष्ठते । 'सुपिस्थः' इति कः । अत्र योगविभागात्
कर्त्तव्यः । अनमीवाः—अमीवा रोगः, तद्रहिताः । बलिहृतः—बलिपूर्वस्य हरतेः
क्विप् । 'अन्येभ्योऽपिदृश्यते' ३.२.१७८ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी ! प्रकट तथा अप्रकट आपके सभी रस-रसायन
हमारे लिए कष्ट-रहित तथा क्षय-रहित, नीरोग रहें जिससे हम प्रशंसनीय दीर्घ-आयु
को प्राप्त करें । प्रतिदिन नये-नये प्रबोध से हम सम्यक् समाधि को प्राप्त करें और
यजन-पूजन, सत्कार-दान आदि से आपकी गरिमा और यश का विस्तार करते
रहें ॥ ६२ ॥

६३—

भूमे॑ मा॒त॒ नि॒धे॑हि मा॒ भद्र॒या सु॒प्रति॑ष्ठितम् ।

सं वि॒दाना दि॒वा क॒वे श्रि॒यां मा॒ धे॒हि भू॒त्याम् ॥ ६३ ॥

पद-पाठः—भूमे॑ । मातः । नि । धेहि । मा । भद्रया । सु s प्रति स्थितम्

सम s विदाना । दिवा । कवे । श्रियाम् । मा । धेहि । भूत्याम् ॥ ६३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मात भूमे ! मां निरन्तरं सुप्रतिष्ठं ज्ञान—गौरवेण
पूर्णं निधेहि । हे क्रान्तप्रज्ञे ! अहं त्वदीयोऽस्मि इति मां सदा जानीहि । यां भूत्यां
वैभवे श्रियां शोभायां च प्रतिष्ठितं कुरु । अहं श्रीमान् यशस्वी च भवेयम् ।
इति कुरु ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—कवे—कुङ् गतिशोषणयोः, इन् । भूत्याम्—भवनं भूतिः । स्त्रियां
 क्तन् । सम्पत्तिः । तस्याम् । श्रियाम्—श्रयति हरिम् । क्विप् । दीर्घश्च ।
 तस्याम् ॥ ६३ ॥

हिन्दी-व्याख्या—हे पृथिवी मां ! आप सदैव मुझको सप्रतिष्ठित तथा ज्ञान
 की गरिमा से अलंकृत करती रहो । 'मैं आपका ही हूँ' ऐसा आप सदा अपने ध्यान
 रखें । मुझे सभी प्रकार के वैभवों से परिपूर्ण और सम्पन्न कीजिये तथा प्रतिष्ठित,
 प्रशंसित जीवन दीजिये । मैं श्रीमान् भी बनूँ और यशस्वी भी । सम्पन्नता और शोभा
 से मेरा जीवन भरा-पूर रहे ॥ ६३ ॥

आमुखम्

ऋग्वेद विश्व-साहित्य में अपना पूज्य एवं प्रतिष्ठित स्थान रखता है। भारतीय-संस्कृति का आदि स्रोत होने के कारण भारती-भाषा और पूजा के लिए प्राण-प्रद प्रतिष्ठा का हेतु है। इसी कारण भारत के सभी विश्वविद्यालयों ने संस्कृत-विभाग में ऋग्वेद को प्रमुख-स्थान दिया है। विश्व के अन्य विश्व विद्यालयों में भी ऋग्वेद के पठन-पाठन की विशेष व्यवस्था है। भाषा-विज्ञान, साहित्य-समीक्षा, रस-सिद्धान्त, नट्य-विद्या, गणित-काण्ड, उपनिषद्, ज्योतिष, दर्शन, समाज-शास्त्र आदि विषयों को लेकर गहनता के साथ अब तक ऋग्वेद के अध्ययन तथा गवेषणा में जिज्ञासा वृत्ति रही है।

ऋग्वेद से संकलित इन सूक्तों में उत्तर भारत के प्रायः सभी विश्व-विद्यालयों के पाठ्य क्रम को अपनाकर रखा गया है। मंत्र-व्याख्या में भारतीय परम्परा के प्रमुख भाष्यकार सायणाचार्य, ऋषिदयानन्द का विशेष ध्यान रखा गया है। मंत्रार्थ को छात्रों के लिए सुखद—सरल भाषा में किया गया है। जहाँ कहीं कठिन अपरिचित से शब्द आये हैं उनकी निरुक्त-प्रक्रिया का सम्मान करते हुए अर्थ निकाला गया है। टिप्पणी में व्याकरण-प्रक्रिया से व्युत्पत्तिलम्प अर्थ का निर्देश किया गया है और हिन्दी में मन्त्रार्थ को अच्छे ढंग से समझा दिया गया है। मन्त्रों के ऋषि, देवता और छन्दों पर भी संक्षेप में टिप्पणी दे दी गई है। छात्रों की वेदाध्ययन की ओर रुचि और प्रवृत्ति हो, इस कारण भाषा-प्रवाह और सरसता का पूरा ध्यान रखा गया है और दुरुह वाक्यों को सरल कर दिया है।

गौ, गातु, स्वसर, दोषावस्तः आदि ऐसे शब्द हैं जिनकी प्रकरण, देवता आदि विषयों को देखते हुए मन्त्रार्थ की संगति में अर्थ किया गया है इससे सहृदय पाठक को प्रसन्नता और सन्तोष होगा।

पाश्चात्य व्याख्याकार मैकडानल, पटिसन ग्रिफिथ आदि के उपयोगी विचारों को यत्र तत्र स्वीकार किया गया है पर कहीं-कहीं अनभिमत विचार को सकारण अस्वीकार कर दिया गया है। गौ का अर्थ केवल 'गाय' नहीं है। कालिदास ने रघुवंश में गौ शब्द का 'केश' अर्थ में प्रयोग किया है। अथास्य गोदान विधेरनन्तरम्' रघु २—३३, टीकाकार मल्लिनाथ ने कहा है गावो, लोमानि केशा दीयन्ते खण्डयन्ते इति गोदान विधिः केशान्त संस्कारः। इसी प्रकार भारतीय परम्पर में गोपाल तथा गोस्वामी (तुलसीदास) में महान् अन्तर है। निरुक्तकार यास्क ने किरण, वाण पृथ्वी, आदि विशाल अर्थों में गो शब्द का प्रयोग उदाहरण के साथ प्रदर्शित किया है।

(१) मंत्रार्थ-प्रक्रिया

वृहदेवता में १-८० पर लिखा कि नाम को यथावत् जाने-समझे बिना मंत्रार्थ अधिगत नहीं हो सकता—‘न हि नामान्य विज्ञाय मंत्राः शक्या हि वेदितुम्’ ।

इस मंत्रगत रहस्य को जानने के लिए महर्षि यास्क ने जो शैली अपनायी है तथा पदगत रहस्य को अभिव्यक्त करने की जो दिशा दी है वह गूढार्थ के चिन्तन में दत्त चित्त मनीषियों के लिए उद्घाटनद्वार का कार्य करती आ रही है। भारतीय परम्परायोग-वेदान्त की प्रक्रिया, पुराण-मन्थन, आयुर्वेद-ज्योतिष् व्याकरण आदि सम्प्रदाय, काव्य-साहित्य मर्म आदि विषय इस महान् वेद-राशि की किञ्चिद्-उन्मेष-विवक्षामात्र है। हम यहाँ कुछ शब्दों की अर्थ-मीमांसा पर प्रकाश डालना इस प्रक्रिया की दिशा में उचित समझते हैं—द्यौः शब्द दिन, प्रकाश, धूलोक आदि का वाचक है- लक्षणा वश स्वर्ग, आकाश आदि भी समझा जा सकता है, दीप्त, विजिगीषु शत्रु के लिए भी प्रयोग हुआ है। ४-८७-४ में ‘अश्वः’ के साथ ‘नृभिः’ प्रयोग हुआ है। अतः गतिशील मानव अर्थ अधिक उचित होगा। ५-५६-१ में ‘अश्वान्’ के लिये सायण ने ‘उदय संघातान्’ अर्थ सुसंगत ही किया है। इसी प्रकार मेघ के लिए ‘वृक्ष’ शब्द का प्रयोग ५-५४-६ में हुआ है। २-३४-६ में मेघ के लिए ‘धेनु’, १०-२७-७ में यतयः प्रयोग हुआ है। इस प्रकार ऋग्वेद में नाना प्रकार से विविध अर्थों में शब्द प्रयुक्त हैं। धातुज-अर्थ की मीमांसा के साथ लाक्षणिक तथा प्रकारणिक दृष्टिकोण को भी व्यवस्थित तथा सुरक्षित रखना चाहिये।

उपनिषदों तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस प्रकार की अर्थ-मीमांसा की गई है—वाग् वा अग्निः, प्राणा वा आदित्याः, अहम् अन्नम्, पुरुषों वा यज्ञः, जारः अग्निः आदि प्रयोग कुशल मानव बुद्धि को एक लम्बे समय से आमंत्रित करते आ रहे हैं। इस समाज नेतृमुख वृत्ति का अभिप्राय यही है कि छात्र अथवा उपाध्याय की अपनी उपासना-निष्ठा क्या है? और कहाँ तक है। वाक् की महिमा और ममत्व में असक्त व्यक्ति के लिए यही परम उत्कृष्ट उपदेश है कि इस अनादिनिधना वाक् को ब्रह्माभिन्न रूप में अभ्यास करें पर पुनः प्रश्न उठता है कि यह वाक् भी संकल्प रूप में मन में अधिष्ठित है अतः ‘मनोवा ब्रह्म’ की श्रुति का प्रतिसंचार हुआ और यह मन कहाँ अधिष्ठित है? परे प्राण में। अतः ब्रह्म तथा विशाल होने से प्राण ही ब्रह्म हुआ और फिर यह तो कहना ही है कि ‘परे ब्रह्मणि सर्व एकी भवन्ति ।’

(२) वैदिक-भाषा

भाषा—रूप की दृष्टि से लौकिक संस्कृत और वैदिक संस्कृत में कुछ अन्तर है। हमें सावधानी से देखने पर यह भेद अच्छी प्रकार से समझ में आ जाता है और अभ्यास करते रहने से वेद-साहित्य सुगम हो जाता है। वैदिक भाषा बहुत ही सरल, सुगम्य और स्वाभाविक है। लयात्मक ढंग से गाया जा सकता है। चिन्तन करते रहने से वेद-रस का माधुर्य अपने आप प्रकट होने लगता है।

वेद—साहित्य के पाठकों की कठिनाई को ध्यान में रखते हुए कुछ सामान्य नियम निवेदित हैं—

देवाः, जनाः के स्थान पर देवासः, जनासः आदि का प्रयोग भी होता है। संस्कृत के समान प्रायः सन्धियाँ हो जाती हैं पर कहीं-कहीं सन्धि नहीं भी होती—तितड, प्रडग, गो ओपशा, गो ऋजीक आदि। संस्कृत में तुमुन् के स्थान पर 'असे, असेन्, कसे, कसेन्' आदि अनेक प्रत्यय लग सकते हैं। ग्रामं गन्तुम् के स्थान पर गन्तवे, गमध्वै, सतंवे आदि प्रयोग मिलते हैं। अलङ्कृत भाषा में बोलने के लिये न, चित्, इव, नु आदि प्रयोग हुए हैं। वाक्यों में सौन्दर्य लाने के लिये किल, स्मत्, कुवित्, नु, हिं, सबट् आदि प्रयोग किये गये हैं। उपसर्गों का प्रयोग क्रिया से पूर्व भी हो सकता है और उपगन्त भी ; और कहीं-कहीं व्यवधान देकर भी प्रयोग हुए हैं। पुल्लिङ्ग द्विवचन के प्रयोग में लोक-भाषा में रामी, बालकौ आदि प्रयोग बनते हैं पर वेद में कहीं-कहीं 'आ' ही रह जाता है—दस्त्रा, नासत्या, जविष्ठा, रोहिता आदि। संस्कृत भाषा के सभी नियम लगते भी हैं और नहीं भी लगते। 'त्वा' के स्थान पर 'त्वाय' हो जाता है—दत्त्वा, दत्त्वाय। कहीं-कहीं 'त्वी' प्रयोग भी होता है—स्नात्वी, पीत्वी (स्नात्वा, पीत्वा)। क्रिया के बहुवचन 'मस्' के स्थान पर मसि हो जाता है—भञ्जयामः, दीपयामः=भञ्जयामसि, दीपयामसि) ध्वम् के स्थान पर ध्वात् प्रयोग भी होता है—वारयध्वम्, वारयध्वात्। त के स्थान पर तात् का प्रयोग, जैसे कृणुत-कृणुतात्, खनत-खनतात् कहीं-कहीं पर तप्, तनप्, तन, थन आदि प्रयोग मिलते हैं—शृणुत-शृणोत, सुनुत-सुनोत, धत्त-दधातन, जुषत—जुजुष्टन, यदिच्छत—यदिष्ठन आदि। कहीं-कहीं तृतीया लुप्त सी दीखती है—धीती, मती, सुष्टुती—धीत्या, मत्या, सुष्टुत्या।

क्रियाक्षर कहीं-कहीं लुप्त से रहते हैं—तत्त्वा यामि (याचामि) द्वितीय बहुवचन आन् के स्थान में आत् का प्रयोग जैसे ताद् ब्राह्मणात्-तान् ब्राह्मणान्। यूयं, वयम् के स्थान पर 'या' का प्रयोग जैसे—उरूया, धृष्णुया=उरूणा, धृष्णुना। कहीं-कहीं 'इया' भी जैसे—उर्विया, दार्विया—उरूणा, दारूणा। सुक्षेत्रिया, सुगात्रिया—सुक्षेत्रिया, सुगात्रिणा। भाषा में टुन्ति का प्रयोग होता है पर वेद में 'टुन्ति'

का भी । शब्दों के स्थान पर शयते का भी प्रयोग होता है । वेद में एक पृथक् लेट लकार भी होता है—भवति, भवाति, जोषिपत्, तारिपत् आदि । अकरत्, अमरत्, अदरत् (अदारीत्) आदि प्रयोग भाषा सौष्ठव को प्रकट करते हैं । लुङ्, लङ् और लिट् प्रत्यय प्रायः सभी कालों में प्रयुक्त होते हैं । 'स दाधार पृथिवीम्' आदि प्रयोगों में क्रिया-व्यापार मात्र लिया जाता है । कृत्यार्थ प्रयोगों में तवै, केन्, केन्य और त्वन् आदि प्रत्यय होते हैं—अन्वेतवै—अन्वेतव्यम्, परिधातवै—परिधातव्यम्, नावगाहे—नावगाहितव्यम्, दिदक्षेण्यः—दिदक्षितव्यम्, शुश्रूषेण्यः—शुश्रूषितव्यम्, कर्त्तव्यम्—कर्त्तव्यम्, नावचक्षे—नावख्यातव्यम् । संस्कृत में 'सदा' के स्थान पर सनम्, सदमिन्, सना आदि प्रयोग होते हैं । सभ्य के स्थान पर सभेय का भी प्रयोग होता है । नपुंसक लिंग बहुवचन में वनानि—वनः, धनानि—धना आदि प्रयोग भी होते हैं ।

इस प्रकार धातु, संज्ञा और पदों के लिंग, वचन और कारकों के दृष्टि से बहुल प्रयोग हुए हैं । इस व्याख्या के साथ स्थान और अवसर देख कर ऐसे शब्दों के वैदिक रूप पर संवेत दे दिया गया है । पाणिनि, यास्क तथा प्रातिशाख्य ग्रंथों में इन पर विस्तार से विचार हुआ है ।

(३) वैदिक वाङ्मय

वैदिक साहित्य का अपना एक विशिष्ट स्थान तथा मञ्जुल भण्डार है । चारों वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद) ब्राह्मण-ग्रन्थ (ऐतरेय, शतपथ, ताण्डय, गोपथ) उपवेद (अथर्ववेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और आयुर्वेद) आरण्यक ग्रन्थ, उपनिषदों आदि के रूप में हमारा विशाल वैदिक-साहित्य विस्तृत और अलंकृत है । चारों वेदों को अङ्ग और शाखाओं सहित अध्ययन की परम्परा पुराकाल से चली आ रही है ।

ऋग्वेद का स्वरूप

ऋग्वेद १० मण्डलों में विभक्त है । प्रत्येक मंडल सूक्तों में तथा सूक्त मंत्रों में व्यवस्थित हैं । पूरे ऋग्वेद में १०२८ सूक्त हैं । इन सूक्तों में प्रायः एक गोत्र अथवा परिवार के सदस्यों द्वारा दृष्ट-प्रचारित मंत्र हैं । आरम्भ के मण्डलों में मधुच्छन्दा, गृत्समद, कण्व, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ और इनके वंशज ऋषि हैं ।

मंत्रों में नाम की व्याख्या क्रिया-व्यापार को देखते हुए धातुज-व्याख्या के साथ करनी चाहिये । स्वर, संस्कार, अर्थ-स्थिरता के साथ मन्त्रार्थ स्फुट होता है ।

ऋग्वेद को अष्टक, अध्याय और वर्ग के रूप में भी विभाजित किया गया है पर इस रूप का प्रचार कम हुआ है। शाकल और वाष्कल ऋषियों को उक्त प्रकार से ऋग्वेद को विभाजन की प्रसिद्धि मिली है।

ऋग्वेद की भाषा अतीव सरल, सरस तथा प्रभावोत्पादक है। छन्द, लय, स्वरों के आरोह-अवरोह में भाषा का यान्त्रिक सौष्ठव अत्यन्त प्रशंसनीय है। प्रत्येक मंत्र तन्त्री स्वर के साथ अनुरूप स्वरों में गाया जा सकता है। प्रत्येक छन्द का अपना अनुध्वनित स्वर है।

काव्य सौन्दर्य—काव्य सौंदर्य की दृष्टि को “ऋग्वेद में काव्य-तत्त्व” ग्रन्थ में अभिव्यक्त किया गया है। अन्य भी पूर्व तथा पश्चिम के गहन विवेचकों ने ऋग्वेद के काव्य तत्व पर प्रकाश डाला है। उपाख्यान कथोपकथन, दूत-काव्य, प्रकृति-चित्रण, नायकवाद आदि की दृष्टि से ऋग्वेद एक रत्नाकर ग्रन्थ है। सरमा-पणि संवाद, उर्वशी—पुरुखा, दालभ्य, अगस्त्य—लोपामुद्रा, विश्वामित्र—नदी सम्वाद, अदिति—इन्द्र संवाद आदि बहुत ही गहन-स्थान साहित्य-मर्मज्ञों के समक्ष रखते हैं।

संग्राम भूमि में असुरों के साथ भयावह युद्ध में अदिति अपने पुत्र इन्द्र को प्रोत्साहन देती हुई कहती है—‘पुत्र ! सावधान रहना, देवगण तुम्हें छोड़ते जा रहे हैं—

अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्मन्

सखे विष्णो वितर विक्रमस्व ॥ ४.१८.११

कितना ओजस्वी बन्ध है ? पर्जन्य सूक्त, इन्द्रसूक्त इस प्रकार के ओजस्वी वर्णन के सुन्दर उदाहरण हैं। मरुतसूक्त, अग्निसूक्त, वरुणसूक्त तथा उषः सूक्त में काव्य-सौष्ठव का अतीव मार्मिक-स्पर्श मिलता है। प्रथम मण्डल के ६५ से ७६ तक के सूक्तों में उपमा-चमत्कार अतीव सजीव है।

स्वर संस्कार—वेदाध्ययन में स्वरों का मुख्य महत्त्व है। बहुत से शब्द स्वर-महिमा के कारण अर्थान्तर में अतिक्रमण कर जाते हैं। एक भ्रातृव्य शब्द भतीजा तथा शत्रुवाचक केवल स्वर-महात्म्य से जाना जाता है। यदि स्वारित भ्रातृव्य शब्द है तब

भतीजा अन्यथा आद्युदात्त होने पर भ्रातृव्य शत्रु वाचक होगा। इसी प्रकार कर्त्ता (लुट लकार=कल करेंगे) तथा कर्त्ता (तृच्=करने वाला)। गर शब्द विषवाचक

अन्तोदात्त है और जलवाचक गरम् आद्युदात्त रहेगा। घञान्त प्रत्यय प्रायः अन्तो-दात्त होते हैं, त्यागः, रागः, पाकः। वेग, वेद, वेष्ट और बन्ध शब्द करण में अन्तो-

दात्त तथा भाव और अधिकरण में आद्युदात्त रहेंगे । चित् प्रत्यय वाले समुदाय को अन्तोदात्त होगा मेदुरः, उच्चकैः, बहुपटुः । सु के अनन्तर क्त प्रत्यय अन्तोदात्त होता

है—सुकृतम् ।

जिस पर स्वर विधान किया जाय, उसे छोड़कर शिष्ट पदों में अनुदात्त होता है । नीचे पड़ी रेखा लगाकर (क) हम अनुदात्त की सूचना देते हैं । जहाँ पर

ऊपर खड़ी लकीर लगी हो उसे स्वरित (क) कहते हैं । तित् प्रत्ययान्त स्वरित होता है कार्यम्; चिकीर्ष्यम् । जित् और नित् प्रत्यय आदि उन्दात्त होते हैं—गाम्यम् ।

निवास वाचक क्षय शब्द आद्युदात्त होता है पर विनाश अर्थ में अन्तोदात्त । क्षयः ।

विशेष विवरण तथा जानकारी के लिये फिद् सूत्र तथा पाणिनि मुनि की अष्टाध्यायी के स्वर विधायक सूत्रों से सहायता लेनी चाहिये । ●

एक देवोपासना

एक देवोपासना—ऋग्वेद में विधि देवों के नाम आते हैं। इससे बहुत से पाठकों को चाहे वे इस देश के हो अथवा अन्य देश के, एक भ्रान्ति-सी हो उठती है कि वेदों में नाना देवों की उपासना-पद्धति है।

वास्तव में ऐसा नहीं है। वस्तु-महात्म्य को देखकर वस्तुगत गुण का ख्यापन ही वेद को इष्ट रहा है। इस प्रकार वस्तुगत सौंदर्य अथवा वस्तु निष्ठगुण का सूक्ष्म-निरीक्षण करा देना ही इष्ट रहा है पर साथ ही वह भी इष्ट है कि उस वस्तु में जो कुछ वैभव है वह एक ब्रह्म की ही विभुता का परिचायक है। सुरेश्वराचार्य ने कहा है कि यह अस्ति-भाति-प्रीणाति रूप ब्रह्म के ही अस्ति-भाति-प्रीणाति रूप का अनुव्याख्यान है। 'तेरी सत्ता के बिना हे प्रभु मंगल मूल' कह कर भाषा कवियों ने भी इसी तथ्य को दुहराया है। स्वयं ऋग्वेद में 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति' १—१६४—४६ ऋष्टि, मित्र, इन्द्र, वरुण आदि रूपों एक ही ब्रह्म की उपासना की प्रक्रिया को सिद्ध दर्शाया गया है। १०—६०—६ में भी यही प्रतिपादित किया गया है कि उसी यज्ञ रूप परमात्मा से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अधर्ववेद की उपस्थिति मानी गयी है।

बृहदारण्यक उपनिषद् १—४—६ में समझाया गया है कि 'यह जो कहा गया है कि, "इसे यजन करो, इसकी पूजा करो, यह एक-एक की पूजा नहीं है। यह तो एक उसी अखिलाधार की पूजा है।"

मंत्रार्थ-निर्वचन

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहु—

नैर्न हिन्वन्त्यपि वाजितेषु ।

अधेन्वा चरति माययैष वाचं—

शृश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥ ऋ' १०-७१-५

मंत्रार्थ में शब्द प्रक्रिया की वैज्ञानिक गति-विधि तथा प्रकरण-परम्परा के प्रति आदर वृद्धि के साथ व्याख्या करनी चाहिये। षडङ्ग में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, इन्द्र और ज्योतिष् आते हैं। अपने-अपने क्षेत्र में इनका महत्व है। और इनका प्रगुण-ज्ञान वेदार्थ की समीक्षा में संगत आधार प्रस्तुत करता है। वेद (४) अङ्ग (६) पुराण, मीमांस, धर्मशास्त्र तथा न्याय (६) = १४ इन चतुर्दश विद्याओं में कुशल पुरुष को ही प्रवीण कहा गया है। वैदिक ऋषि शरीर को ही वीणा (वाण) मान कर चलते हैं। अति कर्षण से वीणा टूट जाती है और अकर्षण से शिथिल पड़ जाती है। अच्छी वीणा तन्त्रीलय समन्वित होकर गन्धर्व बलिका की भाँति कल-मधुर आलाप से गृह को पूजित और गुंजारित करती है इसी प्रकार नियम-बद्ध संयत शरीर ऐश्वर्य सम्पन्न तथा अध्यात्म-रस से पूजित और पूरित होकर गुणानुरणन में अन्तःकरण को पवित्र बनाता है।

‘सखिविदं सखायम्’ (तै० आ० २—१५) में वेद-मंत्र को सखा कहा गया है। वेद रूप वाणी की मंत्री में स्थित होकर स्थिरता के साथ अर्थामृत का पान माना गया है। वेद वाणी ही देवों के साथ दिव्य-मंत्री का लाभ दिलाती है। पीतामृत व्यक्ति ही दिव्यत्व को प्राप्त करने में आनन्दित पौरुष प्राप्त करता है। ऐंसे समा-प्रगल्भ व्यक्ति को ‘वाजिनः’ (वाचाम् इनाः ईश्वराः वाजिनाः, तेषु वाजिनेषु) कहा गया है। अन्य सभी वाणियाँ पुष्प-फल रहित लताओं के समान रुक्षता, नीरसता और समाज में, शुष्कता उत्पन्न करती हैं। वागर्थ में सन्निविष्ट धर्म ही वाणी का पुष्प और ब्रह्म-ज्ञान ही उसका फल है। सामान्य रूप से भी वाग्-लता का पुष्प-स्थानीय शब्द और अर्थ उसका फल है। जिस प्रकार पुष्प फलोत्पादक हेतु है उसी प्रकार वेद के वचन से धर्म-ज्ञान उत्पन्न होता है और वही धर्मज्ञान ब्रह्म के विषय में जिज्ञासा की भावना उत्पन्न करता है। ‘यज्ञ दान तपः कर्म पावनानि मनीषिणाम्’ कहकर गीता ने भी इसी अनुष्ठान की प्रतिष्ठा की है। जिस प्रकार फल तृप्ति का हेतु है इसी प्रकार ब्रह्म-ज्ञान भी कृतकृत्यता का निष्पादक है। इस प्रकार के पुष्प-फल से रहित व्यक्ति अपनी माया-धेनु के साथ विचरण करता है। नव-प्रसूत गौ प्रीति का प्रीति पालन करने से धेनु (धिनोति इति) कहलाती है। केवल उलटे-सीधे पाठ मात्र करने वाले व्यक्ति तो माया-गौ के साथ विचरण करते हैं। यह गौ वास्तविक गौ नहीं है। यह तो इन्द्र जाल वाले व्यक्ति के द्वारा रचित कपट रूप गोसदृश है। इस माया-गौ से परम पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं हो सकती। न तो यथार्थ धर्मफल मिलता है और न तो ब्रह्म-ज्ञान की निष्पत्ति ही हो पाती है।

व्याकरण शास्त्र और निरुक्त शास्त्र शब्दार्थ निरूपण में बहुत सहायता करते हैं। निवेदन के साथ-साथ देवों के विषय-विवेचन में यास्क ऋषि ने बहुत अच्छे ऊँचे आधार प्रस्तुत किये हैं। इसी कारण आचार्य शंकर ने निरुक्त-शास्त्र की देव-शास्त्र कहकर सराहना की है। छन्दः शास्त्र तथा काव्य-शास्त्र के लिए भी प्रेरणप्रद स्रोत वेद से अधिगत होते हैं।

धर्म—देवों के विषय में श्रद्धावानत होकर उनकी स्तुति-उपासना, यज्ञ-सम्पादन ही ऋग्वेद का मुख्य-विषय है। मंत्रों के जहाँ स्तुति-विधान किया गया है वहाँ इस बात की भी प्रेरणा मिलती है कि उन-उन देवों के गुणों पर ध्यानानुचितन किया जाय। इससे व्यवहार की भी दीक्षा मिलती है। सत्य-सम्पादन तथा उसके पालन के लिए ऋग्वेद के ऋषि अधिक तत्पर तथा जागरूक दीखते हैं। ४-२४-६ में कहा गया है कि मान लीजिये कोई व्यक्ति अधिक मूल्य देकर तुच्छ-स्तर का वस्त्र क्रय करके ले गया मार्ग में वह सोच में पड़ जाता है कि यह सौदा तो घाटे का रहा। अब वह पुनः उस वस्तु को लौटा कर उत्तम वस्त्र पाने की इच्छा से दुकान पर जाता है। ऋग्वेद का कहना है कि अब कुछ नहीं हो सकता। पहले ही देख-परख तथा चयन करके वस्त्र आप ले गये थे अब उसे परिवर्तन नहीं किया जा

सकता । अर्थान्तरन्यास के माध्यय से वेद-सूक्ति है—दीन हो या दक्ष, अपनी-अपनी वाणी का सम्मान तो करना ही चाहिये । मंत्र है—

भूयसा वस्नमचरत्कनीयो—

ऽ विक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।

स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्—

दीना दक्षा विदुहन्ति प्रवाणम् ॥ ऋ० ४०२४०६ ॥

ऋग्वेद की यह मान्यता है कि सोम-पान करने से अपूर्व आनन्द की यह तथा अमरता की प्राप्ति होती है । देव गण ऋषियों द्वारा सम्पादित यज्ञ में सोम-रस का पान करते हैं और ऋषिगण अपनी मनीषा से उमा-सहित महेश्वर (उमया सहितं सोमम्, उमया सहितं महेश्वरस्य अनुध्यानम्) के आनन्द दयान चित्तन में सोम-रस का आनन्द लेते हैं । देवगण सदा मानव के उपकार में संलग्न रहते हैं । ओषधि-वन-स्पतियों में रस भरना, वर्षा तथा पर्वतीय नदियों द्वारा कृषि को उपजाऊँ बनाना, पृथ्वी को रोग-शोक से मुक्त रखना, हानिकारक वस्तुओं और शक्तियों का निवारण करना तथा मनुष्य को प्रेय-श्रंय से सम्पन्न करना उनका काम है । मनुष्य भी अपने शारीरिक अभ्युदय, मानसिक विकास तथा आत्मिक शान्ति एवम् आनन्द के लिए इन वैदिक शक्तियों का सहारा लेते हैं । एक ही विश्वविधायिनी परा शक्ति के अनन्तरूप में यह देवगण उपस्थित तथा प्रतिष्ठित हैं ।

आजीविका—ऋग्वेद में निर्दिष्ट मंत्रों में नाना प्रकार से आजीविका के सम्पादन के लिए प्रेरण दी गयी है कृषि-कार्य की प्रशंसा और सराहना की गयी है । औषधियाँ, हिरण्य-अलङ्कार, स्वर्ण, अयस्कान्त (चम्बक), तथा कृषि-कार्य में आने वाले नाना प्रकार के उपकरणों का विवरण तथा वर्णन ऋग्वेद में मिलता है । वस्न-उद्योग, मूँज, चक्की, रस्सी, कूप तथा जल-निकास के बारे में संकेत मिलते हैं । वीणा, वाद्य, नृत्य, संगीत, आलेख्य, केश-प्रसाधन आदि ललित कलाओं का भी निर्देश किया गया है । जंगली पशुओं के पालन, युद्ध आदि का भी वर्णन यत्र तत्र मिलता है । भोज्य पदार्थों में दूध-घृत, गेहूँ, चना, शाक, फल आदि के निर्देश दिये गए हैं । गुण-कर्म और स्वभाव के अनुसार चारों वर्ग अपने-अपने ढंग से आश्रम-व्यवस्था के नियमों का पालन करते थे । नाना प्रकार से सुन्दर गृह-निर्माण की व्यवस्था तथा योजना का पता ऋग्वेद में चलता है । उन शालाओं को निर्मित करने वाले कारु या शिल्पी कहलाते थे । ब्रह्म तथा आन्तरिक आक्रमण अथवा कलह को दूर करने के लिए राज शक्ति के निर्माण तथा व्यवस्था का संकेत दिया गया है । यह राजा प्रजा से ही चुना जाना चाहिये तथा राष्ट्र धर्म को चलाने के लिए इसकी पृथक् अपनी संसद् होनी चाहिये ।

समाज—ऋग्वेद द्वारा निर्दिष्ट समाज कृपाल उदार तथा यज्ञ-निष्ठ है । वह आस्तिक, धर्म से रुचि रखने वाला तथा सेवा परायण है । स्त्रियों के प्रति उचित श्रद्धा तथा सम्मान का आग्रह किया गया है तेज स्त्री, युद्ध-कौशल से युक्त, अनुरूप

शस्त्र सज्जा यथा नाना प्रकार के आयुधों को वर्णन देखकर लगता है कि शरीर और समाज की रक्षा के लिए उच्चतम आर्य-चेतना दी गयी है। रथ, अश्व, सारथि, धनुर्वाण तथा अंकुश, वज्र आदि का ओजस्विता के साथ वर्णन किया गया है। राष्ट्र-भावना, स्वराज्य की अर्चना, पृथ्वी की स्तुति, भाई-बहन, पति-पत्नी, पिता-पुत्र, वैद्य-रोगी, आर्य-शत्रु का बड़े विवेक के साथ वर्णन देखकर ऋषियों के व्यापक और विशाल दृष्टिकोण का पता चलता है। द्विपद्-चतुष्पाद सभी प्राणियों के साथ सद्भाव से रहने की दीक्षा दी गयी है।

विज्ञान—ऋग्वेद के विषय में प्राचीन ऋषियों की साक्षी देकर ऋषि दयानन्द ने नाना प्रकार के विज्ञान-उपलब्धियों की ओर संकेत किया है। नौका, विमान, जलयान आदि के विषय में मंत्रों के माध्यम से उच्च मनीषा का पता चलता है। आकाश में स्वच्छन्दता से विचरण करने वाले पक्षियों को मानव के उड़ने की प्रक्रिया में प्रेरणाप्रद स्रोत कहा गया है।

‘वेदा यो वीनां पदभन्तरिक्षेण पतताम् ।

वेद नावः समुद्रियः ॥ १.२५.७ ॥

ओषधि—वनस्पतियों द्वारा चिकित्सा के विषय में बहुत ऊँची तथा अच्छी जानकारी दी गयी है। ऋभु लोग उच्च कोटि के शिल्पी थे। त्वष्टा ने ही इन्द्र के लिए संहारक शक्ति वाला वज्र बनाया है। अश्वि कुमारों की ओषधि-विज्ञान के विषय में बड़ी प्रशंसा की गयी है। केवल इतना ही, नाना प्रकार की शल्य-चिकित्साओं में भी अश्वि कुमारों की अत्यधिक ख्याति है। ज्योतिष्-शास्त्र के विषय में भी बहुत से संकेत और निर्देश मिलते हैं। बहुत से वैज्ञानिक इस विषय में एकमत हैं कि सूक्ष्म रूप से वेद मंत्रों में नाना प्रकार के विज्ञानों का रहस्य वर्णित है जिसकी व्याख्या और गवेषणा की आवश्यकता है।

मानव की बोध-मीमांसा की प्रक्रिया में ऋग्वेद का स्थान सर्वोपरि है। यह ज्ञान का आदि स्रोत तो है ही, इसकी उपलब्धि-प्रेरणा की दृष्टि से भी इसका महत्व है। संसार की समग्र सभ्य जातियाँ अपने आदि पूर्वजों की रीति-नीति, समाज व्यवस्था, राजनीतिक-विचार, सृष्टि-प्रक्रिया आदि विषयों को जानने के लिए ऋग्वेद का अध्ययन-मनन आवश्यक समझती हैं।

ऋग्वेद के अनुशील से ज्ञात होता कि इसमें मानव-ज्ञान की गहन-अनुभूति, भौतिक-ज्ञान के प्रेरणा-स्रोत तथा आत्मा सम्बन्धी गवेषणा के बारे में ऋषियों का महान् उत्साह परिलक्षित होता है। ऋग्वेद के ऋषि उच्च कोटि के मानवतावादी और सृष्टि-रहस्य के प्रगल्भ व्याख्याता प्रतीत होते हैं। भारतीय परम्परा के सूत्रकार, उपनिषत्कार तथा विभिन्न सम्प्रदायों के आचार्य वेदों के प्रति अपनी गहरी आस्था प्रकट करते हैं और ईश्वर-वाक्य कहकर ऋचाओं की व्याख्या करते हैं।

रचना-काल—भारतीय परम्परा के आचार्य ऋग्वेद को अपौरुषेय वाणी मानते हैं। शब्द का ज्ञान से अविनाभाव सम्बन्ध है और ईश्वर सर्वज्ञ तथा दयालु

है। मानव कल्याण के लिए वेद रूप प्राप्त यह एक अक्षय-कोष है। पाश्चात्य विद्वान् भी ऋग्वेद की भाषा, ज्ञान तथा प्रतिपाद्य-विषय को लेकर एक लम्बे समय से रुचि-कर गवेषणा तथा व्याख्या करते आ रहे हैं। स्वाभाविक है कि मानव-जीवन के लिए अन्य उपकरणों के समान ऋग्वेद के भी रचना-काल, प्रतिपाद्य-विषय, ऋषि-वेद-छन्द आदि विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत करें।

१—मैक्समूलर ने वेदों की रचना और काल के विषय में प्राचीन-संस्कृत-साहित्य में अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं। उनका कहना है कि तथागत बुद्ध का समय ईसा मे ५०० वर्ष पूर्व का है। अतः ८०० ई० पू० से ६०० ई० पू० को सूत्रकाल, १०००—८०० ई० पू० तक मन्त्र-काल, १२००—१००० ई० पू० तक ब्राह्मण-काल तथा १२००० ई० पू० से प्रथम वेदों का अविभवि काल है। यह काल आनुमानिक है। आगे विभिन्न प्रकार की आलोचनाओं के प्रारम्भ होने पर मैक्स-मूलर ने स्वयं अपना विचार बदल दिया और घोषण की कि वेदों की रचना के सम्बन्ध में निश्चित निर्धारित समय नहीं दिया जा सकता।

२—मैकडालल ने वेदों की रचना को ईसा की १३वीं शताब्दी से पहले का माना है। इन्होंने 'वैदिक-रीडर' की भूमिका में यह निर्देश किया है कि अवेस्ता की भाषा ८०० ई० पू० से लेकर ५०० ई० पू० तक की प्रतीत होती है। यदि देखा जाय तो वेद की भाषा को अवेस्ता की भाषा के रूप में अवतारित होने के लिए लगभग ५०० वर्ष की आवश्यकता पड़ सकती है। इस प्रकार वेदों की रचना का काल ई० पू० १३ सौ से पूर्व का निश्चित होता है।

मैकडालल के इस मत की भी बड़ी समीक्षा की गयी और अन्त में इस मत को कल्पनाश्रित ही ठहराया गया क्योंकि यह कहना कठिन है कि अवेस्ता की भाषा ८०० ई०—५०० ई० पू० के बीच की है और यह कहना तो नितान्त तुच्छ है कि ऋग्वेद की भाषा केवल ५०० वर्षों में ही अवेस्ता की भाषा के रूप में आ गयी।

३—जैकोबी ने तारा, नक्षत्र एवं ग्रहों की स्थिति पर गहन छान-बीन कर के ऋग्वेद के काल के विषय में अनुसन्धान किया है। उनका कहना है कि विवाह-प्रकरण में 'ध्रुव इव स्थिरा भव' कल्प-सूत्रों के इस कथन से ध्रुव की स्थिरता तथा प्रकाश शालिता की सूचना उस समय की है जब कि ध्रुव उस समय अधिक स्थिर माना गया है। यह काल ईसा से २७०० वर्ष पूर्व का माना जा सकता है। ऋग्वेद की रचना इससे बहुत ही प्राचीन है। इस प्रकार जैकोबी ने ऋग्वेद की रचना का समय ईसा से ४५०० पूर्व निर्धारित करने की चेष्टा की है।

४—शंकर बालकृष्ण दीक्षित ने शत० ब्रा० २-१-२ को उद्धृत करते हुए अपने ढंग से व्याख्या करने की चेष्टा की है। उनका कहना है कि उस समय कृतिका-नक्षत्र पूर्वी बिन्दु से कुछ हट कर उत्तर की ओर उदित होता है। पूर्वीय बिन्दु पर कृतिका नक्षत्र के रहने का समय ईसा से २५०० वर्ष पूर्व में लगभग था। इस प्रकार शतपथ ब्राह्मण का समय ईसा से लगभग २५०० वर्ष पूर्व निर्धारित हो जाने से ऋग्वेद का

का समय निर्धारित ज्योति विज्ञान के सहारे किया जा सकता है। ऋग्वेद ब्राह्मण-ग्रंथों से बहुत ही प्राचीन रचना है। अतः ऋग्वेद का समय ईसा से ३५०० वर्ष से पूर्व ही होना चाहिये। इधर नहीं।

श्री दीक्षित ने एक तर्क और प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि शतपथ ब्राह्मण के समय में कृत्तिका नक्षत्र पर वसन्त-सम्पात था। तब से अब तक साढ़े चार नक्षत्र पीछे हटकर पूर्वाभाद्र पद के चतुर्थ चरण पर है। वसन्त-सम्पात के साढ़े चार नक्षत्र पीछे हटने में लगभग $4\frac{1}{2}$ सहस्र वर्ष लगे हैं क्योंकि उसके एक नक्षत्र पीछे हटने में लगभग ६७२ वर्ष लगते हैं। निष्कर्ष यह निकला कि शतपथ ब्राह्मण की रचना आज से $4\frac{1}{2}$ सहस्र वर्ष पूर्व अथवा ईसा से लगभग ३००० वर्ष पूर्व की है। इस प्रकार भी वेदों की रचना ३५०० ई० पू० से पूर्व की है।

५—लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने भी ज्योति विज्ञान के ही आधार पर ऋग्वेद की काल-गणना के विषय में अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। अपने 'ओरायन' ग्रन्थ में वसन्त-सम्पात के मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्रों पर स्थित होने का वर्णन किया है। यह समय लगभग ६००० ई० पू० पर पड़ता है। वैदिक ऋचाओं का रचना-काल यही हो सकता है। श्री तिलक ने अपने अध्ययन को प्रस्तुत करते हुए यह व्यवस्था दी है कि अदिति-काल अर्थात् ६००० से ४००० ई० पू० में वसन्त सम्पात अदिति देवता वाले पुनर्वसु नक्षत्र पर था। यही काल वैदिक युग का आदि-काल माना जा सकता है। द्वितीय मृगशिरः काल ४००० ई० पू० से २५०० ई० पू० के मध्य का काल रचना-विकास की दृष्टि से यह काल बहुत महत्व का है। २५००—१४०० ई० पू० में वसन्त-सम्पात की स्थिति कृत्तिका-नक्षत्र पर थी। यह काल विभिन्न संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना का काल है। अन्तिम काल अर्थात् १४०० ई० पू० से ५०० ई० पू० तक विभिन्न कल्प सूत्रों तथा दर्शन सूत्रों की रचना हुई होगी।

इस प्रकार तिलक जी ने वेदों की रचना का समय ईसा से ४००० सहस्र वर्ष पूर्व निर्धारित करने का प्रयास किया है।

६—श्री अविनाशचन्द्र ने भी वैदिक-समय के निर्धारण में प्रयास किया है। उनका कहना है कि ऋग्वेद में चार समुद्र का वर्णन मिलता है^१, एक ऐसे समुन्द्र का भी वर्णन मिलता है जिसमें सरस्वती तथा सिन्धु नदियाँ गिरती थीं^२ यह समुद्र अब विद्यमान नहीं है। भूगर्भ-शास्त्र के विद्वान् राजपूताना-

१—रायः समुद्रांश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्य सहस्रिणः ॥ ६० ३३६ ॥

२—एकाचेत सरस्वती नदीनां ।

शुचि यंती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।

राम श्चेतन्ती भुवनस्य भूरे-

धृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥ ऋ० ७० ६५२ ॥

समुन्द्र की स्थिति ईसा से २५००० वर्ष पूर्व मानते हैं। इस कारण ऋग्वेद की रचना का समय ईसा से लगभग पच्चीस सहस्र वर्ष पूर्व का होना चाहिये।

इस प्रकार वेदों की रचना काल को लेकर विविध प्रकार से गवेषणा की जा रही है पर यह निरर्धारित नहीं किया जा सका कि निश्चित समय क्या हो सकता है। भारतीय भाष्यकार स्कन्द, सायण और दयानन्द आदि वेदों को अपौरुषेय तथा सृष्टि क्रम के आदि में ही वेदों का प्रादुर्भाव मानते हैं। दार्शनिक तथा उपनिषद् ग्रन्थों में वेदों को और वेदों के द्वारा प्रतिपाद्य ब्रह्म को निरन्तर अभ्यास में लाना निष्कारण-धर्म माना गया है। जो लोग काल-गणना की दृष्टि से समय निर्धारण की बात कहते हैं 'उनका भी कहना है कि ऋग्वेद मानव-सभ्यता की प्राचीनतम थाती है। साहित्य रूप में सुरक्षित इससे पुराना कोई ग्रन्थ नहीं है। अतः मानव-सभ्यता की मूल ऐतिहासिक सामग्री यहीं कहीं सुरक्षित है तो वह ऋग्वेद ही है। ●

४-- वेदों के भाष्यकार

प्रारम्भ में ऋषियों के गहन-विषय को देखते हुए वेद की व्याख्या को महत्त्व देकर उसे गुरु-शिष्य परम्परा में अभ्यास का विषय माना इसी कारण व्याकरण की परम्परा वाले ऋषियों ने केवल वेद को समझने के लिये ही व्याकरण का परम प्रयोजन प्रतिपादित किया। निरुक्त-शास्त्र भी अति परोक्ष वृत्ति के शब्दों की प्रकृति-प्रत्यय के अनुसार अन्वयान किया। इसी प्रकार शिक्षा-कल्प और छन्दः शास्त्र तथा ज्योति शास्त्र की प्रवृत्ति वेद-मूलक तथा वेद तक पहुंचाने के लिए सोपान रूप में निर्धारित की गयी।

इसके अतिरिक्त अथवा अवान्तर भूत गणित-साहित्य-रसायन-भूत-रस-क्षत्र-राजनीति-अर्थ-आयुर्वेद आदि विद्यायें भी वेद के आश्रित अथवा वेद को ही समझने के लिए बनीं।

ऋषियों का मत है कि समस्त विद्यायें वेदों का ही उपव्याख्यान मात्र हैं वे सभी विद्यायें सूत्र रूप में कह दीं गयीं हैं जिनका उपव्याख्यान इस दुर्गम्य शास्त्रों में किया गया है। सभी शास्त्र अपनी गरिमा का वर्णन करते हुए प्रतिपादन करते हैं। कि यदि वेद को समझना है तो हमारे शास्त्र को समझो। योग-विद्या और वेदान्त विद्या तो वेद-चिन्तन का ही चरण लक्ष्य है।

वेदों की व्याख्या का प्रारम्भ हम ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों और आख्यक-ग्रन्थों के माध्यम से पाते हैं। इस समय उपलब्ध सामग्री में यास्क का निरुक्त सबसे अधिक आदरणीय समझा जाता है। यास्क ने बहुत से मंत्रों की व्याख्या की और मंत्र-व्याख्या का प्रकार समझाया, साथ ही वेदों देव-वाद को सुरुचि और भव्यतापूर्ण ढंग से समझने के कारण प्राचीन शास्त्रों में निरुक्त को देव-शास्त्र भी कहा जाने लगा। महर्षि यास्क ने अपने से पूर्ववर्ती गार्ग्य, गालव, वाष्पयिणि कौत्स, शाकपणि आदि व्याख्याकारों का नाम बड़ी श्रद्धा से अपने शास्त्र में अन्वित किया है।

कहा जाता है कि रावण ने भी वेद -भाष्य किये थे पर यह सामग्री अब तक उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध भाष्यकारों में स्कन्द स्वामी का नाम पहले आता है।

इन्होंने लगभग विक्रम के ३८७ वर्ष उपराना ऋग्वेद पर भाष्य लिखा था । यह यह भाष्य कुछ खण्डित रूप में अब भी मिलता है । आचार्य सायण ने स्कन्द स्वामी का नाम कहीं-कहीं अपने भाष्य-ग्रन्थों में दिया है ।

स्कन्दस्वामी के अनन्तर वेंकट माधव, आनन्दनीर्यं, महधिर, डव्वट, हलायुध देवस्वामी और सायण आदि भाष्यकार हुए हैं । इस शताब्दी में पिछली परम्परा की मान्यता रखते हुए ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद का पूरा तथा ऋग्वेद के सातवें मण्डल के कुछ सूत्रों तक भाष्य-रचना की ।

सायणाचार्य—प्राचीन भाष्यकारों में सायण का स्थान बहुत ऊँचा है । १४ वीं शताब्दी में विजयनगर महाराज बुक्क तथा हरिहर के राज्यकाल में प्रधानमंत्री रहे । राजनीति में भारी उथल-पुथल के रहने पर भी इसी भाष्य-रचना का कार्य अबाध रूप से चलता रहा । यह बड़े शौर्य और श्रेय का कार्य था । चारों वेदों और ब्राह्मणों पर इनके भाष्य ग्रन्थ के उपलब्ध हैं ही, इनके अतिरिक्त भी इन्होंने बहुत से ग्रन्थों की रचनायें की हैं ।

ऋग्वेद पर इनका भाष्य बहुत ही गहन, बुद्धि-ग्राह्य एवं प्रामाणिक आधारों पर आधारित है । व्याकरण निरुक्त तथा प्राचीन परम्परा के ग्रन्थों साक्ष्य में इन्होंने अपने भाष्य को बहुत ही सुबोध तथा भारतीय परम्परा के अनुरूप ही किया है । धातुज अर्थों की निष्पत्ति के साथ कर्म काण्ड को सायण बहुत महत्व देते हैं । सायण में पूर्ण आचार्यत्व की सृष्टि है । वे एक ही शब्द की प्रकरणानुसार सूत्र और देवता का ध्यान रखते हुए अनेक अर्थों की स्वीकृति प्रदान करते हैं और पौराणिक आख्यानों मूल रूप का वेदों में प्रतिपादन करते हैं । आश्चर्य है कि वेदों में इतिहास की मान्यता को स्वीकार करते हुए भी वेदों को अपौरुषेय मानते हैं ।

आचार्य सायण ने प्राचीन भाष्यकारों की परम्परा की रक्षा की तथा आगे आने वाले भाष्यकारों के लिए प्रेरणा के स्रोत बने ।

सायण के अनन्तर वेद भाष्यकारों में सर्वोच्च नाम ऋषि दयानन्द का आता है । इनका जन्म टंकारा गुजरात में १८८१ वि० में हुआ था । बाल्यावस्था में ही सच्चे शिव की गवेषणा में निकल पड़े । निष्ठावान् और व्रत में दृढ़ रहने के कारण विविध गुरुओं से विद्याओं में प्रगल्भता प्राप्त की । अन्त में मधुपुरी (मथुरा) में गुरु विरजानन्द से दीक्षा लेकर वेदों के प्रचार में लग गये ।

ऋषि दयानन्द ने ऋषियों की प्रामाणिक आधार मानते हुए अवान्तर के भाष्य-कारों की आलोचना की । अपनी ऋषित्व बुद्धि से मंत्रों की वैज्ञानिक और अध्यात्मिक भावना से सुबोध भाषा में व्याख्या प्रस्तुत की ।

ऋषि दयानन्द के भाष्य की विशेषता—

(१) वेदों की अनादिता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया ।

(२) ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा मीमांसा में जो विषय सूक्ष्म रूप से थे उन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया ।

- (३) वेदों में लौकिक इतिहास का अभाव सिद्ध किया ।
- (४) वेदों के शब्द यौगिक और योगरूढ़ हैं, रूढ़ नहीं, यही आधार-शिला है ।
- (५) उपनिषद, सूत्र ग्रन्थों के उदाहरण तथा उपपत्ति से सिद्ध किया कि अग्नि आदि शब्द परमात्मा के लिए प्रयुक्त हुए हैं ।
- (६) अलङ्कार सामग्री के द्वारा अर्थों का स्पष्टीकरण किया — वरुण के समान उपदेशक, मित्र के समान अध्यापक, उषा के समान कान्तिप्रद महिला आदि होनी चाहिये ।
- (७) वेदार्थ लौकिक-उपयोग में लाकर अनेक प्रकार के व्यवहार की शिक्षा का सूत्रपात किया ।
- (८) वैदिक उपासना के प्रचार से पुनः एकेश्वरवाद की स्थापना तथा अभयता का उपपादन किया ।
- (९) वैज्ञानिक-चिन्तन के लिए एक बड़ी देन ।
- (१०) यास्क के अनन्तर देवताओं के स्वरूप एवं प्रभाव की स्पष्ट व्याख्या तथा आलोचना की ।
- (११) व्याकरण-प्रक्रिया एवं निर्वाचन के सम्मान की रक्षा की ।
- (१२) मंत्र, देवता, छन्द आदि की स्पष्ट व्याख्या करके वेदों के प्रति आस्था उत्पन्न करायी ।
- (१३) स्वरो की महत्ता की स्थापन करके मन्त्रार्थ करने में स्वरो के योगदान को कृतज्ञता के साथ स्वीकार किया ।
- (१४) 'ऋषयों मन्त्रद्रष्टारः' का प्रचार करके ऋषियों को मन्त्र कर्तव्य से प्रथक किया ।
- (१५) भाषा-विज्ञान के लिए नवीन आधार प्रस्तुत किया ।
- (१६) शब्द के भीतर शब्दात्मा को देखने में अपूर्व ऋषित्व का परिचय दिया ।
- (१७) भाष्य करते हुए शब्दों के धातुज-अर्थ की मीमांसा की ।
- (१८) सर्व सत्य-विद्याओं का मूल स्रोत वेदों को ही स्वीकार किया ।
- (१९) अग्नि वरुण, इन्द्र, आदि शब्दों को पारिभाषिक-शब्द मानकर प्रसंगानुसार अर्थ-मीमांसा की है । अध्यात्म सम्बन्धी अर्थों की जिज्ञासा और मीमांसा करते हुए उनके भौतिक अर्थ-विकास पर भी ध्यान दिया गया है । प्रकाश, आकर्षण, दाहकत्व, अन्धकार (अज्ञान) के विनाशक रूप में अग्नि को प्रतीक रूप से स्वीकार किया गया है । इसी प्रकार ऐश्वर्य, बीज, भेदक, मेघ-विदारक, आवरण-का विदारण करने वाला, तम को निवारण करने वाला, मेघ रूप में जल को घनत्व रूप देने वाला, गौ (इन्द्रिय, वाणी, जल, किरण, बीणा, गौ, वाण, वेणु आदि) में प्रखरता और निखार लाने वाला आदि अर्थ माना है । इसी प्रकार गुण दृष्टि से अन्य देवताओं की प्रक्रिया के अनुसार अर्थ किया है ।

- (२०) वेद में पुनरुक्त आदि उपस्थित होने पर व्युत्पत्ति के साथ उनकी काव्यगत सौन्दर्य दिखाते हुए अर्थ-चमत्कार दिखाया गया है साथ ही यह बताया गया है कि अनेकार्थक-प्रक्रिया के साथ अलंकृत रूप में प्रयुक्त हुए हैं ।
- (२१) मंत्रों के पद पाठ की सुलभ योजना तथा उपयुक्त अन्वय के साथ अर्थ-निर्धारण किया गया है ।
- (२२) भारतीय-परम्परा एवं चिन्तन की पूर्ण रक्षा तथा गरिमा दी ।
- (२३) वेद को सरल-सुगमार्थ करके सर्वसाधारण के लिए उपयुक्त और अनिवार्य बना दिया ।
- (२४) दैहिक, भौतिक राजनैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, आदि सभी प्रकार की उन्नति और विकास के लिए वेद को ही सर्वाङ्गीण उपाय सिद्ध किया और तर्क, प्रमाण तथा युक्तियों से सिद्ध कर दिया कि वेद अपौरुषेय-रचना है जो कि सृष्टि के आदि में ही मनुष्यों के विकास और कल्याण के लिए ऋषियों के माध्यम से ईश्वर की ओर से प्राप्त हुई है ।

पाश्चात्य भाष्यकार

वैज्ञानिक युग के इस प्रखर प्रकाश में वेदों का प्रचार भी बहुत हुआ । रेल, तार, विमान तथा अन्य-अन्य देशों के साथ व्यवसाय के माध्यम से भाषाओं और विविध साहित्य-ग्रन्थों की आलोचना प्रारम्भ हुई । वेदों के बारे में जर्मन, फ्रांस, रूस और इंग्लैंड आदि देशों में महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए । वेदों के प्रकाशन तथा प्रचार में पाश्चात्य विद्वानों का बहुत बड़ा सहयोग रहा है ।

कोल ब्रुक ने १८०५ ई० में 'एशियाटिक रिसर्च' में वेदों पर विवचनात्मक लेख लिखे । उनके लेखों का पाश्चात्य जगत् में बहुत प्रभाव पड़ा ।

एडोल्फ राँथ ने इससे प्रोत्साहित होकर वेदों के बारे में अपनी गवेषणा प्रारम्भ की इन्होंने सायण आदि भाष्यकारों की व्याख्या को अग्राह्य ठहराया । इनका कहना था कि सायण आदि भारतीय भाष्यकार केवल परम्परावादी हैं जबकि हमारे पास भाषा विज्ञान का उपकरण उपस्थित है । उन्होंने एक ही शब्द को विविध स्थानों पर खोज करके उचित अर्थ की मीमांसा पर बल दिया । साथ ही विश्व की अन्य भाषाओं में वह शब्द कहां पर किस अर्थ में प्रयुक्त है, यह देखना आवश्यक माना । इस प्रकार सूक्ष्म एवं तुलनात्मक अध्ययन की प्रक्रिया का श्रेय राँथ को प्राप्त है । इन्होंने वेद-अवेस्ता में शब्द-साम्य के साथ अर्थ की मीमांसा की और 'सेंट पीटर्स वर्ग' नाम से संस्कृत जर्मन कोष की रचना की । इस ग्रन्थ को इस युग में बहुत प्रशंसा प्राप्त है ।

राँथ तथा उनके शिष्यों ने इस प्रकार अनेक प्रकार से वैदिक भाषा का अनु-मन्थन करके 'भाषा-विज्ञान' को जन्म दिया । इस प्रकार भाषा-विज्ञान ने भी दिक मन्त्रार्थ के विश्लेषण में बड़ी सहायता दी ।

वैदिक-साहित्य के आलोचना में मैक्समूलर का भी बड़ा योगदान रहा है। सायण भाष्य का शुद्ध रूप में प्रकाशन करके इन्होंने बड़ा श्रेय अर्जित किया है। वे स्वयं अपने को मोक्षमूलर आक्सफोर्ड नगर को गोतीर्थनगर कहते और लिखते थे। जर्मन देश को इन्होंने शर्मण्य देश लिखा है। इस प्रकार संस्कृत भाषा और भारत के प्रति इनकी श्रद्धा जानी जा सकती है।

इस प्रकार आफ्रेम्ट, प्रो० हाग, किडनर, स्टेजलर, हिलब्रांट, ह्विटने आदि विद्वानों ने पश्चिम में वेद का प्रचार प्रसार का कार्य किया।

अंग्रेज विद्वान् विलसन ने सायण भाष्य को प्रमाण में मानकर ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् ग्रासमान ने ऋग्वेद का जर्मन में अनुवाद किया उनका अनुवाद काव्यमय तथा आकर्षक है। इन्होंने एक 'वैदिक-कोष' का भी निर्माण किया जिसकी बड़ी प्रशस्ति मिली। लुडविग ने भी सायण भाष्य को प्रमाण में मानकर ऋग्वेद का भाष्य जर्मन भाषा में प्रकाशित कराया। श्री ग्रिफिथ ने भी ऋग्वेद का अंग्रेजी में अनुवाद किया। इस अनुवाद को भी बड़ी सराहना मिली। ओल्डेन वर्ग ने ऋग्वेद की व्याख्या की, जो दो भागों में बर्लिन से प्रकाशित हुई। ऋग्वेद के छन्दों पर भी इनकी विवेचन-पुस्तक उपलब्ध है।

इनके अतिरिक्त वेवर, आर्नाल्ड, श्रोदर, क्लायर, कीथ, स्टेवंसन, वनॅल, विटरनित्स, ब्लूमफील्ड, मैकडानल, पीटर्सन आदि विद्वानों ने भी वैदिक साहित्य के प्रचार में अपना महान् योगदान किया है। वेदों के प्रचार में जनरल ओटो का भी महान् योगदान माना जाता है। हम इन महान् मनीषी साहित्यकारों के प्रति अपनी प्रशंसा तथा कृतज्ञता प्रकट करते

(५) वेदों के देवता

(१) इन्द्र—प्रभाव और क्षमता की दृष्टि से इन्द्र सर्वोपरि देवता माने जाते हैं। सर्वातिशायी विष्णु को भी 'उपेन्द्र' अर्थात् इन्द्र का छोटा भाई कहकर सराहा गया है। इन्द्र देवताओं के अधिराज हैं। पृथ्वी की रक्षा का भी भार इन्द्र पर ही है जो अपने मरुद्रण के सहारे युद्धों में रण-कौशल दिखाते हुए विजय प्राप्त करते हैं। मरुद्रण की सराहना 'इन्द्र मरुत्वान्' कह कर की जाती है।

आकार, आहार, वेष-भूषा, आयुध परिवार आदि की दृष्टि से अन्य देवताओं की अपेक्षा इन्द्र मानव-समाज के अति सन्निकट हैं। इन्द्र का सुन्दर वर्ण है। सुन्दर नासिका और चिबुक होने से इनको 'सुशिप्र' या 'शिप्रि' कहा गया है। मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं। सुन्दर ग्रीवा, चौड़ी छाती, भरे हुए उभरे शरीर, समाङ्ग,

विशाल-नयन तथा देदीप्यमान कलेवर के कारण इन्द्र को पृथक् पहचाना जा सकता है ।

इन्द्र ऐश्वर्य और ज्योति के देवता है । विद्युत् की गड़गड़ाट में इन्द्र के बल-वैभव को जाना जा सकता है । रण में दुर्मद-कार्य करने से इन्हें जिष्णु और प्रम-विष्णु माना गया है । इन्द्र सोम-पान में अपनी तुलना नहीं रखने अतएव इन्हें 'सोमया' कहते हैं । सर्वदा ही अपने वज्र सदृश हस्त में वज्र धारण करते हैं, इस कारण इन्हें वज्रबाहु और वज्रहस्त कहा गया है । वृत्र का वध करने से इनका प्रसिद्ध नाम वृत्रहा है । शक्ति का स्वामी होने से इन्हें शचीपति और शक्र तथा शतक्रतु कहा गया है । अरि-नगरियों का विदारण करने से इनको पुरभिन् अथवा पुरन्दर कहते हैं ।

इन्द्र का रथ स्वर्णिम है । इस रथ का निर्माण ऋभुओं ने किया था । त्वष्टा ने इन्द्र के लिये सहस्र भृष्टि (अनेकों नोक वाले) वज्रका निर्माण किया । इन्द्र के घोड़े हरे रंग के हैं अतः इन्हें 'हरी' कहा गया है । अग्नि और पूषा को इन्द्र का भाई कहा गया है । वरुण, विष्णु, सोम भी इन्द्र के मित्रों और सहायकों में आते हैं । इन्द्र अथक युद्धाभ्यासी हैं । एक बार पणि नामक असुरों ने गायें चुरा लीं तब इन्द्र ने देवशुनी सरमा के द्वारा इसका पता लगा लिया और गायों का उद्धार किया ।

वास्तव में ऊपर कही गयी विशेषतायें इन्द्र के प्राकृतिक और आध्यात्मिक रूप को अधिक चित्रित करती हैं । पाणिनि ने कहा है कि इन्द्रियों का अभिमानी देव होने से इन्द्र को इन्द्रत्व की श्री मिली है । मेघ का विदारण करके स्की हुई जल धाराओं (गायों) का लाना ही इन्द्र द्वारा वृत्र-वध है क्योंकि वृत्र उसे कहते हैं जो वरण—आवरण करे । इसी कारण मेघ अथवा अन्धकार अथवा अज्ञान को आवरक वृत्र कहा गया है और वृत्रहा इन्द्र इनका विदारण करके सूर्य को ज्योतिष्मान् तथा आत्मा को योग-ज-समाधि से उमंगित करते हैं गौ उदक, किरण, पृथ्वी वाणी आदि का पर्याय है और इस प्रकार सर्वत्र इन्द्र का इन्द्रत्व प्रदर्शित हो जाता है ।

इन्द्र ही ऊष्मा उत्पन्न करके वृष्टि करते हैं अतः वृष्टि के देवता इन्द्र हैं । किसानों के पूज्य इन्द्र हैं क्योंकि पृथ्वी में उत्पन्न करके इन्द्र ही बोये गए बीजों को प्रस्फुटित तथा अंकुरित करते हैं । चन्द्रमा में सूर्य-रश्मि का स्थापन इन्द्र के ही द्वारा होता है । रण-भूमि के देवता भी इन्द्र ही माने जाते हैं । इस प्रकार ऋग्वेद के राष्ट्र-देवता इन्द्र हैं । इन्द्र के सम्मान तथा स्तुतियों में ऋषियों ने सर्वाधिक श्रम किया है । (विशेष अध्ययन के लिए ऋग्वेद में 'काव्य-तत्त्व' का देवतावाद—अध्याय ६ देखें)

(२) अग्नि—ऋग्वेद में अग्नि ही इन्द्र के अनन्तर सर्वाधिक प्रभावी देवता हैं । अग्नि, सोम तथा सरस्वती इन तीनों देवताओं को देवता रूप में कम पर भौतिक रूप में अधिक जाना जाता है । अग्नि का अभिनन्दन बड़ा उत्कृष्ट तथा कोमल है । कहीं-कहीं भयावह रूप में भी इनका वर्णन मिलता है । इन्हें कवित्रतु, कवि, सत्यधर्मा, यज्ञ

का देव, रत्नधा, ईड्य, देवों तक हवि को ले जाने वाला, देव-दूत, अङ्गिरा आदि कहा गया है। देवों को भी 'अग्नि-मुख' कहते हैं क्योंकि देवता लोग अग्नि को ही मुख बनाकर हव्य ग्रहण करते हैं। ज्वाला-समूह ही इनके केश हैं। इनकी छोटी दाढ़ी का भी वर्णन मिलता है। इनकी दाढ़ बहुत ही तीक्ष्ण है। दाँत सुनहरे हैं अपने देदीप्यमान शिर के कारण वे सभी ओर चमकते हैं। इन्हें घृतपृष्ठ कहा जाता है।

अग्नि की तुलना अनेकों पक्षियों और पशुओं से दी गयी है। जिस प्रकार पक्षी वृक्ष पर अपना नीड बनाकर रहता है उसी प्रकार अग्नि भी काष्ठ में छिपा रहता है। यह आकाश का श्येन (बाज) है। यह जल में क्रीडा करने वाला हंस है। यह एक दहाड़ता हुआ वृषभ है। यह उत्पन्न होता हुआ गौ का वत्स-सा प्यारा-प्यारा लगता है। यह देवों को यज्ञ तक लाने वाला अश्व है।

रात में चमकने से इनको चित्रभानु, समस्त ज्ञान से युक्त होने के कारण जातवेदा तथा सभी प्राणियों पर कृपा करने के कारण 'वैश्वानर' कहा जाता है। इनका शरीर ज्योतिमान है और इन्हें पुरोहित भी माना जाता है। पर्वतीय जंगलों को दग्ध करके स्वच्छ कर देने के कारण इनको पर्वतों का नायित कहा जाता है। बहुत साहस से ही अग्नि का प्रादुर्भाव किया जाता है अतः इन्हें 'सहसः सूनुः' कहा गया है। अग्नि देवता मानव के अति निकट हैं अतः इन्हें गृहपति और अतिथि कहा गया है।

सर्वदा युवा रहने के कारण अग्नि को यविष्ठय, सदा पवित्र होने से मेध्य, ऋषियों से प्रशंसा पाते रहने के कारण इन्हें कवि-प्रशस्त, गृहस्थ का परम हितैषी होने के कारण 'दमूना' कहा गया है। अग्नि को जलीय पुत्र होने से अपां नपात् कहा गया है। अवेस्ता में भी इन्हें 'अयॉ नेपो' कहा गया है। अग्नि आर्यों का पवित्र देव है। कोई अनुष्ठान अग्नि के बिना नहीं हो सकता। देवों तक हव्य ले जाने के कारण इनको 'हव्य वाहन' कहा गया है। सभी नर इनकी प्रशंसा करते हैं अतः इनका नाम नाराशंस भी है। इन्हें घृत जिह्व भी कहा जाता है क्योंकि घृत इनको बहुत प्रिय है।

यह उत्पन्न होते ही अपने उत्पादक (काष्ठ) को खा जाता है। इनकी पत्नी का नाम स्वाहा है। इन्हें धूम केतु भी कहा जाता है क्योंकि धुआँ ही इनकी पताका है। इसी कारण इन्हें कृष्णवर्त्ता भी कहा गया है।

यद्यपि अग्नि का जन्म नित्य होता है इस कारण वह नित्य ही शिशु है पर यह बहुत प्राचीन है क्योंकि आदि ऋषियों के सामने भी प्रकट हो चुका है। अग्नि एक स्वयम्भू देवता हैं। मातरिश्वा देव इन्हें धरणी पर लाने में सफल हुए। उदित होते हुए सूर्य के समान प्रतिदिन प्रातःकाल में अग्नि का जन्म होता है। अग्नि का विविध चरित्र है। देवों ने इनको विविध रूप दिया है। इनका प्रकाश विविध है। ये त्रिशिरा कहे जाते हैं। इनका तीन शरीर और तीन स्थान है। पृथ्वी

पर अग्नि रूप से, आकाश में विद्युत् रूप से और द्युलोक में सूर्य रूप से अग्नि ही प्रकाशित हैं। यही भारतीय मित्यवाद की आधार शिला भी है। इन्द्र यदि क्षत्र-बल के प्रतीक हैं तो अग्नि हमारे ब्रह्म-बल का प्रतिनिधित्व करते हैं। अग्नि का एक नाम ऋग्याद भी है जिससे दूर रहने की शिक्षा दी गयी है क्योंकि यह प्रेत-भक्षक है। अग्नि को तपुर्मूर्धा भी कहते हैं क्योंकि इनकी मूर्धा तपती रहती है।

ईरानी बन्धु भी अग्नि की पूजा में आदर-भावना रखते हैं अग्नि के लिये सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, महान् उपकारी और प्रधान देव कहते हैं। ग्रीक, इटली तथा यूरोप के अन्य भागों में भी अग्नि के प्रति विशेष महत्त्व तथा आदर-भावना है। अग्नि को लैटिन में इग्निस्, स्लोवाक्. में ओग्नि कहा गया है। 'अग्निः कस्मात् न कोन्पयति इति' ऐसा कहकर आचार्य स्थौलाष्टीवि ने अग्नि के अनाद्र रूप को दर्शाया है। 'कून्यी शब्दे, उन्दे च' जो गीला करे और ध्वनि करे यही जलीय रूप है पर अग्नि-धर्म इससे विपरीत है। वह गीला नहीं करता—शोषण करता है तथा जलीय शक्तियों की भांति गर्जन भी नहीं करता इसी वृषाकपिः=वर्षणशोषणयोः कर्ता कहा गया है। कपिः कं जलं पिबति=शोषयिता।

(३) सूर्य—सूर्य-मण्डल के अभिमान्नी देव सूर्य हैं। समस्त ग्रहों के चक्रवर्ती यही हैं। ये सौर मण्डल के अधिष्ठाता तथा ऋषियों के मन को कान्तिमान् बनाने वाले हैं। सूर्य सदा प्राणियों के उपकार में दत्तचित्त रहते हैं। देव कोटि में इनका रूप बहुत शुभ्र है। सूर्य के चक्षु का वर्णन अनेक बार ऋग्वेद में आया है पर सूर्य को ही मित्र और वरुण का नेत्र कहा गया है। कहीं-कहीं अग्नि का भी नेत्र सूर्य को कहा गया है। सूर्य भगवान् को देवगण भी अपना नेत्र मानते हैं।

सूर्य दूरदर्शी है, सर्वदर्शी है। समस्त भुवन के गुप्तचर यही हैं। जगत् का कोई रहस्य इनसे छिपा हुआ नहीं है। सूर्य सभी प्राणियों को अपनी दृष्टि में रखते हैं। मनुष्यों के यही कर्म-साक्षी हैं। मनुष्यों को अशुभ से हटाकर शुभ की ओर चलने के लिये सदा सावधान करते रहते हैं। सबके संरक्षक तथा शुभ-चिन्तक हैं। समस्त चर-अचर प्राणियों की सूर्य ही आत्मा है।

सूर्य के रथ को एक घोड़ा जोतता है जिसे 'ऐतश' कहा गया है। सूर्य से सात-अश्वों का भी वर्णन आता है जिन्हें हरी कहा गया है। उषा देवियां सूर्य को जन्म देती हैं। उनकी गोद में बाल-सूर्य दमकते हैं। उषा को सूर्य की पत्नी कहा गया है। सूर्य की मां का नाम अदिति होने से इन्हें आदित्य कहा गया है। इनके पिता द्यौः हैं। देवों ने सूर्य को सागर में छिपा लिया था फिर उन्होंने ही विश्व के कल्याण के लिए सूर्य को प्रकट किया। देवगण ही सूर्य को आकाश में स्थापित करते हैं।

सूर्य को यह नियमित खग के रूप में चित्रित किया गया है जो विश्व की यात्रा पर निकल पड़ा है। सूर्य को श्वेत (बाज), वृषभ अथवा श्वेत अश्व भी कहा

गया है जिसे उषा खींचकर ले आती है। यह एक मूल्यवान् मणि है जो कि आकाश में जड़ दिया गया है। यह एक देदीप्यमान रथ है अथवा एक आयुध है जिसे मित्र तथा वरुण वर्षा तथा मेघों से छिपाते रहते हैं। यह उनका 'पवि' है। कई स्थलों पर सूर्य के चक्र रूप में वर्णन आया है पर कहीं-कहीं सूर्य को ही चक्र कहा गया है।

सूर्य देवता तथा मानव दोनों के लिए चमकता है। यह अन्धकार को चर्मवत् लपेट लेता है। सूर्य की किरणें अन्धकार को समेट कर सागर में फेंक देती हैं। यह दिवस का माप-साधन है और प्राणियों के आयुष्य को बढ़ाता है। यह रोग, महामारी तथा दुष्कृत्यों का विनाश करता है। सभी प्राणियों का अवलम्बन सूर्य ही है। वही सब का आधार और सहारा है। इसी कारण सूर्य को विश्व-कर्मा कहा गया है। अपनी श्रेष्ठता और प्रभाव के कारण सूर्य देवताओं के पुरोहित कहे गए हैं। प्राण-दाता होने के कारण सूर्य को असूर्य कहा गया है। उदय होते ही सूर्य मानवों को निष्पाप कर्म करने के लिए तल्ललीन करते हैं और मित्र, वरुण तथा अन्य देवताओं को मानवीय कल्याण के लिए प्रेरित करते हैं। सूर्य के अश्व बहुत तीव्र और फुर्तिले हैं। जिन्दावस्था में सूर्य को अहुरामज्दा का नेत्र कहा गया है।

(४) वरुण—इंद्र के अनन्तर अन्य देवों में वरुण का स्थान बहुत ऊँचा है। वरुण के सम्बन्ध में प्रताप, ऐश्वर्य एवं स्तुतियाँ महत्वपूर्ण हैं। वरुण के हस्त, चरण आदि का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है। हाथ घुमाना, चलना, रथ हांकना, सोम-पान करना, भोजन करना, देखना आदि का वर्णन मानव—समीपता की दृष्टि से सुन्दर तथा अभिव्यक्त है। इनकी आंख सूर्य है। मस्तक पर मुकुट धारण करते हैं। यज्ञ में बिछे हुए आसन पर आसीन होते हैं। इनका रथ सूर्य की भांति चका-चौंध मचा देता है। स्फूर्ति युक्त सधे हुए घोड़े उसे खींचते हैं। स्वर्गीय पितृ-गण सदा वरुण की देख-रेख करते हैं समस्त प्राणियों का निरीक्षण-परीक्षण वरुण करते रहते हैं।

वरुण के गुप्तचर सदैव विचरण करते रहते हैं। स्वर्गिम पंख वाले सूर्य सदा सावधान होकर वरुण का दूतत्व सम्पादन करते हैं। वरुण क्षत्र-धर्म के पालक तथा क्षत्र-श्री से मंडित हैं। वरुण की माया—शक्ति से सारा विश्व चकित और मोहित रहता है। शारीरिक, भौतिक तथा पृथ्वी की नियम बहता वरुण के कारण है। समस्त विधि-विधान के पूति में वरुण ही सम्राट हैं। वरुण के ही नियमों की व्यवस्था में अमर तथा मर्त्य में अथवा स्वर्ग तथा पृथ्वी में भेद है। सूर्य के गमन तथा व्यवस्था के लिए विशाल मार्ग का निर्माण इन्होंने ही किया है।

वातावरण में पवन का उच्छ्वास वरुण का ही उच्छ्वास है। चमकते तारे तथा आल्लादक चन्द्रमा वरुण की ही देन है। समग्र प्रकाश-पुंज की व्यवस्था वरुण

ने ही की है। वरुण रात्रि के अभिमानी देव हैं और जल-राशि का भी नियंत्रण यही करते हैं। सारी व्यवस्थाओं को धारण तथा पोषण करने के कारण इनको धृत व्रत कहा गया है। आकाश को अरेणु, शीतल वरुण ही बनाते हैं समस्त नदियों को, आकाशीय जल-स्रोत को तथा गहरे सागर को वरुण ही व्यवस्थित रखते हैं।

देवगण की बड़े आदर के साथ वरुण की व्यवस्था का पालन करते हैं। वरुण समस्त ब्रह्माण्ड के प्रभावी नायक हैं। वरुण के साम्राज्य एवं प्रभाव की कोई सीमा नहीं है। सबका पूरा ज्ञान वरुण को है उनकी अज्ञानता में कोई पलक भी नहीं मार सकता।

पाप अथवा बुरे आचरण से वरुण कुपित हो जाते हैं। उनके आदेश का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। वरुण के पाश बहुत प्रसिद्ध हैं इनसे वे अपराधियों को बांध लेते हैं। वरुण उन लोगों पर कृपा रखते हैं जो अपने आप अपने किये पर शोक, पछतावा अथवा प्रायश्चित्त करते हैं।

वरुण अपने स्रोत के प्रति मैत्री भाव रखते हैं। वरुण सदा वरदान देते हुए पृथ्वी पर प्रशासन करते हैं। अवेस्ता में भी वरुण की चर्चा मिलती है। ग्रीक में भी वरुण का वर्णन मिलता है।

(५) यम—मृत प्राणियों के प्रधान यम हैं। अंगिरा की यम के साथ मैत्री है। अंगिरा—पितरों के साथ सोम-पान करने के लिए यज्ञ भूमि में पदार्पण करते हैं। यमी यम की भागिनी है। १०—१० में यम—यमी का परस्पर संलाप दिखाया गया है। यम विवस्वान् के पुत्र हैं। इनकी मां का नाम सरण्यु है। जो त्वष्टा की पुत्री है। यमी ने यम को मरणधर्मा कहा है। यम का वरुण और बृहस्पति से भी मैत्री—सम्बन्ध है। अग्नि के साथ यम की पुरानी मैत्री है। अग्नि को यम का पुरोहित भी कहा गया है। मृत व्यक्ति का सारा क्रिया—कलाप अग्नि से ही जुड़ा हुआ है। यम को मृत्यु का देवता माना गया है। पितरों से इनका सदा साहचर्य रहता है।

यम आकाश के दूर छोर पर रहते हैं। संगीत की मधुर-ध्वनि वंशी-रव इनको बहुत प्रिय है। यम के लिए घृत, हव्य, सोम आदि सामग्री का निष्पादन किया जाता है। इनसे प्रार्थना की जाती है कि वे हमारे लिए दीर्घ-जीवन दें तथा देवों तक हमारी अर्चना पहुंचा दें। जीवन में शान्ति तथा आनन्द यम की कृपा से ही प्राप्त होता है।

यम ही उस मार्ग के ज्ञाता से जिस मार्ग से हमारे पूर्व पितर गए तथा जिस मार्ग से अन्य जाने वाले जायेंगे। जिस प्रकार वरुण का पाश प्रसिद्ध है उसी प्रकार यम की शृंखला है। उलूक तथा कपोत यम के दूत हैं पर चार आखों वाले, लम्बी नाक वाले मटमैले रंग के (शबल) दो कुत्ते इनके विशेष दूत हैं। इन कुत्तों की मां

का नाम सरमा है। अतः ये सारमेय कहलाते हैं। इनकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म है। मानव प्राणियों की गतिविधियों पर इनकी तीक्ष्ण दृष्टि रहती है। यम के साथ आमोद-प्रमोद में रहने वाले पितरों तक ये मृतक को पहुंचा देते हैं। सूर्य के सन्दर्शन में अधिक आपुष्य की प्राप्ति के लिए इनकी मनौति की जाती है।

मानव के प्रथम पिता यम हैं जिन्होंने सर्व प्रथम मरणावस्था का दर्शन किया और मृत्यु के देवता बने। पृथ्वी से वियुक्त प्राणियों के यम ही अधिष्ठाता तथा व्यवस्थापक हैं। यम और यमी मानव जाति के आदि पूज्य हैं। यहीं से मानव पीढ़ी का श्री गणेश हुआ। अवेस्ता में भी इस प्रकार के बहुत से सम्वाद यम के विषय में आये हैं। यिमा तथा यिमेह को पृथ्वी का सम्राट कहा गया है। ऋग्वेद में भी यम को स्वर्ग का अधिदेवता माना गया है।

यम पुष्पात्मा लोगों को प्रकाश वाले स्थान में भेजते हैं। पितरों की पुत्रों द्वारा सेवा कराते हैं। इन पितरों की कई श्रेणियां हैं—अंगिरा, विरूप, दशग्व, नक्व, अथर्वा, भृगु, वसिष्ठ आदि। कुछ विद्वानों का मत है कि प्राण शक्ति का अधिष्ठाता यम है तथा कुछ लोग दिन-रात के जोड़े को यम-यमी बतलाते हैं क्योंकि अयुष्य का नियमन इन्हीं के हाथ में है।

(६) रुद्र—एक ही देव को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। 'एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।' रुद्र स्वास्थ्य के देवता हैं। इस कारण 'रुद्र' शब्द का अनेक प्रकार से अर्थ निकलता है। 'रु शब्दे' रुतं शब्दं शब्दाश्रयं ज्ञानं राति ददाति', रुद्र ज्ञान के अधिष्ठाता हैं, अतः सबके गुरु हैं। वह एक अच्छे स्रोता, प्रकाशक तथा सुन्दर देव हैं। रुद्र दुःख के विनाशक हैं (रुत् दुःखं द्रावयति)। रुद्र शत्रुओं को रुलाते हैं अतः उनका रुद्र नाम है (रोदयिता)।

रुद्र के माथे पर जटा-जूट है। रंग बादामी और आकार चमकीला है। वे प्रसिद्ध धनुर्धर हैं कभी-कभी वज्र भी धारण करते हैं। इनके आयुध अत्यन्त तीक्ष्ण और प्रभाव कारी हैं। रुद्र यद्यपि बहुत उग्र हैं पर शुचि और शक्ति भी कहे गए हैं। इनका हाथ शान्तिदायक, शीतल और दयालु हैं। इनका आग्नेय रूप रुद्र है तो जलीय रूप शिव है। इनके ओष्ठ सुन्दर बताये गए हैं। पृश्नि (पृथ्वी) के पुत्र मरुद्गण इनके पावन-पुत्र हैं। रुद्रों का अनन्तत्व तथा शक्ति का एकत्व अनेक प्रकार से समझाया गया है।

जल-अन्न, ओषधि-वनस्पति, वस्त्र-आच्छादन, शयन—आवरण आदि में नाना प्रकार के दोष हैं। रुद्र की कृपा से ही उन दोषों तथा दुःखों से बचाव हो सकता है। रुद्र अच्छे भिषक् तथा भैषज्य विद्या के गुरु हैं। रुद्र को काल अथवा महाकाल भी कहा गया है। रुद्र नीलग्रीव, शान्त शरीर तथा इषु-हस्त रहते हैं। यक्ष्मा आदि रोगों से प्राणियों को बचाते हैं। रुद्र का वर्ण कहीं-कहीं ताम्र—अरुण और कहीं पर बम्बू बताया गया है। ऋषि-मुनि बताते हैं कि क्योंकि रुद्र शिवरूप से

जगत् का भरण करते हैं, अतः एव इन्हें ब्रभु अथवा 'भूरि' कहा गया है। रुद्र को कपर्दी, युवा और सतत सावधान कहा गया है। रुद्र को प्रभु, मंत्री, वणिक्, स्थपति (राज), स्तेनपति (गुप्तचर), गिरिचर, सभापति और उष्णीष (पगड़ी) धारण करने वाला बताया गया है। रुद्र एक सुन्दर रथकार हैं और स्वर्णिम रथ पर बैठकर चलते हैं रुद्र के पास शुचि तथा आनन्ददायिनी ओषधियाँ सदा साथ रहती हैं जिनके कारण विविध प्रकार के रोग, दुःख तथा कष्टों का निवारण होता है तथा असीम सुख, आनन्द एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। रुद्र अपने गले में मूल्यवान् हार (निष्क) धारण करते हैं। रुद्र के दीप्त नाम—जय का विधान है। रुद्र सदा ही कोमल-आशय वाले, और सुन्दर-सुमुख एवं रमणीय आकृति वाले हैं।

(७) मरुद्गण—पृथिवी (गौ, पृथ्वी, जलधर पटली) के पुत्र रूप में महान् चित्रित किये गए हैं। इनके पिता द्विव्य-हस्त तथा तेजस्वी वज्र वाले, नित्य युवक रुद्र हैं। ये सभी एक आयु, एक मन रखने वाले सहजात बन्धु हैं। देव-समूह के रूप में ही इनकी वन्दना की गयी है। इन्द्र के युद्ध में सदा सैनिक के रूप में भाग लेते रहते हैं। इनके रथ को 'मरुत्वान' कहा है। सुन्दर रथ पर सवार होते हैं। इनके रथ को 'लाल घोड़ियाँ (बडवा) खीचती हैं। रोदसी बधू के समान इस रथ पर बैठती हैं।

मरुत् वर्षा के अधिदेव हैं। यात्रा के समय जाने पर महिलाओं के समान अपने को सजाते हैं। चरण, हस्त, ग्रीवा तथा इनके शिर पर नाना-प्रकार से चमकदार आभूषण जगमगाते रहते हैं। चमकीली वर्छी (ऋषि) सदा इनके हाथों में जगमगाती रहती है। इनमें अथाह बल तथा अगाधज्ञान है। वर्षा की बौछार करते हुए जिस ओर को निकल जाते हैं टूटे हुए वृक्षों से इनके गमन-मार्ग की सूचना मिल जाती है। ये सभी एक ही स्थान पर एक ही वेष-भूषा में रहते हैं।

बड़े-बड़े पर्वतों, चट्टानों तथा वृक्षों को बड़ी ही सरलता से तोड़ते हुए ये निकल जाते हैं। एक ही इनका गणवेष है। मस्तक पर स्वर्ण-मुकुट, वक्षः स्थल पर चमकते हार धारण करते हैं। एक ही समान सदन में निवास करते हैं। मरुत् महान् हैं तथा दूरदृष्टि रखते हैं। इनकी अपार शक्ति और दृष्टि के आगे नतमस्तक होना ही पड़ता है।

मरुद्गण को क्रीड़ा बहुत रुचिकर है। अवकाश के समय में मिलकर नाना प्रकार से खेल रचाते हैं। मनोरंजन करते हैं। बांसुरी बजाने में दक्ष हैं और वीणा-वादन में बहुत प्रवीण हैं। वीणा-वादन की सरसता तथा रण की कुशलता दोनों में ही इनको शोभा तथा विनय प्राप्त है। इनका आकार सुन्दर, आचार पवित्र तथा कार्य प्रशंसनीय है।

मरुद्गण गो-पालन में दक्ष तथा स्निग्ध दृष्टि रखते हैं। मरुद्गण के कार्य-

उल्लेख से वीरता पूर्ण तेज की आलोक-रेखा जगमगाने लगती है। इन्द्र के लिए स्तुतियों का गान करने में मरुद्गण विषय रुचि रखते हैं।

मरुत् शब्द का अर्थ करते हुए ऋषियों ने समझाया है कि मर्-डत् मरने तक खड़े रहकर क्रिया शील रहने वाले, 'मा-रुत्' कभी न रोने वाले, मर्-डत् = अत्यन्त रूप माधुरी रखने वाले (कामदेव के लिए इसी हेतु 'मार' कहा गया है।)

मरुद्गण की मैत्री स्निग्ध तथा अक्षय है। अपने मित्र तथा भक्त के लिए स्पृहणीय रत्न, औषधि तथा ऐश्वर्य धारणा करते हैं।

(८) विष्णु—विष्णु पालन और रक्षा के अधिदेव हैं। 'वेवेष्टि जगत्' इति विष्णुः' कहकर विष्णु की सर्वात्मकता बतायी गयी है। विष्णु को 'डरुगाय' कहा गया है क्योंकि सबकी गति विष्णु तक ही है अथवा विष्णु का ही यश—उद्गान सभी करते रहते हैं। दूसरा यशस्वी नाम उस क्रम अथवा त्रिविक्रम है। विष्णु शिशु रूप में मनोहर दिखायी देते हैं पर अपने विशाल-व्यापक चरण-विन्यास से तीनों लोकों (पृथ्वी—अन्तरिक्ष तथा द्युलोक) को आक्रान्त कर लेते हैं। सूर्य को ही विष्णु कहा गया है। इन्द्र का प्रिय भाई होने से इनको उपेन्द्र भी कहा गया है। युद्ध भूमि में विष्णु सदा इन्द्र के साथ रहते हैं। इनको ओजस्वी रूप को देखकर इन्द्र का भी तेज बढ़ता है। सखे विष्णु और पराक्रम दिखाओ (सखे विष्णो वितरं विक्रमस्व ऋ. ४. १८. ११) कहकर इन्द्र भी बराबर विष्णु को उल्लसित करते रहते हैं।

विष्णु का चक्र चलता है। ६० घोड़े जुते होते हैं (दिवस) इनके चार नाम हैं (ऋतुएँ) यही $६० \times ४ = ३६०$ सौर्य-वर्ष है। इससे यह स्पष्ट है कि सूर्य की ही गति विधियों का रूपकीकरण करके विष्णु नाम दिया गया है। मानव की स्थिति तथा विश्रान्ति के लिए ही यह त्रैधा विक्रमण है। यही स्थूल-सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक जिज्ञासा का भी विक्रमण है। इसी से होकर मानव शान्ति और समृद्धि का पात्र बनता है।

विष्णु के परम-पद का विस्तार से वर्णन किया गया है जहाँ पर मधु का उत्स परिपूर्ण है। इस पद को सब नहीं देख सकते केवल आत्म-रत, मुक्त पुरुष ही देख पाते हैं।

विष्णु के कर्म प्रशंसनीय हैं। विष्णु के वस्त्र, आभूषण, आयुध तथा आकार एवं शक्ति की तुलना इन्द्र से की जा सकती है। विष्णु की श्री में देवगण आनन्दित रहते हैं।

(९) सोम—सोम देवता रूप में तथा औषध रूप में स्तुति प्राप्त करते हैं। ऋग्वेद का नवां मण्डल सोम-स्तुति से परिपूर्ण है। अन्यत्र भी सोम की स्तुति में सूक्त (शोभन-कथन) हैं। यहाँ पर देवता रूप पर ही अधिक विचार रखा है।

सोम का वर्ण वध्रु (भूरा) है। अच्छा नेतृत्व रखते हैं। आकार सुन्दर और आकर्षक है। निरन्तर तरुण करुणा-पूर्ण तथा शान्त-अन्तःकरण के देव हैं। स्वर्ण-पूर्ण अलङ्करण में जगमगाते रहते हैं।

प्रमुखता और महात्म्य की दृष्टि से सोम का नाम अग्नि के अनन्तर आता है: अग्नि वरुण तथा इन्द्र की मानवीय प्रतिमा जितनी स्पष्ट है उतनी स्पष्ट मूर्ति सोम की नहीं मिलती है क्योंकि सोम का रसायनात्मक रूप ही अधिक स्पष्ट रहता है।

सोम के आयुध बहुत ही तीक्ष्ण है। उनके हाथ में धनुष् तथा अनेक फल वाले बाण भी रहते हैं। वे रथ में आसीन होते हैं तथा उस रथ को पवन जैसी शक्ति खींचती है। कहीं-कहीं इन्हें रथ पर इन्द्र अथवा अग्नि के साथ बैठे दिखाया गया है। सोम को एक अच्छे सारथि के रूप में भी चित्रित किया गया है। पूषा और रुद्र के साथ भी कहीं-कहीं इन्हें चित्रित किया गया है। मरुद्गण भी सहायक रूप में इनके साथ घटित किये गए हैं। यज्ञ की पवित्र वेदी पर सोम भी आते हैं और रवि की स्वीकार करते हैं।

सोम सौन्दर्य, कान्ति, शान्ति तथा आनन्द के देवता हैं। वे कोमल हैं तथा उनका रूप निखरा हुआ है। सोम—रस का निरापादन तीन बार होता है—प्रातः दोपहर (मध्याह्न) तथा सायंकाल: इसमें क्रमशः सोम, इन्द्र तथा ऋभु देवता बुलाये जाते हैं। अर्थात् प्रातः कालीन सोम-पान के देवता सोम ही हैं।

सोम के सम्बन्ध में अतिशयोक्ति तथा उपमायें बहुत कहीं गयी हैं सोम पर रहस्यात्मक वाक्य भी बहुत हैं। अध्यात्म पक्ष में 'उमया सहितं महेश्वरस्य ज्ञानं सोम-ससं ब्रह्म-रसायनम्' अर्थात् उमा के साथ महेश्वर के ज्ञान का ब्रह्म-रसायन ही सोम-पान है। ब्रह्म-वेला में चिन्तारहित होकर जो आनन्द, शान्ति, क्षमा सत्यता, शुचिता आदि का चिन्तन ही अध्यात्म-पक्ष में वही सोम-पान कहलाता है। आपः को सोम की माता अथवा भगिनी कहा गया है। वह भी इसी शान्तिदायक उद्देश्य से है। यह निर्झरिणी का स्वामी है तथा पृथ्वी एवम् आकाश को शीतलता प्रदान करता है। जल तरंगें यदि गायें हैं तो सोम उनमें वृषभ है। सोम की तीव्रता को देखते हुए से समर के घोड़े से तुलना की जा सकती है।

सोम अमरता के स्वामी हैं। यही कारण है कि मानव इनकी प्रार्थना और अभिनन्दन में रत रहते हैं और देवगण भी इनको सदा अपनाये रहते हैं, इनसे वियुक्त नसीं हो पाते।

(१०) पुरुष-देव गण सृष्टि-उपकरण में प्रमुख-कारण हैं पुर पुरुष ही इस समस्त सृष्टि-प्रपञ्च का मूल कारण है। यह सृष्टि यज्ञ रूप है। सभी प्राणी, सभी वेद, सभी भोग्य-भोक्त-प्रपञ्च तथा सभी वर्ण इस पुरुष के कारण पूर्णत्व की उन्मुख हुए। इस सृष्टि का उपादान-कारण तथा निमित्त-करण पुरुष ही है। संसार के सभी अवयव इसी पुरुष के करण आविर्भूत हुए हैं।

इन मन्त्रों में चारों वर्णों, चारों वेदों तथा यज्ञमय पुरुष के कारण सृष्टि-प्रपञ्च में समस्त जड़-चेतन के प्राडुर्भाव का वर्णन बड़ी तेजस्विता के साथ किया

गया है। यह भी कहा गया है कि जो कुछ हुआ और जो कुछ होने वाला है, वह सब कुछ पुरुष ही था और वही एक अविनाशी, स्वयम्भू अवश्य रहेगा।

पुरुष ही भूत है, वही भाव्य है, इत्यादि वेदान्त-प्रक्रिया की बातों का विवरण एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के संकेत यहाँ मिलते हैं। विशेषता पर प्रकाश डालते हुए उत्पत्ति-प्रक्रिया पर बहुत ही गुन्दर विवरण यहाँ मिलता है। वह ईश्वर वाद का एकेश्वर वाद में समन्वय यहाँ समझाया गया है। यह बतलाया गया है कि वह पुरुष विराट् है और सारे संसार में—दृश्य-अदृश्य जगत् में परिव्याप्त है फिर भी यह सारी सृष्टि उसके एक अंश में ही अवस्थित है उसकी महिमा इतनी है पर केवल इतनी ही नहीं है। वह उससे भी ऊँचा है। महान् है और श्रेष्ठ है।

इस शरीर की रचना की तुलना विश्व प्रपञ्च की रचना से दी गयी है। जिस प्रकार एक अवयव के अभाव में यह सारा शरीर निरर्थक है उसी प्रकार यह विश्व-शरीर भी एक अवयव या वर्ण के बिना निरर्थक और अपूर्ण है। लोक-व्यवस्था एवं कर्म-मीमांसा के लिए चारों वर्णों की भूमिका अनिवार्य है।

(११) उषा—ब्रह्म-वेला की अभिमानिनी देवता उषा है। अनेक सूत्रों में उषा का वर्णन बड़े अलंकारिक ढंग से किया गया है। यह प्रभात-वेला में अत्यन्त प्रमुदित होकर आती है। सुन्दर वेष-भूषा में अलंकृत एक नर्तकी के समान अपने सुनहरे रथ पर जगमगाती हुई अपने वैभव का विस्तार करती है। उषा अर्धकार तथा अज्ञान का तिरस्कार करती हुई रात्रि के काले आवरण को हटाती है। उषा यद्यपि बहुत पुरानी है फिर भी सद्यः स्नात युवति-सी नित्य नवीन लगती है।

उषा अपने जागरण के साथ ही पूर्व क्षितिज को संवारती है सजग सामन्ती रूप में सीमन्तिनी नायिका-सी उदित होती है। वह जागते ही स्वर्ग के द्वार को खोल देती है। टुकड़ों में विभक्त मेघ ऐसे लगते हैं मानों वह भेड़ें चरा रही हो। वह दुःखद स्वप्न, शोक पहुंचाने वाली दुराक्ताओं को तथा आवरणों को दूर हटा देती है। छिपायी गयी धन-राशि का उदघाटन करती है तथा अन्यत्र उदार बन कर बांट देती है। प्रत्येक प्राणी को जगाना उसका काम है तथा जगे हुए प्राणी को जगाना उसका काम है तथा जगे हुए प्राणी को काम-धन्धे में प्रवृत्त करना उसका धर्म है।

उषा भगवान् के निर्देश तथा पद्धति के नियमों का दत्तचित्त होकर पालन करती हैं। कभी अपने नियमों का उल्लंघन नहीं करती। प्रतिदिन उसी स्थान से प्रकट होती है जहाँ से पहले निकली थी। वह देवताओं का सबसे अच्छी सेविका है क्योंकि उसके सजग होते ही उपासक अपने यज्ञ-विधान का सम्पादन करने लगते हैं।

उषा का घोड़ा बहुत ही सुन्दर है जिस पर बैठकर वह आती है। सूर्य उषा का बराबर पीछा करता है मानों कोई भावुक तरुण किसी तरुणी का पीछा कर रहा हो। उषा ही सूर्य के मार्ग को प्रशस्त करती है। सूर्य उषा का मनचाहा प्रियतम

है। वह अपने प्रियतम को देखकर फूली नहीं समाती। उषा रात की बड़ी बहन है। बाल-सूर्य उषा को गोद में प्रसन्नता के साथ खेलता है। उषा स्वर्ग की पुत्री तथा अग्नि पर प्रेम-दृष्टि रखती है। उषा जागते ही अश्वि-कुमारों को जगा देती है। अश्वि-युगल भी जागते ही सुनहरे वाणों के साथ अपनी यात्रा पर चल देते हैं। उषा अपने मर्त्यों के लिए जीवन और जीविका देती है। कवियों में प्रतिभा का सम्पादन उषा ही करती है। वह स्वभाव से ही अति उदार तथा स्नेहमयी है। उषा का श्वध्री कहा गया है क्योंकि घोर अन्धकार पूर्ण गगन् कानन में वह अपने कुत्तों (तारों) के साथ बहेलियों की सरदारिन सी आखेट करती है। जो तन्द्रा रहित होकर सतत सावधान रहेगा वही वच पायेगा।

(१२) पूषा—पूषा गुप्तचर विभाग का श्रेष्ठ स्वामी है। तस्करों के समग्र रहस्यों का पता बड़ी सरलता के साथ लगा लेता है। यह समग्र मार्गों अथवा तथा पालक है। हर प्रकार निधियों का उपायो का ज्ञाता तथा उनके आगमन का प्रकार केवल पूषा को ही ज्ञात है।

इनके केश-कलाप घुंघराले तथा पटियादार हैं। इनकी दाढ़ी सुन्दर और आकर्षक है। इनके तलवार सुनहरी है। इनके हाथ में अंकुश भी रहता है। इनके रथ में बकरे जुड़ते हैं। भोजन में इनको दलिया या सत्तू (करम्भ) बहुत प्रिय है। सुनहरी बर्छी भी रखते हैं। परशु तथा नुकीले अस्त्र भी रखते हैं। इसकी दृष्टि इतनी निर्मल तथा तीक्ष्ण है कि एक ही निमेष में समस्त भुवन देख लेते हैं।

यह अपनी भगिनी उषा को बहुत प्यार करते हैं। सूर्य की बधू सूर्या को अपनी पत्नी बनाते हैं। इस प्रकार अपनी माँ से ही विवाह करते हैं। अपनी आकाशीय भेड़ों के साथ सूर्य के दूत बनकर विचरण करते हैं। पूषा जगत् के द्रष्टा तथा स्वच्छन्द गति से विचरण करते हैं। बहुत उत्तम सारथि इनको कहा गया है। सूर्य के रथ को ऊर्ध्व तथा निम्न दिशा में पूषा ही ले जाते हैं।

इन्हें विमुक्ति का पौत्र 'विमुचो नपात्' भी कहा गया है। इन्हें प्रसव का देवता भी माना जाता है। बहुत दयालु होने से इनको सदा 'आघृणि' कह कर पुकारा जाता है। सम्पन्नता अथवा समृद्धि के देव है अतः पोषण करने वाली धातु से इनका नाम सम्बन्धित है। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि पूषा भी सौर-मण्डल के ही देवता हैं जो सूर्य के उपकारक शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं और ब्रजभूमि को उर्वर तथा सम्पन्न बनाते हैं।

(१३) पर्जन्य—वर्षा कारी मेघ के अभिमानी देव को पर्जन्य कहा गया है। पर्जन्य वन, वृक्ष, पौधों, अनाज तथा पृथिवी के जीवन हैं। जलदान करना ही इनकी मुख्य विशेषता है। ये जलीय रथ में विचरण करते हैं। अपनी जलीय-त्वचा को बहुत शीघ्र छोड़ भी देते हैं। देवी पिता असुर के समान पर्जन्य भी जल के अधिष्ठाता हैं। अपनी शीतल वर्षा के द्वारा समग्र पृथ्वी को शान्त, तृप्त तथा कृतार्थ करते हैं। अग्नि अथवा विद्युत् की कड़कभरी गड़गड़ाहट के साथ एवं चमक के साथ अपने

आगमन का पावन सन्देश देते हैं। समग्र प्रकार को ओषधि-वनस्पतियाँ इस सन्देश से पुलकित हो उठती हैं क्योंकि उनकी प्राण-यात्रा का मूल मंत्र पर्जन्य के ही पास है।

नारी में सुशीलता, घोड़ों में स्फूर्ति तथा गायों में संजीवनी भर देना पर्जन्य का ही काम है। द्युलोक इनका पिता तथा वसुन्धरा इनकी पत्नी है।

(१४) आप—जलीय देवता को चार सूक्तों में अभिनन्दन किया गया है। कुछ और भी सूक्त हैं जहाँ पर निपात रूप से (गौण रूप से) आप की स्तुति की गयी है। ये देवों के मार्ग का अनुगमन करती हैं। इनकी माता, दिव्य देवियाँ तथा तरुण पत्नियों के रूप में वन्दना की गयी है।

इन्द्र ने अपने वज्रसहस्र हस्त में वज्र लेकर इनके मार्ग का निर्माण किया है इस कारण इन्द्र के आदेश तथा आदर्श का सदा पालन करती हैं। कभी उसका उल्लंघन नहीं करती। ये स्वर्गीय हैं पर पृथ्वी को चिर संगिनी हैं। देव-स्थान पर सदा मित्र और वरुण के साथ निवास करती हैं। सागर की ओर अभिगमन करना इनको सदा इष्ट रहता है। जो कुछ स्थावर-जंगम है, उसकी रक्षा का भार इन्हीं पर है। सबकी श्रद्धा तथा वन्दना को प्राप्त करती हैं अतः सबकी माता हैं। वरुण देव इन्हीं के सहारे प्राणियों के सत्य-असत्य का अवलोकन करते हैं जिससे मानव कभी प्रयादन करे।

आयः देवियाँ मानवीय आक्रोश, द्रोह, अपराध तथा समसा पाप को बहा ले जाती हैं। ये मानव को स्वास्थ्य, रसायन, भैषज्य, धन तथा अमरता प्रदान करती हैं। उनके दान, वरदान तथा कृपा का अभिनन्दन किया गया है। यज्ञ भूमि में आकर सोमपान करने में देवों की सहायता करती हैं। इनका स्वर्गीय जल ही मधु, अमृत तथा रसायन में विद्यमान है। इनके जल की शक्ति ही सोम के माध्यम से इन्द्र में पहुँचती जिससे कि वीर कर्म करने में इन्द्र सक्षम होते हैं। इनके मधु का उल्लास ही देव तथा मानव को आनन्दित करता है। सोम आप की धारा में बहुत मद तथा आनन्द प्राप्त करते हैं। अवेस्ता में भी आपः का बहुत वर्णन एवम् अभिनन्दन मिलता है।

(१५) सविता—ऋग्वेद के ११ सूक्तों में सविता का वर्णन मिलता है। अन्य भी बहुत से मंत्रों में अन्य देवों के प्रसंग के साथ सविता का वर्णन आता है।

सविता स्वर्णिम देव हैं। इन्हें स्वर्ण-नेत्र, हिरण्य हस्त, स्वर्ण-जिह्व तथा स्वर्ण-रथ कहे जाते हैं। इनके रथ के सभी अवयव स्वर्ण निर्मित हैं। इनके अश्व श्वेतचरण वाले तथा भूरे हैं। अपने आगमन से स्वर्ग, पृथ्वी तथा वातावरण को देदीप्यमान करते हैं। इनकी प्रभा बहुत ही प्रभावोत्पादक है। इनके हाथ विणाल हैं। ये सबको उत्साहित करते हैं, सहारा देते हैं तथा आशीर्वाद देते हैं। इनके हस्त दृढ़ तथा यशस्वी हैं।

सविता सूर्य की किरणों में अपनी प्रभा भर देते हैं। सविता का मार्ग धूलि-धूसर नहीं है। अरेणु है। अपने इस प्राचीन मार्ग से प्रजाजनों की रक्षा करते हैं। दुःस्वप्न का नाश करके मानव को दोष-रहित बनाते हैं। राक्षसों, दस्युओं तथा दानवों को दूर भगाते हैं। जल तथा पवन पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। सभी प्राणी सविता की इच्छा का अनुगमन करते हैं। देवगण इनको अपना नेता मानते हैं।

सविता के प्रभुत्व में ही मानव विचारों में जागरण आता है। सविता मानवीय विचारों में ज्योति की स्थापना करते हैं। अतः इनकी गायत्री को सावित्री का मंत्र कहा गया है। सूर्य और सविता में विशेष अन्तर नहीं है। सूर्य को ही ब्रह्म-वेला में सविता कहा गया है। जबकि पृथ्वी पर अँधेरा हो और गगन में प्रकाश आ जाये, यही सविता का समय है। प्रसव और ऐश्वर्य का निदान सविता के ही हाथ में है। जगत् में जीवन, क्रियाशीलता तथा प्रगति देने के कारण प्रसविता को सविता कहा गया है।

(१६) वात—केवल दो सूक्तों में वात का अभिनन्दन किया गया है। वायु का अभिमानी देव वात है। वर्षा की झझा के साथ सहयोग होने के कारण वात का सम्पर्क पर्जन्य से तथा वायु का सम्पर्क इन्द्र के साथ (इन्द्रवायू) जुड़ा हुआ है।

रुद्र की भांति वात भी स्वास्थ्य, जीवन तथा भैषज्य को प्रदान करते हैं। वात के निकेतन में अमरता का निवास है। गर्जन भरी विद्युत् (अग्नि) में वात की सक्रियता की जानकारी मिलती है। वात के ही कारण प्रकाश में लाली तथा उषा में क्रान्ति का प्रादुर्भाव होता है। वात की गति अत्यन्त वेगवान् अश्व से दी जा सकती है।

(१७) मित्र—दिन के अभिमानी देव मित्र हैं। अधिकतर वरुण के ही साथ रहते हैं। कृषकों के सुख-दुःख के दृष्टा हैं तथा प्रयास के लिये उन्हें प्रेरित करते रहते हैं। सविता भी मित्र के साथ ही पहचाने जाते हैं। श्रेष्ठ आदित्य तथा मित्र में कोई विशेष अन्तर नहीं है। समस्त मानवों को एकता की दीक्षा देते हैं। मित्र के ही कारण सूर्य की यात्रा व्यवस्थित तथा निर्धारित होती है। मित्र सौर-मण्डल के अभिमानी देवता हैं। ईरान के धार्मिक ग्रन्थों के प्रमाण से भी यही बात सिद्ध होती है।

(१८) अश्विनौ—अश्वि-युग्म यमल-बन्धु (जुड़वां) हैं। ये अति प्राचीन होने पर भी नित्य युवा हैं। इनका मार्ग स्वर्णिम है। कमल-माला से सदा विभूषित रहते हैं। सुनहरी चमक में सदा प्रसन्न रहते हैं। अदृश्य शक्तियों के स्वामी और अपरिमित बुद्धि रखते हैं। ये सत्य युक्त रहने के कारण नासत्या तथा विस्मयकारी होने के कारण दसा कहलाते हैं।

उषा और सूर्य के साथ सोम-पान करने के लिये अश्वि भी बुलाये जाते हैं। मधु इनको बहुत इष्ट है। ये जगमगाते रथ पर आसीन होते हैं। इनका रथ पवन

के समान वेगवान् है। इस रथ का निर्माण ऋभुओं ने किया है। इस रथ को सुनहरे पंखों वाले घोड़े खींचते हैं।

इनका रथ द्युलोक तथा भूलोक में विचरण करता है। ये स्वर्ग लोक, वायु लोक अथवा समुद्र में निवास करते हैं। सूर्योदय से पूर्व पर उपा के आगमन के अनन्तर इनका प्रादुर्भाव होता है। इन्हें विवस्वान् का पुत्र कहा गया है। इनकी माँ सरण्य है जो कि त्वष्ठा की पुत्री है। सूर्या ने इन्हें पति रूप में वरुण दिया है।

अश्विनौ की उपासना से दुःख, दुर्भाग्य का अन्त हो जाता है। वे शान्ति और दया के देवता हैं। वे अपने प्रभाव से भक्तों की रक्षा करते हैं। वे स्वर्ग के वैद्य हैं। रोग तथा भय को दूर कर देते हैं। नये हाथ, पैर तथा आँखें देकर रण-पुरुष को पुनः सम्बल देते हैं। देवताओं की शारीरिक दुर्बलता को दूर कर देते हैं। भुज्यु नामक राजा का समुद्र में उद्धार इन्होंने किया।

प्रातः काल के अंधेरे और प्रकाश के मिलन काल को अश्विनौ का समय कहा जाता है। वाम और दक्षिण नासा-पुटों को भी अश्विनौ कहा जाता है। योग की भाषा में इसे ही इडा-पिंगला भी कहते हैं।

(१६) वाक्—वाणी के प्रत्यक्ष तथा परोक्ष प्रभाव को रहस्यमय ढंग से बतलाया गया है। वाक् और ब्रह्मा की एकरूपता समझायी गयी है। वाक् देवता अपनी कृपा से अपने आश्रित को ब्राह्मण, ऋषि अथवा तेजस्वी बना देती है। वही राष्ट्री और देवों का संगमन कराती है। दर्शन के गूढ़ सिद्धान्त का रहस्य बीज यहाँ विद्यमान है। योगज-शक्ति से मानव के विकास का महान् विस्तार भी समझाया गया है। वाग् देवता अम्भृण की पुत्री तथा देवों की प्रेरक शक्ति है। सूर्य, चन्द्र तथा रुद्र को यही शक्ति धारण करती है।

(२०) वास्तोष्पति—सोम देवता के समान वास्तोष्पति भी हमारे सदन का अभिमानी देव है। इस देवता के विषय में एक ही सूक्त है। यह हमारे गृह का अग्नि के समान ही गृहपति है। जब मानव अपने नए गृह में प्रवेश करता है तब उसे वास्तोष्पति का पूजन, अभिनन्दन अवश्य करना चाहिये। वेद मन्त्रों में कहा गया है कि हमारे गृह (वास्तु) के देवता (पति) हमारे लिये सदा स्वस्ति का सृजन करें। हमारे धन तथा पशु एवं गृह-उपकरण को सम्पन्न तथा सुशोभित करें। उत्तम गृहपति की गृहसिद्धि के लिये जिन आवश्यक वस्तुओं की कामना होती है उन सबकी पूर्ति वास्तोष्पति की ही कृपा से सम्भव है। सम्पदा की सुरक्षा तथा अभ्युदय की कामना भी इसी देवता के आधीन हैं।

इस प्रकार विशेष देवों का वर्णन उनके आकार, प्रकार, स्वभाव तथा मानवीय साहचर्य की दृष्टि के निरूपित किया गया। कुछ अन्य भी देव हैं जिन्हें स्पष्ट रूप से प्रतिपादन नहीं किया गया है अथवा जिनका स्वरूप ऊपर कहे देवों से ही अधिकतर मिलता जुलता है। उनमें वृहस्पति देवता की उपासना का वर्णन प्रभाव और स्वतन्त्रता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं इनका वर्णन इन्द्र के

साथ आया है। इन्हें ब्रह्माणस्पति भी कहा गया है। ये स्रोत्र-समूह के स्वामी तथा बुद्धि के देवता हैं। इनमें रण कौशल के साथ-साथ पौरोहित्य भी करना पड़ता है। इनमें ब्रह्म तथा क्षत्र दोनों के गुणों का समावेश है।

बृहस्पति मन्त्रों के प्रेरक हैं। इनके हाथ में धनुष-बाण तथा परशु रहता है। इनका वर्ण स्वर्णिम है। ये मनुष्यों को सुन्दर आयु और सौभाग्य प्रदान करते हैं।

नदियों में गंगा, यमुना, हृषद्वती, विपाशा, शुतुद्रि आदि का वर्णन आता है पर सिन्धु और सरस्वती का नाम अधिक विस्तृत है। सरस्वती को अधिक महत्त्व और ममत्व मिला है। वेद की शुतुद्रि ही आजकल सतलज और विपाशा व्यास कहलाती है। विश्वामित्र ऋषि का नदियों के साथ का वर्णन बड़ा ही मुग्धकारी तथा आलंकारिक है।

वेदों में पुरुष से हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति का निर्देश मिलता है। हिरण्यगर्भ को प्रजापति, ब्रह्म तथा विराट भी कहा गया है। समस्त सृष्टि-प्रपञ्च का हिरण्यगर्भ ही एकमात्र स्वामी है। वही अपने बल से अन्तरिक्ष लांक को धारण करता है तथा पृथ्वी एवं द्युलोक का वही एक अवलम्बन है। उसके चरण में पृथ्वी तथा माल में द्युलोक स्थित है। इसी की व्यापकता को लेकर वेदान्त के लिये 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' का सूत्र-बीज मिला।

अदिति देवता मातृ-शक्ति की देवी है। वह असीम और असीमित सामर्थ्य वाली शक्ति है। वह बन्धनों (दिति) से रहित है। यह अनश्वर अन्तरिक्ष की ज्योति है। इन्द्र की कृपालु मां के रूप में भी इसे दर्शाया गया है। यह 'परमे व्योमन्' उच्च आकाश में निवास करती है और उषा के सदन में रहती है। अदिति को दक्ष की माता और पुत्री के रूप में भी कहा गया है। ब्रह्माण्ड की यह चिरन्तन परम्परा चली आ रही है। कौन किसका पिता है और कौन पुत्र है, यह अध्यात्म की दृष्टि से स्पष्ट नहीं किया जा सकता, इस दार्शनिक पृष्ठभूमि का बीज-मंत्र यहाँ निहित जानना चाहिये।

आदित्यों को अदिति का पुत्र कहा गया है। मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् तथा मार्तण्ड आदि आदित्य कहलाते हैं।

(६) छन्दः

ऋग्वेद की रचना छन्दोबद्ध है। इसमें लय, माधुर्य तथा पठन में धरिता आती है। बृहद् आकार में अभ्यास करने पर छन्दों की संख्या तथा नाम अधिक हैं। सामान्य रूप से सात छन्दों की ही प्रमुखता है—गायत्री, अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, जगती और पंक्ति।

(१) गायत्री—यह छन्द २४ अक्षरों वाला होता है। न्यून या अधिक अक्षर होने पर गायत्री के अन्य-अन्य भेद माने जायेंगे। गायत्री को षड्ज स्वर में गाया जाता है। गायत्री त्रिपदा=तीन चरण की होती है और प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते हैं।

(२) अनुष्टुप्—यह छन्द ३२ अक्षरों वाला होता है। इसका स्वर गान्धार है। इसमें आठ-आठ अक्षर के चार चरण होते हैं। इसमें भी न्यूनाधिक मात्रायें होती हैं।

(३) त्रिष्टुप्—इस छन्द में चार चरण तथा प्रत्येक चरण में ११ मात्रायें होती हैं। इस प्रकार पूरा छन्द ४४ अक्षरों का होता है। इस छन्द का स्वर धैवत है।

(४) उष्णिक्—इस छन्द में तीन चरण होते हैं। पहले तथा दूसरे चरण में आठ-आठ अक्षर तथा तीसरे में १२ अक्षर होते हैं। इस प्रकार पूरे छन्द में २८ अक्षर होते हैं। इस छन्द का स्वर ऋषभ है।

(५) बृहती—इस छन्द में चार चरण होते हैं। प्रथम, द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में आठ-आठ अक्षर तथा तृतीय चरण में बारह अक्षर होते हैं। इस प्रकार इस छन्द में कुल छत्तीस अक्षर होते हैं और इसका स्वर मध्यम है।

(६) जगती—इस छन्द में बारह-बारह अक्षरों के कुल चार चरण होते हैं। ४८ अक्षरों का यह छन्द होता है। इस छन्द का स्वर निषाद है।

(७) पंक्ति—यह छन्द ४० अक्षरों का होता है। पूरे छन्द में पांच चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में ८ अक्षर होते हैं। इस छन्द का स्वर पञ्चम है।

संक्षेप में गायत्री—सा, उष्णिक्—रे, अनुष्टुप्—ग, बृहती—म, पंक्ति—प, त्रिष्टुप्—ध और जगती—नि, इस प्रकार छन्दों के स्वरों को सा—रे—ग—म—प—ध—नि के रूप में संक्षिप्त रूप से कहा गया है। इसी क्रम में गायत्री का वर्ण श्वेत, उष्णिक् का सारङ्ग, अनुष्टुप् का पिङ्ग, बृहती का कृष्ण, पंक्ति का नील, त्रिष्टुप् का लोहित और जगती का गौर वर्ण माना गया है। देवता की दृष्टि से इन छन्दों के क्रमशः—अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्रावरुणा, इन्द्र तथा विश्वेदेवाः हैं। इसी प्रकार इन छन्दों के ऋषि भी क्रमशः—आग्निवेश्य, काश्यप, गौतम, आङ्गिरस, भार्गव, कौशिक और वसिष्ठ माने जाते हैं।

विस्तार से जानने के लिये आचार्य पिङ्गल रचित छन्दः शास्त्र को देखना चाहिये। वहाँ पर लौकिक-वैदिक छन्दों का बड़े विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। पङ् गुरु शिष्य ने वेदार्थ दीपिका में पिङ्गलाचार्य को पाणिनि का छोटा भाई बताया है।

वैदिक छन्दों का चित्र

		सा	रे	ग	म	प	ध	नि
		गायत्री	उष्णिक्	अनुष्टुप्	बृहती	पंक्ति	त्रिष्टुप्	जगती
१	आर्षी	२४	२८	३२	३६	४०	४४	४८
२	दैवी	१	२	३	४	५	६	७
३	आसुरी	१५	१४	१३	१२	११	१०	९
४	प्राजापत्या	८	१२	१६	२०	२४	२८	३२
५	याजुषी	६	७	८	९	१०	११	१२
६	साम्नी	१२	१४	१६	१८	२०	२२	२४
७	आर्ची	१८	२१	२४	२७	३०	३३	३६
८	ब्राह्मी	३६	४२	४८	५४	६०	६६	७२

वैदिक छन्दों की विविधता है। यही छन्द लौकिक छन्दों के आदि स्रोत कहे जाते हैं। इस विषय में कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) 'लिति प्रमाणि' यह प्रमाणी छन्द की परिभाषा है। प्राकृत में भी 'लहू गुरु गिरन्तरा पमाणि अट्ट अक्खरा' कह कर यही बात दुहरा दी है। लघु-गुरु अक्षरों के मेल से प्रमाणी छन्द बनता है। ऋग्वेद में ऐसी बहुत सी ऋचायें हैं जिनमें इस क्रम का प्रारूप देखने को मिलता है—

(१) अधारयन्त बहूयः (१-२८-८), (२) हिरण्यपाणिमूतये (१-२१-५), (३) ऋतेन यावृतावृधा (१-२३-५), (४) हृदिस्पृगस्तु शन्तमः (१-१६-७)।

इसी प्रकार इन्द्रवज्रा 'पूषण्वते तो चक्रमा करम्भम्' (३-५२-७), उपेन्द्रवज्रा 'स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानम्' (२-३३-११), 'उरु' हि राजा वरुणश्चकार (१-२४-८),

उपजाति—‘अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुछ चिद् दिवेयुः’
(१-२४-१०),

वंशस्थ—‘हिरण्यपाणिः सविता वित्रर्षणिः’ (१-३५-६),

इन्द्रवंशा—‘यूना ह सन्ता प्रथमं विजज्ञतुः’ (६-६८-५),

वातोर्मि—आ देवानामभवः केतुरग्ने (३-१-१७),

नराच—ऊथा न इन्द्र सोमया गिरामुपश्रुति चर (१-१०-३),

अनुष्टुप्—इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्ता वज्र पुरुष्टुतः (१-११-४)

शालिनी—इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूत् (७-१०४-७),

सभी ऋषियों और आचार्यों ने छन्दोज्ञान की महत्ता स्वीकार की है। महर्षि पाणिनि ने ‘छन्दः पादौ तु वेदस्य’ कह कर छन्दों को आधार-शिला के रूप में माना है। छन्दोब्राह्मण में ऋषि-देवता-छन्द की उपयोगिता पर प्रभविष्णु ढंग से वर्णन किया गया है। बृहदेवता में छन्दो ज्ञान से रहित व्यक्ति की निन्दा की गयी है। ●

मण्डल १

अग्नि सूक्तम्

सूक्त १

ऋषिः—मधुच्छन्दाः । देवता—अग्निः । छन्दः—गायत्री ।

अग्निमीके पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।

होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥

पद-पाठः—अग्निम् । ईक्ते पुरः ऽ हितम् । यज्ञस्य । देवम् । ऋत्विजम् ।

होतारम् । रत्नधातमम् ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—यज्ञस्य देवपूजासङ्गतिकरणदानादिकर्मणः पुरोहितम् अभीष्ट सम्पादकम् = सहायकरूपेण पुरोऽवस्थितम् देवम् दानशीलम् । होतारम् आह्वितारम् । ऋत्विजम्-ऋत्विग्भूतम् । रत्नधातमम् रमणीयानां रत्नानाम् अतिशयेन धारक तं तथाविधं पोषयितारम् अग्निं परमात्मानम् अहम् ईडे स्तौमि ।

टिप्पणी—अग्निम्—अग्निधातो निप्रत्ययेऽग्निशब्दः सिद्धयति । पुरोहितम्—पुरः + धा + क्त । धातो हिः । रत्नधातमम्—रत्न + धा + क्विप् । रत्नधा शब्दात् तमप् ।

हिन्दी व्याख्या—मैं 'अग्निम् ईडे' प्रकाशस्वरूप परमात्मा की वन्दना करता हूँ । अगले सभी शब्द विशेषण रूप में प्रयुक्त हैं—पुरोहितम्—जो परमात्मा सहायकरूप से सदा सामने ही अवस्थित हैं अथवा जो पुरोहित के समान सदैव ही अभीष्ट की पूर्ति करते हैं । 'यज्ञस्य देवम्' देवपूजा—संगति आदि कार्यों के सम्पादक हैं । दानशील हैं और 'ऋत्विजम्' ऋत्विक् के समान हमारे पूज्य हैं । 'होतारम्' देवों की पुकार कर्के पृथ्वी तक उन्हें लाने की कृपा करने वाले हैं तथा 'रत्नधातमम्' रमणीय रत्नों के धारक हैं, उस तेज स्वरूप परमात्मा की हम वन्दना करते हैं ।

अग्निः पूर्वभि ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।

स देवा एह वक्षति ॥ २ ॥

पद-पाठः—अग्निः । पूर्वभि । ऋषिऽभि । ईड्यः । नूतनैः । उत । सः ।

देवान् । आ । इह । वक्षति ॥ २ ॥

संस्कृत व्याख्या—अयम् अग्निः पूर्वैभिः पूर्वपुरुषैः पितृपितामह प्रभृतिभिः नूतनैः इदानीन्तनैरस्मदादिभिरपि ईड्यः स्तुत्यः । सः अग्निः परमात्मा पूजितः सन् इह देवान् आवक्षति आवहतु ।

टिप्पणी—पूर्वैभिः—पूर्वैः । 'बहलं छन्दसि' इति ऐस् भावो न । वक्षति—वहधातो लॅट् । 'सिब्वहुलम्०' इहि सिप् प्रत्यये ऽडागमे सति निष्पन्नम् । ईड्यः—ईड् स्तुतौक्यत् ।

हिन्दी व्याख्या—यह अग्नि 'पूर्वैभिः ऋषिभिः' हमारे पूर्ववर्ती ऋषियों के द्वारा 'ईड्यः' स्तुति प्राप्त कर चुका है और यही 'नूतनैः इत' नवीन ऋषियों के ओी द्वारा मान्य और पूज्य है । वह अग्नि भली प्रकार सत्कार पाने पर देवों को यहां पर लाने में समर्थ होता है ।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।

यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

पद-पाठ—अग्निना । रयिम् । अश्नवत् पोषम् । एव । दिवे ऽ दिवे । यश-सम् । वीरवत् उत्तमम् ॥ ३ ॥

संस्कृत व्याख्या—तेन स्तुत्येन निमित्तभूतेन अग्निना रयिं धनेश्वर्यम् अश्नवत् पुरुषः प्राप्नोति । तच्च धनं दिवे-दिवे पोषम् पुष्टिकरं पोषकत्वेन अहर्निशं वर्धमानं नैव क्षीयमाणम् यशसं कीर्तिकरं दानादिना जायमानं शौर्यादिना सम्पाद्यं च वीरवत्तमम् अतिशयेन वीर पुरुषोपेतम् । स्तुत स्तुष्टश्चाभिप्रायम् अग्निः प्रपूरयति ।

टिप्पणी—अश्नवत्—अश्नोते लॅटि + तिप्, इकारलोपोऽडागमश्च । दिवे-दिवे—दिवशब्दात् 'सुपां सुलुग्', इत्यादिना 'शे' 'नित्यवीप्सयोः' इति द्वित्वम् ।

हिन्दी व्याख्या—सभी सुखों का निमित्तभूत परमात्मा ही है । उसी की कृपा और सहायता से पुरुष नाना प्रकार के धनेश्वर्य को प्राप्त कर सकता है । परमेश्वर के द्वारा दिया गया धन प्रतिदिन पुष्टि और वृद्धि को देता है, जो कभी क्षीण नहीं होता । यह धन 'यशसम्' दानादि से निष्पन्न कीर्ति, प्रशंसित कार्यों से तुष्टि तथा वीरकर्म से यश का सम्पादन कराता है । ऐसी सम्पदा एवं प्रभु की कृपा के कारण वीर और शुभ-द्रष्टा पुरुषों का प्रादुर्भाव होता है ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।

स इद्वेपु गच्छति ॥ ४ ॥

पद पाठ—अग्ने । यम् । यजम् । अध्वरम् । विश्वतः । परिभूः । असि ।

सः । इति । देवेषु । गच्छति ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! त्वम् अध्वरं हिंसारहितं यज्ञं देवपूजासङ्गतिकर-
णादिधर्मयुक्तं शुभं यज्ञं यं विश्वतः सर्वतः परिभूः व्याप्तवान् असि । स इत् यज्ञः स
एव यज्ञः तृप्ति हेतुः देवेषु तृप्तिसम्पादनार्थं गच्छति प्रान्वोति ।

टिप्पणी—अध्वरम्—ध्वरति हिंसाकर्मा, तत्प्रतिषेधः । हिंसारहितम् विश्वतः
—विश्ववशब्दात् सप्रम्यर्थे तसि ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्निस्वरूप परमात्मा ! आप जिस परम उदार अनु-
कम्पनीय हिंसा-रहित यज्ञ को सभी ओर से प्राप्त करते हैं, वह यज्ञ परमानन्द का
सम्पादन करता हुआ देव-गण को प्राप्त होता है ।

अग्नि होता कविक्रतुः सत्य चित्र श्रवस्तमः ।

देवो देवेभिर्आगमत् ॥ ५ ॥

पद-पाठ—अग्निः । होता । कविः क्रतुः । सत्यः । चित्रश्रवः स्तमः । देवः ।

देवेभिः । आ । गमत् ॥ ५ ॥

संस्कृत व्याख्या—अयम् अग्रभूतः देवः दिव्यगुणः अग्निः अस्माकं होता
आह्वाता होमनिष्पादकः कविक्रतुः क्रान्तप्रज्ञानः क्रान्तकर्मा सत्यः सदैव निष्पायः
सत्यभूतः फलदाता चित्रश्रवस्तमः अतिशयेन विविधख्यातियुक्तः देवेभिः दिव्यकर्मभिः
सह आगमत् आगच्छतु अस्मत्प्रीत्यर्थं कृतार्थयतु ।

टिप्पणी—चित्रश्रवस्तमः—श्रूयते इति श्रवः कीर्तिः । चित्र + श्रवः + तमप् ।
आगमत्—आगच्छतु । लोटि छत्वाभावः उकारलोपश्छान्दसः । सत्यः—सत्मु साधु
सत्यः । 'सत्यादशपथे' इति निपातनात् ।

हिन्दी व्याख्या—होम का निष्पादन करने वाला यह अग्नि 'कविक्रतु'
अतीत—अनागत को जानने वाला 'सत्यः' सदा समरस रहने वाला 'चित्रश्रवस्तमः'
विविध प्रकार से ख्याति-युक्त 'देवः' सदा प्रकाशमान 'देवेभिः' दिव्यगुण-कर्म वाले
देवगण के साथ 'आगमत्' हमारे यज्ञ में आगमन करें ।

यदङ्ग दाणुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।

तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

पद-पाठः—यत् । अ॒ङ्ग । दा॒शु॒षे । त्वम् । अ॒ग्ने । भ॒द्रम् । क॒रि॒ष्य॒सि । त्वं

इत् । तत् । स॒त्यम् अ॒ङ्गि॒रः ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—अङ्ग अग्ने ! हे अग्ने ! त्वम् दाशुषे दानशीलाय पुरुषाय यत् भद्रं कल्याणं करिष्यसि तत् कल्याणरूपं कर्म 'त्वं इत्' त्वैव नान्यस्य कस्य चित् । हे अङ्गिरः ! सत्यम् एतत् नात्र सन्देहावसरः ।

टिप्पणी—अङ्गिराः—गत्यर्थकाद् अगिधातोः इरच् । 'येऽङ्गिरा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवत् । दाशुषे—दाशू दाने + कुसुः । भद्रम्—भदि कल्याणे + रः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्निदेव ! आप हविष् का दान करने वाले उदार पुरुष के लिए सर्वश कल्याण ही करते हैं, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है । आप सदैव सत्य स्वभाव निष्कलङ्क, निरालस अंगारे के समान दिव्य स्वभाव हैं ।

उप त्वाग्ने दिवे दिवे दोषावस्त धिया वयम् ।

नमो भरन्त एमसि ॥ ७ ॥

पद-पाठः—उप । त्वा । अ॒ग्ने दि॒वेऽदि॒वे । दो॒षा॒वस्तः । धि॒या । व॒यम् ।

नमः भरन्त । आ । इम॒सि ॥ ७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अग्ने ! वयम् उपासकः दोषा रात्रिः तद्वत् तमोऽपि दोषा; तस्य रात्रिगतस्य अज्ञानगतस्य वा तमसः वस्तः 'वस—आच्छादने' स्वप्रकाश-दानेन निवारयितः, तमस आच्छादयितः अग्ने दिवेदिवे प्रतिदिनं वयं धिया मनीषया नमो भरन्तः नमोऽसि सम्पादयन्तः तव समीपम् एमसि प्राप्तुमः ।

टिप्पणी—भरन्तः—भृ + शप् + शतृ । एमसि—'इदन्तो मसि'

हिन्दी व्याख्या—हे दोषावस्तः ! अपने स्वप्रकाश से अज्ञान रूप अन्धकार को स्वप्रकाश से आच्छादित करने वाले अग्नि-देव ! 'दिवे-दिवे' प्रतिदिन हम लोग आपके समीप नमन के साथ प्राप्त हो रहे हैं । अर्थात् हम सदा आपकी ही शरण में मानन्द विचरण करते हुए सन्तुष्ट रहें ।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम् ।

वर्धमानं स्वे दमे ॥ ८ ॥

पद-पाठः—राजन्तम् । अध्व॒राणा॑म् । गो॒पा॒म् । ऋ॒तस्य॑ । दी॒दिवि॑म् । वर्ध॑-

मानम् । स्वे । दमे ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—तम् राजन्तम् देदीप्यमानम् अध्वराणाम् हिसारहितानां शुभकर्मणां यज्ञानां गोपाम् रक्षकम् ऋतरथ दीदिविम् सत्यस्य प्रकाशकं स्वे दमे स्वकीये गृहे वर्धमानं सदैव शोभमानम् तम् अग्निं वयं प्राप्नुमः ।

टिप्पणी—दीदिविम्—दिव् धातो यङ्लुङन्तात् कि प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! आप सदा प्रकाशमान हैं । यज्ञों के रक्षक तथा कर्मफल के प्रकाशक हैं और अपने स्थान में निरन्तर वर्धमान रहते हैं ।

स नः पितॄन्सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।

सचस्वा नः स्वस्तये ॥ ६ ॥

पद-पाठः—सः । नः पि॒ताऽइ॒व । सू॒नवे॑ । अ॒ग्ने । सु॒उ॒पा॒यनः॑ । भ॒व । स॒च॒स्व
नः स्व॒स्तये॑ ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! त्वं नः अस्मदर्थं सूपायनः शोभनगमनः अनायासेन प्राप्तियोग्यः भव न्याः । अस्माकं च स्वस्तये कल्याणाय सचस्व अभिमतो भव । पितेव । यथा पुत्राय पिता सुप्रायो भवति कल्याणप्रदश्च । तथा त्वमपि भग ।

टिप्पणी—सचस्व—पच् + लोट् ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! आप कृपा करके हमारे लिए सहज दयालु और प्राप्ति के योग्य बने रहिए और हमारे कल्याण के लिये सदैव उपदेश करते रहिये जिससे अपने अभिमत पितृतुल्य आपको पाकर हम सदा ही आश्वस्त और प्रसन्न रहें ।

मण्डल १

सूक्त १६

देवता—अग्निर्मरुतश्च । ऋषिः—मेघातिथिः काण्वः छन्दः—गायत्री

प्रति॒ त्यं चारु॑म॒ध्वरं॑ गो॒पी॒थाय॑ प्र॒हूय॑से ।

मरु॑दि॒रग्नं॑ आ॒गहि॑ ॥ १ ॥

पद-पाठः—प्रति । त्यम् । चारुम् । अध्वरम् । गोपीथाय । प्र हूयसे ।

मरुद्भिः । अग्ने आगहि ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (चारुं त्यम् अध्वरम्) साकल्य-युक्तम् अङ्गवैकल्यरहितं त्यम् तथाविधं पवित्रं शुभं सौख्यकरम् अध्वरम् अहिंसया प्रतिष्ठितम् अस्माकं यज्ञं स्वीकृत्य (गोपीथाय) प्रतिलभ्य सोमपात्रय रक्षणायः श्रेष्ठेन्द्रियतर्पणाय त्वं प्र हूयसे प्रकर्षेण आहूयसे । त्वं (मरुद्भिः) मरुद्गणैः सह (आ गहि) पदार्पणं कुरु । आगच्छ ॥ १ ॥

टिप्पणी—चारुम्—चरतेरुण् प्रत्ययः । गोपीथाय—गो + पा + थक् । 'घुमास्था०' इतीत्वम् । रक्षणाय इति श्रीधरस्वामीः गोशब्दस्य इन्द्रियाथैऽपि—इति दयानन्दः । आ गहि=आ गच्छ । आङ्पूर्वस्य गच्छते मध्यमपुरुषे कवच्यते हि इत्यादेशः ।

(२) गोपीथ शब्द का अर्थ मैक्समूलर ने 'गंध का घूँट' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! प्रकाशस्वामी (त्यम् चारुम् अध्वरम्) आपको उस सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ में (गोपीथाय) सोम-पान के लिए, रक्षा के लिए (प्र हूयसे) आदर-श्रद्धा के साथ बुलावा भेजा गया है—बुलाया गया है । आप (मरुद्भिः) मरुद्गण के साथ (आ गहि) अवश्य पधारें । आने की कृपा करें ।

नहि देवो न मर्त्यो महस्तव क्रतुं परः ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

पद-पाठः—नहि । देवः । न । मर्त्यः । महः । तव । क्रतुम् । परः । मरुद्भिः ।

अग्ने । आ । गहि । २ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! (तव महः क्रतुम्) तव सम्बन्धितं महान्तं कर्म-व्यापारं क्रियमाणम् उल्लङ्घ्य (नहि देवः परः) नैव देवः परः उत्कृष्टो भवितुमर्हति (न मर्त्यः) नैव च तव कर्म उल्लङ्घ्य मानवः उत्कृष्टो भवितुं शक्नोति । मरण-स्वभावस्य मानवस्य कथं का ? यदा देवोऽपि जहाति देवत्वम् (मरुद्भिः अग्ने आ गहि) देवविशेषं मरुद्भिः सह हे अग्ने ! मदीयं कर्मजातं शोधयितुम् आयाहि आगच्छ ।

टिप्पणी—क्रतुम्—कृधातोस्तुन् । आगहि—गमधातो लोटि मध्यमपुरुषेण वचने । सेहि । 'बहुलं छन्दसि' शयो लोपः, 'अनुदात्तोपदेशः' अनुनासिकलोपश्च । 'असिद्धवदत्राभात् इतिः 'अतो हेः' इति हे लुङ्गन् ।

(२) पटिसन कहते हैं कि “देवता या मनुष्य तुम्हारी शक्ति का उल्लङ्घन नहीं कर सकता ।” इस प्रकार ‘ऋतु’ का अर्थ वे ‘शक्ति’ मानते हैं । ‘शतऋतु’ शब्द का अर्थ भी इसी हेतु वे ‘सौ मनुष्यों की शक्ति वाला’ करते हैं ।

हिन्दी व्याख्या—हे प्रकाश स्वरूप अग्ने ! आपसे सम्बन्धित कर्म का परि-
त्वाग करके न तो देवता देवत्व की प्राप्ति कर सकता है और न तो मनुष्य ही
उत्कृष्ट हो सकता है । हे अग्ने ! आप मरुद्गण के साथ पधारें ।

ये महो रजसो विदु विश्वे देवास अद्रुहः ।

मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ३ ॥

पद-पाठः—ये । महः । रजसः । विदुः । विश्वेः । देवासः । अद्रुहः । मरुत्-

ग्निः । अग्ने । आ । गहि ॥ ३ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे अग्ने ! ये मरुतः महो महतो रजसः उदकसंघातस्य
वर्षणविधिं विदुः जानन्ति तै मरुद्भिः त्वम् अस्मान् प्रति अनुकम्पया आयाहि
आगच्छ । कीदृशाः मरुतः विश्वेदेव सः सर्वे दिव्यगणोपेताः ‘सप्त गणा वै मरुतः’ इति
श्रवणात् । देवासः दिव्या विद्योतमानाः । अद्रुहः द्रोहरहिताः वर्षणविधिना सर्वोप-
कारित्वात् ।

टिप्पणी—अद्रुहः—नवपूर्वस्य द्रुहघातोः क्विप् ।

(२) पटिसन ‘रजसः’ का अर्थ आकाश करते हैं—‘जो महान् आकाश लोक
को जानते हैं । मैक्समूलर भी ‘रजः’ का अर्थ आकाश ही करते हैं ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्ने ! जो मरुद्गण (महो रजसः) महान् जल-संघात
की वर्षाविधि को जानते हैं । जो (विश्वेदेवासः) सभी प्रकाशमान देवता हैं (श्रुतियों
में कहा गया है कि मरुद्गण सात-सात के गण में रहते हैं) और जो (अद्रुहः) वर्षा
करके सर्वोपकारी होने के कारण निरन्तर द्रोह-रहित हैं, उन मरुद्गण के साथ हमारे
यज्ञ को शोभायमान कीजिये ।

य उग्रा अर्कमान् चुरनाघृष्टास ओजसा ।

मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ४ ॥

पद-पाठः—ये । उग्राः । अर्कम् । आनुचुः । अनाघृष्टासः । ओजसा ।

मरुद्भिः । अग्ने । आ । गहि ॥ ४ ॥

संस्कृत व्याख्या—(ये) मरुतः उग्राः अत्यन्ततीक्ष्णाः सन्तः अर्कम् पूजनीय-
मुदकम् आनृचुः अर्चितवन्तः अर्चन्ति वा वर्षया सम्पादयन्ति । तै स्तथाविधै मरुद्भि-
स्त्वमागहि आगच्छ । ते मरुतः कीदृशाः ? ओजसा तेजसा बलेन च अनाधृष्टासः
अनाभयिनः (आसमन्तात् विभेति इति आभयी न आभयी अनाभयी ते अनाभयिनः)
अतिरस्कृतस्वभावाः सर्वेश्वराः घर्षणशीलाः । प्रबलाः ।

टिप्पणी—उग्राः—उत्पूर्वस्य 'गुरी उद्यमने' 'गृ निगरणे' वा धातुः । अर्कम्—
अर्चनीयं जलम् । आनृचुः—ऋच् धातो लिति ।

(२) पटिसंन ने 'अर्क' का अर्थ 'गान' किया है । 'आनृचुः' का अर्थ भी
'गाना गाते हैं' किया है । 'मरुतः स्वर्काः' ऋ-७-३५-६ में सायण ने भी 'शुभ-
स्तुतियों से मुक्त' किया है । आयो वा अर्कः (शत० १०-६-५१) कह कर जल-
वाचक अर्क शब्द को माना गया है । कहा गया है—'अर्चन्तो वै मे कम् अभूत् इति
तदेव अर्कस्य अर्कत्वम् ।'

हिन्दी-व्याख्या—जो मरुद्गण (ओजसा) अपने बल-वैभव से (अनाधृष्टासः)
अतिरस्कृत हैं (निर्भय महाबली हैं) जो अत्यन्त उग्र स्वभाव के हैं (अर्कम् आनृचुः)
जो अर्चनीय जल की अर्चना करते हैं—वर्षा के द्वारा सम्पादन करते हैं, उन मरुतों
के साथ हे अग्ने ! आप आइये ।

ये शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासो रिशादसः ।

मरुद्भिर्गन् आ गहि ॥ ५ ॥

पद-पाठः—ये । शुभ्राः । घोरऽ वर्षसः । सुक्षत्रासः । रिशादसः । मरुत्-

र्षसः । अग्ने । आऽगहि ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—ये रुद्रपुत्रा मरुतः (शुभ्रा घोरवर्षसः सुक्षत्रासोरिशादसः)
शुभ्राः शुचयो रागद्वेषविवर्जिताः घोरवर्षसः उग्रशरीराः रौद्रस्वभावाः सुक्षत्रासः शोभ-
नधनबलोपेताः रिशादसः ये रिशन्ति मुर्धैव रोषणस्वभावास्तान् अदन्तीति हिंसकाना-
मपि हिंसकाः, तै रेवविधै मरुद्भिः हे अग्ने त्वमिहागच्छ ।

टिप्पणी—शुभ्राः—शुभधातो रक् । शोभन्ते इति शुभ्राः । घोरवर्षसः वर्ष
इति रूपनाम, घोरं वर्षो रूपं येषां ते घोर वर्षसः उग्ररूपधराः रिशादसः—रिशन्ति
हिंसन्ति ते रिशाः, तान् अदन्ति इति ते रिशादसः हिंसकानां भक्षकाः, घातकाः, रोग-
निवारकाः । सुक्षत्रासः=सुक्षत्राः, क्षत्रम्—बलम्, राज्यम्, धनम्, शोभनं क्षत्रं येषां
ते सुक्षत्राः. 'आज्जमेरसुक्' ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण (शुभ्राः) शुद्ध सात्विक स्वभाव वाले (घोर-
वर्षसः) उग्ररूपधारी (सुक्षत्रासः) धन-बल-वैभव से सम्पन्न सत्ता (रिशादसः) हिंसकों

के भी हिंसक (रोगों के निवारक) हैं । ऐसे मरुद्गण के साथ हे प्रकाशमय प्रभो ! आप हमारे अज्ञान का निवारण करें ।

ये नाकस्याधिरोचने दिवि देवास आसते ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

पद-पाठः—ये । नाकस्य । अधि । रोचने । दिवि । देवासः । आसते ।

मरुत्ऽभिः । अग्ने । आ । गहि ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—ये मरुतः नाकस्य सर्वानन्द प्रदस्य दुःखरहितस्य आदित्यस्य अधि उपरि दिवि द्योतनात्मके द्युलोके रोचने कान्तिप्रदे देवासः स्वयमपि प्रकाशित शरीरा आपते विद्यमानाः सन्ति, तै मरुद्भिः सह हे अग्ने ! त्वयस्मान् प्राप्तुहि ।

टिप्पणी—नाकस्य—कं० सुखम्, नास्ति यस्मिन् तदकम्, न अकम्—नाकम्, नाको वा तस्य (६-३-७५ 'नम्राणनपात्० इत्यादिना नलोपाभावः । रोचनम्—रुच दीप्तौ इत्यस्मात् 'अनुदात्तोत्पञ्च हलादेः' ३-२-१४६ इत्यादिना युच् प्रात्ययः ।

(२) पीटर्सन ने 'नाक' का अर्थ आकाश और 'रोचने' का अर्थ प्रकाशमान किया है । मैक्समूलर ने 'सूर्य' द्वारा प्रकाशित स्थानों में निवास करने वाले 'देवगण' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण दुःखाभाव से युक्त सूर्य के द्वारा प्रकाशित द्युलोक में जगमगा रहे हैं, जो स्वयं भी प्रकाश करने वाले देवगण हैं, उन महान् मरुद्गण के साथ हे अग्ने ! आप पधारें ।

य ईङ्घ्रयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ७ ॥

पद-पाठः—ये । ईङ्घ्रयन्ति । पर्वतान् तिरः । समुद्रम् । अर्णवम् । मरुत्ऽभिः ।

अग्ने । आ । गहि ॥ ७ ॥

संस्कृत व्याख्या—ये मरुद्गणाः पर्वतान् पर्ववन्तो मेघान् ईङ्घ्रयन्ति प्रेरयन्ति अर्णवं जलमयं समुद्रं तरङ्गोत्पादनैः तिरस्कुर्वन्ति कम्पाकुलं कुर्वन्ति । तैस्तथाविधं मरुद्भिः हे अग्ने ! त्वमिहाभव ।

टिप्पणी—समुद्रम्—सम् पूर्वस्य 'उन्दी क्लेदने' इति धातोः रक् प्रत्ययः । पर्वतान्—मेघान् । मत्वर्थीयस्तकारः, पर्वतः पर्ववान् । पर्वं पुनः पृणातेः । अर्णवम् = अर्णांसि जलानि । मत्वर्थीयो वकारः अर्णांसि प्रचुराणि अतिशयानि सन्ति यस्मिन् सौण्विः ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण घने जलार्द्र मेघों को इधर-उधर प्रेरित करते हैं तथा तरङ्गोत्पादन से समुद्र को भी तिरस्कृत करते रहते हैं, उन मरुद्गण के साथ हे अग्ने ! आप यहाँ पधारें ॥

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्र मोजसा ।

मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥

पद-पाठः—आ । ये । तन्वन्ति । रश्मिभिः । तिरः । समुद्रम् । ओजसा ।

मरुद्भिः । अग्ने । आ । गहि ।

संस्कृत व्याख्या—ये खलु मरुतः रूहपुत्राः रश्मिभिः सूर्य-किरणैः सह आ तन्वन्ति आकाशं व्याप्नुवन्ति । अथ च ओजसा स्वसाहसेन समुद्रं तिरस्कुर्वन्ति, तैः मरुद्भिः त्वं हे अग्ने ! अस्मान् आगच्छ ॥ ८

टिप्पणी—रश्मयो रमणात् । ओजो मनोबलम् ।

हिन्दी व्याख्या—जो मरुद्गण सूर्य की किरणों तथा अपने मनोबल के सहारे सारे आकाश में फैल जाते हैं तथा जो नयी-नयी तरंगों से उत्पादन से समुद्र को कम्पाकुल करते रहते हैं, उन रूहपुत्रों (मरुतों) के साथ शीघ्र कृपा करके हे अग्ने ! आप पधारिये ।

अभि त्वा पूर्वं पीतये सृजामि सोम्यं मधु ।

मरुद्भि रग्न आगहि ॥ ९ ॥

पद-पाठः—अभि । त्वा । पूर्वपीतये । सृजामि । सोम्यम् । मधु । मरुत्-

भिः । अग्ने । आ । गहि ॥ ९ ॥

संस्कृत व्याख्या—पूर्वपीतये पूर्वकाले पानाय लब्धवृत्तये त्वा त्वां प्रति सोम्यं मधु सोम्यता सम्पादकं मधुरं सोमरसं हे अग्ने ! अभिसृजामि अभिमुखं सम्पादयामि त्वमपि मरुद्भिः सह आगहि आगच्छ ।

टिप्पणी—पूर्वपीतये—पूर्वा चासौ पीतिश्च पूर्वपीतिः तस्यै पूर्वपीतये । सोम्यम्—सोमम् अर्हति, इति यत् । मधु—‘मनु अवबोधने’ उपत्ययः, न कारस्य धकारः । छन्दः पुनर्थं ‘सोम्यम्’ इत्यत्र ‘सोमियम्’ इति पाठः करणीयः ।

हिन्दी व्याख्या—(पूर्वपीतये) सभी देवताओं में प्रथम-पान करने के लिये हे अग्ने ! (त्वा अभि सृजामि) आप के ही लिये (सोम्यं मधु) सोम्य-गुणों को लाते

वाले सोमरथ की मधुर सर्जना कर रहा हूँ । अतः आप मरुद्गण के साथ अविलम्ब पधारें ।

मण्डल १

वरुण-सूक्तम्

सूक्त २५

ऋषि—शुनः शेष आजिगर्तिः । देवता वरुण; छन्दः—गायत्री

१—

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम् ।

मिनीमसि द्यवि द्यवि ॥ १ ॥

पद-पाठः—यत् । चित् । हि । ते । विशः । यथा । प्र । देव । वरुण ।

व्रतम् । मिनीमसि । द्यविऽद्यवि ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! यथा विशः क्रियाकुशलाः खल्वपि प्रजाः शुभे कर्मणि यदा कदा प्रमादं कृत्वा क्लेशं भजन्ते तथा वयमपि ते त्वद्विषये यच्चिद्धि अज्ञानवशाद् यत् किञ्चित् द्यवि द्यवि दिने दिने व्रतं प्रमिनीमसि प्रमादेन विनाश-यामः । तत् समग्रं व्रतं प्रमादराहित्येन अस्माकं शुभं क्विति व्यज्यते ।

टिप्पणी—मिनीमसि—मीज् हिंसायाम् क्रयादिः, उत्तम पुरुष बहुवचने 'मीनाते निगमे' इतीकारह्रस्वता । श्ना इत्याकारस्य 'ईहल्यधोः' इतीकारः । 'इदन्तो मसि' ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! जिस प्रकार प्रमाद आदि के कारण (विशः) प्रजानेन प्रमाद-वश त्रुटियाँ करते तथा फलस्वरूप नाना प्रकार से पीड़ित होते हैं । उसी प्रकार 'द्यवि द्यवि' प्रतिदिन हम लोग भी प्रमाद कर जाते हैं और आपके व्रत को 'मिनीमसि' हनन कर देते हैं । अज्ञान के कारण (यत् चित् हि) जो कुछ ऐसा अशुभ हमसे हो गया है या हो जाता है, उसे आप क्षमा करें तथा जिसमें हमारा शुभ हो उसे सम्पादन करके हमें आनन्दित करें ।

२—

मा नो वधाय हृत्नवे जिहीष्णानस्य रीरधः ।

मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

पद पाठ—मा । नः । व॒धाय॑ । ह॒त्नवे॑ । जि॒हीका॑नस्य ।

री॒रधः॑ । मा । ह॒णान॑स्य । म॒न्यवे॑ ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! 'जिहीकानस्य हत्नवे' पापं कृतवतः मनुष्यस्य हन्तुः 'वधाय' त्वत्कृतृकाय 'मा नो रीरधः' अस्मान् संसिहान् तत्परायणान् मा कुरु । हणानस्य' कुपितस्य तव 'मन्यवे' मा अस्मान् रीरधः कोपपात्रतां नो न नय ।

टिप्पणी—वधाय—हन् धातोः अप् प्रत्ययः, वधादेशः । हत्नवे-हन्धातोः कुः प्रत्ययः औणादिकः, नकारस्य च तकारे हन्तुः । चतुर्थी । जिहीडानस्य—हेडु अनदरे लिटः कानच् । द्वित्वे लोपे ह्रस्व-श्चुत्व-जश्त्वानि । एकारस्य च ईकारश्-छान्दसः । रीरधः—राधसंसिद्धौ लुङ् । मध्यम पुरुषैकवचने चङ्, गिलोपः । 'न माङ्योगे' इत्यडमाक । हणानस्य-हणीङ् रोषणे लज्जायां च, शानच् ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! 'जिहीडानस्य हत्नवे' अनदर करने वाले व्यक्ति के प्रति हननशील स्वभाव वाले 'वधाय मा नो रीरधः' आपके रोष का पात्र हम न बने । हमको अपने क्रोध के लिये उपयुक्त न समझे । मा हणानस्य मन्यवे क्रुद्ध हुये आपके मन्यु के वशीमूत हम न हो ।

३— वि॒म॒डीकाय॑ ते॒ मनो॑ र॒थीर॑श्वं न॒ संदि॑तम् ।

गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥३॥

पद पाठ—वि । म॒डीकाय॑ ते । मनः । र॒थीः । अ॒श्वम् ।

न । सं॒दि॒तम् । गी॒र्भिः । व॒रुण॑ । सी॒महि॑ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! 'मडीकाय' प्रीतितृप्तिहेतवे 'ते, तव 'मनः' हृदयं 'गीर्भिः' स्तुताभिः जाग्भिः 'वि सीमहि' विवधनीमः' प्रसाद सम्भूतं कुर्मः । यथा त्वं कृपयाऽनुग्रहं करिष्यसीति तथा कुर्मः । यथा रथी रथ स्वामी संदितम् अश्वं दूरादागमनेन । श्राण्तं व्यथितम् अश्वं घासाहारा दिना सुखयति, स्निग्धं प्रसन्नं करोति तथा वयं त्वां सुखोद्योतं सम्पादयामः ।

टिप्पणी—सन्दितम्—दोऽवखण्डने, निष्ठा । 'द्याति स्यति' इतीकारादेशः । विसीमहि—पिञ्ज् वन्धने, लिङ् व्यत्ययेनात्मनेपदम् ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! 'मडीकाय' सुख प्राप्ति के लिये गीर्भिः—प्रसन्न वा ग्विलास के द्वारा 'ते मनः' आपके हृदय को 'विसीमहि' हम बांधते हैं—

सानन्द अपनी ओर उन्मुख करते हैं । जिस प्रकार 'रथीः' रथ का स्वामी 'सन्दिताम् अश्वम्' हारे-थके खण्डित अपने अश्व को घास अन्न जल आदि से प्रसन्नातृप्त करता है उसी प्रकार हम भी आपको अपनी ओर परमानन्दित करना चाहते हैं ।

४— परा हि मे विमन्यवः पतन्ति वस्य इष्टये ।

वयो न वसतीरूप ॥४॥

पद-पाठ—परा । हि । मे । वि० म० न्यवः । प० त० न्ति ।

वस्य s इष्टये । वयः । न । व० स० तीः । उप ।

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण । मे मम विमन्यवः आक्षेप रहिता मतयः वस्य इष्टये वसीयसोऽतिशयेन ध्रुवतो जीवनस्य प्राप्तये परा पतन्ति अभिमुखा आवृत्तिर-हिता आश्रयन्ते । वयो न पक्षिण इव । ते यथा वसती नीडानि निवासस्थानानि प्रति पूर्ण विश्रामाप्तये गच्छन्ति । उदितायां वति तिमिरायां मती न कदापि मुखमयं जीवनं परिहीयते । इति व्यज्यते ।

टिप्पणी—वस्यः वसुमत् शब्दादीयसुन् विन्मतो लुक्' यकार लोपश्छान्दसः । वसतीः—'वहिवस्यतिम्य षिच्त्' इत्यौणादिकः तिप्रत्ययः ।

(२) राथ ने 'विमन्यवः' का अर्थ स्तुतियाँ अथवा कामनाये की है । वस्य का अर्थ ग्रासमान ने भाग्योदय किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! मेरी आक्रोश रहित भावनायें 'वस्य इष्टये' धनागम की प्राप्ति के लिये 'परा पतन्ति' आपकी ओर निरन्तर उन्मुख हो रही हैं । सुखमय जीवन निरन्तर ही बना रहता है । 'वयो न' पक्षियों के समान । जिस प्रकार सायं काल होने पर पूर्ण विश्राम के लिये पक्षी अपने (वसतीः उप) निवास की ओर अभिमुख होते हैं उसी प्रकार कषाय-रहित बुद्धि में भगवद् भक्ति के उदित होने पर निरन्तर सुख-शान्ति बनी रहती है ।

५— कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे ।

म० की० कायो० रुच० क्षसम् ॥ ५ ॥

पद-पाठ— कदा । क्षत्रश्रियम् । नरम् । आ । वरुणम् ।

करामहे । मृडीकाय । उरुक्षसम् ॥ ५ ॥

संस्कृत व्याख्या—‘क्षत्रश्रियम्’ ज्ञत्रमिति बलनाम, बलाश्रयभूतम् ‘उरुक्षसम्’ बहुदशिनम् ‘नरम्’ नेतारम् ‘वरुण’ वरणीयं देवं कदा कस्मिन् समये ‘मृडीकाय’ सुखाय ‘आ करामहे’ आत्मवशं स्वकीयं करवाम । कदाऽसौ अस्मदीयो भूत्वा सुखयिष्यतीति व्यज्जते ।

टिप्पणी—क्षत्रश्रियम्—क्षत्राणि श्रयतीति क्षत्रश्रीः, विषय दीर्घश्च । तम् क्षत्रश्रियम् । नरम्—नृ नये अप् । करामहे—व्यत्ययेन उप्रत्ययस्य स्थाने शप् । उरुक्षसम्—क्षो बहलं शिच्च, इत्यसुन् । शिच्चेति ख्यादेशो न । मृडीकाय—मृड सुखे ईकन् प्रत्ययः ।

(२) मैक्स मूलर और पीटर्सन ‘क्षत्रश्रियम्’ का अर्थ वीरजयी किया है । नरम् का अर्थ मनुष्य ही किया है ।

हिन्दी व्याख्या—‘कदा’ वह माननीय समय कब आवेगा जबकि ‘उरुक्षसम्’ समस्त जग के द्रष्टा, ‘नरम्’ नेता, ‘क्षत्रश्रियम्’—महान् बलशाली वरुण को हम ‘मृडीकाय’ आनन्द प्राप्ति के लिए ‘आ करामहे’ अपना कह सकेंगे । वरुण हमारी सुख-सुविधा के लिए आत्मीय बन जायेंगे ।

६— तदित्समानमाशाते वेनन्ता न प्र युच्छतः ।

धृतव्रताय दाशुषे ॥ ६ ॥

पद-पाठ— तत् । इत् । समानम् । आशातेइति । वेनन्ता । न ।

प्र । युच्छतः । धृतव्रताय । दाशुषे ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—धृतव्रताय धृतं व्रतं येन तस्मै दाशुषे हविर्दत्तवते समर्थाय वेनन्तो कामयमानो मित्रावरुणौ समानं तद् इत् दन्तं तदेव हविराशाते अशुवाते न प्रयुच्छतः न कदाचिदपि प्रमादं कुरुतः ।

टिप्पणी—आशाते—अशु व्याप्री लिट् प्रथम पुरुष द्विवचने नुडागमो न अन्त्यमागमशास्त्रमिति वचनात् । वेनन्ता-वेनतिः कान्तिकर्मि, शतृ प्रथमा द्विवचने आकार शृङ्गन्दसः । दाशुषे-दाष्ट दाने क्वसुः । द्वित्वाभावोऽनिट्वं च निपातनात् । धृतव्रताय धृतव्रत शब्दो भक्तार्थं प्रयुक्तः व्रतपालकाय ।

हिन्दी व्याख्या—‘धृतव्रताय दाशुषे’ नियमाचरण का पालन और दानशील व्यक्ति के लिए ‘वेनन्ता’ आनन्दायक कामना करने वाले मित्र और वरुण ‘तद् इत् समानम् आशाते’ सामान्य रूप से प्राप्त और सुलभ होते हैं। ‘न प्र युच्छतः’ हवि और प्रार्थना की स्वीकृति में कभी भी प्रमाद नहीं करते।

७— वेद॑ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् ।

वेद॑ ना॒वः स॒मुद्रि॑यः ॥ ७ ॥

पद-पाठ— वेद॑ । यः । वी॒नाम् । प॒दम् । अ॒न्तरि॑क्षेण ।

पत॑ताम् । वेद॑ । ना॒वः । स॒मुद्रि॑यः ॥ ७ ॥

संस्कृत—टीका—यः वरुणः अन्तरिक्षेण आकाशमार्गेण गच्छतां पतनशीलानां वीनां खगानां पदं लिङ्गं वेद जानाति तथा समुद्रियः समुद्राभिजनो वरुणः सलिले गच्छन्त्या नावः जलयानभूतायाः पदं चिह्नं वेद जानाति । स एवास्मान् भवबन्धनान् मोचयुत, इति व्यज्यते ।

टिप्पणी—समुद्रियः—समुद्रे भवः इत्यर्थे ‘समुद्राभ्राद्घ’ इति घः ।

हिन्दी व्याख्या—जो वरुण ‘अन्तरिक्षेण’ आकाशमार्ग से ‘पतताम्’ गतागति करने वाले ‘वीनाम्’ विहंगमों के ‘पदम्’ चिह्न को ‘वेद’ यथावत् जानते हैं तथा जो ‘समुद्रियः’ समुद्र निवासी होने के कारण ‘नावः’ गतागति करने वाले जल-वाहनों को भी यथावत् जानते हैं । वह वरुण देवता हमें इस भव-बन्धन से मुक्त करें, ऐसी व्यञ्जना है तथा आकाश-मार्ग एवं जल-मार्ग के सम्बन्ध में विद्या-रुचि की प्रेरणा दी गयी है ।

८— वेद॑ मा॒सो धृ॒तव्र॑तो द्वा॒दश॑ प्र॒जाव॑तः ।

वेद॑ य उ॒पजा॑यते ॥ ८ ॥

पद-पाठ— वेद॑ । मा॒सः । धृ॒तव्र॑तः । द्वा॒दश॑ । प्र॒जाव॑तः ।

वेद॑ । यः । उ॒पजा॑यते ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—स समग्रैश्वर्यसम्पन्नो वरुणः ‘धृतव्रतः’ धृतानि नाना विधानि शुभानि व्रतानि येनःसौ स्वीकृत शुभकर्मा ‘प्रजावत द्वादश मासः वेद’ यथा-काल मुत्पद्यामानान् संवत्सरे नियन्त्रितान् मासान् यथावज्जानाति । यश्च त्रयोदशोऽ-

धिको मास उपजायते स्वत एवोत्पद्यते तमप्यसावेव जानाति ।

टिप्पणी—मासः—‘पदन्तो०’ इति मासस्य मस् आदेश उपजायते—उपपूर्वात् जनधातोः कर्मकर्त्तरि लट् कर्मवद्भावाद् आत्मने पदं यक् प्रत्ययः ।

(२) द्वादश को लेटिन में द्वादसिम Du-o-de-cim कहते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—समग्र ऐश्वर्यो से परिपूर्ण वह वरुण ही नाना प्रकार से शुभकर्मों का धारण-पोषण करने के कारण धृतव्रत हैं । वही प्रजावतः द्वादश मासो वेद’ सम्बत्सर में नियाद्वादश (१२) मासों को यथावत् जानते हैं और यह (उप-जायते) उत्पन्न होने वाले तेरहवां मास (माह) (तीसरे-चौथे वर्षों में प्रादुर्भूत होने वाला) है उसे भी वह देव ही (वेद) सम्यक् प्रकार से जानते हैं ।

६— वेद वातस्य वर्तनिमुो ऋष्वस्य बृहतः ।

वेदा ये अध्यासते ॥ ६ ॥

पद-पाठः— वेद । वातस्य । वर्तनिम् । उरो । ऋष्वस्य । बृहतः ।

वेद ये । अधिआसते ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं खलु सर्वसम्पन्नो वरणीय वरुणः ‘उरोः’ विस्तीर्णस्य ‘ऋष्वस्य’ लोचनानन्ददायिनः ‘बृहतः’ अति महतः ‘वातस्य’ वायोः ‘वर्तनिम्’ निष्क्रमण-मार्गं वेद’ सूक्ष्मतया जानाति । तथा च ‘ये’ देवाः तत्र ‘अधि आसते’ द्युलोकेऽथवा परिवहमार्गेऽवास्थिताः तानपि असौ देवो वरुणः (वेद) यथाक्रमं जानाति ।

टिप्पणी—वातः—वा धातोरोणादिकः तन् प्रत्ययः । वर्तनिः—‘वृत्तेष्व’ इत्योणादिकः अनिप्रत्ययः । वर्तते यस्मिन्निति वर्तनिः, मार्गं एकपदीवा । ऋष्वः—ऋषि गतो मत्वर्थीयो वः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऋग्वैश्वस्यसम्पन्न, सबसे वरणीय वरुण देवता ‘उरोः’ विस्तीर्ण ‘बृहत्’ अत्यन्त विशाल ‘ऋष्वस्य’ सर्व सुन्दर ‘वातस्य’ वायु के ‘वर्तनिम्’ मार्ग को ‘वेद’ सूक्ष्मता के साथ जानते हैं । और वहाँ पर ‘अधि आसते’ जो देवगण द्युलोक में अथवा वायु के परिवह मार्ग में अवस्थित हैं, उन्हें भी वह वरुण देवता ‘वेद’ यथावत् जानते हैं ।

१०— निषसाद धृतव्रतो वरुणः प्रस्त्याइस्वा ।

साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥

पद-पाठः—

नि । ससाद । धृतव्रतः । वरुणः । पस्त्यासु । आ ।

साम्राज्याय । मुक्तुः ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—स 'मुक्तुः' सुन्दरकर्मा 'धृतव्रतः' व्रतधारको वरुणः 'पस्त्यासु' दिव्यासु प्रजासु 'साम्राज्याय' साम्राज्यप्राप्तिहेतवे (आ नि ससाद) स्वकीयया जुष्टया स्थित्या निवासं विदधाति ।

टिप्पणी—निपसाद-पदलुट् विशरण गत्यवसादनेषु लिट् 'सदिरप्रवे' इति-पत्वम् । पस्त्यासु-प्रजासु ।

हिन्दी-व्याख्या—'धृतव्रतः मुक्तु' प्रजा के कल्याण की भावना से परिपूर्ण, सुन्दर कर्मों से विभूषित 'वरुण' वरुणदेवता 'साम्राज्याय' सुखकर स्वराज्य की प्राप्ति के लिये 'पस्त्यासु' दिव्य प्रजा-जन में (आ नि ससाद) अपनी पावन मर्यादा के साथ अवस्थित हैं । प्रजा के लोग अपने भीतर दिव्यता-भव्यता लाकर उत्तम स्वराज्य-सुख को प्राप्त करें, यह व्यंग्य है ।

११—

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वा अभि पश्यति ।

कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

पद-पाठः— अतः । विश्वानि । अद्भुता । चिकित्वान् । अभि ।

पश्यति । कृतानि । या । च कर्त्वा ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—वरुणकृपयाऽनुगृहीतः पुरुषः 'चिकित्वान्' चेतनावान् सन् 'अतः' वरुणादेव 'विश्वानि अद्भुता' सर्वाणि आश्चर्यकराणि विषयवस्तूनि 'अभि पश्यति' साक्षात्करोति । कानि तानि ? यानि 'कृतानि' श्रीवरुणेन निमित्तानि 'या च कर्त्वा' यानि चाश्चर्याणि करणीयानि ।

टिप्पणी—चिकित्वान्-कित जाने, लिट् कृसुः । कर्त्वा-कृत्यार्थे तवै केन०' इति त्वन् ।

हिन्दी-व्याख्या—श्री वरुण देवता की कृपा से अनुगृहीत पुरुष 'चिकित्वान्' प्रज्ञावान् बन कर 'अतः' वरुण ही निमित्त 'विश्वानि अद्भुता' समग्र ऐश्वर्यपूर्ण पदार्थों को 'अभिपश्यति' प्रत्यक्ष रूप से देखता है । 'कृतानि या च कर्त्वा' जो आश्चर्य निमित्त हो चुके हैं तथा जो अभी करणीय-श्रेणी में हैं ।

१२— स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।

प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ १२ ॥

पद-पाठ—सः । नः । विश्वाहा । सुक्रतुः । आदित्यः ।

सुपथा । करत् । प्र । नः । आयूषि । तारिषत् ॥ १२ ॥

संस्कृत व्याख्या—सः सुक्रतुः शोभनकर्मा 'आदित्यः' तेजोमयः वह्णः विश्वाहा' विश्वेषु अहःसु सर्वेषु दिनेषु 'नः' सुपथा करत्' अस्मान् उचितेन मार्गेण शोभनो-पायोयेतान् करोतु । अथ च 'नः' अस्माकम् 'आयूषि' जीवनानि 'प्रतारिषत्' प्रवर्धयतु ।

टिप्पणी—सुपथा—'न पूजनान्' इति रच् प्रत्ययस्य निषेधः । आदित्यः—अदितेः पुत्रः । करत्—कृ + लेट् । उ इत्यरम स्थाने शय् । 'इतश्च' इकारलोपः । 'बहुलं छन्दसि' इति अट् निषेधः । तारिषत्—तृ + णिच् + लेट् । प्र णः—'उपसर्गाद् बहुलम्' इति नकारस्य णकारः ।

हिन्दी व्याख्या—'स विश्वाहा सुक्रतुः आदित्यः' वह् मुन्दरकर्मकारी तेजोमय भगवान् वरुण सभी दिनों में सुपथा नः करत्' हमारे लिये उचितमार्ग से तथा सुन्दर उपायों से संयुक्त करें और 'नः' हमारे 'आयूषि' जीवन को 'प्रतारिषत्' निरन्तर सम्पन्न बनायें ।

१३— विभ्रच्छापि हिरण्यं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।

परि स्पशो निषेदिरे ॥ १३ ॥

पद-पाठ—विभ्रत् । द्रापिम् । हिरण्यम् । वरुणः । वस्त ।

निः ऽ निर्जम् । परि । स्पशः । नि । सेदिरे ॥ १३ ॥

संस्कृत व्याख्या—स सर्वे वरणीयः वरुणः 'हिरण्यम्' सुवर्णमयं 'द्रापिम्' कवचम् 'विभ्रत्' धारयन् 'निर्णिजम्' स्वकीय बलाधानभूतं दृढं शरीरं 'वस्त' वासयसि आवृणोति । तस्य 'स्पशः' स्वर्णस्पर्शिनो रश्मयः किरणाः अस्य (परि) पारितः सर्वतः 'नि सेदिरे' अवस्थिताः ।

टिप्पणी—विभ्रत्—भृ + शत् । 'नाभ्यस्ताच्छतुः' इति तुम् निषेधः । द्रापि द्रा + विच् + पुक् औणादिक इप्रत्ययः । द्रापयति इषून् विफलीकरोति इति द्रापिः ।

हिरण्यः—हिरण्यशब्दाद् विकारे मयर् । मकारलोपो निपातनात् वस्त—वस आच्छादने अदादिः । लङ् । शपो लुक् । अडभावः । निर्णिजम्—नेनेक्ति परिमाष्टि इति निजं शरीरम् । निरिति उपसर्गः ।

(२) पीटर्शन के मत में 'स्पशः' का अर्थ यहाँ पर गुप्तचर होना चाहिये । माघ ने भी स्पश का अर्थ दूत ही लिया है—'शब्द विश्वेव नो भाति राजनीतिरपस्पश ।'

हिन्दी व्याख्या—सभी से स्वीकार करने योग्य स्तुत्य वरुण 'हिरण्यं द्रापिम्' स्वर्णमय कवच को 'विभ्रत्' धारण किये हुए 'निर्णिजम्' अपने बलिष्ठ शरीर को आवृत (वस्त) रखते हैं । उनकी स्वर्णसार्णी (स्पशः) किरणें (परि) सभी ओर को (नि से दिरे) जगमगा रही हैं ।

१४— न यं दिप्सन्ति दिप्सन्तो न द्रुह्वाणो जनानाम् ।

न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

पद-पाठः—न । यम् । दिप्सन्ति । दिप्सवः । न द्रुह्वाणः । जनानाम् ।

न । देवम् । अभि ऽ मातयः ॥ १४ ॥

संस्कृत व्याख्या—यं वरुणं तेजोमयमिव दुर्धर्षमिव प्रभास्वरं दृष्ट्वा दिप्सवो हिंसकाः क्रूरा वैरिणः त्रस्ताः सन्तः 'न दिप्सन्ति' स्वकीयां दिप्सां हिंसाभावनां भरित्यजन्ति । जनानां मध्ये ये 'द्रुह्वाणः' द्रोहपरायणाः ते ऽपि न दिप्सन्ति न द्रोहमाचरन्ति । 'अभिमातयः' पापकर्माणि खल्वपि तं देवं वरुणमभिनिमात्य संव्रस्ताः चकिता भयविह्वला जायन्ते । वरुणस्य प्रकाशमानं परिधि न स्पृशन्ति ।

टिप्पणी—दिप्सन्ति—दम्भ + सन् प्रथमपुरुषबहुवचने 'सनीवन्तः' इडभावपक्षे 'दम्भ इच्च' । दत्वभावश्छान्दसः, अन्यथाधिप्सति । दिप्सवः—'सनाशंसभिक्षुः' इति उपसर्गः । द्रुह्वाणः—द्रुह—जिघांसायाम् इतिधातोः क्वन्तिप् । अभिमातयः—अभिभूय मीनाति हिनस्ति इति अभिमातिः । मीम् हिंसायाम् क्तिन् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस तेजोमय दुर्धर्ष प्रभास्वर वरुण को देखते ही 'दिप्सवो न दिप्सन्ति' क्रूर शत्रु भी अपनी हिंसा-भावना का परित्याग कर देते हैं । 'द्रुह्वाणः' द्रोहपरायण, तीक्ष्णस्वभाव वाले भी अपनी द्रोह-भावना को छोड़कर मृदु बन जाते हैं 'अभिमातयः' तिरस्कार करके पापाचरण करने वाले भी त्रस्त होकर भय-विह्वल हो जाते हैं और वरुण के प्रकाशमान परिधि का स्पर्श नहीं कर पाते हैं । वरुण सर्वसंरक्षक और पालक हैं । ऐसा विश्वास करके उनकी उपासना करनी इष्ट है ।

१५—

उत । यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे अमाम्या ।

अस्माकं मुदरेष्वा ॥ १५ ॥

पद-पाठः—उत । यः । मानुषेषु । आ । यशः । चक्रे । अमामि । आ ।

अस्माकम् । उदरेषु । आ ॥ १५ ॥

संस्कृत व्याख्या—यो वरुणः मानुषेषु जनेषु भोगापवर्गाय यशः शौर्यादिना जायमानम् अन्नं चक्रे । यश्च असामि आचक्रे समयं सम्पक् कृतवान् न किमपि तस्य न्यूनमस्ति । स एववरुणः अस्माकं उदरेषु अलपाकारं पाचनशक्तिं स्थापितवान् ।

टिप्पणी—यशः—यशः शब्दोऽभान्नवाची । विषेपतस्तु शौर्यादिना जायमाना प्रशंसा 'यशः' इति कथ्यते । दानादिना च जायमाना प्रशंसा कीतिरिति । असामि—सामि इत्यव्ययम् अर्घार्ये वर्तते । असामि—सम्पूर्णम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस वरुण ने भोग और अपवर्ग के लिए शौर्यादि से उत्पन्न 'यश' अन्न को 'चक्रे' निमित्त किया और 'असामि आ चक्रे' जो कुछ बनाया उसमें किसी प्रकार की अल्पता नहीं छोड़ी । उसे सभी प्रकार से पूर्ण और पूजित बनाया । उसी वरुण ने (अस्माकम् उदरेषु आ) हमारे उदर में भी अन्न-पाक के लिए पाचन-शक्ति को स्थापित किया ।

१६—

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूती रनु ।

इच्छन्तीः उरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

पद-पाठः—परा । मे । यन्ति । धीतयः । गावः । न गव्यूती । अनु ।

इच्छन्तीः । उरु चक्षसम् ॥ १६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—'उरुचक्षसम्' द्रष्टारं बहुभिर्द्रष्टव्यं च वरुणम् 'इच्छन्तीः' कामयमानाः मे 'धीतयः' बुद्धयः 'परा यन्ति' निवृत्तिरहिताः प्राप्नुवन्ति । 'गावो न' गाव इव । यथा गावः 'गव्यूतीः अनु' स्वकीयानि गोष्ठानि अनुलक्ष्य निवृत्तिरहिताः सपुलका गच्छन्ति तथा ।

टिप्पणी—गव्यूतिः—गो + यु + क्तिन् । उकारस्य दीर्घता पृषोदरादित्वात् । गावो यूयन्ते यत्र । उरुचक्षसम्—उभय चक्षुषं दर्शनं यस्य स उरुचक्षाः, तम् ।

हिन्दी-व्याख्या—'उरुचक्षसम्' सब के द्रष्टा अत्यन्त दर्शनीय वरुण को 'इच्छन्ती' अत्यन्त कामना से चाहने वाली हमारी 'धीतयः' चित्तव्यक्तियों 'परा यन्ति'

उन्मुख होकर प्राप्त हो रही हैं। 'गावो न' गायों के समान। जिस प्रकार गायें 'गव्यूतीः अनु' अपने निवास-स्थान की ओर = गोष्ठ की ओर अनुलक्ष्य करके सानन्द जाती हैं उसी प्रकार मेरी चित्तवृत्तियाँ निवृन्ति रहित होकर वरुण की ओर ही सदा उन्मुख रहती हैं।

१७— सं नु वोचावहै पुन यतो मे मध्वाभृतम् ।

होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥

पद-पाठः—सम् । नु । वोचावहै । पुनः । यतः । मे । मधु ।

आ ऽ भृतम् । होता ऽ इव । क्षदसे । प्रियम् ॥ १७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! एहि शीघ्रं प्रान्नुहि । आवां 'पुनः नु' संवोचावहै' परस्परं वार्तां मिश्रयावः । 'यतः' यतोहि 'मे' मम 'मधु' आभृतम् मधुरं माधुर्योपेतं हविः भोज्यम् आभृतम्, सन्निहितं सभ्यादितम् । त्वमपि 'प्रियं' रुचिकरं हविः 'क्षदसे' अश्नामि कथमिव ? होता इव । स यथा प्रचुरं मधुरं हविः शेषमासाद्य तृप्तिकरं रुचिपूर्णम् अश्नाति तथा । उभावावां तृप्ती त्वं च अहं च । साम्प्रतं मंत्रान् हृदय निःस्तान् निश्चितान् मिश्रयावः ।

टिप्पणी—वोचावहै—ब्रुवो वचिरादेशः । 'उत्तमपुरुष द्विवचने' आभृतम्—द्रुभुञ्च् धारणपोषणयोः, निष्ठा क्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! आप आइये 'पुनः नु' संवोचावहै' हम दोनों मिल कर परस्पर कल-मधुर आलाप करें । 'यतः' क्योंकि 'मे' मेरे लिये 'मधु' आभृतम्' अत्यन्त मधुर रुचिकर भोजन-सामग्री उपलब्ध है । गृहोपकरण—चिन्ता से मैं मुक्त हूँ और आप भी 'क्षदसे प्रियम्' प्रिय हवि से प्रसन्न और तृप्त हैं 'होतेव' जिस प्रकार होता यज्ञशेष की प्रचुर-मधुर सामग्री से प्रसन्न और तृप्त रहता है, उसी प्रकार हम दोनों पूर्ण तृप्त और निश्चिन्त हैं । अब हृदय से, मन से, मनीषा से बुद्धि-मार्जन का ही प्रसङ्ग है ।

१८— दर्शं नु विश्व दर्शतं दर्शं रथुमधि क्षमि ।

एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

पद-पाठ—दर्शम् । नु । विश्व ऽ दर्शतम् । दर्शम् । रथम् । अधि ।

क्षमि । एता । जुषत । मे गिरः ॥ १८ ॥

संस्कृत व्याख्या—अहं तं 'विश्वदर्शतम्' वरणीयं रमणीयं सर्वदर्शनीयं वरुण दर्शम् नु' दृष्टवान् ननु । नेत्रसाफल्यं मे लब्धम् । 'अधि क्षमि' अस्या रमणीयायां क्षमायां पृथ्व्यां 'रथम्' वरुणस्य शोभनं रथं बहुधा ऽ ह ऽ दर्शम्' दृष्टवानस्मि । 'एता मे गिरः' एतानि मे शंसनानि वरुणः प्रीत्या 'जुषत' स्वीकरोति ।

टिप्पणी—दर्शम्—दृश—लुङ् । उत्तमपुरुषैकवचने । अडभावः जुषत—जुषी प्रीतिसेवकयोः ।

हिन्दी व्याख्या—मैंने 'विश्वदर्शतम्' विश्व दर्शनीय वरुण को 'दर्श न' देख कर नयन-लाभ प्राप्त किया है । 'क्षमि' पृथ्वी पर 'अधि' अधिकता से 'रथम् दर्शम्' वरुण के कल्याण-रमणीय रथ को देखा है । वरुण ने 'एता में गिरः' मेरी स्तुत्य वाणी को 'जुषत' सर्वदा प्रीति से स्वीकार किया है ।

१६— इमं मे वरुण श्रुधि हवमद्या च मृडय ।

त्वामवस्यु राचके ॥ १६ ॥

पद-पाठ—इमम् । मे । वरुण श्रुधि । हवम् अद्य । च ।

मृडय । त्वाम् । अवस्युः । आ । चके ॥ १६ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! 'इमं मे हवं श्रुधि' ममात्मानं कृपया श्रुणु । अद्य च 'अद्य मृडय' अस्मान् साधु-सम्मत्तान् सुखय । प्रवर्धय । 'अवस्युः' गतिकान्ति-प्रीति-रक्षणकामोऽहं 'त्वाम्' त्यामेव शरण्यं 'आ चके' शब्दयामि कामये ।

टिप्पणी—श्रुधि—लोटमध्यमपुरुषैकवचने । हेर्धिः । अवस्युः—अवस् + क्वच् 'क्वाच्छन्दसि' उप्रत्ययः । आ चके—चक तृप्तौ प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—'इमं मे वरुण श्रुधि हवम्' हे वरुण मेरी करुण-पुकार आप श्रवण करें । 'अद्य च मृडय' हम को अनुशिष्ट मानकर कृपया तृप्त और सुखी करें । 'त्वाम् अवस्युः आ चके' अपने परित्राण के लिए मैं आप की कामना में संलग्न हूँ ।

२०— त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च गमश्च राजसि ।

स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

पद पाठ—त्वम् विश्वस्य मेधिर । दिवः । च । गमः । च ।

राजसि सः यामनि । प्रति । श्रुधि ॥ २० ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण 'मेधिर' मेधाविन् ! त्वम् 'दिवश्च गमश्च' द्युलोकस्य भूलोकस्य 'विश्वस्य' समग्रस्य संसारस्य 'राजसि' मध्ये विराजमानोऽसि । 'स यामनि' त्वम् अस्मदीये कल्याण निमित्ते सति 'प्रति श्रुधि' प्रति श्रुतिं देहि, रक्षिष्यामीति सान्त्वनां देहि ।

टिप्पणी—गमः—पृथ्वी वाची गमाशब्दः । षष्ठ्येकवचने । 'आतो घातोः' योगविभागात् आकारलोपः । यामनि—या प्रणणे—'आतो मनिन्०' याति प्राप्नोति इति यामन् ।

हिन्दी व्याख्या—हे 'मेधिर' ! मेधा सम्पन्न वरुण ! आप ही 'दिवश्च गमश्च' द्युलोक तथा भूलोक मे प्रतिद्वन्द्व-रहित 'राजसि' शोभा-संयुक्त हैं । आप 'स यामनि' हमारी कल्याण-प्राप्ति के लिए 'प्रति श्रुधि' हमें आश्वस्त कीजिये ।

२१— उ॒त्त॒मं मु॒मु॒ग्धि नो वि पा॒शं म॒ध्य॒मं चू॒त ।

अ॒वा॒ध॒मा॒नि जी॒व॒से ॥ २१ ॥

पद पाठः—उत् । उत्त॒मम् । मु॒मु॒ग्धि । नः । वि । पा॒शम् ।

म॒ध्य॒मम् । चू॒त । अ॒व । अ॒ध॒मा॒नि । जी॒व॒से ॥ २१ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वरुण ! 'उत्तमं पाशं नो उत् मुमुग्धि' अस्माकम् उत्तमं पाशं शिरोगतं बन्धनम् उन्मुमुग्धि उन्मोचय उत्कृष्टा विनाशय । मध्यमम् च उन्मुमुग्धि' मध्यमं करिदेशेऽवस्थितं च पाशम् उत्कृष्टा दूरी कुरु । 'अधमानि' चरण निगडावस्थितान् पाशानपि त्वं 'जीवमे अवचृत' अवकृष्य विनाशय ।

टिप्पणी—जीवसे—जीवनाय । जीवघातोः 'तुमर्थे से०' सेन् प्रत्ययः । मुमुग्धि—मुच्लृ मोचने श्लुः । द्वित्वम् । हेधिः । चृत—चृती हिंसाग्रन्थमयोः, लोट् हे लृक् ।

हिन्दी व्याख्या—हे वरुण ! (उत्तम् पाशं नः) हमारे शिरोगत बन्धन को 'उन् मुमुग्धि' उन्मुक्त कीजिये । 'मध्यमं पाशं वि चृत' कटिदेश के भी बन्धनों को खोल दीजिये । 'अधमानि अवचृत' पैर की वेड़ियों को भी काट दीजिये जिससे कि हम 'जीवसे' बाधरहित होकर निश्चिन्त आनन्द को प्राप्त करने में निरुपद्रव-जीवन-लाभ करें । उत्तम, मध्यम तथा अधम कोटि की सात्त्विक, राजस तथा तामस बन्धनों से मुक्ति की प्रार्थना और कामना करते हैं ।

मण्डल १

इन्द्र-सूक्तम्

सूक्त ३२

ऋषि—आङ्गिरसो हिरण्यस्त्यः । देवता-इन्द्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचं

यानि चकार प्रथमानि वज्री ।

अहनूहिमन्वप तद

प्रवक्ष्य अभिनत्पर्वतानाम् ॥ १ ॥

पद-पाठः— इन्द्रस्य । नु । वीर्याणि । प्र । वोचम् । यानि । चकार ।

प्रथमानि । वज्री । अहन् । अहिम् । अन । अपः । ततर्द । प्र । वक्षणाः । अभिनत् ।

पर्वतानाम् ॥ १ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘यानि वीर्याणि प्रथमानि वज्री इन्द्रः चकार’ यानि परा-
क्रमकर्माणि प्रथमानि पूर्वसिद्धानि वज्री वज्रहस्त- इन्द्रः चकार कृतवान् तानि वीर्याणि
वीरकर्माणि अहं ‘प्रवोचम्’ प्रख्यापयामि । प्रथमं तावत् ‘अहन् अहिम्’ अहिं मेघं वृत्रं
वा हतवान् (अनु आयः ततर्द) तदनन्तरमस्य द्वितीयं प्रशंसनीयं कर्मयत् अपः मेघगर्भा-
णि जलानि पर्वतकुक्षौ विद्यमानानि तानि प्रवहणार्थं ‘वक्षणाः प्राभिनत्’ पर्वतानां
पर्ववतां सम्बन्धिनीः नदीः प्रभिद्य प्रवाहाञ्चकार । तानि जलानि नदीरूपेण परिणतानि
पुनः स्वयोनिं समुद्रमाविशन् ।

टिप्पणी—वीर्याणि—शूरवीर विक्रान्तो ण्यन्तात् ‘अचोयत्’ ‘णेरनिटि’
विलोपः । वज्री-मनुवर्थे इति । अहिम्-आङ् पूर्वा हन्धातु । इण् प्रत्ययः । हस्वश्च ।
अहन्-हन् + लङ् प्रथमयुरुषैकवचने । ततर्द-तृदलिट् प्रथम पुरुषैकवचने । वक्षणः-वक्ष
रोषे ‘कृधमण्डार्थेभ्यश्च’ इति युच् । ‘युक्वारताको’ नस्य णत्वम् । अभिनत्-भिद् +
लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘वज्री इन्द्रः’ वज्रधारी इन्द्र ने ‘यानि वीर्याणि-प्रथमानि’ जिन प्रसिद्ध वीर-कार्यों का सम्पादन (वकार) किया है ‘तानि’ उनको ‘प्रवोचम्’ उल्लास के साथ मैं वर्णन करता हूँ । पहले तो ‘अहन् अहिम्’ आकाश में व्याप्त मेघ का वध किया । ‘अनु अपः ततर्द’ इसके अनन्तर मेघ-गर्भ में अवस्थित जल-राशि का निर्गमन कराया । यह द्वितीय प्रशंसनीय कार्य था । तृतीय वीर-कर्म यह है कि उस महान् जल राशि का निष्कापन कैसे हो, इस हेतु जल-मार्ग रूप में नदियों को प्रवाह सम्पन्न किया सारी जल-राशि पुनः समुद्ररूप अपने मूल कारण में प्रविष्ट हो गयी ।

२—

अहन्नाहिं पर्वते शिश्रियाणं

त्वष्टास्मै वज्रं स्वयं ततश्च ।

वा आ इव धेनव स्यन्दमाना

अञ्जः समुद्रं मवज्रभुरापः ॥ २ ॥

पद-पाठः— अहन् । अहिम् । पर्वते । शिश्रियाणाम् । त्वष्टा । अस्मै ।

वज्रम् । स्वयम् । ततश्च । वा आ इव । धेनवः । स्यन्दमानाः । अञ्जः । समुद्रम् ।

अव । जग्मुः । आपः ॥ २ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘अहन् अहिम्’ स प्रख्यातपराक्रम इन्द्रा अहिं मेघं हतवान् । कीहशं मेघम् । ‘पर्वते शिश्रियाणम्’ पर्वतेप्रदेशे कृताश्रयम् । ‘स्वयं वज्रं’ अस्य इन्द्रस्य सुष्ठु अरोपेतं वज्रं त्वष्टा देवः ‘ततश्च’ तीक्ष्णधारं सम्पादितवान् । मेघहननान्तरं ‘स्यन्दमाना आपः’ समुद्रं प्रति प्रस्थिताः । ‘वाआधेनव इव’ यथा शब्दायमाना गावः गोष्ठं प्रति धावन्ति तथा जलधाराः समुद्रं प्रति इति ।

टिप्पणी—शिश्रियाणाम्-शिञ् सेवायाम्, लिटः कानच् । स्वयम्—ऋगतो सुपूर्वात् ‘ऋहलोर्ण्यत्’ । वृद्धयभावः । यद्वा स्व-शब्दोपतापयोरित्यहमान् प्यत् । यद्वा स्व-शब्दोपतापयोरित्यस्मात् प्यत् । सुष्ठु शत्रुपू प्रेर्यम् । स्ठ आरोपूतं वा । वा आः-वाश्यशब्दे ‘स्फायितञ्च’ इति रक् । जग्मुः—उसि ‘गमहन०’ उपधालोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—‘पर्वते शिश्रियाणम् अहिम्’ पर्वतों में आश्रय लेने वाले मेघ को इन्द्र ने ‘अहन्’ विनष्ट किया । ‘अस्मै त्वष्टा’ इस इन्द्र के लिये त्वष्टा देव ने ‘स्वयं वज्रं ततश्च’ प्रेरक वज्र को तीक्ष्ण और सुन्दर बनाया । उसके अनन्तर ‘समुद्रम् आयः अजग्मुः’ समुद्र की ओर जल की तीव्र धारायें चल पड़ी ‘स्यन्दमानाः’ प्रवाह-

पूर्ण जलधारायें 'वाश्वा धेनव इव' रंभाती हुई गायों की भाँति कल-कल करती हुई 'अञ्जः' सम्यक् बहने लगी ।

३—

वृषायमाणो वृणीत सोमं

त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।

आ सायकं मघवा दत्त वज्र-

महन्नेवं प्रथमजा महनिम् ॥ ३ ॥

प३-पाठः— वृषायमाणः । अवृणीत । सोमम् । त्रिकद्रुकेषु । अपिबत् ।

सुतस्य । आ । सायकम् । मघवा । अदत्त । वज्रम् । अहन् । एनम् । प्रथमजाम् ।

अहीनाम् ।

संस्कृत-व्याख्या—'वृषायमाणः' वृष इवाचरन् स इन्द्रः 'सोमम् अवृणीत्' रुचिकरत्वेन । पानार्थं सोमं स्वीकृतवान् । तेन तस्य आत्मवलं प्रवृद्धम् । 'त्रिकद्रुकेषु सुतस्य' ज्योति गैशियुरिति त्रयो यागविशेषाः, तेषु अभिषुतस्य सोमस्य पानम् इन्द्र-इव क्रे । 'मघवा' धनवान् इन्द्रः बलवैभवसम्पन्नः 'सायकम्' बन्धकं वज्रम् 'आदत्त' स्ववज्रसदृशे तस्ते स्वीकृतवान् । 'एनं प्रथमजाम् अहीनाम्' तेनेमं मेघं वज्रेण मेघाना मध्ये प्रथनोत्पन्नं 'अहन्' हतवान् ।

टिप्पणी—वृषायमाणः वृष इवाचरन्, 'क्तुः' काङ्सलोपश्च' सायकाम्— पिञ्ज् बन्धने । सिनोति बन्धोति इति सायकः । पवुल् । प्रथमजाम्—प्रथम जायते इति प्रथमजाः । 'जन सन०' इति विट् । 'विड्वनो०' इत्यात्वम् ।

(२) ग्रासमान् और पीटर्जन ने त्रिकद्रुक का अर्थ तीन प्यालें किये हैं । पीटर्सन के अनुसार फेंक कर मार करने वाले आयुध को 'सायक' कहा गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'वृषायमाणः' एक महान् वृषभ की भाँति शक्तिशाली इन्द्र ने 'त्रिकद्रुकेषु' ज्योतिः—गौः—आयुः नामक तीन महान् यज्ञों में 'सुतस्य' निष्पन्न 'सोमम् अवृणीत्' सोम का वरण किया और उसे 'अपिबत्' आनन्द के साथ पान किया । 'सायकं वज्रम्' प्रतिबन्धक वज्र को 'मघवा' धन-बल-वैभव सम्पन्न इन्द्र ने 'आदत्त' अपने वज्र सदृश हस्त में स्वीकार किया और 'एनं प्रथमजाम् अहीनाम् मेघों में प्रथम उत्पन्न इस मेघ को जो कि प्रथमागामी था 'अहन्' विनष्ट किया ।

४— य दिन्द्राहन् प्रथमजामहीना—

म न्मायिनामभिनाः प्रोत मायाः ।

आत्सूर्यं जनयन् द्यामुषासं

तादीन्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

पद-पाठः— यत् । इन्द्र अहन् । प्रथमजाम् । अहीनाम् । आत् । मायिनाम् ।

आत् । मायिनाम् अमिनाः । प्र उत । मायाः । आत् । सूर्यम् । जनयन् । द्याम् ।

उषसम् । तादीन्ना । शत्रुम् । न किल विवित्से ॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र! अहीनां प्रथमजाम् मेघानां मध्ये प्रथमोत्पन्नं मेघं 'यद् अहन्' यदा हतवानसि 'आत्' अनन्तरं 'मायिनां मायाः' कूटप्रपञ्चानां मायाः 'प्रउत अभिनाः' विनाशितवानसि । 'आत्' अनन्तरं च 'सूर्यम् द्याम् उषासं' सूर्यम् आकाशम् उषसं च 'जनयन्' उत्पादयन् समग्रभूतग्रामं प्रकाशयसि । 'तादीन्ना' तस्मिन् काले मेघान्धकाररहितत्वात् 'शत्रुं न किल विवित्से' नैव लब्धवानसि सर्वत्र शून्यत्वात् ।

टिप्पणी—'अहन्—हन् धातोर्लङि० हलङ् भ्यङ्भ्यः' इति सिलोयः । अडायमः अडागमः । मायिनाम्-मायाशब्दात् मत्वथीय इति । अमिनाः मीनाः हिंसायाम् हिंसायाम् 'मीनाते निगमे' इति ह्रस्वत्वम् । तादीन्ना—तदानीमित्यस्म पृषोदरादित्वाद वर्णविपर्ययः । विवित्से—विवृत् लाभे । लिट् मध्यमपुरुषैकवचने व्यत्ययेन इडभावः ।

हिन्दी-व्याख्या—'अहीनां प्रथमजाम्' हे इन्द्र ! मेघों में प्रथम उत्पन्न मेघ को 'यद् अहन्' जब आपने विनष्ट किया तब उसके अन्तर ही (आतर् मायिनां मायाः कूट-प्रपञ्च करने वालों के छन-छन्द को 'प्रउत अभिनाः' भी भली प्रकार से आपने विध्वंस कर दिया । 'आत्' इसके अनन्तर ही आपने 'सूर्यं धाम् उषासम्' सूर्य लोक, आकाश तथा उषा का प्रादुर्भाष (जनयन्) कराते हुए विश्व को प्रकाशित किया करते हैं । 'तादीन्ना' उस समय 'शत्रुं न किल आ विवित्से' शत्रु को कहीं भी आय प्राप्त नहीं कर सके क्योंकि मेघों के हट जाने से अब सर्वत्र शून्य ही था ।

५—

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंस—

मिन्द्रो वज्रेण महता वधेन ।

स्कन्धांसीव कुलिशेन विवृवणा—

ऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः ॥ ५ ॥

पद-पाठः—अहन् । वृत्रम् वृत्रतरम् । विऽअंसम् । इन्द्रः । वज्रेण महता ।

वधेन । स्कन्धांसिऽइव । कुलिशेन । विऽवृवणा । अहिः । शयते । उपऽक् ।

पृथिव्याः ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—स एवं बहुभिः प्रख्यातैः कर्मभिः दृष्टशौर्यभावः इन्द्रः वृत्रतरं वृत्रम् लोकान् वृणोति इति वृत्रः, अतिशयेन लोकानाम् आवरक यद्वा वृत्रं मर्याद-
हुलैरावरणैस्तगति इति वृत्रः, तं वृत्रम् असुरं 'व्यंसम्' विगतांसं छिन्नभृजं 'महता
वधेन वज्रेण' अतीव मार्केण संहारकारिणा वज्रेण 'अहन्' हतवान् । केन । प्रकारेण
हतवान् - 'स्कन्धांसीव विवृवणा कुलिशेन' यथा कुलिशेन कुठारेण विवृवणानि स्कन्धांसि
तथा । यथा परशुना वृक्षस्य शाखाः प्रशांखा शिद्वन्ता भवन्ति, वृक्षस्कन्धा शिद्वन्ता
भवन्ति तद्वत् । एवं भूते सति 'अहिः' स आवरको वृत्रः 'पृथिव्या उपपृक्' पृथिव्या
निकटे सम्पृक्तः शयते शयनं करोति । छिन्नबाहु निश्चेष्टो जायते ।

टिप्पणी—वृत्रः—वृत्तु वर्तने + रक् । वृत्रतरः—तरतेः पचाद्यच् । तरपि तु
व्यत्ययेन । वधेन—'हनश्च वधः' इत्यप् । वधादेशः विवृवणा—ओव्रश्चू द्वेदने ।
कर्मणि निष्ठा । ओदितश्च' निष्ठा-नत्वम् । 'चोः कुः' कुत्वम् । शेषद्वन्दसि बहुलम्
इति शैलौघः । उपपृक्-उप + पृच् + किवप् ।

हिन्दी-व्याख्या—'वृत्रं वृत्रतरं व्यंसम् अहन्' उस महान् इन्द्र ने आवरक
असुर वृत्र को तथा आवरण की माया से शत्रुवर्ग को तैर जाने वाले महान् मेघ को
मार डाला उसकी भुजायें स्कन्ध छिन्न-भिन्न कर दिये । 'महता' वधेन वज्रेण' अपने
महान् मारक वज्र से इन्द्र ने वृत्र को सर्वथा शिथिल कर दिया । जिस प्रकार
'कुलिशेन' कुठार या फसें से वृक्ष के 'स्कन्धांसि' स्कन्ध' शाखा-प्रशांखा आदि 'विवृ-
वणा' छिन्न-भिन्न कर दिये जाते हैं उसी प्रकार इन्द्र ने वृत्र का विध्वंस कर दिया ।
वह (अहिः) वृत्र 'पृथिव्या उपपृक्' पृथ्वी का सम्पर्क पाकर 'शयते' निश्चेष्ट होकर
सो रहा है ।

६—

अयोद्धे'व दुर्मद आहिजुह्वे,

महावीरं तुविवाधमृजीषम् ।

नातारीदस्य समृति वधानां,

सं रुजानाः पिपिषे इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

पद-पाठः— अयोद्धाऽइव । दुः मर्दः । आ । हि । जुह्वे । महावीरम् ।

तुविवाधम् । ऋजीषम् । न । अतारीत् । अस्य । संऽऋतिम् । वधानाम् । सम् ।

रुजानाः । पिपिषे । इन्द्रशत्रुः ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘तुविवाधम्’ बहूनां बाधकं ‘ऋजीषम्’ शत्रूणां भयस्थानं ‘महावीरम्’ शौर्योत्साहसम्पन्नं महावीरम् इन्द्रम् अयं दुर्मदो वृत्रः ‘अयोद्धेव’ योद्धरहित इव युद्धाय ‘आ हि जुह्वे’ आह्वानं कृतवान् । परन्तु अस्य इन्द्रस्य भवने ये शत्रुबधाः सन्ति तेषां मारकवधानां ‘समृतिम्’ सहभावं ‘न अतारीत्’ तरणाय सामर्थ्यं न लब्धवान् । ‘इन्द्रशत्रुः’ इन्द्रः शत्रु यस्य वृत्रस्य तादृशो वृत्रः इन्द्रेण हतः सन् नदीषु पतितः । तेन वृत्रपातेन नद्यः खल्वपि ‘रुजानाः’ कूलानि रुजन्त्यः, ताः वृत्रः पिपिषे पिष्टवान् खल ।

टिप्पणी—अयोद्धेय = अयोद्धा इव—न विद्यते योद्धाऽस्येति बहुव्रीहिः । जुह्वे ह्वेयं स्पर्धार्या शब्दे च । ‘अभ्यस्तस्य च’ इति सम्प्रसारणम् । महावीरम्—महाशचासी वीरश्च । ‘आन्महतः’ इत्यात्वम् । तुविवाधम्—तुवीन् प्रभूतान् बाधते इति ‘पचाद्यच्’ रुजानाः—रुजन्ति कूलानि । नद्यः । व्यत्ययेन शानच् । पिपिषे—पिष्ट + लिट् । इन्द्रशत्रुः—इन्द्रः शत्रु यस्य बहुव्रीहिः ।

हिन्दी-व्याख्या—‘अयोद्धेव’ मानो इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता इस हेतु ‘दुर्मदः’ दुर्दैर्घ्यं वृत्र ने ‘महावीरं’ तुविवाधम् ‘ऋजीषम्’ महान् वीर, बहुतो के बाधक, और बड़े-बड़े वीरों को खोखला कर देने वाले इन्द्र का (जुह्वे) समर के लिए आह्वान किया । परन्तु इन्द्र के ‘वधानां’ वज्रप्रहारों के सामने ‘न अतारीत्’ रण-संगम में तैर न सका अपितु धरणी पर धराशायी होता हुआ ‘रुजानाः’ नदियों को भी अपने दबाव से चूर्ण कर दिया । जल-प्रवाह से नदियाँ भी आपे में न रह सकीं ।

७—

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्र—

मास्य वज्रमधि सानौ जघान ।

वृष्णी वधिः प्रतिमानं बुभूषन्

पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः ॥ ७ ॥

पद-पाठः—अपात् । अहस्तः । अपृतन्यत् । इन्द्रम् । आ । अस्य । वज्रम् ।

अधि । सानो । जघान । वृष्णः । वधिः । प्रतिमानम् । बुभूषन् । पुरुत्रा । वृत्रः ।

अशयत् । विस्तः ॥ ७ ॥

संस्कृत व्याख्या—‘अपात् अहस्तः’ द्रोहात्मतया स वृत्रः छिन्न-हस्तोऽपि पादर-
हितोऽपि ‘इन्द्रम् अपृतन्यत्’ युद्धं न परिव्यक्तवानपितु युद्धमैच्छत् । इन्द्रोऽपि ‘अधि-
सानो’ तस्य पर्वतसदृशे कठोरे स्कन्धे ‘वज्रं जघान’ वज्रं क्षिपवान् । ‘प्रतिमानं बुभू-
षन्’ इन्द्रस्य सादृश्यं कामयमानः स वृत्रः ‘पुरुत्रा व्यस्तः अशयत्’ बहुषु अंगेषु ताडितः
सन् शिथिलतदेहबन्धनः ‘अशयत्’ स्वायम् अभजत । यथा ‘वृष्णः’ रेतःसेचनसमर्थस्य
कोपि ‘वधिः’ कृतनपुंसकभावः पुरुषः सादृश्यं कामयते तथा ‘प्रतिमानं’ सादृश्यमिच्छन्
वृत्रः भूमौ निपपात ।

टिप्पणी—अपात्, अहस्तः—न पादौ यस्य, न हस्तौ यस्येप्युभयत्र बहुव्रीहिः ।
अपृतन्यत्—‘सुप आत्मनः क्वच्’ । बुभूषन्-भवितुमिच्छति—सन् । शतृ । व्यस्तः—
वि + असु + क्तः ।

हिन्दी व्याख्या—‘अपात् अहस्तः इन्द्रम् अपृतन्यत्’ इन्द्र की वज्र-लीला के
कारण हाथ—पैर भग्न हो जाने पर भी वृत्र इन्द्र से युद्ध करता ही रहा । इन्द्र ने
‘सानो’ चट्टान सरीखे वृत्र के कन्धे पर ‘वज्रं जघान’ वज्र-प्रहार किया । इन्द्र से
सादृश्य चाहने वाला वृत्र (व्यस्तः) शिथिल होकर ‘अशयत्’ भूमि पर असहाय-सा
गिर पड़ा । जिस प्रकार ‘वधिः’ वधिया किया गया दुर्बल बैल ‘वृष्णः’ विषाणी
वृषभ की ओजस्विता को समझे बिना युद्ध के लिए ललकारे, वही दशा वृत्र की हुई ।
बहु परास्त और विगलित हुआ ।

—

नदं न भिन्नममुया शयानं

मनो रूहाणा अति यन्त्यापः ।

याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्

तासामहिः पत्सुतः शी वंभूव ॥ ८ ॥

पद-पाठ— नदम् । न । भिन्नम् । अमुया । शयानम् । मनः । रुहाणा ।

अति । यन्ति । आपः । याः । चित् । वृत्रः । महिना । परित्तिष्ठत् । तासाम् ।

अहिः । पत्सुतः शीः । बभूव ॥ ८ ॥

संस्कृत व्याख्या—‘अमुया’ अमुष्यां पृथिव्यां ‘शयानम्’ असहायं क्षीणं कृतस्वायं वृत्रं ‘आपः’ जलानि ‘अति यन्ति’ अतिक्रम्य प्रवहन्ति । ‘भिन्नं नदभिव’ नदी कूलं भित्त्वा यथा ऽऽपः निर्गच्छन्ति तथा । ‘मनो रुहाणाः’ अयां विशेषणमेतत् चित्तमसह्यन्त्यः । वृत्रे प्रवर्धमाने सति मेघे पर्वते वाष्पस्थिता आपः निरुद्धा आसन् । साम्प्रतं तु निरोधरहितास्ताः स्वच्छन्दवेगाः कूलानि विदार्य कृतावेगा निष्पतन्ति । वृष्टिलाभेन मानवाः सस्य वृद्धिं कामयमानाः प्रसन्ना भवन्ति । ‘वृत्रः महिना’ स्वकीयेन महिम्ना ‘याः चित् अप्पः पर्यतिष्ठत्’ यानि जलानि परिवृत्य अतिष्ठत्, निरुहानि चकार । ‘अहि’ आहन्ता वृत्रः मेघः ‘वत्सुतः शीः बभूव’ पादस्याधः शयान आसीत् । पादाभावेऽपि नदीभिरतिक्रान्तत्वात् पादस्याधः शयनमुक्तम् ।

टिप्पणी—भिन्नम्—भिदिर विदारणे ‘रदाभ्यां निष्ठातो नः’ इति नत्वम् । अमुया—‘सुपां सुलुगिति’ सप्रम्या या जादेशः । रुहाणाः—रुह बीजजन्मनि, शानच । मुमभावः । महिना—यह पूजायाम् इन् प्रत्ययः । पत्सुतः शीः—पादस्याधः शेते इति कृत्वा पत्सुतः शीः । सप्रभ्यर्थे तसिल् । लुगभावः । क्विप् ।

हिन्दी व्याख्या—‘अमुया शयानम्’ इस पृथ्वी पर असहाय सोते हुए वृत्र का ‘अति यन्ति आपः’ जल धारायें अतिक्रमण कर गयीं । ‘नदं न भिन्नम्’ जिस प्रकार महानद नदी-नद का अतिक्रमण करता हुआ निकल जाता है । ‘मनो रुहाणाः’ गुहावती लगने वाली जलधारायें मनुष्यों के मन का अनुरंजन करने लगीं क्योंकि मेघ से वृष्टि और वृष्टि से अन्त का तादात्म्य है । ‘याः चित् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्’ अपने आवरक स्वभाव के कारण जिस जल-पूँज को वृत्र में मेघ में अथवा पर्वतों में निरुह कर रक्खा था वही वृत्र अब उन्हीं जल देवियों के चरण में पड़ा है ।

६—

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रे—

नद्रो अस्या अव बध जंभार ।

उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्

दानुः शये सह वत्सा न धेनुः ॥ ६ ॥

पद-पाठः—नीचावयाः । अभवत् । वृत्रपुत्रा । इन्द्रः । अस्याः । अव
वधः । जभार । उत्तरा । सूः । अधरः । पुत्रः । आसीत् । दानु ।

शये । सहवत्सा । न । धेनुः ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—‘वृत्रपुत्रा’ वृत्रस्य जननी ‘नीचावयाः’ न्यञ्चौ वयसौ करौ यस्याः सा नीचातयाः पुत्रस्य रक्षणार्थं न्यग्भावितकरा ‘अभवत्’ येन पुत्रः सभ्यक् संरक्षितः स्यात् । ‘इन्द्रः’ इन्द्रः खल्वपि ‘अस्याः’ वृत्रजनत्याः ‘अव’ अधोभागे ‘वधः’ हननसाधनमायुधं ‘जभार’ प्रहृतवान् ‘तदानी’ (उत्तरा सूः) वृत्रस्य माता उत्तरा उपर्यवस्थिताऽसीत् । ‘अधरः’ पुत्रः आसीत् पुत्रश्च वृत्रः अधरः अधोभागे स्थित आसीत् । एवं मृते पुत्रे हतार्या च मातरि यथा धेनुः नवप्रसूता गौः ‘सहवत्सा’ वत्सयुक्ता शेते तथा वृत्रसहिता वृत्रजननी ‘दानुः’ दानवी शयनं करोति ।

टिप्पणी—नीचावयाः—वेति अशनातीति वयः, नीचौ वयसौ यस्याः । दीर्घश्छान्दसः । वय इति करपर्यायः । सूः—षूङ् प्राणिगर्भविमोचने विवप् । दानुः—दो अवखण्डने नु प्रत्ययः । जभार—हुग्रहोमश्छन्दसि । वधः—हन्यतेऽनेनेति वधः । हन्ते वधादेशः ।

हिन्दी व्याख्या—‘नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रा’ वृत्र की माता ने वृत्र की रक्षा के लिए अपने दोनों हाथों से ढक लिया । फिर भी (इन्द्रो अस्या अव वधः जभार) इन्द्र ने मा के नीचे से सार्थक प्रहार कर दिया । ‘उत्तरा सूः’ अव तो ऊपर को आच्छादन बनी हुई माता थी और नीचे को ‘पुत्र आसीत्’ पुत्र था । दानवी ‘दानुः’ अपने पुत्र के साथ ही ‘धेनुः सहवत्सा न’ बछड़े से मुक्त गौ के समान ‘शये’ सो गयी ।

१०—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां

काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम् ।

वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यायो—

दीर्घन्तम् आशयदिन्द्रं शत्रुः ॥ १० ॥

पद-पाठ—अतिष्ठन्तीनाम् । अनिश्वेशनानाम् । काष्ठानाम् । मध्ये ।

निहितम् । शरीरम् । वृत्रस्य । निण्यम् । वि । चरन्ति । आपः ।

दीर्घम् । तमः । आ । आशयत् । इन्द्रशत्रु ॥ १० ॥

संस्कृत व्याख्या—प्रवहणस्वभावत्वात् 'अतिष्ठन्तीनाम् । विरामरहितानां 'अतिवेशनानाम्' प्रवहणमार्गं प्रति निरन्तरं स्यन्दनशीलानाम् 'काष्ठानाम्' जलधाराणां मध्ये वृत्रस्य शरीरम् 'निहितम्' नितरां रहस्यभूतं गुप्तमवस्थितमभूत् । तस्य वृत्रस्य शरीरं 'निण्यम्' जले मग्नत्वात् निर्नामधेयम् । न केनापि तदीयं नाम ज्ञातुं शक्नोते । जलमध्ये शिघ्रे सति 'इन्द्रशत्रुः' वृत्रः 'दीर्घन्तमः आशयत्' दीर्घं निद्रारूपं शयनं यथा भवति तथा ममार ।

टिप्पणी—अनिवेशनानाम्—निविशन्तेऽस्मिन्निति निवेशनम्, स्थानम् । करणाधिकरणयोश्च' इति ल्यूट् । अनिवेशनानां निवेशनरहितानां । काष्ठाः—आपः, क्रात्वा स्थिता भवन्ति । पृषोदरादित्वात् साधु । शरीरम्—शृणातेः शम्नाते वा । निहितम्—नि + धा + क्त । दीर्घं द्राघतेः तमस्तनोतेः ।

(२)—पीटर्सन ने दीर्घं तमः का अर्थ दुर्मेद्य अन्धकार फिया है ।

हिन्दी-व्याख्या—निरन्तर प्रवाहरूप स्वभाव के कारण 'अतिष्ठन्तीनाम् क्षण-मात्र के लिए भी स्थित न रहने वाली, 'अनिवेशनानाम्' सदा बहती ही रहने वाली 'काष्ठानां मध्ये' जलधाराओं के बीच में 'वृत्रस्य निहितं शरीरम् । वृत्र का जल-मग्न शरीर छिपा है । 'निण्यं शरीरं पर्याक्रम्य आपः विचरन्ति' जल में मग्न होने के कारण वृत्र के आकार-प्रकार का पता नहीं चल पा रहा है, उसके ऊपर विशाल जल-प्रवाह चल रहा है । 'इन्द्रशत्रु' 'दीर्घं तम आशयत्' । घोर निद्रा रूप मरणान्धकार में प्रलीन हो गया है ।

११—

दासपत्नी रहिगोपा अतिष्ठन्

निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।

अपां विलमपिहितं यदासीद्

वृत्रं जघन्वां अप तद्वदार ॥ ११ ॥

पद पाठ—दासपत्नी । अहिगोपाः । अतिष्ठन् । निरुद्धाः । आपः ।

पणिनाऽइव । गावः । अपाम् । विलम् । अपिऽहितम् । यत् ।

आसीत् । वृत्रम् । जघन्नान् । अप । तत् । ववार ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘दासपत्नी’ दासः पतिर्यासां ता दासपत्नीः उपक्षयकर्मणः पालिकाः ‘अहिगोपाः’ अहिवृत्रो गोपा पालको यासामपां ताः । वृत्र एवावरकत्वात् तासामपानियन्ता । एवं वृत्रेणावरणात् ता आपः ‘पणिना इव गावः निरुद्धाः ।’ यथा पणिना असुरेण विले निरुद्धा गावोऽतिष्ठस्तथा प्राप्तनियन्त्रणा अतिष्ठन् । ‘अपां विलं यद् अपि हितमासीत्’ अपां निःसरणद्वारं यत् निरुद्धमासीत् तद् द्वारं ‘वृत्रं जघन्वा-इन्द्रः’ द्वारभूतं वृत्रम् इन्द्रः हतवान् । ‘तद् अप ववार’ अपवृतम् अकरोत् । एवं हते वृत्रे विवृते च द्वारे गाव इवायः निःस्टव्य स्वनिर्गमनमार्गान् अलभन्त ।

टिप्पणी—दासपत्नीः—दासःपति र्यासाम ‘विभाषा सपूर्वस्य’ डर्लप् । नकारादेशश्च । दासयति इति दासः, दसु उपक्षये । अहिगोपाः अहि गोपा यासाम् । निरुद्धाः—रुधिर आवरणे, निष्ठातकारस्य धकारः । जघन्वान्—हन्ते लिटि क्वसुः हकारस्य कुत्वम् । ‘अभ्यासाच्च’ । इडभावः ।

हिन्दी व्याख्या—दास के नियन्त्रण में रहने वाली और अहि से पालित (दास और अहि दोनों वृत्र वाची अथवा मेघवाची हैं) जलधारायें पणि के द्वारा निरुद्ध गायों की भांति गहरी गुहा में विकल हो रही थीं । ‘अपां विलम्’ जल के उस ‘अपिहितम् आसीत्’ निरुद्ध जल-द्वार को ‘वृत्रं जघन्वान्’ इन्द्र ने विध्वस्त कर दिया । ‘अप तद् ववार’ और उस द्वारा को विवृत (फैला) कर दिया जिससे कि निगमन मार्गों के मिल जाने से गायों की भांति जल-नदियां निकल पड़ीं ।

१२— अश्वयो वारो अभवस्तदिन्द्र

सूके यत्त्वा प्रत्यहन्देव एकः ।

अजयो गा अजयः शूर सोम—

मवास्तजाः सतवे सप्तसिन्धून् ॥ १२ ॥

पद-पाठ—अश्वयः । वारः । अभवः । तत् । इन्द्र । स्टके । यत् । त्वा ।

प्रतिऽअहन् । देवः । एकः । अजयः । गाः । अजयः । शूर । सोमम् ।

अव । अस्तजः । सतवे । सप्त । सिन्धून् ॥ १२ ॥

संस्कृत व्याख्या—यदा ‘एकः’ सहायानपेक्षो वृत्रः (देवः) दीप्यमानः संग्रामा-युधनिष्णातः ‘त्वाम्’ त्वां प्रति ‘सूके’ वज्रोपरि ‘प्रति अहन्’ प्रतिकूलत्वेन प्रहारं कृतवान् । तदा ‘इन्द्र’ हे इन्द्र ! त्वम् (अश्वयो वारोअभवः) अश्वसम्बन्धी

बालोऽभवः । यथा केशचामरादिना मक्षिकादिनिवारणे न प्रयासापेक्षा तथा त्वमपि सहजतया लीलयैव तं वृत्रं निराकृतवानसि । 'अजयः शूर सोमम्' हे शौर्यसम्पन्न इन्द्र ! त्वं सोमं जितवानसि । अथ च 'सर्तवे' प्रवाहरूपेण सरणाय 'सप्तसिन्धून्' स्यन्दनशीला नदीः 'अवासृजः' स्पष्टवानसि । वृत्रकृतं जल-निरोधं दूरीकृतवानसि ।

टिप्पणी—अश्व्यः—अश्वेभवः । यत् । वारः—वारयति इति वारः । पचाद्यच् । सर्तवे—तुमर्थे सेसेनः तवेन् प्रत्ययः ।

हिन्दी व्याख्या—हे इन्द्र 'यत्' जब आपके 'सूके' वज्र पर 'देव एकः' एक अद्वितीय देदीप्यमान वृत्र ने 'प्रत्यहन्' प्रतिकूल प्रहार किया तब 'अश्व्यो वारो अभवः' आप अश्व के बाल के समान अति कोमल हो गये । जिस प्रकार मक्षिका आदि को हटाने में बाल से निर्मित चामर आदि को विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं पड़ती इसी प्रकार कोमल प्रयास से लीला करते हुए भी इन्द्र ने वृत्र को परास्त कर दिया । इस प्रकार 'अजयः गाः' पर्णि असुर के द्वारा निरुद्ध गायों का इन्द्र ने उद्धार किया और उल्लास पूर्ण इन्द्र ने 'अजयः शूर सोमम्' सोम को विजय किया । और इस प्रकार 'सर्तवे' अभिसरण के लिए 'सप्तसिन्धून्' स्यन्दनशाल जलधाराओं 'अवास्तजः' का स्पृष्ट की ओर वृत्र के द्वारा निर्मित जल-निरोध को समाप्त किया ।

१३—

नास्मि विद्युन्न तन्युतु सिपेध

न यां मिहम् किरद्धादुनि च

इन्द्रश्च यद् युयुधाने अहि

श्चोतापरीभ्यो मधवा विजिग्ये

पद पाठः—न । अस्मि । विद्युत् । न । तन्युतुः । सिपेध । न । याम् । मिहम् ।

अकिरद् । ह्रादुनि । च । इन्द्रः । च । यत् । युयुधाने । इति । अहिः

च । उत । अपरीभ्यः । मधवा । वि । जिग्ये ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रवधार्थे यानि यानि शस्त्राणि वृत्रः प्रयुक्तवान् तानि तानि सर्वाण्येव निरर्थकानि जातानि तद्यथा 'विद्युत्' इन्द्रार्थं निमिता विद्युत् न इन्द्रं 'सिपेध' जगाम । 'न तन्युतुः' वृत्रकृतो गर्जनं व्यापारोऽपि 'न सिपेध' नैवाप्नोत् । 'न यां मिहम् अकिरत्' तमोमयी मायावृष्टिमस्तजत् साऽपि नैव इन्द्रं चंचलं निराशां वाऽकरोत् 'ह्रादुनि च' इन्द्रार्थं वृत्रः ह्रादुनिभू अशनिं प्रयुक्तवान् । साऽपि न समर्था

जाता । इत्थं प्रकारेण 'यद्' यदा 'इन्द्रश्च अहिश्च युयुधाते' इन्द्रश्च वृत्रश्च युद्धं कृतवन्तौ तदा 'मघवा' ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्रः 'अपरीभ्यः' वृत्रप्रयुक्तेभ्य आयुधेभ्योऽन्येभ्यश्च तथा विघ्नेभ्यः मायाविषयेभ्यः अपरामृष्ट एव 'विजिग्ये' जितवान् । विशेष-व्यक्तित्वसामर्थ्येभ्यः स इन्द्र एव दृढो मुक्तशक्तिप्रकर्षश्च ।

टिप्पणी—मिहम्—मिह—सेचने, मेहति सिंचतीति मिट् । क्विप् । अकिरत्-कृ थिक्षेपे । युयुधाते—युध संप्रहारे—लिट् । जिग्ये—'सनूलिटोर्जे' जकारस्य कुत्वम् । सिषेध—षिधुगत्याम् । लिट् ।

हिन्दी व्याख्या—इन्द्र को पराजित करने के लिए जिन-जिव आयुधों का प्रयोग वृत्र ने किया, वे सभी निरर्थक प्रमाणित हो गए । जैसे उसने 'विद्युत् न अस्मै सिषेध न तन्यतुः' विद्युत् का प्रयोग किया वह सफल प्रयोग नहीं हुआ । भीषण गर्जना की, उससे भी इन्द्र पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा 'मिहम् अकिरत्' धनी तमोमयी घन-पटली से वृष्टि का प्रयोग किया । इसका भी कोई परिणाम नहीं निकला 'हादुनिम्' फिर अशनि-पात किया पर यह वज्र-पात भी निरर्थक ही रहा । इस प्रकार 'इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहश्च' इन्द्र और वृत्र के इस भयावह युद्ध में इन्द्र ने वृत्र के समस्त आयुध, माया तथा कौशल को निरर्थक कर दिया । (अपरीभ्यः) इसके अतिरिक्त भी जित-जिन मायावी अस्त्रों को उपयोग में लाया, वे सब निष्फल रहे और अन्त में इन्द्र को ही वृत्र पर विजय प्राप्त हुई ।

१४—

अहे' यीतारं कमपश्य इन्द्र

हृदि यत्ते' जन्धुषो भी रगच्छत् ।

नव च यन्नव ति च सवन्तीः

श्येमो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥

पद-पाठः—अहेः ! यातारं । कम् । अपश्यः । इन्द्र । हृदि । यत् । ते ।

जन्धुषः । भीः । अगच्छत् । नव । च । यत् । नवतिम् । च । सवन्तीः । श्येनः ।

न । भीतः । अतरः । रजांसि ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र । अहेः । वृत्रस्य 'मातारम्' सपक्षभूतम् अनुयायिनं 'कम् अपश्यः' कं दृष्टवानसि । 'यत् ते जन्धुषः' वृत्रं हतवतो यस्मात् तव हृदि 'भीः अगच्छत्' भयं व्याप्नोत् । 'नव च यन् नवति च सवन्तीः' यस्मात् त्वम्

एकोन शत संख्याकाः नदीः 'श्येनो न भीतः' श्येन पक्षीव त्रस्तः सन् 'अतरःरजांसि' उदकानि तीर्णवानसि ।

टिप्पणी—जन्घुषः—हस्ते लिटि कूसुः । 'गमहन्ः' उपधालोपः । स्रवन्तीः—स्रु गतौ । 'शप्श्यनो नित्यम्' नुमागमः । यातारम् या + तृच् । अतरः तृ पल्वन-संतरणयोः । लङ् ।

हिन्दी—टीका—हे इन्द्र ! वृत्र-वध के अनन्तर 'अहे यातारम्' वृत्र को अनुगामी (कम् अयश्यः) रूप में किसको आपने देखा । 'यत्ते जन्घुषो हृदि भीः अगच्छत्' जो आप जैसे वृत्रहा के भी हृदय में भय का अभिनिवेश हो गया । 'यत् नव च नवति च स्रवन्तीः' जिसके कारण आपने नित्यानवे नदियों के महान् (रजांसि) जल-राशि को 'श्येनो न भीतः' त्रस्त श्येन पक्षी (वाज) के समान (अतरः) तैर कर पार कर लिया ।

१ — इन्द्रो यातोवसितस्य राजा

शमस्य च शटङ्गियो वज्रबाहुः ।

सेदु राजा क्षयति चर्पणीना-

मरान्न नेमिः परिता बभूव ॥१५॥

पद-पाठः—इन्द्रः । यातः । अवसितस्य । राजा । शमस्य । च । शटङ्गिणः

वज्रबाहुः । सः । इत् । ऊं इति । राजा । क्षयति । चर्पणीनाम् । अरान् । न ।

नेमिः । परि । ता । बभूव ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—स 'वज्रबाहुर्इन्द्रः' वृत्रे नियंत्रिते सति अजातशत्रुः सम-जनि । स 'यातः अवसितस्य राजा' यातः गच्छतः जंगमस्य अवसितस्य स्थातुश्च स्थावरस्य 'शमस्य च शटङ्गिणश्च' शृंगादिराहित्येन शान्तस्य निरुपद्रवस्य प्रहरणादौ प्रवृत्तस्य शङ्कोयेतस्य च सहायनिरपेक्षो राजा । स । (सेदु राजा चर्पणीनाम्) एवं मानवानामपि राजा 'क्षयति' सर्वोत्कर्षेण वर्तते । 'परि ता बभूव' तानि सर्वाणि स्थावरजंगम निरुपद्रव सोपद्रव जन्तुमनुष्यादीनि स इन्द्रः परिव्याप्तवान् । 'अरान्न नेमिः' यूथा रथस्य नेमिः परिधिः सर्वतो व्याप्य अरान् निपाति तथा सर्वतो व्याप्य तानि इन्द्रो रक्षति ।

दिप्पणी—(१) यातः—या प्रापणे, याति गच्छतीति यात् । लटः शतृ । षष्ठी । बभूव—भवते लिटि णलि भवतेरः । वुगागमश्च । 'इन्धि—भवतिभ्यां च' इति लिटः कित्वाद् वृद्धयभावः । अवसितस्य—अव + पो + क्त । क्षयति—क्षि निवासे ।

(२) चर्षणीनाम्—क्रियाशील व्यक्ति अथवा कृषिकर्म करने वाले व्यक्ति को चर्षणि' कहा गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार वृत्र वध सम्पन्न हो जाने पर इन्द्र शत्रु रहित हो गया है । वह 'यातः अवसितस्य' जंगम तथा स्थावर प्राणियों का 'शमस्य च शृंगिणः' शगरहित अश्व-गर्दभ आदि निरुपद्रव प्राणी तथा शंगयुक्त वृषभ—महिष आदि सोपद्रव प्राणियों का वही एक शक्तिशाली 'राजा' राजा है । 'परि ता बभूव' ऊपर कहे गए स्थावर, जंगम, निरुपद्रव, सोपद्रव प्राणियों को सभी ओर से परिव्याप्त होकर वह रक्षा कर रहा है । 'सेदु' वही 'चर्षणीनां राजा' मनुष्यों का भी एक मात्र पति पालक राजा है । 'अरान् न नेमिः' जिस प्रकार रथ की अराओं के ऊपर नेमि (पहिये का घेरा) सशक्त रहता है ।

मण्डल १

सवितृ-सूक्तम्

सूक्त ३५

ऋषि—हिरण्यस्तूपः । देवता—सविता—छन्द १० छ जगती शेष में लिष्टुप् ।

१—

ह्वयाभ्याग्निं प्रथमं स्वस्तये

ह्वयामि मित्रावरुणा विहावसे ।

ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं

ह्वयामि देवं स वितार मृतये ॥१॥

पद-पाठः— ह्वयामि । अग्रिम् । प्रथमम् । स्वस्तये । ह्वयामि । मित्रा

वरुणौ । इह । अवसे । ह्वयामि । रात्रीम् । जगतः । निवेशनीम् । ह्वयामि ।

देवम् । सवितारम् । ऊतये ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—‘प्रथमं स्वस्तये’ आदौ तावत् स्वस्तये कल्याणार्थम् ‘अग्रिम् ह्वयामि’ प्रकाशकम् अग्निं देवं ह्वयामि आह्वयामि । ‘अवसे च’ रक्षण-गति-कान्ति प्रीत्यर्थं ‘मित्रावरुणौ इह ह्वयामि’ मित्रावरुणौ ह्वयामि । ‘जगतो निवेशनी रात्रीं ह्वयामि’ जगतः जं.माः सर्वे प्राणिनः स्वस्वव्यापारान् दिवसे कुर्वन्ति रात्री च विश्रामार्थं निविशन्ति अतः रात्रिदेवतां निवेशन हेतुभूतां मंगलार्थं स्मरामि । ‘ऊतये’ रक्षणार्थं च ‘देवं सवितारं ह्वयामि’ प्रसवितारं भगवन्तं स्मरामि ।

टिप्पणी—रात्रीम्—‘रात्रेश्चाजसौ’ इतिऽणप् । निवेशनीम्—निविशतेः ‘करणाधिकरणयोश्च’ इति ल्युट् । डंतप् । ऊतये—अवतेः क्तिन् । ऊठ्=ऊतिः । चतुर्थी ।

हिन्दी-व्याख्या—सवसे आदि में ‘प्रथमं स्वस्तये’ कल्याण के लिये मैं ‘अग्नि ह्वयामि’ तमो-निवारक अग्नि देवता का स्मरण करता हूँ । ‘अवसे’ अपनी रक्षा तथा गति प्रीति के लिये मैं ‘मित्रावरुणौ ह्वयामि मित्रावरुण देवों का स्मरण करता हूँ । सभी चेतन प्राणी दिन में इधर-उधर अपने-अपने व्यापार में व्यथित रहते हैं अतः विश्रामदायिनी ‘ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीम्’ और जंगम-जगत् को शान्ति देने वाली रात्रि देवता को स्मरण करता हूँ और ‘ऊतये’ सुरक्षा के लिये ‘सवितारं देवं ह्वयामि’ मैं जगत के जनक सविता देव का आह्वान करता हूँ ।

२—

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो

निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।

हिरण्ययेन सविता रथेना

देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥२॥

पद-पाठः—आ । कृष्णेन । रजसा । वर्तमानः । निवेशयन् । अमृतम् ।

मर्त्यम् । च । हिरण्ययेन । सविता । रथेन । आ । देवः । याति । भुवनानि । पश्येन् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—सूर्योदयात् प्राक् समग्नो लोकः ऋणवर्ण एवासोत् अतः 'ऋणैर्न' अन्धकार पूर्णो लोकः 'आवर्तमानः' पुनः पुनरावृत्तिं कुर्वन् । रज इति लोकनाम । 'अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्' मरणरहित मात्मानं मरणधर्माणं देहं च स्वस्वस्थाने प्रापयन् 'हिरण्ययेन रथेन' स्वर्णं दीप्तेन रथेन 'भुवनानि पश्यन्' अतन्द्रितया समग्राणि भुवनानि अभिनिभालयन् 'सविता देवो याति' सविता देवः—सर्वोत्कृष्टतया वर्तते । तं प्रति प्रणतोऽस्मि इति गम्यते ।

टिप्पणी—मर्त्यम्—मृ + यत् । वर्तमानः—वृत् + शानच् । आने मुक् । हिरण्ययेन—मयट्, मकारलोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—सूर्योदय से पहले सभी भुवन अन्धकारग्रस्त था अतः 'आकृष्णे रजसा वर्तमानः' अन्धकार से आच्छन्न लोक से आवर्तन करते हुये 'अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्' मरणधर्मा तथा अमृतधर्मा प्राणियों को यथास्थान व्यवस्थापित करते हुये 'हिरण्ययेन रथेन' अपने स्वर्णमय रथ से 'भुवनानि पश्यन्' जगत्-स्थावर भुवनों पर दृष्टि रखते हुये यकिता देवो याति' सविता देवता आगमन कर रहे हैं । उनके प्रति प्रणति व्यंग्य है ।

३—

याति देवः प्रवता यात्युद्वता

याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।

आ देवो याति सविता परादतो—

अप विश्वा दुरिता बाधमानः ॥३॥

पद-पाठः—

याति । देवः प्रज्वता । याति । इत्ज्वता । याति । शुभ्राभ्याम् । मजतः । हरिभ्याम् । आ । देवः । याति । सविता । पराज्वतः । अप ।

विश्वा । दुः ५ इता । बाधमानः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं 'देवः' दीप्यमानः सविता 'उद्धता याति' उत्कृष्टेन उदयानन्तरं भूध्वं मार्गेण याति आरोहणं करोति । तदनन्तरं 'प्रवता' आसायं प्रवणेन मार्गेण गच्छति । 'यजतः' यष्टव्यः पूज्य प्रशंसितः स देवः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति' श्वेताभ्यामण्वाभ्यां देवयजन प्रदेशम् आक्रमते । सविता देवः 'परावतः' दूरदेशात् दुरिता बाधमानः विष्वानि दुरितानि विनाशयन् 'आ याति' आश्वासयन् आगच्छति ।

टिप्पणी—प्रवता—प्रवणेन मार्गेण, प्र + वन् + क्विप् । उद्धता—उद् + वन + क्विप् । ऊर्ध्वदेशयुक्तेन मार्गेण ।

हिन्दी-व्याख्या—सविता देव 'उद्धता प्रवता मार्गेण' ऊपर की ओर तथा ऊपर से नीचे की ओर—मध्याह्न तक तथा उसके अनन्तर अपने नियमित मार्ग से 'शुभ्राभ्यां हरिभ्याम्' अपने शुभ्र कान्ति प्रद अश्वों के साथ निरन्तर 'याति' गमन करते रहते हैं । 'परावतः' बहुत दूर देश से आते हुये सविता देव (विष्वा दुरिता अपवाधमानः) समस्त पापों का विनाश करते हुए 'आ याति' तथा प्राणियों को आश्वासन देते हुए आते हैं ।

४—

अ॒भीवृ॑त्तं कृ॒शने॑ वि॒श्वरू॑प

हि॒रण्य॑श॒म्यं य॒जतो॑ बृ॒हन्त॑म् ।

आ॒स्था॒द्रथ॑ स॒विता॑ चि॒त्रभा॑नुः

कृ॒ष्णा र॒जांसि॑ न॒विषी॑ दधा॑नः ॥४॥

पद-पाठः—अ॒भि॒सृ॒वन्त॑म् । कृ॒शने॑ वि॒श्वरू॑पम् । हि॒रण्य॑श॒म्यम् । य॒ज॒तः

बृ॒हन्त॑म् । आ । अ॒स्था॒त् । रथ॑म् । स॒विता॑ । चि॒त्रभा॑नुः । कृ॒ष्णा । र॒जांसि॑ ।

त॒विषी॑म् । दधा॑नः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'यजतः चित्रभानुः सविता' यष्टव्यः पूजनीयः चित्रभानुः चित्रामानवो यस्य सः विविध रश्मियुक्तः सविता देवः 'रथम् अस्थात्' रथम् आरूढवान् । कीदृशं रथम् ? 'अभीष्टतम् अभितः शोभमानम् । 'कृशनेः विश्वरूपम् स्वर्णमयैः कृत्रिमैः उपायैः दर्शितनानारूपम् । 'बृहन्तम्' विशालम् । 'हिरण्यशम्यम्' स्वर्णशङ्खलायुक्तम् । 'कृष्णा रजांसि' कृष्णानि रजांसि अन्धकारा वृत्तन्वात् कृष्णान्

लोकान् अभिलक्ष्य तमो निवारणार्थं स्वकीयां प्रकाशरूपां 'तविषीम् दधानः' शक्तिं धारयन् देवः प्रक्रमते इति शेषः ।

टिप्पणी—अभीवृतम्—अभि + वृ + क्तः । दीर्घत्वम् । यजतः—यज + अतच् । दधानः—धा + शानच् । अस्थात्—स्था + लृङ् । तविषीम्—तवि + टिषच् + डीप् । कृशनैः—कृशनेति हिरण्यनाम । निघण्टौ ।

हिन्दी-व्याख्या—'चित्रभानुः' अद्भुत तेज वाले 'यजतः' अत्यन्त पूजा और प्रशंसा के योग्य 'सविता' सविता देवता अपने 'वृहन्त' रथम् आस्थात्' दर्शनीय विशाल रथ पर आसीन होते हैं । वह रथ 'अभीवृतम्' सभी ओर से शोभायमान है । 'कृशनैः विश्वरूपम्' स्वर्णमय विविध आकृतियों से शिल्प मण्डित है । 'हिरण्य-शम्यम्' स्वर्णमय लगाम से आकर्षक लगता है । सविता देव 'कृष्णा रजांसि' अन्धकार के निवारण के लिये प्रकाश हीन लोकों के प्रति अभिमुख होकर 'तविषीं दधानः' अपनी प्रकाश रूप शक्ति के साथ अग्रसर हो रहे हैं ।

५—

वि जनाञ्छयावाः शितिपादो अख्यन्

रथं हिरण्यं प्र उ गं वहन्तः ।

शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्यो—

पस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥ ५ ॥

पद पाठः—वि । जनां । श्यावाः । शितिपादः । अख्यन् । रथम् ।

हिरण्यं प्र उ गम् । वहन्तः । शश्वत् । विशः । सवितुः । दैव्यस्य ।

उपस्थे । विश्वा । भुवनानि । तस्थुः ॥ ५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—'श्यावाः' सूर्यस्य कृष्णवर्णाः 'शितिपादः' शुभ्रचरणा अश्वाः 'जन न् वि अख्यन्' 'जनान् प्राणिनः विशेषेण अख्यन् प्रभाशितवन्तः । 'रथं वहन्तः' । कीदृशं रथम् ! 'हिरण्यं प्रउगम्' हिरण्यमयं युगबन्धनस्थानं यस्य तथा विधं रथम् । 'सवितुः दैव्यस्य उपस्थे शश्वद् विशः तस्थुः' शश्वत् सर्वदा विशः प्रजाः दैव्यस्य देवसम्बन्धिनः सवितुः प्रेरकस्य उपस्थे समीपे तस्थुः । न केवलं विशः प्रजा एव अपितु विश्वा भुवनानि तस्थुः समग्राणि भुवनानि प्रकाशाय सूर्यं प्रति तस्थुः ।

टिप्पणी—अख्यन्—ख्याप्रकथने । लङ् । उपस्थे—उप + स्था + कः । हिरण्यं प्रउगम्—हिरण्यम्-स्वर्णम्, प्रउगम्—रथमुखेऽवस्थितं युगबन्धनस्थानम्, हिरण्यमयम्

प्रउगम् हिरण्यप्रउगम्, हिरण्यप्रउगम् । शितिपादः—शितयः श्वेताः पादा येषां ते बहुव्रीहिः ।

हिन्दी व्याख्या—सविता देव के शितिपादः श्वेतचरण वाले 'श्यावाः' कृष्णवर्ण के अश्व 'हिरण्यप्रउगं' रथं वहन्तः स्वर्णमय मुख वाले कान्तिप्रद रथ का वहन करते हुए 'जनान् वि अख्यन्' प्राणियों को प्रकाशित करते हैं जिसमें समस्त प्राणी परस्पर अपरिचित न रहें । 'सवितु देवस्य उपस्थे' प्रेरक सविता देव के सान्निध्य में 'शश्वत्' निरन्तर 'विशः' समस्त प्रजायें अपने ज्ञान और सामर्थ्य के अनुसार 'तस्थु' अपने जीवनीय-वर्धनीय तत्त्वों की व्यवस्था करती हैं और साथ ही समस्त जड़-चेतन जगत् तथा 'विश्वा भुवनानि' समग्र-भुवन अपने विस्तीर्ण विकास के साथ उल्लास करते हैं ।

६—

तिस्रो द्यावः सवितु द्वा उपस्थां

एका यमस्य भुवने विरापाट् ।

आणि न रथ्यममृताधि तस्थु—

रिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत् ॥ ६ ॥

पद-पाठः—तिस्रः । द्यावः । सवितुः । दो । उपस्थां । एका । यमस्य ।

भुवने । विरापाट् । आणिम् । न । रथ्यम् । अमृता । अधि । तस्थुः । इह ।

ब्रवीतु । यः । ऊङिति । तत् । चिकेतत् ॥ ६ ॥

संस्कृत व्याख्या—'तिस्रो द्यावः' द्योतनात्मकतः सवितुः त्रयो लोकाः, तेषु दो लोको सुर्यस्य प्रसवितुः 'उपस्थां' समीपवर्तिनो भजेते । 'एका यमस्य भुवने' तत्र चैका भूमिः लोको यमस्य प्रेतप्राणिवर्गनियन्तु यमस्य भुवने गृहे 'विरापाट्' विरान् प्रेतान् पुरुषान् अन्तरिक्षमार्गेण गमकान् सहते । एवं त्रयोलोकाः सवितु देवस्य प्रकाशे स वस्थिताः । 'अमृता अधि तस्थुः' एवमेतानि चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रादीनि स्थूल परमाणु रूपाणि वा रजांसि जालानि वा सवितुरधिष्ठानेऽधितस्थुः अधिकृत्यावस्थितानि । 'य उ तत् चिकेतत्' यः कोपि तादृशः चेतनावान् प्राज्ञः तत्समग्रं रहस्यभूतं सवितु-रवस्थापनं जानाति 'स इह ब्रवीतु' स्वकीयां ज्ञानप्रतिभामुद्घातयति । न कोऽपि समर्थः एतानि स्थूल परमाणु रूपाणि जड़चेतनमयाणि जीवनमरणरहस्यानि यथावत् वक्तुम् । तानि एतानि नश्वरानश्वरानि अमृतानि 'आणि न रथ्यम् अधितस्थुः' यथा रथाद् बहिः अक्षस्य च्छिद्रे प्रक्षिप्तः कीलकः रथं व्यवस्थापयति तथा सवितु राणो रथकीलके समग्रमेतत् दृढीभूतं व्यवस्थितम् ।

टिप्पणी—उपस्थाँ—उप + स्था + कः । सप्तम्येकवचने । अनुनासिकस्य प्रकृतिभावः । विराषाट्—विरा + सह + ण्वि । रथ्यम्—रथ + यत् । अमृता—अमृतानि । तस्थुः—स्था, लिट् । चिकेतत्—कित + लेट् । ब्रवीतु—ब्रू + लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘तिस्रो द्यावः सवितुः । सविता देवता के तीन प्रकाशात्मक लोक हैं । उनमें से ‘द्वा उपस्थाँ’ पृथिवी और द्युलोक ये दोनों सूर्य की समीपता में प्रकाश, आकर्षण तथा चेतना प्राप्त करते हैं और ‘एका यमस्य भुवने विराषाट्’ तृतीय लोक अन्तरिक्ष नामक है जो नियन्त्रक यम के आधीन हैं जहां पर प्रेत वर्ग अपने गगनागमन से भरता रहता है । ‘अमृता अधि तस्थुः’ इस प्रकार चन्द्र-ग्रह-नक्षत्र, जल आदि समग्र पदार्थ अमश्वर रूप से सविता देव की छाया में निवास करते हैं ‘आणि न रथ्यम्’ जिस प्रकार रथ के धुरे की कील रथ को व्यवस्था से बाहर नहीं जाने देती इसी प्रकार सविता देवता के अमरबन्धन में समस्त जड़चेतन, स्थूल-परमाणु जगत् व्यवस्थित है । ‘य उ तच्चिकेतत् इह ब्रवीतु’ जो इसे यथावत् जान सकता है, वही कुछ वक्तव्य भी दे सकती है । सविता की रहस्यमयी जोव-मरण व्यवस्था को समझ पाना बहुत ही कठिन है ।

७—

वि सु॒पर्णो अन्तरि॑णाण्य॒ख्यद्—

ग॒भीर॒वेया॑ अ॒सुरः सु॒नीथः ।

क्वे॑दानी॒ सूर्यः॑ कश्चि॑केत

क॒त॒मां द्याः र॒श्मिर॒स्या त॑तान ॥ ७ ॥

पद-पठ—वि । सु॒पर्णः । अन्तरि॑क्षणि । अ॒ख्यत् । ग॒भीर॒वेयाः । अ॒सुरः ।

सु॒नीथः । क्व । इ॒दानी॑म् । सूर्यः॑ । कः । चि॒केत । क॒त॒माम् । द्याम् । र॒श्मिः ।

अस्य । आ । त॒तान ॥ ७ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘सुपर्णः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्’ सूर्यस्य सुपर्णः सुपतनः रश्मिसमूहः तानि त्रिविधान्यपि अन्तरिक्षाणि लोकत्रयस्थानानि वि अख्यत् विशेषण ख्यापितवान् प्रकाशोपेतानि तानि अन्तरिक्षाणि कृतवान् । कीदृशः रश्मिसमूहः ! ‘गभीरवेयाः । गभीरकम्पनः । न केनापि द्रष्टुं शक्नोते । ‘असुरः’ प्राणद्रवः ‘सुनीथः’ शोभननयनः । अभीष्टवेशप्रापणसमर्थः तादृशरश्मिसमूहसमन्वितः ‘सूर्यः इदानीं क्व’ सूर्यं रात्रौ कुत्र गच्छति ? ‘कश्चिकेत’ तद् रहस्यं को जानीयात् ? अस्य रश्मिः कतमा द्याम् आ ततान’ अस्य सर्वरेकस्य सवितुः स रश्मिप्रपञ्चः कतमां द्यां कतमं

द्युलोकं रात्रौ आततान इत्यपि कोऽपि न जानाति । अध्यात्यदिशाऽपि तथा व्याख्येयम् ।

टिप्पणी—गभीरवेपाः—गभीरः वेपः कम्पनयस्य । वेपः—वेप + असुन् । असुरः—असून् प्राणान् राति ददाति असु + रा + कः । चिकेतकित जाने लिट् । सुपर्णः—सुपतनः, सूर्यरश्मिः सुनीथः—नी + कथन्—नीथः, शोभनो नीथो यस्यास्ति असौ सुनीथः सुनयनः ततान—तनु लिट् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘सुपर्णः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्’ सूर्य का किरण-समूह तीनों लोकों को—(द्युलोक-अन्तरिक्ष लोक-भूलोक) अपने प्रबल प्रताप से विख्यापित (प्रकाशित) करता है । यह रश्मि-समूह ‘गभीरवेपाः’ अतिसूक्ष्म कम्पन वाला है । ‘असुरः’ सबके लिये प्राण-प्रद कारण है । ‘सुनीथः’ प्रकाश—दान के कारण सबकी नेत्र-ज्योति को पुलकित करता है । ‘क्व इदानीम् सूर्यः’ इस घोर मायामय रजनी में वह विश्व प्रकाशक कहाँ है ? ‘कः चिकेत’ इसे कौन जानता है ? ‘अस्य रश्मि’ इस सूर्य का रश्मि-समूह ‘कतयां द्याम्’ किस चमकीले भाग्यशाली लोक को ‘आ ततान’ अपने रश्मि-दान से कृतार्थ कर रहा है, इसे भी कौन जानता है ?

८— अष्टौ व्यख्यत्ः कुकुभः पृथिव्याः

स्त्रीधन्व योजना सप्तसिन्धून् ।

हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्—

दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

पद-पाठ—अष्टौ । वि । अख्यत् । कुकुभः पृथिव्याः । स्त्री । धन्व । योजना ।

सप्त । सिन्धून् हिरण्यऽक्षः । सविता । देवः । आ । अगात् । दधत् । रत्ना । दाशुषे वार्याणि ॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘अष्टौ कभः व्यख्यत्’ सविता देवः प्राच्याद्या इत्तस्रः दिशः आग्नेयाद्याश्च चतस्रः प्रदिशः एवमष्टौ दिशः स्वीकी याचमनेन व्यख्यत् प्रकाशितवान् । तथा ‘योजना’ भोग्य भोक्तृ प्रयोज्येन तानि ‘धन्व’ त्रिसंख्याकानि पृथिव्यन्तरिक्ष-द्युलोकोपलक्षितानि यथासंख्यं योजनानि कृतवान् । ‘सप्त सिन्धून्’ सरणशीलान् नदनान् सिन्धून्पि असौ देवः यथा त्रिषु लोकेषु निर्ममे तथा पिण्डेऽपि ब्रह्माण्डवन् निर्ममे । ‘हिरण्याक्षः सविता देवः’ हितरमणीयचक्षुः हिरण्याक्षः सविता देवः ‘आ आगात्’ इहागच्छतु । स दाशुषे हविर्दत्तवते यज्ञपतये वार्याणि वरणीयानि रत्नानि दधत् धारयन् ।

टिप्पणी—त्री—त्रीणि । 'शेषछन्दसि०' इतिलोपः । वार्याणि—वृ + ण्यत् । रत्ना—रत्नानि । दाशुपे-दाशृदाने । क्वसुः । चतुर्थी । योजना—युज् + णिच् । ल्युः । धन्व—धवि + कनिन् । व्यख्यत्—वि + ख्या + लुङ् दधत्—धा + शतृ । आगत्—'इणो गा लुङि' ।

हिन्दी-व्याख्या—सविता देव ही पूर्व आदि चार तथा आग्नेय आदि चार दिशाओं और विदिशाओं को अपने शुभागमन से प्रकाशित करते हैं और 'योजना' भोग्य एवं भोक्तृ प्रपञ्च के लिए पृथिवी-अन्तरिक्ष तथा द्युलोक को नियोजित किया है । सप्त सिन्धुन' इन अवलोकन के लिए बने तीनों लोकों में सविता देव ने सरण-शील नदी-नद नाद आदि बनाये हैं । इसी बिन्दु में भी ब्रह्माण्ड की अनुकृति की गई है । हित रमणीय दृष्टि वाले सविता देव 'आ आगात्' सदा हमसे सम्बद्ध रहें । वह दानशील व्यक्ति के लिए 'वार्याणि' वरण के योग्य पदार्थों को सदा अपने पास धारण किये रहें ।

६— हिरण्य पाणिः सविता विचर्षणि—

रुभे द्यावापृथिवी अन्तारीयते ।

अपामीवाम् बाधते वेति सूर्य—

मभि कृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥ ६ ॥

पद-पाठः—हिरण्यपाणिः । सविता । विचर्षणिः । उभे इति द्यावा पृथिवी इति । अन्त ईयते । अप । अपामीवाम् । बाधते । वेति । सूर्यम् । अभि । कृष्णेन । रजसा । द्याम् । ऋणोति ।

संस्कृत-व्याख्या—'हिरण्यपाणि' स्वर्णहस्तः 'सविता विचर्षणिः' सविता देवः सर्वदा प्रदानाय हस्ते हिरण्यं निदधाति । स च विश्वप्रकाशकत्वेन विश्वदर्शनः । 'उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते' उभयो लौकियो मध्ये स्वप्रकाशात्मकं वैभवं प्रापयति । 'अपामीवाम् अप बाधते' रोग चिन्तादिबाधाम् अपबाधते परिहरति । 'सूर्य वेति' अन्त-र्यामित्वेन सदैव सूर्य व्याप्नोति । 'कृष्णेन रजसा च द्याम् अभि ऋणोति' कृष्णेन अन्धकारस्य कर्षणेन पृथग् अवस्थापनेन स्वकीयेन रजसा तेजसा द्याम् द्युलोकम् अभि-ऋणोति अभिव्याप्य तिष्ठति ।

टिप्पणी—द्यावापृथिवी—द्यौश्च पृथिवी च, दिवः द्यावा इत्यादेशः । वेति—वी + लट् । ऋणोति—तनादेः ऋणधातो लृट् । बाधते—बाध + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘हिरण्यपाणिः’ सुनहरे हाथों वाले सविता देव ‘विचर्षणि’ आकर्षक और प्रकाशक होने के कारण सभी प्राणियों के लोक चक्षु हैं। ‘उभे द्यावी-पृथिवी अन्तरीयते’ वे पृथिवी लोक तथा द्युलोक को प्रकाशित करते हुए अपना चङ्क्रमण कर रहे हैं। वे सविता देव ‘अमीवाम् अपवाधते’ विविध रोग और चिन्ताओं का अपहरण करते हैं ‘वेति सूर्यम्’ अन्तर्यामी बनकर सूर्य का भी नियमन करते हैं। ‘कृष्णेन’ अन्धकार का विकर्षण करने के कारण ‘रजसा’ अपने प्रकाशात्मक तेज से ‘द्याम् अभिकृणोति’ द्युलोक को अभिव्याप्त करके अपनी ही महिमा में अवस्थित हैं।

१०— हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः

मुद्गीकः स्ववां यात्वाङ् ॥

अपसेधन् राक्षसो यातुधानान्—

स्थाद् देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥

पद-पाठः—हिरण्यहस्तः । असुरः । सुनीथः । सुमुक्वीक् । स्ववान् । या

तु । अवाङ् । अपसेधन् । राक्षसः । यातुधानान् । अस्थात् । देवः । प्रतिदोषम् ।

गृणानः ॥ १० ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘हिरण्यहस्तः’ हितरमणमिपाणिः ‘असुरः’ प्राणदः ‘सुनीथः’ सुष्ठुप्रणयनः ‘मुद्गीकः’ सुखयिता ‘स्ववान्’ प्रभूतधनधान्यवान् स सविता देवः ‘अवाङ्’ अस्मान् प्रति अभिमुखः सन् नग्नानन्ददायी भूयात् ‘यातु’ ओयातु च । अथ च रक्षण-बाधकान् ‘यातुधानान्’ असुरान् ‘अपसेधन्’ दूरीकुर्वन् ‘प्रतिदोषम्’ प्रतिरात्रि ‘गृणान्’ अस्माभिः स्तूयमानः सन् ‘अस्थात्’ सर्वोत्कर्षणं वर्तते ।

टिप्पणी—सुनीथः—सु + नी + कथन् । शोभन् नीथः यस्य स सुनीथः । स्ववान् स्व + मतुप् । प्रतिदोषम्—दोषां दोषां प्रति—प्रतिदोषम्—अव्ययीभावः । गृणानः—गृ + शानच् । यातुधानान्—यातु + धा + ल्युट् । अपसेधन्—अप + पिध् गत्याम् + शतृ । अस्थात् स्था + लुङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘हिरण्यहस्तः’ हितानन्ददायक हस्त वाले ‘असुरः’ प्राणप्रद ‘सुनीथः’ अच्छे नेता, सुमुक्तीकः । सभी प्रकार के सुखों को सुलभ बनाने वाले ‘स्ववान्’ धनधान्य से परिपूर्ण सवितादेव ‘अवाङ् यातु’ सर्वदा हमारे लिये मनोहारी और सुप्रदाता बने रहें । ‘राक्षसो यातु धानान्’ राक्षस स्वभाव वाले रक्षणकार्य के बाधक असुरों को ‘अपसेधन्’ दूर करते हुए ‘प्रतिदोषम्’ प्रति सायं काल में ‘गृणानः’ प्रत्येक वैभव दृष्ट-नष्ट रूप में अवस्थित हैं, यह उपदेश करते हुये ‘देवः अस्थात्’ सविता देव सर्वदा हमें ऐहिक और पारलौकिक सुखों से संयुक्त करें और हमारी हृदय—ऋचाओं से स्तुति पाते रहें ।

११— ये ते पन्थाः सवितः पूव्यासौ—

ऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।

तेभि नो अद्य पथिभिः सुगेभी

रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥ ११ ॥

पद-पाठः—ये । ते । पन्थाः सवितरिति । पूव्यासः । अरेणवः ।

सुकृताः । अन्तरिक्षे । तेभिः । नः । अद्य । पथिभिः ।

सुगेभिः । रक्ष । चः । नः । अधि । च । ब्रूहि । देव ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः । 'ये पूव्यासः अरेणवः पन्थाः' भवतः ये पूर्वसिद्धा धूलरहिताः 'सुकृताः' सुष्ठु सम्पादिताः मार्गाः 'अन्तरिक्षे' अन्तरिक्षे अभिव्याप्ताः सन्ति । 'तेभिः सुगेभिः पथिभिः' तैः सुष्ठु गमनयोग्यैः मार्गैः समागत्य 'अद्य' अस्मिन् दिने 'नः' अस्मान् 'रक्ष च अधि ब्रूहि च' हे देव । दिव्यस्वभाव । रक्ष, त्वदीया वयमित्यनुगृहाण । अथ च अस्माकं कल्याणार्थम् आनन्दोपयम्धिकृत्य कथय । येनास्माकमभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स्यात् ।

टिप्पणी—पूव्यासः—पूर्व भवः यत् । 'आज्जसेरसुक्' । सुगेभिः—सुगं सु + गम + ऽः । तृतीया बहुवचने । सुकृताः—सु + कृ + क्तः । ब्रूहि—ब्रू + लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सवितः जगत् के आदि कारण देव । ये पूव्यासः अरेणवः पन्थाः' जो आपके पूर्वसिद्ध, धूलि-रहित, पवित्र मार्ग हैं । 'अन्तरिक्षे सुकृताः' जो अन्तरिक्ष में भली प्रकार सम्पादित हैं' तेभिः सुगेभिः पथिभिः' उन सुलभ, सुन्दर मार्गों से 'अद्य' आज 'नः' हमको 'रक्ष' अनुग्रहपूर्वक अपनाइये और हमें 'देव अधि ब्रूहि च' हे देव । हमारी सुख-सुविधा, आनन्द और निरुपद्रवता के लिये अपने आदेश और अनुशासन में रखिये ।

सण्डल १

उषः सूक्तम्

सूक्त ४८

ऋषि :— प्र०कण्वः देवता— उषाः— छन्दः— बृहती ।

१— सह वामेन न उपो व्युच्छा दुहित दिवः ।

सह घुम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

पद-पाठ :— सह । वामेन । नः । उपः । वि । उच्छ । दुहितः दिवः । सह ।

घुम्नेन । बृहता । विभावरि । राया । देवि । दास्वती ॥ १ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे वीतान्धकाराया दिवो दुहितः पुत्रि ! उषः ! प्रभाता-
भिमानी देवते ! वामेन कमनीयेन धनेन सह व्युच्छ विभानं कुरु । हे विभावरि !
अनुद्वेजकतेजस्के बृहता घुम्नेन सह घोटनात्मकेन रत्नादिना धनेन सह व्युच्छ प्रभात-
रमणीया भव । त्वं दास्वती दान युक्ता सती राया बाह्यवैभवसम्पन्नेनान्त वैभवयुक्तया
च व्युच्छ । अन्धकारमज्ञानलक्षणं विवासय ।

टिप्पणी—उच्छ-उच्छी विवासे । विभावरी—भा दीप्ती 'आतोमनिन्०' इति
वनिप् । 'वनोरचेति' डीप् । तत्सन्नियोगेन न कारस्य रेकादेशः । सम्ब्रुद्धौ च ह्रस्व-
त्वम् । दास्वती—हुदात् दाने । भावे अमुन् प्रत्ययः । दाः दानमस्या अस्तीति
दास्वती । भादुपधाया इति मतुपो वत्वम् । उंगितश्चेति डीप् । वामेन—बाधातोः मन्
प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे आकाश की प्रकाशक पुत्रिके ! उषा देवि ! हमारे लिए
'वामेन' कान्ति प्रद धन के साथ आप 'व्युच्छ' अन्धकार का निर्वासन कीजिये । 'सह
घुम्नेन बृहता विभावरि' हे उद्वेजन-रहित तेज को धारण करने वाली उषा देवि ।
आप बृहता घुम्नेन ऐश्वर्य सम्पन्न यशस्वी धन से हमें युक्त कीजिये । हे देवि ।
'दास्वती' दान शीले ! 'राया' समस्त प्रकार के वैभव तथा विभुता से हमें सम्पन्न
बनाइये ।

२— अश्वावती गोमती विश्व सुविदो भूरि च्यवन्त वस्तवे ।

उदीरय प्रति मा सून्तता उप श्चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

पद-पाठ :— अश्वावतीः । गोमतीः । विश्वसुविदः । भूरि । च्यवन्त ।

वस्तवे । उत् । ईरय । प्रति । मा । सून्तताः । उपः । चोद । राधः । मघोनाम्

॥ २ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्माकं 'वस्तवे' निवासाय 'अश्ववतीः गोमतीः' बृहद्भि-
रश्वैर्युक्ताः पुष्टाभिर्गोभिर्गुक्ता इमा उपसः 'विश्वसुविदः' विश्वस्य सुष्ठु प्राप्त
संज्ञानाः धनस्य लाभयित्वो वा 'भूरि च्यवन्ते' ता इमाः प्रभूतं प्राप्ताः । हे उपो
देवते ! मां प्रति सून्तताः प्रियां हितां सत्यां च वाचम् 'उदीरय' प्रेरय । 'मघोनाम्'
वैभवसम्पन्नानां यानि राधः राधांसि सन्ति तानि धनानि अस्मभ्यमपि चोद चोदय
प्रेरय । येन वयमपि पूर्णाः पूर्णकायाः सत्या भुवि सानन्दं जीवेम ।

टिप्पणी—अश्वावतीः—'मंत्रे सोमाश्वेन्द्रिय विश्वदेव्यस्य मतौ' इति पूर्व-
पदस्य दीर्घत्वम् । विश्वसुविदः—विश्वं सुष्ठु वेत्ति विन्दति । विश्व + सु + विद
+ क्विप् । प्रथमा बहुवचने । वस्तवे—वस धातोः 'तुमर्थेसेन्' इति तवेन् प्रत्ययः ।
च्यवन्त—च्युङ् गतौ । लङि । अङभावः । ईरय—ईर गतौ कम्पने च । हेतुमति च ।
णिच् । राधः—राध + असुन् ।

हिन्दी-व्याख्या—हमारे 'वस्तवे' निवास के लिए अश्व-गाय-धन-धान्य तथा
ज्ञान से सम्पन्न उषा देवियां 'भूरि च्यवन्त' विशाल वैभव के साथ हमें प्राप्त हुई हैं ।
हे उषा देवि ! हमारे लिए 'सून्तताः' प्रिय-मधुर और सत्य-वचन की प्रेरणा दीजिये ।
'मघोनाम्' धन-वैभव से सम्पन्न महानुभावों के पास जो 'राधः' ऋद्धि-सिद्धियाँ हैं ।
उन्हें हमारे लिए भी 'चोद' प्रेरित कीजिये जिससे पूर्ण मनोरथ होकर हम सभी
लौकिक और पार लौकिक सुख प्राप्त करें ।

३— उवासोषा उच्छाच्च नु देवी जीरा रथानाम् ।

ये अस्या आचरणेषु दधिरे समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

पद-पाठ :—उवास । उषाः । उच्छात् । च । नु । देवी । जीरा । रथानाम् ।

ये । अस्याः । आचरणेषु । दधिरे । समुद्रे न श्रवस्यवः ॥ ३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—उपा देवी उवास । विभानं कृतवती । तमो विवासयामास ।
 नु अघापि उच्छात् व्युच्छति । तमो विवासयति । इयं हि देवी रथानां रमणीयानां
 रथानां कल्याण साधनानां शरीराणां च 'जीरा' । प्रेरयित्री । अस्या उपसः आचरणेषु
 आगमन विधानेषु ये रथाः दधिरे सज्जीकृताः प्रेर्यन्ते । तत्र दृष्टान्तः । समुद्रे न
 श्रवस्यवः । यथा श्रवस्यवः धनेच्छुकाः समुद्रे जलयानादि साधनैः स्वकीयानि मानानि
 सज्जीकृत्य प्रेरयन्ति तथा रथाः प्रेर्यन्ते ।

टिप्पणी—उवास—वस निवासे । लिट् । अभ्यासस्य संप्रसारणम् 'लिट्यभ्यास-
 स्योभयेपाम् ।' जीरा—जु गतौ । 'जोरी च' रक् प्रत्ययः । उकारस्य ईकारादेशः ।
 जीर + टाप् । आचरणेषु—आ + चर + ल्युट् । दधिरे—धृङ् अवस्थाने । लिट् ।
 कित्वाद् गुणाभावे यणादेशः श्रवस्यवः—श्रूयते इति श्रवः । धनम् । असुन् । तदात्मने
 इच्छन्तीति श्रवस्यवः । क्या च्छन्दसीति उपत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—'उवास उपाः' उपा देवी ने चमकते हुए प्रभात का दर्शन
 कराया है । 'उच्छाच्च देवी' यह दिव्य देवी आज भी प्रभात को विकसित करती है ।
 'जीरा रथानाम्' यह उपा देवी रथों के लिए प्रेरक शक्ति है । इसी की प्रेरणा से
 यह शरीर-रथ भी चलता है । उपा के आचरण विधान पर ही हमारे रथों की गता-
 गति अवलम्बित है । जिस प्रकार 'श्रवस्यवः' धन की कामना वाले व्यक्ति समुद्र में
 अपने जलयानों को प्रेरित करते हैं इसी प्रकार उपा के आगमन पर स्थल भाग में
 भी प्रेरणा पाकर रथ चल पड़ते हैं ।

४— उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः ।

अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम् ॥ ४ ॥

पद-पाठ :— उषः । ये । ते । प्र । यामेषु । युञ्जते । मनः । दानाय ।

सूरयः । अत्र । अहं । तत् । कण्वः । एषाम् । कण्वतमः । नाम । गृणाति । नृणाम्

॥ ४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषः ! तव यामेषु आगमनसमयेषु ये सूरयः विद्या
 ज्योतिषा सम्पन्ना विद्वांसः 'मनो दानाय युञ्जते' स्वकीयं मनः दानार्थं प्रयुञ्जते
 प्रोत्साहयन्ति । अन्नं दान विषये दान-शीलानां ध्याति गतं नाम कण्वतमः अतिशयेन
 मेधावी महर्षिः कण्वः आह । कथयति । उषः काले मयोस्यमो नमि गृणाति उच्चार-
 यति । यो दित्सु दातुमिच्छति यश्च नामग्राहं प्रशंसति ।

टिप्पणी—यामः—या धातोः मन् प्रत्ययः । गृणाति-गृ शब्दे । क्र्यादिः ।
 'प्वादीनां ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा देवि ! आपके शुभागमन की ब्रह्मवेला में विद्वान् लोग अपने मन को दान के लिए प्रेरित करते हैं । ऋषियों में श्रेष्ठ कण्व ऋषि भी कहते हैं कि यह ब्रह्मवेला ही उपयुक्त समय है । इस उषः काल में जो उदार व्यक्ति दान करते हैं अथवा जो कल-मधुर ध्वनियों में दानशील की प्रशंसा करते हैं; उन दोनों के लिए उपयुक्त समय ब्रह्मवेला वाली उषा ही है ।

५—

आ वा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत् उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥

पद-पाठः—

आ । वा । योषा'इव । सूनरी । उषाः । याति । प्रभुञ्जती ।

जरयन्ती । वृजनम् । पद्वत् ईयते । उत् । पातयति । पक्षिणः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा काचन सूनरी योषः सुष्ठु ग्रहकर्म कुशला ग्रहिणी प्रभुञ्जती प्रकर्षतया सर्वं कुटुम्ब पालयन्ती दक्षतया प्रति दिन प्रभातवेलायामेवो-यास्थिता भवति । तथा सुनरी उषाः प्रतिदिन कालमनतिक्रम्य पालयन्ती आयाति । इयम् उषा वृजनं गतिशीलं भोक्तृ प्रपञ्चं जरयन्ती जरां प्रापयन्ती सर्वातिशायिनी प्रवर्तते । पदज्जगत् पादयुक्तः जगत् उषाकाले ईयते स्वस्वकर्मसु चेष्टते । इयम् उषाः पक्षिणश्च उत्पादयति । प्राप्तायामुपसि पक्षिणो दिग्दिशं प्रयान्ति ।

टिप्पणी—सूनरी—नृनये । अच् । नर । सुष्ठु नयतीति सूनरी । डीष् । प्रभुञ्जती—भुज पालनाभ्यवहारयोः । शतृ । 'रूधादिवात्शनम् । 'शनसोरल्लोपः' इति अकारलोपः । 'उजितश्च' इति डीप् । वृजनम्—वृजी वर्जने । वर्ज्यत इति वृजनम् । भोक्तृ प्रपञ्चः । क्यु प्रत्ययः । पद्वत्—पादः पत्, तदस्यास्ति-इति पद्वत् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार गृह कुशल महिला बड़ी दक्षता से कुटुम्ब का पालन पोषण करती हुई समय का अतिक्रमण किये बिना गृह भार का संचालन करती है इसी प्रकार उषा भी समय का अतिक्रमण किये बिना प्रतिदिन समय पर यथावत् आती है । उषा 'वृजनम्' गतिशील भोक्तृ प्रपञ्च को धीरे धीरे जीर्ण करती हुई बृहत्त्व की ओर ले जाती है । द्विपत् चतुष्पद को गतिशील बनाती है तथा ब्रह्मवेला में ही दिग् दिशाओं की ओर पक्षियों को उड़ने के लिये उन्मुख करती है ।

६—

वि या सृजति समनं व्यर्थिनः पदं न वेत्योदती ।

वयो न किं पत्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवति ॥६॥

पद-पाठ—

वि । या । सृजति । समनम् । विअर्थिनः । पदम् । न । वेति । ओदती ।

वयः । नकिं । ते । पत्तिऽवांसः । आसते । विउष्टौ । वाजिनी ऽ वति

॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—‘या समनं विसृजति’ या उषाः समनं समनस्कं पुरुष समूहं सृजति पद्मा समनं संप्राणं चेष्टा बहुलं जन लोकं निर्माति । प्राप्तायाम् उपसि सर्वे प्राणिनश्चेष्टावन्तो जायन्ते । अर्थिनः विसृजति—अर्थिनः पुरुषान् प्राप्तव्यापाराणां पुरुषाणामपि उपसि गृहदर्शनं योगात् विसृजति ते तलोपलभेरन् इति विसृष्टान् करोति । इयम् ओदती तुषारकर्णः क्लिन्ना इयम् उषा पदं न वेति न कामयते । नैव क्षणमपि विश्रामं लभते । दृष्ट नष्टः खलु प्रभात समयः, अल्पकालाव स्यायी । ‘पत्तिवांसः उत्पतन परायणाः ‘वयः’ पक्षिणः ‘न किः आसते’ नैव उपसि स्वनीड एव अभिरमन्ते अपितु समारूढाद् वृक्षात् दिग्दिशं समुत्पतन्ति’ हे वाजिनीवति ! धनधान्य सम्पन्ने उपो देवते व्युष्टौ त्वदीये वयुष्टे काले समग्रः संसारः प्राणवान् इव ‘देहि गृहण’ इति कोलाहलपर इव पक्षिभि विपक्षिभिश्च दत्तावधान इव स्नान परो ध्यान परः प्रगतिशील इव जायते । वाचाभिनाः वाजिना तद्वतीयम उषाः ।

टिप्पणी—ओदती—उन्दी क्लेदने । उन्ति सर्वं नीहारेण । शतुः स्थाने शप् अनुनासिकलोपः । ‘उगितश्च’ डीप् । नुमभावः । पत्तिवांसः—पत्तु गतो लिटः कमुः । इट् । ‘तनिपत्योश्चन्दसि’ इत्युधालोपः । ‘द्विवचनेऽचि’ ईति द्विर्भावः । वाजिनीवति—वाजोऽन्नमस्या अस्तीति वाजिनी । मत्वर्थीय इनिः । ‘ऋन्नेभ्यः’ इति डीप् । तादृशी क्रिया यस्याः सा ‘तदस्यास्तीति पतुप् । संज्ञायाम् इति मतुपो वत्वम्’ समनम्—सम् + अन् + अच् । व्युष्टौ—वि + वस् + क्तिन् । व्युष्टिः । सप्तभ्येकवन्वने ।

हिन्दी व्याख्या—‘या समनं विसृजति’ जो उषा मानव को समनस्क और प्राणवान् बनाती है । समस्त अभिलाषी लोगों को सक्रिय करती है । ओस-कण से भीगी हुई उषा विश्राम के लिये कहीं भी नहीं रुकती । उत्पतन शील पक्षी उषा के आगमन पर अपने नीड में बैठ नहीं रहते । धन सम्पदा से मुक्त उषा के आगमन

पर समस्त संसार अपना आलस्य छोड़कर सक्रिय हो उठता है । ज्ञान के अधिष्ठाता महेश्वर लोग भी जय-ध्यान परायण होकर विनय समाधि में दत्तचित्त रहते हैं ।

७—

एषा^१युक्त^२परावतः^३ सूर्य^४स्योदयना^५दधि^६ ।

शतं^७ रथे^८भिः सुभगो^९षा इयं^{१०} वियात्य^{११}भि मानुषान्^{१२} ॥ ७ ॥

पद-पाठः—

एषा । अयुक्तः । परावतः । सूर्यस्य । उत्समनाद् । अधि ।

शतम् । रथेभिः । सुभगाः । उषा । इयम् वि । याति । अणि । मानु-

षान् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयं सुभगा ऐश्वर्य वैराग्य श्री विभूषिता उषाः परावतः अतिदूरदेशात् 'सूर्यस्य उदयनात् अधि' सूर्योदयस्थानात् अधि अधिकारसम्पन्ना 'अभि मानुषान्' मनुष्यन् अलिलक्ष्य शतं रथेभिः असंख्यातसंख्यैः रथैः अयुक्त 'योजित वती । एवमियं जगत आदि कालादेव 'वि याति' प्राजिनो बोधयन्ती विशेषेण याति ।

टिप्पणी—अयुक्त—युजधातोः । लुङि । झलो झलि इति सिचो लोप । उदयनात्—उदेत्यत्र इति उदयनम् । इण् गती । अधिकरणे ल्युट् । सुभगा—शोभनो भगो यस्याः । मानुषान्—मनोः पुत्राः 'मनोजाता वक्ष्यती षक् च' इति अच्, षुगागमश्च ।

हिन्दी-व्याख्या—'इयं सुभगा' ऐश्वर्य वैराग्य श्री विभूषित यह उषा अति दूर सूर्य के उदय स्थान से अधिकार सम्पन्न होकर 'अभिमानुषान्' मनुष्यों को लक्षित करके शत रथेभिः 'सैकड़ों रथों को 'अयुक्त' संयुक्त करती है और जगत के आविर्भाव समय से ही प्राणियों को प्रबुद्ध करती हुई 'वि याति' विशेष प्रकार की चेतना दे रही है ।

८—

विश्वमस्या^१ नानाम^२ चक्षसे^३ जगज्ज्योतिष्कणोति^४ सूनरी^५ ।

अप^६ द्वेपो^७ मघोनी^८ दुहिता^९ दिव^{१०} उषा^{११} उच्छदप^{१२} सिधः^{१३} ॥८॥

पद-पाठ :— विश्वम् । अस्याः । नानाम् । चक्षसे । जगत् । ज्योतिः । कृणोति ।

सूनरी । अप । द्वेप । मघोनी । दुहिता । दिवः । उपाः । उच्छत् । अप । स्निधः

॥ ८ ॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्या उपसः चक्षसे प्रकथन योग्याय प्रकाशाय विश्वं समग्रं जगत् नमाम । नमस्करोति । अभिनन्दयति । इयं सूनरी सुन्दरावयवा अभिनेत्री स्वकी-
यान्यलंकृतानि अभिनयकुशलानि अंगानि जगते ज्योतिः प्रदानार्थं कृणोति आविष्क-
रोति । इयं दिवः आदित्यस्य दुहिता कुल-पुत्री उपा मघोनी धनैश्वर्यं युक्ता द्वेषयुक्तान्
द्वेषः अपवाधते । उच्छत् तमो विवासयन्ती च स्निधः शोषकान् अपि अपवाधते ।
रमणीय भीषण स्वभावेयमुपा इति गम्यते ।

टिप्पणी—नानाम्—अभ्यासस्य दीर्घत्वम् । ज्योतिष्कृणोति—‘इमुषोः सामर्थ्ये’
इति पत्वम् । मघोनी—मघं वनति संभजते इति मघोनी । मघवन् शब्दः कनिन्
प्रत्ययान्तो निपात्यते । ‘ऋन्नेभ्यो डीप्’ इति डीप् । उच्छत्—उच्छी विवामे । लङ् ।
अडाभावः । स्निधः—स्निधु शोषणे । विवप् । द्वेषः—द्विप् अप्रीतो । विच् प्रत्ययः ।
उपधाया गुणः । द्वितीय बहुवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—इस उपा के प्रशंसित प्रकाश के प्रति समग्र संसार सदा से
अवनत होता आया है । यह सुन्दरी अपने सुन्दर अंगों को आभरणों तथा अभिनय-
कौशल से जगमगाहट उत्पन्न करती हुई प्रकाशित करती है । यह सूर्य-पुत्री धन-
धान्य सम्पन्न होकर द्वेष करने वालों को दूर हटा देती है तथा जगत् में शोषण-
परायण लोगों को भी क्षमा नहीं करती है । इस प्रकार इस सुन्दर तथा भीषण आकृति
वाली उपा के माध्यम से तीन बातों की ओर संकेत किया गया है । उपा उदार
रमणीयाकृति होने से समस्त कला-विधियों की अभ्यास-जननी है । (२) जो उच्च-
उर्वर संवेदना-प्रधान और कुशल लोग हैं उनके प्रति द्वेष करने वालों का विनाश
करती है और जो कला-विद्या आदि का शोषण करके निन्दिताचार वाले हैं उन्हें भी
कलाकृत् कोप से दण्ड देती है—क्षमा नहीं करती ।

६— उष आभाहि भानुना चन्द्रेण दुहित दिवः ।

आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ६ ॥

पद-पाठ :— उषः । आ । भाहि । भानुना । चन्द्रेण । दुहितः । दिवः ।

आवहन्ती । भूरि । अस्मभ्यम् । सौभगम् । विऽउच्छन्ती । दिविष्टिषु ॥ ६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दुहिते दिवः सूर्यस्य पुत्रिके उपः ! त्वं चन्द्रेण भानुना कान्तिप्रदेन ज्योतिषा आ भाहि दीप्यस्व । अस्मभ्यं दिविष्टिषु दिवसेषु सौभाग्यम् बहु-सौभाग्यम् आवहन्ती प्रापयन्ती तथा व्युच्छन्ती तमो विवर्जयन्ती आ भाहि । प्रकाशो-पेता भव ।

टिप्पणी—आवहन्ती—बह प्रापणे । शतृ । डीप् । भूरि—भू + क्रिन् । सौभाग्यम्—सुभगस्व भावः । हृद्भगसिन्ध्वन्ते पूर्वपदस्य च । इति उभय पदवृद्धि । सर्वे विधयश्छन्दसि विकल्पन्ते इति वचनाद् उत्तरपदवृद्धि न । व्युच्छन्ती—उच्छी विवासे । शतृ । डीप् । दिविष्टिषु-दिव् आदित्यः । तात्स्थ्यात् । तस्य इष्टय एषणानि गमनानि येषु दिवसेषु ते दिविष्टयः । तेषु दिविष्टिषु दिवसेषु । भानुना—भा दीप्तो नु प्रत्ययः । चन्द्रः—चदि आह्लादने । प्रत्ययः । नुमागमः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दुहिते दिवः ! सूर्य की भाग्यशालिनी पुत्रिके ! उषा ! तुम 'चन्द्रेण भानुना' चन्द्र-सदृश आनन्द दायक कान्ति से 'आ भाहि' मुस्कान बिखेर दो । हमको 'दिविष्टिषु' दिनों के सौभाग्य का आवाहन करती हुई आनन्दित करो । हमारे लिए 'व्युच्छन्ती' नीराश्य रूप अन्धकार का निवारण करती हुई सदा प्रसन्नता का सञ्चार करो ।

१०— विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनटि ।

सा नो रथेन बृहता विभावरी श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥ १० ॥

पद-पाठ :— विश्वस्य । हि । प्राणनम् । जीवनम् । त्वे इति । वि । यत् ।

उच्छसि । सूनटि । सा । नः । रथेन । बृहता । विभावरी । श्रुधि । चित्रामघे ।

हवम् ॥ १० ॥

संस्कृत व्याख्या—हे सूनरि ! सुन्दरि ! यद् उच्छसि यदा त्वम् आत्मनं प्रकाशयसि तदा तवाभाममात्रेण विश्वस्य प्राणानं जीवनं च सञ्चारं लभते । त्वे त्वयि एव संसारस्य प्राणधारणम् आधीनम् । सा त्वं बृहता रथेन अस्मानुच्छिष्य आयाहि । हे विभावरी ! नयनानन्द दायिनि ! चित्रमघे ! विचित्र धनयुक्ते ! अस्माकं ह्वम् आह्वानं श्रुधि शृणु ।

टिप्पणी—प्राणनम्—अन प्राणेन । ल्युट् । योरना देशः । नकारस्य णत्वम् । उच्छसि—उच्छी विवासे । सूनरी—सुण्डु नयतीति सूनरी । नृ नये । 'अच इः' इत्यौणादिक इ प्रत्ययः । 'कदिकारादक्तिनः' इति डीप् । विभावरी-विशिष्टा भा यस्याः सा । मत्वर्थीयो वनिप् । 'वनोरच' इति डीप् । तत्सन्निधौनेन नकारस्य रेफः । श्रुधि-

हेधिः । चित्रमघा-मघमिति धन नाम । चित्रं मघं यस्याः सा चित्रमघा । हवम्-ह्वेत् स्पर्धायां शब्दे च । 'भावेऽनुपसर्गस्य । इति अप् प्रत्ययः । सम्प्रसारणाम् । गुणोऽवा-
देशश्च ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सूनरि ! अभिनेत्रि ! जब तुम 'व्युच्छसि' अपने अवयवों के प्रकाश का विस्तार करती हो तब तुम्हारे आभासमात्र से संसार में जीवन और चेष्टा का सञ्चार हो उठता है । संसार का प्राण-संधारण 'त्वे' तुम्हारे ही आधीन है । हे विभावरि ! आनन्ददायक ज्योतिः पुञ्ज वाली उपा ! अपने विशाल रथ में बैठकर रेदीप्यमान बनो रहो । हे चित्रमघे ! विचित्र धनानन्द वाली उपा ! हमारे आह्वान को प्रीति और कीर्तिदायिनी बन कर श्रवण करो ।

११— उपो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।

तेना वह सुकृतो अध्वरो उप ये त्वा गृणन्ति बह्वयः ॥ ११ ॥

पद-पाठ :— उपः । वाजम् । हि । वंस्व । यः । श्चित्रः । मानुषे । जने ।

तेन । आ । वह । सुकृतः । अध्वरान् । उप । ये । त्वा । गृणन्ति । बह्वयः ॥ ११ ॥

संस्कृत व्याख्या—हे उपः ! यश्चित्रो वाजो मानुषे जने विद्यते तं हविलक्षणं वाजम् अन्नम् मानवैः प्रशंसित मस्माभि र्दत्तं वंस्व स्वीकुरु । तेन सुकृतो जनान् अध्वरान् यज्ञान् प्रति आ वह । सुष्ठु प्रापय । ये त्वां बह्वयः वहनसामर्थ्योपेताः सुकृतः सुकर्माणः गृणन्ति स्तुवन्ति ।

टिप्पणी—वाजम्—वज गतौ । कर्मणि । घट् । कुत्वाभावः । वंस्व—वनु यांचने 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक् । सुकृत् । करोते भूतार्थे क्विप् । तुगागमः । अध्वरान्—ध्वरो हिंसा, हिंसा नास्त्यस्मिन्तित्यध्वरः । 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' इति कर्म संज्ञा । गृणन्ति—गृ शब्दे । 'क्रयादिभ्यः णा' । प्वादीनां ह्रस्वः । इति ह्रस्वत्वम् । 'षनाभ्यस्वयोरातः' इत्याकार लोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उपा देवि ! 'यश्चित्रो वाजो मानुषे जने' जो कुछ सुन्दर सुखकर धन मानव-सामर्थ्य में सुप्राप्य है । उस प्रशंसित छवि रूप धन को स्नेह और स्वाधिकार के साथ स्वीकार करो । हमारे 'अध्वरान् प्रति' पावन यज्ञों के प्रति 'सुकृत् बह्वयः' कर्म-धुरा का वहन करने वाले शुभ सज्जनों को लाने का कष्ट करो 'ये त्वा गृणन्ति बह्वयः' जो महापुरुष आपके अभ्युदय का अभिनन्दन करते हैं, वही श्रेष्ठ पुरुष हमारे भी उन्नायक हैं ।

१२—

विश्वान् देवां आ वह सोमपतयेऽन्तरिक्षादुपस्त्वम् ।

सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य । मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

पद-पाठ—

विश्वान् । देवान् । आ । वह । सोमऽपीतये । अन्तरिक्षात् । उपः । त्वम् ।

सा । अस्मासु । धाः । गोमत् । अश्ववत् । उक्थ्यम् । उपः । वाजम् ।

सुवीर्यम् ।

संस्कृत व्याख्या—हे उपः ? सोम पीतये सोम रस पानार्थम् अन्तरिक्षात् अन्तरिक्ष लोकात् विश्वान् देवान् सर्वान् दिव्य गुणकर्मस्व भावान् आवह । प्रापय । अथ च तादृशी त्वम् गोमन गोमन्तम् अश्ववत् बहुभिरश्वैः परिपूर्णं सुवीर्यं बलवर्णं युक्तम् उक्थ्यं प्रशंस्य योग्यं वाजं शोभनम् अन्नयस्मासु धाः धारय ।

टिप्पणी—धाः—दधातेः प्रार्थनायां लृङ् । ‘गातिस्था०’ सिचोलुक् । अड-भावः । गोमत्—गो + मतुप् । ‘सुपां सु लुक्०’ विभक्ते—लुक् । अश्ववत्—मनुषि दीर्घत्वम् । उक्थ्यम्—उक्थं स्तोत्रम् । ‘तत्र भवः’ भवे यत् । सुवीर्यम्—शोभनं वीर्यं यस्व सोम पीतये—पा + क्तिन् । चतुर्थी ।

हिन्दी व्याख्या—हे उपा देवि ! ‘सोम पीतये’ सोम के रस-पान के शिष्ये अन्तरिक्ष लोक से समग्र देवों को अपने साथ लिषा लाइये जिससे हमारा यज्ञ सुवापित वन जाय । ‘गोमत्—अश्ववत्’ गायों और अश्वों से परिपूर्ण, बल-वर्ण और नीरोगता को देने वाले ‘उक्थ्यम्’ प्रशंसनीय ‘वाज’ धन से हमें सम्पन्न बनाइये ।

१३— यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदक्षत ।

सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा देदातु सुगम्यम् ॥ १३ ॥

पद-पाठ—यस्या । रुशन्तः । अर्चयः । प्रति । भद्राः । अदक्षत । सा । नः ।

रयिम् । विश्ववारम् । सुपेशसम् । उषाः । ददातु । सुगम्यम् ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्या उपसः अर्चयः दीप्तयः रुशन्तः शत्रुर्द्वे जन स्वभावाः तथा स्वसेवकानुद्दिश्य भद्राः सुखप्रदाः । अदृशत प्रतिदृश्यन्ते । सा तादृशी अध्व्याभिगमन स्वभावा उपा अस्मभ्यं 'विश्ववारं' विश्वै वरणीयं 'सुपेशसम्' 'सुगम्यम्' शुभप्रदम् 'रयिम्' धनविभवं ददातु । प्रयच्छतु ।

टिप्पणी—रुशन्तः—रुश हिंसायाम् । शत्रु । अदृशत—दृशेः कर्मणि लुङ् । 'लिङ्-सिचावात्मने पदेषु' इति कित्वाद् गुणाभावः विश्वारम्—विश्व + वृ + अण् । सुपेशसम्—पेश इति रूपनाम । शोभनं पेशो यस्य । सुगम्यम्—सुष्ठु गन्तव्यः सुगमः । गमे घञर्थे कविधानम् इति कप्रत्ययः । 'गन हन०' इत्यादिन उपधालोपः । भवे छन्दसि यत् ।

हिन्दी-व्याख्या—'यस्या उपसः अर्चयः रुशन्तः' जिस उपा की दीप्तिर्थां शत्रुओं के लिये उद्देजक हैं तथा सेवकों के प्रति 'भद्राः' सुखप्रद हैं । अदृशत—ऐसी देखी जाती हैं । ऐसी अध्व्या और अभिगमन स्वभाव वाली उपा है । वह 'विश्वारम्' सबसे वरणीय, 'सुपेशसम्' सुन्दर आकार वाले तथा 'सुगम्यम्' शुभप्रद 'रयिम्' धन-वैभव को हमारे लिये 'ददातु' प्रदान करे ।

१४— ये चिद्वि त्वामृषयः पूर्वं ऊतये जुहूरेवसे महि ।

सा नः स्तोमां अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा ॥ १४ ॥

पद-पाठः—ये । चित् । हि । त्वाम् । ऋषयः । पूर्वं । जुहूरे । अवसे । महि । सा । नः । स्तोमान् । अभि । गृणीहि । राधसा । उपः शुक्रेण । शोचिषा ॥ १४ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे महि पूजनीये ! उपः ! पूर्वं ऋषयः भद्रमिच्छन्तो ये जस्माकं गुरवः श्रेष्ठा द्रष्टारस्त्वां 'ऊतये अवसे' रक्षणार्थं प्रतियर्थं च जुहूरे जुह्विरे आहूतवन्तः । ऋचाभिः स्तुतवन्तः । हे उपः ! सा त्वं तादृशी त्वं शुक्रेण शोचिषा ज्ञान निवारणाय समर्थं तेजसा राधसा उपमुक्तेन हविषा च नोऽस्माकं स्तोमान् स्तुतिसमूहान् अभिगृणीहि । स्वीकृत्य स्नेहेन चक्षुषा पश्यन्ती 'साधु स्तुतमिति प्रशंसय ।

टिप्पणी—ऊतये=अव धातोः क्तिन् । 'ज्वरत्वरण' इति वकारस्यो—पधाय श्चोठ् । ऊतिः । चतुर्थी । जुहूरे—ह्वेज्-स्पर्धायां शब्दे च । लिटि । हयतेः सम्प्रसारणम् । 'इरयो रे' रे आदेशः । मही—मह पूजायाम् । औणादिक इप्रत्ययः । 'कृदि-कारादक्तिनः' इति डीप् । सम्बुद्धौ । गृणीहि—गृ शब्दे । प्वादीनां हन्स्वः । इति ह्रस्वत्वम् । राधसा—राधनोत्यनेनेति राधः । असून् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे महि ! महत्व शालिनि उपः ! कल्याण की कामना से जिन हमारे पूर्व ऋषियों ने प्रशस्त ऋचाओं से कपनी रक्षा तथा प्रति के लिये 'जुहूरे' आपका आह्वान किया और आपने उनकी पुकार सुनी उसी प्रकार 'शुक्रेण शोचिषा'

अन्धकार निवारक तेज से और 'राधसा' ऋद्धि-सिद्धि देने वाले अन्य और मनोबल से आप हमारे द्वारा सम्पादित स्तुति-समूहों को स्वीकार करते हुये सराहना का पात्र हमें भी बनाइये ।

१५—

उपो यदद्य भानुना वि द्वारावृणवो दिवः ।

प्र नो यच्छतादवृकं पृथुच्छदिः प्र देवि गोमतीरिषः ॥ १५ ॥

पठ-पाठः—उपेः यत् । अद्य । भानुना । वि । द्वारी । ऋणवः । दिव । प्र ।

नः । यच्छतात् । अवृकम् । पृथु । छदिः । प्र । देवि । गोमती । इषः ॥ १५ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उपे ! यत् अद्य भानुना स्वकीयेन तेजसा दिवः अन्धकार पूर्णस्याकाशस्य द्वारी द्वाररूपी पूर्वापरभागौ विऋणवः विश्लिष्य प्रकाशयसि । तेनैव अनुग्रहपरेण हेतुना त्वमस्मभ्य 'छदिः ऊवकं यच्छतात्' क्षति रहित गृहं शरण स्थानं देहि । तच्च शरण स्थानं गृह परिपूर्ण धन धान्यैः विशालं 'पृथु' च स्यात् । अयि च हे उपो देवि ! गोमतीः गवादि पूर्णा इषः नोऽस्मभ्य प्रयच्छ । त्वदागमन-स्यास्मद्रक्षणार्थमेव कारणम् ।

टिप्पणी—छदिः—छदिरिति गृह नाथ । ऋणवः—ऋणगती । लङ् । अडभावः । तनादित्वाद् उः व्यत्ययेन शपि गुणावादेशौ । प्र नः—बहुलवचनात् णत्वाभावः । यच्छतात्—दाण दाने । यच्छादेशः । अवृकम्—नास्ति वृकोऽस्मिन् । पृथु—प्रथ प्रख्याने । कु प्रत्ययः संप्रसारणं च ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा देवि ! द्यु लोक के दोनों द्वार जो कि तम के कारण आच्छादित थे । पूवे ओर पश्चिम भाग में अन्धकार ही अन्धकार था तब आपने अपने प्रशंसनीय 'भानुना' उज्ज्वल तेज से 'वृणवः' अन्धकार को विश्लेषित करके प्रकाशित कर दिया । हे उपः ! हमारी रक्षा के कारण आपका नित्य शुभागमन होता है अतः आप कृपा करके हमारे लिये विशाल शरण स्थान गृह के निर्माण में हमें सहारा दीजिये । ऐसा भवन जिसमें अवृकता रहे । किसी प्रकार की अल्पता या अल्पज्ञता अथवा क्षति न होने पाये । हे उपो देवि ! गौ आदि उपकारी पशुओं से तथा धन-धान्य से परिपूर्ण हमारा भवन हो जिससे हम अनिन्दित और आनन्दित रहें ।

१६—

सं नो राया वृहता विश्व पेशसा मिमिक्षवा समिपताभिरा ।

सं द्युमेन विश्वतुरोषो महि सं वाजैर्वाजिनीवति ॥ १६ ॥

पद-पाठ—सम् । नः । राया । बृहता । विश्वपेशसा । मिमिक्ष्व । सम् ।

इलाभिः । आ । सम् । द्युम्नेन । विश्वतुरा । उपः । महि । सम् । वाजैः । वा-

जिनीवति ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उपः ! त्वं बृहता विशालेन 'विश्वपेशसा' विविधरूपयुक्तेन 'इलाभिः' प्रसन्नाभिः गोभिः नोऽस्मात् सम्यक् 'मिमिक्ष्व' संयोजय । संयुक्तान् कुरु । हे महि ! महतीये उपः ! अस्मान् द्युम्नेन द्योतनात्मकेन शौर्यं सम्पन्नेन भगसा संयोजय । 'विश्वतुरा' शत्रून् प्रति अभिभवसामर्थ्येन चास्मान् संयोजय । तथा चास्मान् हे वाजिनीवति ! महताऽन्नसाधनेनापि 'वाजैः' विविधं विविधोपायैश्च धनैः संयोजय ।

टिप्पणी—विश्वपेशसा—विश्वानि पेशांसि यस्यासौ विश्वपेशाः । तेन विश्व पेशसा । पेशः इति रूप नाम । मिमिक्ष्व—भिह् सेचने । व्यत्ययेनात्मने पदम् । लोटि । ध्रुवः शत्रुः । दत्त कर्त्तृ पत्वानि । विश्वतुरा—तुर्वतीति तूः । तुर्वो हिसार्धः । क्विप् । विश्वेषां तूः । विश्वतूः । तृतीया । वाजिनीवति—वाजोऽन्न मस्यास्तीति वाजिनी क्रिया । तादृशी क्रिया यस्याः सा वाजिनीवती । समबुद्धौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उपा ! आप 'बृहता' विशाल 'विश्वपेशसा' नाना रूपों से युक्त 'इलाभिः' । प्रसन्न पुष्ट गायों से भी परिपूर्ण ऐश्वर्य से हम लोगों को 'मिमिक्ष्व' संयुक्त कीजिये । हे महि ! महतीय कीर्ति वाले उपा ! हमें द्योतनात्मक शौर्य—सम्पन्न 'द्युम्न' यश भी प्राप्त हो । 'विश्वतुरा' शत्रुओं के प्रति हमारा प्रताप सदा प्रभावी बना रहे और हे 'वाजिनीवति !' अन्न-धन से परिपूर्ण उपा ! आप हमें विविध प्रकार के तथा विविध-उपाय से प्राप्त होने वाले आय से संयुक्त कीजिये ।

इन्द्र-सूक्तम्

ऋषि—गोतमः, छन्दः—पङ्क्तिः, स्वरः—

१—

इ॒त्या हि सोम इ॒न्द्रदे॑ ब्र॒ह्मा च॒कार॒ वर्ध॑नम् ।

श॒वि॒ष्ठ व॒ज्रि॒न्नो॒जसा॑ पृथि॒व्या निःश॑शा अ॒हिम् ।

अ॒र्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१॥

पद-पाठ—इ॒त्या । हि । सोमे । इत् । मदे । ब्र॒ह्मा । च॒कार । वर्ध॑नम् ।

श॒वि॒ष्ठ । व॒ज्रि॒न् । ओज॑सा । पृथि॒व्याः । निः । श॒शाः । अ॒हिम् । अ॒र्च॒न् । अनु॑ ।

स्व॒राज्य॑म् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वज्रिन् ! शविष्ठ ! इन्द्र ! त्वमतिशयेन बलवान् वज्रधारी चासि । 'मदे सोमे' सोमपानानन्तरं हृष्टे प्रवृद्धे तृप्ते त्वयि ब्रह्मा सोता तव वर्धनं चकार । त्वदर्थं तुष्टिप्रदं स्तुतिसमूहं प्रेरितवान् । इत्थमेव प्रकारेण वयमपि त्वदर्थं स्तुतिसमूहं सम्पादयामः । त्वमपि पृथिव्याः शशाद् अहिम् आगत्य हन्तारं मेघं तं चावरकं वृत्रं निः शशाः । प्रभविष्णुना शासनेन निष्काशय । किं कुर्वन् ? स्वराज्यं स्वस्य राजत्वं प्रकाशकत्वं प्रकटयन् अर्चन् दीपयन् । त्वमेव स्वामित्वेन दीप्तोऽसीति प्रबोधयन् ।

टिप्पणी—शशाः—'शशु अनुशिष्टो' लङ् । 'बहुलं छन्दसि' शपः श्लुः । स्वराज्यम्—स्वस्य राज्यम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अतिशय बल श्रेष्ठ इन्द्र ! आप वज्रधर हैं । आपके सोम-पान के अनन्तर उत्पन्न ओजस्वी मद के कारण आपको प्रसन्न, तृप्त तथा प्रवृद्ध देखकर उदात्त-स्तुति वचनों द्वारा सोता 'चकार वर्धनम्' अभिनन्दन और सम्बर्धन करते हैं । इसी प्रकार हमारे स्तुति-वचनों से प्रसन्न होकर आप 'अहिम्' हिंसक वृत्र

को 'पृथिव्याः' पृथ्वी का कंटक न बनने दें और उसे दूर भगा दें । स्वराज्यम् अनु अर्चन्' इस प्रकार अपने प्रदीप्त स्वामित्व को प्रकाशित करके स्वराज्य की प्रतिष्ठा को स्थापित कीजिये ।

२—

य त्वा॑मद॒ वृषा॑ म॒दः सोमः॑ श्येना॑भृतः सु॒तः ।

येना॑ वृ॒त्रं निर॒द्भु॒त्रो ज॒घ्नथ॑ वज्रि॒न्नो ज॒सा॒र्च॒न्नं स्व॑राज्यम् ॥२॥

पद-पाठ—सः । त्वा । अमदत् । वृषा । मदः । सोम । श्येन । आभृतः ।

सु॒तः । येन॑ । वृ॒त्रम् । निः । अ॒द्भु॒त्रः । ज॒घ्नथ॑ । वज्रि॒न् । ओ॒ज॒सा । अ॒र्च॒न्

अनु । स्व॒राज्यम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! यः सोमः वृषा आनन्दवर्षणस्वभावः मद्य तृप्तिकरः सुतः निष्पादितः 'श्येनाभृतः' श्येनाकाररूपया गायत्र्याऽऽहृतः संभृतोऽस्ति । स त्वा त्वाम् अमदत् आनन्दं प्रापयत् । हे वज्रधारिन् ! येन सोम मदेन त्वं वृत्रम् अद्भुत्रः अन्तरिक्षजलात् 'निर्जघ्नथ' निष्काश्य हतवानसि । अर्चन् अनु स्वराज्यं स्वमहिम्ना स्वराज्यस्य महिमानं ख्यापयन् । त्वमेव सम्राऽसीति विज्ञापयन् ।

टिप्पणी—अमदत्—'मदी हर्षे' णिचि । 'मिती ह्रस्वः' इति ह्रस्वत्वे लङि 'छन्दस्युभयथा' शप आर्धधातुकते 'णेरिति' णि लोपः । अद्भुत्रः—आप इत्यन्तरिक्ष-नाम । 'अपोभि' इति पकारस्य तत्वम् । नियम प्राप्तस्य इटः 'उपदेशेऽजत्वः' इति प्रतिषेधः । 'अभ्यासाच्च' इति हकारस्य वत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! वह सोम-रस आपको निरन्तर आनन्दित करता रहे जिसे कि श्येन (बाज पक्षी) रूप आकार वाली गायत्री ने आहरण किया था, जो 'वृषा' आनन्द वृष्टि करने वाला तथा 'मदः' तृप्तिकर है । जिस सोममद को प्राप्त करके आपने वृत्र को 'अद्भुत्र' अन्तरिक्ष-जल से निष्कासन करके 'निर्जघ्नथ' मार डाला । इस प्रकार आपने 'अर्चन्' अपने स्वराज्य की महिमा को विस्तृत तथा सुविख्यात किया ।

३—

प्रे॒हाभीहि॑ धृ॒णुहि॑ न ते वज्रो॑ नियं॑सते ।

इन्द्र॑ नृ॒ष्णं हि॑ ते श॒वो ह॑नो वृ॒त्रां ज॑या अ॒पोऽर्च॑न्ननु स्व॒राज्य॑म् ॥

पद-पाठ—प्र । इ॒हि । अ॒भि । इ॒हि । धृ॒ष्णु॒हि । न । ते । व॒ज्रः । नि ।

य॒स॒ते । इ॒न्द्र । नृ॒म्ण॒म् । हि । ते । श॒वः । ह॒नः । वृ॒त्रम् । ज॒याः । अ॒पः ।

अ॒र्च॒न् । अ॒नु । स्व॒राज्य॒म् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'न ते वज्रो नियंसते' न केनापि ते तव वज्रः नियंसते नियन्तुं शक्यते अतः प्रेहि अभीहि तांश्च अवरोधकान् धृष्णुहि विनाशय । हे इन्द्र ! तव 'शवः' नृम्णम् मानवेभ्यो हितकारी बलं ते नामकं च । तव तेजोबलं निरीक्ष्य सर्वेभयान् नमन्ति । अतः वृत्रं मेघं 'हनः' जहि अपश्च उदकानि च 'जयाः' वशे स्थापय । वृत्रं मेघं विनाशय तत उदकानि प्रापय । अर्चन् अनु स्वराज्यम् ।

टिप्पणी—यंसते—यमघातोः 'सिब्वहुलं लेटि । इति सिप् । हनः—लोडर्थे लङ् । जयाः—जयतेः, लेटि आडागमः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपका वज्र किसी भी अपघातक से अवरुद्ध नहीं हो सकता । इस कारण हस्तव्य शत्रुओं के प्रति प्रहार कीजिये और अभिभव करके उनका विनाश कीजिये । आपका 'शवः' बल 'नृम्णम्' मनुष्यों में नम्रता, अनुशासन और कल्याण का सम्पादन करने वाला है, इस कारण वृत्र (मेघ) का विनाश करके जल-शक्ति पर 'जयाः' अपना प्रभुत्व स्थापित कीजिये और अपने स्वराज्य की महिमा का जयघोष होने दीजिये ।

४— नि॒रिन्द्र॒ भू॒म्या॒ अ॒धि॒ वृ॒त्रं॒ जघ॑न्थ नि॒दि॒वः ।

सृ॒जा म॒रु॒त्वती॑र॒व जी॒वध॑न्या॒ इ॒मा अ॒पोऽर्च॑न्त॒नु स्व॒राज्य॑म् ॥

पद-पाठ—निः । इ॒न्द्र । भू॒म्याः । अ॒धि । वृ॒त्रम् । ज॒घन्थ॒ । निः । दि॒वः ।

सृ॒ज । म॒रु॒त्वतीः॒ । अ॒व । जी॒वऽध॑न्याः । इ॒माः । अ॒पः । अ॒र्च॒न् । अ॒नु ।

स्व॒राज्य॑म् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! भूम्या अधि पृथिव्या उपरि निवर्तमानं वृत्रं त्वं निर्जघन्य निःशेषेण हतवानसि । निर्दोषं द्युलोकादपि पलायमानं मेघं त्वं हतवानसि । अथानन्तरं चेमा जीवधन्याः प्राणिनां तर्पणा स्वभावाः 'मरुद्गण' मरुद्गण संश्लिष्टाः (अपः) जलानि 'अवस्तज' अवस्तष्टवानसि । एतावान् महिमा तवास्तीति स्वराजत्वं प्रकटय ।

टिप्पणी—भूम्याः—पृथ्व्यनां पदम् । जघन्य—हन् धातोः लिटि । 'अभ्यासाच्च' इति हकारस्य घत्वम् । अधि—उपरिभावे । जीवधन्याः—जीवाः प्राणिनः धन्याः प्रसन्ना यामिस्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपने भूमि के ऊपर तथा द्युलोक से भी घेर कर वृत्र = मेघ का विनाश किया और 'जीवधन्याः' प्राणियों को तृप्त करने वाली मरुद्गण से संश्लिष्ट जलधाराओं का सृजन किया । ऐसी और इतनी ख्याति से युक्त आपकी प्रशंसा है, इस प्रकार अपने विशाल व्यक्तित्व के तेज को प्रकट कीजिये ।

५—

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण होद्वितः ।

अभिक्रम्याव जिघ्रतेऽपः समीय चोदयन्नर्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—इन्द्रः । वृत्रस्य । दोधतः । सानुम् । वज्रेण । होद्वितः ।

अभिक्रम्य । अव । जिघ्रते । अपः । समीय । चोदयन् । अर्चन् अनु ।

स्वराज्यम् ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम् बलवद्विप्रकर्षयुक्तः स इन्द्रः होद्वितः प्रकुपितः सन् दोधतः कम्पाकुलस्य वृत्रस्य सानुम् उच्छ्रितं स्थानं वज्रेण अभिक्रम्य आक्रम्य अव जिघ्रते अवहन्ति । किमर्थम् ? अपः दृष्टिजलानि समीय संरणाव चोदयन् प्रेरयन् । स्वमहिमानं च चेतयन् ।

टिप्पणी—दोधतः—धूक् कम्पने, यङ् लुगन्तात् शत् । होद्वितः—हेद्वते इति क्रुध्यतिकर्मा । निष्ठा । वर्णव्यत्ययः जिघ्रते—हन्ते लटि । व्यत्ययेन आत्मनेपदं बहुवचनं च शपः श्लुः । 'गमहन०' इत्युपधात्तोपः । समीय—सृ गतौ भावे मन् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—बल और मेघाशक्ति की प्रकर्षता से प्रकाशमान इन्द्र प्रकुपित होकर कम्पाकुल मेघ के उच्च स्थान को अपने वज्र के प्रहार से छिन्न-भिन्न

कर देता है। ऐसा किसलिए ? इस हेतु कि अप—वृष्टि की जल धारायें 'सर्माय' सरणशील होकर जगत् कल्याण के निमित्त प्रेरित हों। इस प्रकार अपने ओजस्वी तेज को प्रशस्त करता हुआ इन्द्र अपने साम्राज्य को प्रकट करता है और अपने ऐश्वर्य को ख्यापित करता है।

६—

अधिसानौ निजिघ्रते वज्रं शतपर्वणा ।

मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—अधि । सानौ । नि । जिघ्रते । वज्रेण । शतपर्वणा । मन्दानः ।

इन्द्रः । अन्धसः । सखिभ्यः । गातुम् । इच्छति । अर्चन् । अनु । स्वराज्यम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—शतपर्वणा वज्रेण अनेकधारायुक्तेन वज्रेण इन्द्रो वृत्रस्य मेघस्य सानौ प्रदेशे उच्छिन्ने देशे निजिघ्रते निर्हन्ति । स च इन्द्रः मन्दानः मन्दमानः सूयमानः सन् सखिभ्यः समानाख्यानेभ्यः मित्रवत्प्रियेभ्यः सौतृभ्यः अन्धसः अन्तानां प्राप्त्यर्थं गातुं मार्गमुपायम् इच्छति । अनोपलब्ध्युपायान् निदिशति । एवं स्वस्य तेजोबलं विस्तारयन् ।

टिप्पणी—मन्दानः—मदि स्तुती, कर्मणि शानच् । 'छन्दस्युभयथा' इति शानच् आर्धधातुकत्वात् अकारयकारयो लोपः । अन्धसः—अन्ध इति अन्न नाम ।

हिन्दी-व्याख्या—अनेको धारों वाले वज्र से इन्द्र वृत्र के उच्च स्थान पर आघात करता है। इस प्रकार अपने उन्नत गुणों तथा कर्मों के कारण मित्रवत् प्रसन्न स्तुतिकर्त्ताओं से स्तुति पाता हुआ वह प्रतापी इन्द्र मित्रों के लिए अन्न प्राप्ति के हेतु अनेकों उपायों का सृजन करता है। अपने राजत्व को प्रकट करता है।

७—

इन्द्र तुभ्यमिदद्विवोऽनुत्तं वज्रिन् वीर्यम् ।

यद्ध त्वं मायिनं मृगं तमु त्वं मायया वधीरर्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—इन्द्र । तुभ्यम् । इत् । अद्विज्वः । अनुत्तम् । वज्रिन् । वीर्यम् ।

यत् । ह । त्यम् । मायिनम् । मृगम् । तम् । ऊँ इति । त्वम् । मायया । अवधीः ।

अर्चन् । अनु । स्वराज्यम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अद्रिवः अद्रिवन् मेघरूपवाहनोपेत ! वज्रिन् वज्र-
धारिन् ! तुभ्यं वीर्यं तव सामर्थ्यं किल अनुत्तम् शत्रुभिः अतिस्कृतम् पण्ठयं
चतुर्थी । तं च मृगं मार्गणशीलं मायिनं मायाप्रपञ्चेन वञ्चयितारं वृत्रं माययेव
अवधीः हतवानसि । अर्चन् अनु स्वराज्यम् । स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् ।

टिप्पणी—अद्रिवः—अद्रिरिति मेघनाम । तद्वान् इन्द्रः । तत्सम्बुद्धौ
अ तम्—‘नसत्त निपत्त०’ इति निपातनात् । निष्ठा । तत्वाभावः । अवधीः—हन्
हिंसागत्योः—‘लुङि च’ इति वधादेशः । अदन्तत्वात् तस्य अतो लोपे सति स्थानिव-
भ्वावात् सिचि वृद्धयभावः ।

हिंस्वी-व्याख्या—हे मेघरूप वाहन वाले ! वज्रिन् ! वज्रहस्त इन्द्र !
आपका अनुपम सामर्थ्य है जिसे शत्रु तिरस्कृत नहीं कर सकते । आपने उस मार्गण-
शील मायावी वृत्र को अपनी अनन्त माया शक्ति से ही पराजित किया है । इस
प्रकार वृत्र वध करके अपने ऐश्वर्य का आने विस्तार किया है ।

८—

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवति नाव्या इ अनु ।

महत् इन्द्र वीर्यं बाह्यो स्ते बलं हितमर्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—वि । ते । वज्रासः । अस्थिरन् । नवतिम् । नाव्याः । अनु ।

महत् । ते । इन्द्र । वीर्यम् । बाह्योः । ते । बलम् । हितम् । अर्चन् । अनु ।

स्वराज्यम् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—नाव्याः नावा तार्याः नवति नवति संख्याकाः वृत्रेण निरुद्धाः
नदीः अनु अभिलक्ष्य तव वज्राः खल्वपि अनन्ता जाताः । सर्वत्र व्यापकत्वात् ।
सर्वत्र प्रगतिशीलं वृत्रं प्रति एकोऽपि वज्रोऽनन्त इव दृश्यते । हे इन्द्र ! महत् ते
वीर्यम् । तव सामर्थ्यं वर्णनातीतम् । बाह्योस्ते बलं हितम् । तव बलिष्ठयो मुञ्जयो
मंहद् बलं निहितम् । त्वं स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् सर्वातिशयं राजसे ।

टिप्पणी—अस्थिरन्—स्था + लुङि । 'समवप्रविभ्यः स्थः' इत्यात्मनेपदस्य 'मत्रे घस०' च्ले लुक् । 'स्थाध्वोरिच्च' इति इत्वम् । नाव्याः—नावा तार्यम् । यत् । वज्रासः—वज्राः, 'आज्जसेरमुक्' ।

हिन्दी-व्याख्या—सहस्रों नौकाओं से आच्छादित नदियों में नाना प्रकार से प्रयुञ्च दिखाने वाले वृत्र को लक्षित करके आपके वज्र भी अनन्त हो गए । सर्वत्र प्रगतिशील वृत्र के प्रति एक ही वज्र अनेक रूपों में दिखायी देता था । हे इन्द्र ! आपका सामर्थ्य महान् है और आपकी वज्र सदृश मुजाओं में अनन्त बल है । इस हेतु अपने स्वराज्य की अर्चना को विभुता दीजिये ।

६-

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विशतिः ।

शतैनमन्वनोनवु रिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६॥

पद-पाठः—सहस्रम् । साकम् । अर्चत । परि । स्तोभत । विशतिः । शता ।

एनम् । अनु । अनोनवुः । इन्द्राय । ब्रह्म । उत्पद्यतम् । अर्चन । अनु ।

स्वराज्यम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—एनम् इन्द्रं सहस्रं साकम् अर्चत परः सहस्रः पुरुषैर्मिलिता अर्चत अर्चामकुर्वन्निति कुर्वन्ति च । विशतिः ऋत्विजो यजमानः पत्नी सदस्यः शमित्रादयश्च एनमेव इन्द्रम् अनोनवुः पुनः पुनः स्तुतिममधारयन् । शतं शतसंख्याका ऋषयश्चैनमेव अभ्यनन्दन् । अस्मा एवेन्द्राय दातुं ब्रह्म अन्नं हविः स्त्रोत्रं च उद्यतम् अवधृतं दरीदृश्यते । अयमेवेन्द्रः स्वराजतां प्रकाशयति ।

टिप्पणी—परिष्टोभत—स्तोभति स्तुतिक्रमा । 'उपसर्गात् सुनोति०' इति षत्वम् । अनोनवुः—'णु स्तुतौ' अस्मात् यङ्लुगन्वात् लुङि । 'सिजश्चस्त' विदिभ्यश्च' इति झेः उस् । उद्यतम्-उत्पूर्वात् 'यम उपरमे' कर्मणि निष्ठा ।

हिन्दी-व्याख्या—सहस्रों महापुरुषों ने एक साथ जिस इन्द्र की अर्चना की और करते हैं । १६ (सोलह) ऋत्विज्, यजमान, पत्नी, सदस्य तथा शमिता=ये बीस जिस इन्द्र की सर्वदा स्तुति करते रहते हैं । 'शता' सैकड़ों ऋषि-मुनि जिस पराक्रमी इन्द्र की बारम्बार स्तुति-उपासना-अर्चना में लीन रहते हैं, उसी इन्द्र के

लिये सदा ब्रह्म (स्तुति, अन्न, व्रत, हवि आदि) उच्यत तत्पर रहता है। यही एक ऐश्वर्यशाली इन्द्र सदैव अपने स्वराज्य की महिमा का प्रख्यापन करता रहता है।

१०-

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः ।

महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वां असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥

पद-पाठ—इन्द्रः । वृत्रस्य । तविषीम् । निः । अहन् । सहसा । सहः ।

महत् । तत् । अस्य । पौंस्यम् । वृत्रम् । जघन्वान् । असृजत् । अर्चन् । अनु ।

स्वराज्यम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—अयम् साक्षात् शक्ति साहससम्पन्नः इन्द्रः वृत्रस्य तविषीं समस्तं बलं निरहन् विनष्टं चकार । तस्य वृत्रस्य यदवरोधकं सहः आयुधं तदपि स्वकीयेन सहसा शक्ति-सम्पन्नेनायुधेन जघन्वान् हतवान् । असृजत् वृत्रेण निरुहानि जलानि च नीचैरवागमयत् । अस्य इन्द्रस्य पौंस्यं बलम् महत् अतिप्रभूतं खलु । अर्चन् अनु स्वराज्यम् । एवं स्वस्थ राजत्वं प्रकटयन् असौ इन्द्रः चमत्कुरुते ।

टिप्पणी—पौंस्यम्—‘पुंसं अभिवर्धने’ । ‘अचोयत्’ इति यत् । जघन्वान्—हन्ते लिटः क्वसुः । ‘विभाषा गम हन विद०, इति इटो विकल्पादभावः । ‘अभ्यासाच्च’ इति हकारस्य घत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—शक्ति और साहस से महान् इन्द्र सदा सम्पन्न है। उसने वृत्र की ‘तविषी’ शक्ति-बल को ‘निरहन्’ क्षीण कर दिया और उसके ‘सहः’ आयुध को अपने ‘सहसा’ आयुध से निरर्थक बना दिया। इन्द्र ने अवरोधक वृत्र का विनाश कर दिया तथा अवरुद्ध जल ‘असृजत्’ का सृजन किया। इन्द्र का पौरुष महान् और अर्चनीय है। इस प्रकार इन्द्र ने अपने तेज और साहस को प्रकट करते हुए स्वराज्य की श्री को प्रकट किया।

११-

इमे चित्तव मन्यवे वेपेने भियसा मही ।

यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वां अवधरिर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥

पद-पाठ—इमे इति । चित् । तव मन्यधे । वेपेते इति । भियसा । मही

इति । यत् । इन्द्र । वज्रिन् । ओजसा । वृत्रम् । मरुत्वान् । अवधीः । अर्चन् ।

अनु । स्वऽराज्यम् ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—हे इन्द्र । मरुत्वान् मरुद्धिः युक्त स्त्वं यदा ओजसा दृढेन बलेन वृत्रम् अवधीः तदा त्वदीयं रूपं निभाल्य इमे मही महन्त्यो द्यावापृथिव्यावपि भियसा भयेन वेपेते कम्पेते । कम्पाकुले जाते । एवं स्वस्य राजत्वं प्रकटयन् इन्द्रो महान् राजते ।

टिप्पणी—वेपेते—‘दुवेपृ कम्पने’ । भियसा—ग्नभीभये कसि प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! मरुहूण से युक्त आपने जब वृत्र पर भयानक प्रहार किया तब आपके तेजस्वी स्वरूप को देखकर यह पृथ्वी और यह आकाश दोनों काँप गये । इस प्रकार अपने महान् साम्राज्य को प्रकट करके इन्द्र ने अपने ऐश्वर्य को प्रख्याभित किया ।

१२-

न वेपसा न तन्यतेन्द्र वृत्रो विवीभयत् ॥

अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायता चंननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—न । वेपसा । न । तन्यता । इन्द्रम् । वृत्रः । वि । वीभयत् ।

अभि । एतम् । वज्रः । आयसः सहस्रभृष्टिः । आयत । अर्चन् । अनु । स्वऽ-

राज्यम् ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—वृत्रः स्वकीयेन वेपसा कम्पनभयेन इन्द्रं न विवीभयत् भयत्रस्तं नाकरोत् । स्वकीयेन तन्यता घोरगर्जनेन च भीतं न चकार । एतस्मिन्ने-वान्तरे इन्द्रेण प्रयुक्तः सहस्रभृष्टिः अनेकधारोपेतः वज्रः तथानिधं वृत्रं प्रति आयत आगच्छत् । एवं स्वराजभावं प्रकटयन् महान् इन्द्रो राजते ।

टिप्पणी—तन्यता—‘स्तन शब्दे’ ‘तनोती यंतुच’ बहुलवचनात् अस्मादपि

भवति । सलोपश्च । 'सुपां सुलुक्०' इति तृतीयाया आदेशः । वीभयत्—'जिभी भये' 'हेतुमति च' इति णिच् । लुङि च्छेष्टश्चङ् । आयत-अपगलै, आत्मनेपदी ।

हिन्दी-व्याख्या—वृत्र ने अपने झम्प-कम्प दिखा कर इन्द्र को भयभीत करना चाहा और अपने घोर गर्जन से भी त्रस्त करने में प्रवृत्त हुआ पर किसी प्रकार उसे सफलता नहीं मिली । इतने में सहस्रों धार वाला वज्र वृत्र के प्रति उन्मुख हुआ । इस प्रकार वृत्र-वध के साथ इन्द्र ने अपने राजत्वं के कौशल को प्रकट किया ।

१३-

यद्वृत्रं तव चाशनि वज्रेण समयोधयः ।

अहिमिन्द्र जिघांसतो दिवि ते बद्वधे शवोऽर्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—यत् । वृत्रम् । तव । च । अशनिम् । वज्रेण । सम् । उयोधयः ।

अहिम् । इन्द्र । जिघांसतः । दिवि । ते । बद्वधे । शवः । अर्चन् । अनु ।

स्वराज्यम् ॥ १३ ॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! त्वं यदा तं तथाविधं महाशक्तं वृत्रं तेन प्रेरितं प्रहाराविष्टाम् अशनिं च स्वकीयेन वज्रेण समयोधयः सम्यक् अयोधयः तदा तम् अहिम् आगत्य हन्तारं वृत्रं जिघांसतः हन्तुमिच्छतः ते शवः वलं दिवि बद्वधे । व्याप्तम् आसीत् । तथाविधस्त्वं स्वराज्यम् अर्चन् कीर्तयन् प्रवृद्धऽसि ।

टिप्पणी—जिघांसतः—हन्तेरिच्छायां सन् । 'अज्ज्ञानगमां-सनि' इति उपधा-दीर्घत्वम् । बद्वधे—'बध बन्धने' कर्मणि लिटि व्यत्ययेन हलादिशेषो न ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! आपने वृत्र तथा वृत्र-प्रेरित आयुधों पर अपने वज्र के साथ भली प्रकार संप्रहार किया । आकर हनन करने की इच्छा वाले वृत्र का जब आपने विध्वंस किया उस समय आकाश में भी आपकी महाशक्ति का ओज प्रकट हुआ । इस प्रकार अपनी गरिमा का आपने राजस्व रूप में प्रदर्शन किया ॥ १३ ॥

१४-

अभिष्टने ते अद्रिबो यत्स्था जगच्च रेजते ।

त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्र देविज्यते भियार्चन्नु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—अभिऽस्तने । ते । अद्रिऽवः । यत् । स्थाः । जगत् । च । रेजते ।

त्वष्टा । चित् । तव । मन्यवे । इन्द्र । वे विज्यते । भिया । अर्चन । अनु । स्वऽ-

राज्यम् ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'स्थाः' स्थावरं भोग्य प्रपञ्चजातं जडभूतादि जगत् च जंगम रूपं भोक्त प्रपञ्चाख्यं च सर्वं जडचेतनात्मक जगत् तव अभिष्टने गर्जने सति रेजते कम्पाकुलं जायते । त्वष्टा चित् वज्रनिर्माणकर्ता खल्वपि त्वष्टा तव मन्यवे वृत्रहननयोग्याय कोपाय वेविज्यते ऽत्यर्थं कम्पते । तथा विध स्वं स्वराज्यम् अर्चन् स्वस्य राजभावं भावयन् प्रकाशितो ऽसि ।

टिप्पणी - स्थाः—तिष्ठतेः क्विप् । वे विज्यते—'ओविजी भय—चलनयोः' क्रियासमभिहारे यङ् । 'सम्यङ्' इति द्वित्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे इन्द्र ! 'स्थाः' सारा स्थावर जगत् तथा 'जगत्' सारा गतिशील चेतन जगत् आपके 'अभिष्टने' गर्जन से 'वेपते' भयवस्त होकर कांपने लगता है । वज्र जैसे आयुध का निर्माता त्वष्टा भी आपके वृत्र-हनन योग्य कोप-सामर्थ्य को देखकर भयाकुल होकर कांपने लगता है । ऐसे बल सम्पन्न आप अपने राजत्व को प्रकट करते हुए प्रकाशमान हैं ।

१५-

न हि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः ।

तस्मिन्नुम्णमुत क्रतु देवा ओजांसि संधुर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—नहि । नु । यात् । अधिऽइमसि । इन्द्रम् । कः । वीर्या । परः ।

तस्मिन् । नूम्णम् । उत । क्रतुम् । देवाः । ओजांसि । सम् । दधुः । अर्चन् । अनु ।

स्वऽराज्यम् ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—वयम् अल्पमतयः तं तथाविधं प्रशस्तम् इन्द्रं यथावत् न जानीमः । तम् 'यात्' यान्तं सर्वत्र अतिक्रम्य वर्तमानम् इन्द्रं अधीमसि' न हि वयं सम्यग् अवगच्छामः । अतोऽयि परः परस्तात् अतिदूरे ज्ञाते स्थाने प्रकाशमानम् इन्द्रं

वीर्या स्वीकीयेन वीर्येण बलसामर्थ्येन दीप्यमानं को नु खलु विजानीयात् न कोऽपि अवगाहितुं समर्थः । कस्माद् हेतोः ? तस्मिन् खलु इन्द्रे नृम्णं नृम्योहितं धनं क्रतुं कर्मसामर्थ्यम् ओजांसि च देवाः संदधुः स्थापयामासुः । अस्मात् कारणात् अयमिन्द्रोऽन्यान् देवान् अतिक्रम्य वर्तते ।

टिप्पणी—यात्—‘या प्रायणे’ शतृ । ‘सुपा सुलुक्’ इति द्वितीयाया लुक् । अधीमसि—‘इणगतौ’ । ‘इदन्तो मसिः’ । वीर्या—‘सुपां सुलुक्’ इति तृतीयाया आकारः ।

हिन्दी-व्याख्या—हम लोग अल्प सामर्थ्य रखते हैं अतः ‘यात्’ सर्वत्र विद्यमान इन्द्र को सम्यक् नहीं जान पाते । ‘परः’ परस्तात् बहुत दूर देश में अपने तेज और सामर्थ्य से अलंकृत इन्द्र को भला कौन जान सकता है ? इसका प्रबल कारण यही है कि देवों ने इन्द्र के ही अन्तराल में मानव-हितसाधन तथा ‘क्रतु’ श्रेष्ठ कर्म एवम् ‘ओजांसि’ प्रभूत बलों की स्थापना की है । अतः इन्द्र न केवल सर्वोपरि है अपितु अपने स्वराज्य के माहात्म्य को भली प्रकार प्रकट कर रहा है ।

१६- यामथवा मनुषिता दध्यङ् धिय तृत ।

तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मताचन्तनु स्वराज्यम् ॥

पद-पाठ—याम् । अथर्वा । मनुः । पिता । दध्यङ् । धियम् । अतृत ।

तस्मिन् । ब्रह्माणि पूर्वथा । इन्द्रे । उक्था । सम् । अग्मत । अचन् ।

अनु । स्वराज्यम् ॥ १६ ॥

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्र एवं वृत्रवधादिभिरचर्चनीयैः कर्मभिः स्वाधिपत्यं प्रकटी करोति । अथर्वा, सर्वेषां पितृस्थानीयो मनुः दध्यङ् अथर्वणः पुत्रः एते तत्र भवन्त ऋषयः यां स्वधेयम् अतृत यत् पूजनीयं कर्म प्रकाशितवन्तः तस्मिन् प्रशस्ते कर्मणि यानि ब्रह्माणि पूज्यानि हवीषि यानि च ‘उक्था’ उक्थरूपाणि स्तोत्राणि सर्वाणि वस्तूनि स्तुतयश्च तस्मिन्नेव इन्द्रे समग्मत संगतानि भवन्ति । स एव एतेषामुपायानां समुद्रभूतः ।

टिप्पणी—अतृत—‘तनु विस्तारे’ ‘तनिपत्योश्छन्दसि’ इति उपघालोपः । ‘बहुलं छन्दसि’ इति विकरणस्य लुक् । पूर्वथा—इवार्थे पूर्वशब्दात् थाल् । उक्था—

‘शेषछंदसि—बहुलम्’ इति श्लेषिः । समग्रत—‘समो गम्भृच्छ्रियाम्’ इत्मात्मने पदम् । लुङि । ‘मन्त्रे घस०’ इलिच्चेर्लुक् । ‘गम हन०’ इति उपधालोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र ही वृत्र-वध आदि स्वकीय शुभकर्मों से अपने स्वामित्व से प्रकट कर रहे हैं । अथर्वा—ऋषि, सबके पिता मनु, अथर्वा के पुत्र दध्यङ् आदि पूजनीय ऋषियों ने जिस ‘धियम्’ अर्चनीय कर्म को प्रकाशित किया है, उस पवित्र कर्म में जितनी पूजा-सामग्री है और जितनी ‘उक्था’ प्रकाशित करने योग्य स्तुतियाँ हैं । सभी इन्द्र में ही समाहित हो जाती हैं । ऐसे इन्द्र ने ही स्वराज्य की अर्चना में अपना महान् योगदान दिया है ।

मण्डल १

मरुत्-सूक्तम्

सूक्त ८५

ऋषि—गौतमः—देवता—मरुतः—छन्द ५, १२ त्रिष्टुप् । शेष जगती ।

१- प्र ये शु॒भ॒न्ते॒ जन॒यो न स॒प्त॒यो

याम॒न् रु॒द्रस्य॑ सू॒नवः॑ सु॒दंसः॑ ।

रो॒द॒सी हि म॒रुत॑श्च॒क्रिरे॑ वृ॒धे

म॒द॒न्ति॑ वी॒रा वि॒दथे॑षु धृ॒ष्वयः॑ ॥१॥

पद-पाठ—प्र । ये । शु॒भ॒न्ते । जन॒यः । न स॒प्त॒यः । याम॒न् । रु॒द्रस्य॑ ।

सू॒नवः । सु॒दंसः । रो॒द॒सी इति॑ । हि । म॒रुतः॑ । च॒क्रिरे॑ । वृ॒धे । म॒द॒न्ति । वी॒राः ।

वि॒दथे॑षु । धृ॒ष्वयः॑ ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—ते रुद्रस्य परमेश्वरस्य सूतवः पुत्राः सुदंससः शोभनानि दंसांसि कर्माणि वर्तन्ते येषां ते शोभनकर्माणि सप्तयः सर्पणस्वभावाः यामन् यामनि

गमने निमित्तभूते सति जनयो न कामिन्य इव शुभ्रन्ते शोभयन्ति स्वकीयानि शरीराणि अगानि वस्त्रालंकारादिभिः भूषयन्ति । एते मरुतः वृष्टि प्रदानादिभिः कर्मभिः रोदसी द्यावापृथिव्यौ वृधे संवर्धनाय चक्रिरे कृतवन्तः । ते च वीराः विशेषण शत्रून् ईरयन्ति प्रक्षिपन्ति शत्रुकम्पन स्वभावाः । घृष्वयः—घर्षण शीलाः विदधेषु रणयज्ञेषु । मदन्ति रणमदेन मोदन्ते ।

टिप्पणी—शुभ्रन्ते—शुभ्रधातो लटि । जनयः—जायन्त आसु अपत्यानि इति जनयः जायाः । जन इति पारसीकभाषायाम् । इन् सर्वधातुभ्यः इति इन् प्रत्ययः । यामन् । या प्रायणे मनिन् प्रत्ययः । सप्तम्या लुक् । घृष्वयः—घृषु संघर्षे विन् प्रत्ययः । रुद्रस्य—रोदेणिलुक् च रक् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘सुदंससः’ प्रशंसनीय कर्म वाले, ‘सप्तयः’ सर्पणशील रुद्रस्य सूनवः परमेश्वर के पुत्र जब कहीं ‘यामन्’ गमन का प्रसङ्ग उठता है तब ‘जनयो न ये शुभ्रन्ते’ अपने आपको कमनीय कामिनियों की भाँति सजाते हैं । इन मरुद्गण देवताओं ने अपने वृष्टि-प्रदान आदि शुभ कार्यों से पृथ्वी लोक तथा द्युलोक का ‘वृधे’ सम्बर्धन किया है । ये मरुद्गण ‘घृष्वयः’ घर्षणशील ‘विदधेषु वीराः’ संग्राम यज्ञ में शत्रुओं का प्रक्षेप करने वाले हैं । मरुद्गण रण-मद से सदा ही आनन्द-मग्न रहते हैं ।

२-

ते उ॒क्षिता॑सो महि॒मान् आ॑शत

दिवि रु॒द्रासो॑ अधि चक्रिरे सदः ।

अर्च॑न्तो अ॒र्कं जन॑यन्त इन्द्रि॒यम्

अधि॒श्रियो॑ दधिरे पृ॒श्निमा॑तरः ॥२॥

पद-पाठ—ते । उ॒क्षिता॑सः । महि॒मानम् । आ॑शत । दि॒वि । रु॒द्रासः॑ । अधि ।

चक्रि॑रे । सदः । अर्च॑न्तः । अ॒र्कम् । जन॑यन्तः । इन्द्रि॒यम् । अधि । श्रि॒योः । दधि॑रे ।

पृ॒श्नि ५ मा॑तरः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—ते रुद्रपुत्रा मरुतः उक्षितासः अभिषिक्ताः सन्तः महिमानम् स्ववैभवम् आशत व्याप्नुवन् । दिवि द्योतमाने आकाशे रुद्रासः रुद्र इव महोत्साहा

सदः अधि चक्रिरे । स्थानं निष्पादितवन्तः । अर्कम् अर्चनीयं सूर्यम् अर्चन्तः जनयन्त इन्द्रियम् इन्द्रियाणां तेज उत्पादयन्तः पृथिवीमातरः नानावर्णाया भूमेः पुत्रा इमे मरुतः अधिश्रियो दधिरे, आधिक्येन श्रियः शोभाः सम्पदश्च आधारयन् ।

टिप्पणी—उक्षितासः—उक्ष सेचने । कर्मणि क्तः । 'आज्जसेरसुक्' । पृथिवीमातरः—प्राश्नुते रूपाणि इति पृथिवीभूमिः, सा माता येषां ते । नानारूपाया भूमेः पुत्राः । अर्कः—कृ दा धा रा चि कलिभ्यः कः' अर्चयति इति अर्कः इन्द्रियम्—इन्द्रस्य लिङ्गम् । इन्द्र आत्मा स चक्षुरादिना इन्द्रियेण अनुमीयते ।

हिन्दी व्याख्या—वे रुद्र-पुत्र मरुद्गण 'उक्षितासः' अभिषेक पाने पर अपने 'महिमानम् आशत' ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेते हैं । इन्होंने धुलोक में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना रखा है । अपने प्रताप और असीमित बल के कारण ये रुद्र के ही तुल्य हैं । 'अर्कम् अर्चन्तः' अर्चनीय सूर्य की अर्चना करते हुए तथा इन्द्रिय—तेज का निष्पादन करते हुए अत्यधिक शोभा तथा सम्पदा का संभरण करते हैं । 'पृथिवीमातरः', नाना वर्णों वाली भूमि के ये मरुद्गण पुत्र हैं ।

३-

गोमा॑तरो॒ यव॑छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑-

स्त॒नूषु॑ शु॒भ्रा दधि॑रे वि॒रु॒मतः॑ ।

बा॒ध॑न्ते वि॒श्वम॑भि॒माति॑न॒मप॑

व॒र्त्मा न्ये॑षाम॒नु री॑यते घृ॒तम् ॥३॥

पद-पाठ—गो॑मा॒तरो॒ । यत् । शु॒भ्र॑यन्ते । अ॒ञ्जिभिः॑ । त॒नूषु॑ । शु॒भाः ।

दधि॑रे । वि॒रु॒मतः॑ । बा॒ध॑न्ते । वि॒श्वम् । अ॒भि॒मा॒ति॒नम् । अप॑ । व॒र्त्मा॒नि ।

एषा॑म् । अनु॑ । री॒यते॑ । घृ॒तम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—'गोमातरः', गोरेव माता येषां ते गोमातरः पृथ्वी-पुत्राः यदा ते अञ्जिभिः स्वरूपाभिव्यञ्जकैराभरणैः स्वकीयानि अंगानि शुभयन्ते शोभयन्ति तदा तनुषु स्वशरीरेषु शुभा दीप्ताः सन्तः विरुमतः दधिरे विशेषेण रोचमानान् अलङ्कारान् धारयन्ति । विश्वं समग्रम् अभिमातिनम् अभिमुखीभूय आयान्तं शत्रु-

समूहं ते ऽपवाधन्ते । एषां वर्तमानि अनु घृतं रीयते यत्र मरतो गच्छन्ति तदनुसारेण घृतमुदकं परिस्त्रवति ।

टिप्पणी—अञ्जिभिः—‘खनिकवि’ इ प्रत्ययः । विरुद्धमतः विशिष्टा रक् विरक् । मतुप् । भत्वाद् जश्वाभावः । अयस्मयादित्वेन पदत्वात् कुस्वम् । रीयते—रीङ् स्वर्णे, ष्यन् । श्रुष्ट्राः—शुभ दीप्तौ—स्फायितञ्चि०, रक् प्रत्ययः । अभिमातिनम्—मीव् हिंसायाम् । भावे क्तः । अभिमात + इतिः । अभिमुखी भूय हिनस्ति इति अभिमाती शत्रुः । गोमातरः—गोरूपा पृथ्वी माता एषां ते गोमातरः । घृतं जिघर्तेः ।

हिन्दी व्याख्या—मरुद्गण गोरूपा पृथ्वी के पुत्र हैं । जब ये अपने को विभूषित करने लगते हैं तब ‘अञ्जिभिः’ अपने-अपने स्थानों पर रुचिकर लगने वाले अलङ्करणों से अपने अंगों को भली प्रकार अभिषेक्त करते हैं । ‘विश्वम् अभिमातिनं बाधन्ते’ समस्त प्रकार के शत्रुओं को बाधाओं को दूर करते हैं । ‘एषां वर्तमानि अनु घृत रीयते’ जिघर को ही मरुद्गण निकल जाते हैं उन भागों में अनुकूल दृष्टि हो जाती है ।

४-

वि ये भ्राजन्ते सुमखास ऋष्टिभिः

प्रच्यावयन्तो अच्युता चिदोजसा ।

मनोजुवो यन्मरुतो रथेष्वा

वृषेवातासः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥४॥

पद-पाठ—वि । ये । भ्राजन्ते । सु०मखासः । ऋष्टिभिः । प्र०च्यावयन्तः ।

अच्युता । चित् । अ०जसा । मनः । जुवः । यत् मरुतः । रथेषु । आ । वृषेवातासः ।

पृषतीः । अयुग्ध्वम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—एते ‘सुमखासः’ शोभनकर्याणः मरुतः ‘ऋष्टिभिः’ स्वकी-यैरायुधैः ‘विभ्राजन्ते’ विशेषेण शोभन्ते । एते अच्युता चिदपि च्यावयितुमशक्यानि गिरिपर्वतादीन्यपि स्वकीयेन औजसा प्रच्यावयन्तः प्रकर्षेण च्यावयितारः । एते मरुतः मनोजुवः मन इव वेगवन्तः वृषेवातासः वृष्युदक सेचन समर्थे संघात्मकाः यदा एते

रथेषु पृषतीः श्वेत विन्दुयुक्ता मृगोः अयुग्धवम् यूय नियुक्ताः कुरुथ तदा वेगवन्तः सन्तः
सर्वान् प्राणिनः सुखिनः संपादयथ ।

टिप्पणी—मनोजुवः—जु धातोः क्विप् । मरुतः—‘मृगोरुतिः’—मरुत् ।
एतदेव ज्ञापकं यन् मुङ् धातुः कुत्रापि कान्तावपि वर्तते । अतएव भ्राजन्ते, शुभयन्ते,
शुभ्यन्ते इत्यादयः प्रयोगाः साधवः ।

हिन्दी व्याख्या—‘ये ऋषिभिः’ जो मरुद्गण अपने आयुधों के साथ ‘सुमखासः’
शोभन-यज्ञ-सम्पादक के रूप में अवस्थित है । जो बहुत दृढ़ चट्टानों, पर्वतों को भी
जो कि हिलाये नहीं जा सकते, स्थान से प्रच्युत कर देते हैं । अपने ओज और बल के
कारण जो अभूतपूर्व साहस के देवता हैं । ‘मनोजुवः’ जो मन के समान वेगवान् हैं ।
अपने रमणीय रथ में जब श्वेत विन्दु वाली मृगी (मृगियों) को जोड़ते हैं तब
इनकी संधात्मक शक्ति वृष्टि—सेचन में पूर्ण समर्थ होती है ।

५-

प्र यदथेषु पृषतीरयुग्धम्

वाजे अद्रि मरुतो रंहयन्तः ।

उतारुषस्य विष्यन्ति धारा-

इचर्सेवोदभि व्युन्दन्ति भूम ॥१॥

पद पाठ—प्र । यत् । रथेषु । पृषतीः । अयुग्धवम् । वाजे । अद्रिम् ।
मरुतः । रंहयन्तः । उत । अरुषस्य । वि । स्यन्ति । धाराः । चर्म इव व्युन्दन्ति । भूमः ।
वि । उन्दन्ति । भूम ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतः ! वाजे अग्ने निमित्त भूते सति यदा यूयम् अद्रि
मेंघं रंहयन्तः प्रेरयन्तः रथेषु गमन साधनेषु पृषतीः मृगोः अयुग्धवम् संयोजयथ तदा
अरुषस्य अरोचमानस्य वैद्युताग्रेः सकाशात् जलधारा विष्यन्ति स्यन्दन्ते । उदभिः
उदकैश्च भूम समस्तां पृथ्वीं चर्म इव व्युन्दन्ति । भवन्तः पृथ्वीं कलेदयन्ति । आद्रां
नम्रां च संपादयन्ति ।

टिप्पणी—रंहयन्तः—रहि गतौ । णिच् । शतृ । विष्यन्ति पौञ्स्तकर्मणि ।
दिवादिः । श्यन् । ‘ओतः श्यनि’ ओकारलोपः । ‘उपसर्गस्त्सुनोति०’ इति षत्वम् ।

व्युन्दन्ति—उन्दी क्लेदने—बहुवचने । भूम—भूमिशब्दात् 'मुपां मुलुगिती' डादेशः
छान्दसं ह्रस्वत्वम् ।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुदगण ! जब आप 'अद्रि रह्यन्तः' मेघों को प्रेरणा
देते हुए 'वाजे' अन्न-धन की प्राप्ति के लिए 'पृपतीः' श्वेत विन्दुः धारण करने वाली
'मृगियों' को 'अयुध्यम्' रथ में नियुक्त करते हैं तब प्रकाश-हीन सूर्य = (अथवा विद्युद्-
अग्नि) के सान्निध्य से जलधारायें स्पन्दन करने लगती हैं । साथ ही यह पृथ्वी भी
चर्म के समान 'उदभिः' जल-क्लेदन से आर्द्र हो उठती है ।

६-

आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो

रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः ।

सदीता बहिरु वः सदस्कृतं

मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः ॥६॥

पद पाठ—आ । वो । वहन्तु । सप्तयः । रघुष्यदः । रघुपत्वानः ।

प्र । जिगात । बाहुभिः । सीदत । आ । बहिः । उरु । वः । सदः । कृतम् । मादय-

ध्वम् । मरुतः । मध्वः । अन्धसः ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतः ! रघुष्यदः संधृत लघुगतयः सप्ततः सर्पेणशीला
अश्वोः वः युष्माक् आ वहन्तु अस्मत्पूजा स्थानं संप्रापयन्तु । यूयं रघुपत्वानः शीघ्रं
पतन्तः स्वबाहुभिः वहन साधनैः हस्तैः । 'प्रजिगात' अस्मभ्यं दातव्यानि दत्त्वा स्व
स्थानं शोभयत । युष्माकं सदः सदसं बहिः विस्तीर्णं कृतम् सम्पादितम् । तत्र कृपया
उपविश्य अस्माक् सत्ताथयत । मधुरस्य अन्धसः सोमलक्षणस्य पानेन मादयध्वम् ।
तृप्ता भवत ।

टिप्पणी—रघुष्यदः—स्यन्तु प्रस्रवणे 'क्विप् च' इति क्विप् । न लोपः ।
रघुपत्वानः—पत्लु गतौ । घनिप् । मादयध्वम्—मद तृप्ति—योगे । चुरादिः ।
जिगात—गा स्तुतौ । जुहोस्यादिः । लोट् । मध्यमपुरुष बहुवचने । अन्धसः—अन्ध
इति अन्न नाम ।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुद्गण ! 'रघुपदः सप्तयः' अत्यन्त वेगवान् अश्व 'वः' आप लोगों को 'आ वहन्तु' हमारी यज्ञभूमि के सामिध्य में लाके और सभी 'रघु-पत्नानः' शीघ्र आगमन करके अपने वहन के साधन भूत वाहुओं से हमारे लिए दातव्य धन-राशि का दान करके अपने पावन-स्थान को सुशोभित करें । आपके आस-नासीन होने के लिए विस्तीर्ण-स्थान का कुशा आदि से निर्माण किया गया है । आप 'सीदत' उस पर विराजमान होकर हमें अनुगृहीत करें । 'मध्वः अन्धसः' सोम-रस रूपी मधुर अन्न-सेवन से आप तृप्त हों और हमें कृतार्थ करें ।

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना

नाकं तस्युरु चकिरे सदः ।

विष्णु र्यद्धावद् वृषणं मदच्युतं

वयो न सीदन् अधि वहिषि प्रिये ॥७॥

पद पाठः—ते । अवर्धन्त । स्वतवसः । महित्वना । आ । नाकम् ।

तस्युः । उरु । चकिरे । सदः । विष्णुः । यत् । ह । आवत् । वृषणम् । मदच्युतम् ।

वयः । न । सीदन् । अधि । वहिषि । प्रिये ॥७॥

संस्कृत टीका—तै मरुतः 'महित्वना' स्वकीयेन महिम्ना 'स्वतवसः' स्वकीयाभ्येव तवींसि बलानि येषां ते स्वतवसः स्वशीर्ये गुप्ताः 'अवर्धन्त' समृद्धिं प्राप्ताः । सदः स्वकीयं सदनं स्थानम् उरु चकिरे विस्तीर्णं नभोरूपं कृतवन्तः । नाकं तस्युः । दुःख शोक विवर्जितं स्वर्गं लोकं स्थिताः । यत् एतान् मरुतः प्रति समोग्दय विष्णुरेव 'आवत्' रक्षाविधानं विदधाति तं च मरुद्गणं मदच्युतं हर्ष-निर्भरं वृषणं कार्याभिवर्षकं मानवेभ्यो नितरं करोति । 'वयो न' यथा वयः विहंगमाः स्वकीये नीःभूते वहिषि सानन्दं समतन्ति तथैव महतोऽपि प्रियानन्ददायिनी यज्ञवह्निषि सीदन्ति ।

टिप्पणी—मदच्युतम्—मदं व्योतति 'च्युतिद् आसेचने' क्विप् । सदिन्—लेट् । यत्—येभ्यः । चतुर्थ्या लुक् । आवत्—अव + लङ् । महित्वना—महित्व शब्दात् ना उपजनः । विष्णुः—आदित्यः । वैवेष्टि जगत् । सदः—सीदन्त्यन्नेति सदः । 'सर्वधातुभ्योऽमुन्' ।

हिन्दी व्याख्या—वे मरुद्गण स्वयं स्वाश्रित बल से अपनी ही शक्ति और कौशल से 'अवर्धन्त' समृद्धि को प्राप्त हुए । 'उरु सदः चक्रिरे' अपने निवास के लिए उन्होंने विस्तीर्ण आकाश को आवास के रूप में निर्धारित किया और दुःख रहित 'नाक तस्थुः' स्वर्गलोक में अधिष्ठित हुए । इन हर्ष निर्भर वर्षा के देवों की रक्षा स्वयं भगवान् विष्णु ही करते हैं, जो कि समस्त प्राणियों के लिए आश्रय हैं । जिस प्रकार पक्षी अपने आश्रय की ओर सानन्द विश्रान्ति के लिए उत्पतन करते हैं इसी प्रकार मरुद्गण भी प्रिय और आनन्ददायक अपनी यज्ञ-स्थली की ओर शुभागमन करते हैं ।

८-

शूरा इव द्युधयो न जग्मयः

श्रवस्यवो न पृतन सु येतिरे ।

भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भयो

राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः ॥८॥

पद-पाठ—शूराः इव । इत् । द्युधयः । न जग्मयः । श्रवस्यवः । न । पृत-

नासु । येतिरे । भयन्ते । विश्वा । भुवना । मरुत्स्यः । राजानः इव । त्वेषसन्दृशः ।

नरः ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—एते मरुतः 'शूरा इव इत्' संप्रहारमिच्छन्तो युद्धकायाः पुरुषा इव 'द्युधयः' युध्यमानाः 'जग्मयः' लघुहस्ताः स्फूर्तिमन्तः 'पृतनासु' संग्राम स्थलेषु 'श्रवस्यवः' कीटिकायाः धनकाया वा 'येतिरे' निरन्तरं प्रयासमाचरन्ति । एतेभ्यो हि मरुदयः विश्वा भुवना समग्राण्येव भुवनानि भयन्ते भयात् कम्पन्ते । एते मरुतः नरः नेतारः राजानः इव त्वेषसन्दृशः त्वेषसन्दर्शनाः । तेजोमयदर्शनाः । न द्रष्टुं शक्यन्ते ।

टिप्पणी—द्युधयः—युध संप्रहारे त्रिवन् । द्विर्भावादिः । श्रवस्यवः—श्रव इच्छति श्रवस्यति 'क्वाच्छन्दसि' उपत्ययः । भयन्ते—'त्रिम्भि भये' बहुलं छन्दसि' श्लोरभावः । त्वेषसन्दृशः—त्विप् दीप्ती पचाद्यच् । दृशिर प्रेक्षणे । संपूर्वात् त्रिवप् । बहुव्रीहिः ।

हिन्दी व्याख्या—'शूरा इव' मरुद्गण शूर-वीर कार्य करने वाले पराक्रमी

पुरुषों के समान युद्ध-भूमि की ओर 'जम्भयः' स्फूर्ति के साथ और 'युयुधयः' रण-मद में भरे हुए आनन्द के साथ जाते हैं। वे 'श्रवस्वयो न' धन और कीर्ति की कामना से 'पूतनासु' संग्राम की रण-भूमि में 'येतिरे' महान् प्रयास दिखाते हैं। मरुद्गण से भय-भीत होकर समस्त भुवन ही काँपता है। वे राजाओं के समान विजयशील नेता तथा 'त्वेषसंदृशः' देखने में देदीप्यमान हैं।

६-

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्यम्

सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत् ।

धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवे----

अहन् वृत्रं निरपामौजदर्णवम् ॥१॥

पद पाठः—त्वष्टा । यत् । वज्रम् । सुकृतम् । हिरण्यम् । सहस्रभृष्टम् ।

सुऽअपाः । अवर्तयत् । धत्ते । इन्द्रः । नारि । अयांसि । कर्तवे । अहन् । वृत्रम् ।

निः । अपाम् । औजत् । अर्णवम् ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—यद् वज्रं सहस्रभृष्टिं सहस्रधारोपेतं हिरण्यम् स्वर्णमयं सुकृतं शोभनशिल्पयुक्तं 'स्वपा त्वष्टा' शोभनकर्मा त्वष्टा अवर्तयत् निरवर्तयत् इन्द्राय दत्तवान् । तद्वज्रायुधम् मरुत्वान् इन्द्रो नरि संग्रामस्थले वृत्रापांसि कर्तवे मरुद्भिः सह रणकौशल प्रदर्शनार्थं धत्ते । तेन च वज्रेण मरुद्भिः स्तुतः सन् वृत्रं जला-वरकं तम् अर्णवं जलाधारभूतं मेघं शक्तिशाली इन्द्रः अहन् हतवान् 'अपाम् निरौजत्' जलधाराश्च निःशेषेण धोऽपातयत् ।

टिप्पणी—हिरण्यम्—हिरण्य + मयट् । निपातनान् मकारलोपः । कर्तवे- 'तुमर्थे से सेन् ०' इति तवेन् प्रत्ययः । सहस्रभृष्टिः—सहस्राणि भृष्टयो धाराः यस्य स सहस्रभृष्टिः औजत्—उज्ज आर्जवे । लङ् । अर्णवम्—अर्णांसि अस्य सन्ति इति मत्वर्थीयो वः । स लोपश्च । अर्णवः समुद्र । अत्र तु मेघः । औचित्यात् ।

हिन्दी व्याख्या—त्वष्टा देवता ने जिस वज्र को 'सुकृतम्' शोभन शिल्प से निमित्त किया । 'सहस्रभृष्टिम्' सहस्रों धारों वाला तथा 'हिरण्यम्' सुवर्णमय रूप दिया; उस 'स्वपाः' कुशल शिल्पी ने उस वज्र को स्नेह और आदर के साथ इन्द्र के लिए अर्पित किया । 'नरि' संग्राम-भूमि में 'अपांसि कर्तवे' रण-कौशल दिखाने के लिए मरुद्गण का सेनानी इन्द्र उस वज्र को अपने वज्र सदृश हस्त में धारण करता

है। 'अहन् वृत्रम् अर्णवम्' जलावरण करने वाले मेघ का विध्वंस करता है और 'अपाम्' जलधारा को 'निरोब्जत्' नीचे स्पन्दन कराता है।

१०-

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा

दादृहाणं चिद्विभिदुर्वि पर्वतम् ।

धमन्तो वागं मरुतः सुदानवो

मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे ॥१०॥

पद पाठः—ऊर्ध्वम् । नुनुद्रे । अवतम् । ते । ओजसा । दादृहाणम् । चित् ।

विभिदुः । वि । पर्वतम् । धमन्तः । वाणम् । मरुतः । सुदानवः । मद । सोमस्य ।

रण्यानि । चक्रिरे ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—ते मरुतः अवतं मेघरूपं कूपं जलाधानम् ऊर्ध्वम् उपरि भागे ओजसा स्वकीयेन उत्पन्न प्रतापेन नुनुद्रे प्रेरितवन्तः । मध्ये दादृहाणं दृढं गति-निरोधकं वृत्रं पर्वतरूपं शिलोच्चयं विविभिदुः बभञ्जुः । एतेन उत्सिच्य गोरूपं ऋषिपृथ्वीरूपं प्राणं वा तर्पयामासुः । समस्तं प्राणिसमुदायं तृप्तं कृतवन्तः । अनन्तरं धमन्तो वाणम् तन्त्रीलयसमन्वितां वीणां वादयन्तः सोमस्य मदे जातहर्षे सति रण्यानि रमणीयानि युद्धकार्याणि रणसम्बन्धीनि 'सुदानवः चक्रिरे' शोभन दर्पाः कृतवन्तः ।

टिप्पणी—दादृहाणम्—दृह वृद्धौ । लिटः कानच् । रण्यानि—रणे भवानि । यत् । धमन्तः । शतृ । वाणम्—वणं शब्दे । घञ् ।

हिन्दी व्याख्या—'तेऽवतम् ऊर्ध्वं नुनुद्रे' वे मरुद्गण कूप रूप मेघ को ऊपर की ओर उस दिशा की ओर ले गये जहाँ पर गौतम ऋषि तृपा से व्याकुल थे । उन्होंने 'दादृहाणम्' अत्यन्त दृढ़ गतिरोधक वृत्र तथा वृत्रम्' शिलाओं की भाँति मेघ-खण्डों को 'विभिदुः' विदीर्ण कर दिया । 'सोमस्य मदे' अपने सेनानी इन्द्र के साथ सोम-रस के मद में 'सुदानवः' सुन्दर दान-दर्प वाले मरुद्गण ने 'धमन्तो वाणम्' तन्त्रीलय के साथ वीणा-वादन करते हुए 'रण्यानि चक्रिरे' रमणीय रण-कर्म से मेघों को पृथ्वी पर बिखेर दिया ।

११- जिह्वां नुनुद्रेऽवतं तथा दिशा—

सिञ्चन्नुत्सं गोतमस्य तृष्णजे ।

आगच्छन्ती मवसा चित्रभानवः

कामं विप्रस्य तर्पयन्त धामभिः ॥११॥

पद पाठः—जिह्वाम् । नुनुद्रे । अवतम् । तयो । दिशा । असिञ्चन् ।

उत्सम् । गोतमाय । तृष्णजे । आ । गच्छन्ति । ईम् । अवसा । चित्रभानवः ।

कामम् । विप्रस्य । तर्पयन्त । धामभिः ॥११॥

संस्कृत व्याख्या—एते मरुतः तं निर्दिष्टम् अवतं कूपमाहावमिति यावत् 'तथा दिशा जिह्वं नुनुद्रे' यस्यां दिशि ऋषिर्महत्तपश्चरति तस्यां दिशि वक्रं कूपभूतं मेघं नुनुद्रे प्रेरितवन्तः । गोतमाय गच्छतीति गोः, अतिशयेन गोः, गोतमः, तस्मै गोतमाय गतिशीलतमाय ऋषये तृष्णजे तृषिताय उत्सं जल-प्रवाहम् असिञ्चन् । एनम् ऋषिं चित्रभानवः चित्रा भानवो दीप्तयो येषां ते विचित्रदीप्तयः अवसा रक्षणसाधनेन सह आगच्छन्ति । आश्वासन प्रदानेन अनुग्रहविषयतामानयन्ति । विप्रस्य ऋषेः गोतमस्य काममभिलाषं धामभिः आयुषो धारकै रुदकैः तर्पयन्त अतर्पयन् ।

टिप्पणी—तृष्णजे—जनेडः । आकारस्य ह्रस्वत्वम् । तृष्णा—'तृषिणुषि—रसिभ्यः कित् ।' नः प्रत्ययः । चित्रभानुः—चित्रा भानवो यस्य । दाभाभ्यां नुः' इति नुः प्रत्ययः । विप्रः—वपति धर्ममिति विप्रः । विशेषेण पृणातीति वा । धाम—दधातीति धाम तेजः । धा + मनिन् । उत्सः—उनन्ति क्लिद्यतीति उत्सः । जलस्रवण स्थानम् । आहावः । होज, 'टकी' इति भाषायाम् । 'उन्दिगुधिकुषिभ्यश्च' इति औणादिकः सः ।

हिन्दी व्याख्या—इस प्रकार उस निर्दिष्ट 'अवतम्, मेघ रूप कूप (आहाव-होज, टंकी,) को उस दिशा की ओर 'जिह्वम्' ठेका करके ले गए जिस दिशा में गोतम ऋषि कठिन तप कर रहे थे । इस तृषित ऋषि भूलोक के लिए 'उत्सम् असिञ्चन्' मरुतों ने जल-प्रवाह को स्पन्दित किया और ऋषि की तृष्णा शान्ति की । अपनी विचित्र

कान्ति और दीप्ति के साथ रमणीय और भीषण आकृति वाले मरुद्गण ने 'अवसा' अपने रक्षण-साधनों के साथ 'आगच्छन्ति ईम्' उस ऋषि को आशवासन देते हुए प्राप्त होते हैं और अपने 'धामभिः' जल-राशि से 'विप्रस्य' उस ब्राह्मण की 'कामम्' अभिलाषा को परिपूर्ण करते हैं ।

१२-

या वः शर्म शशमानाय सन्ति

त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि ।

अस्मभ्यं तानि महतो वियन्त

रयि नो धत्त वृषण सुवीरम् ॥१२॥

पद पाठः—या । वः । शर्म । शशमानाय । सन्ति । त्रिधातूनि दाशुषे ।

यच्छत । अधि । अस्मभ्यम् । तानि । महतः । वि । यन्त । रयिम् । नः । धत्त ।

वृषणः । सु । जीरम् ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतः युष्माकं यानि शर्म शर्माणि शरणभूतानि गृहाणि तत्रावस्थितानि हव्यानि मुखहेतूनि सन्ति । यानि शशमानाय भजमानाय स्त्रोत्रे सम्पदातानि सन्ति, यानि त्रिधातूनि तृथिन्यादिषु त्रियु स्थानेष्ववस्थितानि यानि च दाशुषे दानशीलाय धर्मात्मनेऽधियच्छत साधिकारं प्रयच्छत । तानि अस्मभ्यमुपासकेभ्यः 'वियन्त' स्नेहाद्रंभावतया प्रयच्छत । हे वृषणः वषितारः मरुतः ! सुवीरं पुत्रपौत्रादि—संयुक्तं कुशलपरिवारं रयिम् धनविभवं नोऽस्मभ्यं धत्त धारयत ।

टिप्पणी—शशमानाय—शश लपुनगतौ । चानश् यन्त—यम लोट् । तत्रादेशः । वृषणः—वृष घातोः कनिन् । दीर्घाभाव दीर्घाभाव छान्दसः । दाशुषे—दाश्टदाने क्वमुः । अद्विर्वचनमनिट् त्वं च निपातनात् त्रिधातूनि त्रिषु पृथिव्यादिषु स्थानेषु वर्तमानानि ।

हिन्दी व्याख्या—हे मरुद्गण ! आपके जो 'शर्म' शरण-स्थान तथा वहाँ पर अवस्थित भोग्यपदार्थ 'शशमानाय' सेवा परायण यजमानों के लिये सम्पादित हैं । जो भोग्य-पदार्थ 'त्रिधातूनि' पृथिवी, वायु और आकाश में अवस्थित हैं । जिन्हें आप दानशील धर्म-परायण व्यक्तियों के लिये व्यवस्थित करते हैं 'तानि'

उन शरण स्थानों और भोग्य पदार्थों को 'अस्मभ्यम्' हम उपासनाशील व्यक्तियों के लिये भी स्नेहाद्रं होकर 'वि यन्त' दीजिये । 'हे वृषणः ! आनन्द की वृष्टि करने वाले मरुद्गण ? 'सुवीरं' रथि नो धत्त' हमारे लिये पुत्र-पौत्रादि समन्वित धन-वैभव को सदैव सुरक्षित रखिये ।

उषः सूक्तम्

ऋषिः—गौतमः, देवता—उषाः, १६, १७, १८ अश्विनौ, छन्दः—
१, २, ३, ४ जागती, ५—१० उष्णिक्, ११—१८ त्रिष्टुप्

१—

ए॒ता उ॒ त्या उ॒षसः॑ के॒तु म॒क्रत॑

पूर्वे॑ अ॒र्धे रज॑सो भानु॒मञ्ज॑ते ।

नि॒ष्कृ॒ण्वा॒ना आयु॑धानीव धृ॒ष्णवः॑

प्रति॑ गावोऽरु॒षीर्य॑न्ति मा॒तरः॑ ॥

पद-पाठः—ए॒ताः । ॐ इति॑ । त्याः । उ॒षसः । के॒तुम् । अ॒क्रत॑ । पूर्वे॑ ।

अ॒र्धे । रज॑सः । भानु॑म् । अ॒ञ्ज॑ते । निः॒ष्कृ॒ण्वा॒नाः । अ॒यु॒धा॒निऽइ॒व । धृ॒ष्ण॒वः ।

प्रति॑ । गा॒वः । अ॒रु॒षी॒र्य॒न्ति॒ । मा॒तरः॑ ॥

संस्कृत-व्याख्या—रजसः अन्तरिक्षस्य पूर्वोर्ध्वं प्राच्यां दिशि भानुं दीप्तिं हि अञ्जन्ति अभिव्यञ्जयन्ति । ता एता उषसः प्रभातकालाभिमानिन्यः दिव्या उषसः तमसाच्छन्तस्य संसारस्य केतुं प्रचेतनाय प्रकाशं ज्योतिः अकृत कुर्वन्ति । 'आयुधानीव धृष्णवः' यथा धर्षणशीला रणकुशला आयुधानि रणात् प्राक् स्वकीयानि रणसाधनानि 'निष्कृण्वानाः' संस्कृतानि कुर्वन्ति तथा उषसोऽपि गावः गमनशीलाः अरुषीः रोचन स्वभावाः मातरः सूर्यप्रकाशस्य जनन्यः प्रतियन्ति प्रतिदिनं यन्ति प्रेरणाप्रदानमाचरन्ति । तेजसामाधारभूताः कारणभूताश्च उषसस्तस्मात् एताः स्तुत्या भवन्ति ।

टिप्पणी—अक्रत—कृञ् + लुङि । 'मंत्रे घस०' च्लेलुक् । निष्कृण्वानाः—'कृषि हिंसा करणयोश्च' अस्मात् चानश् । 'घिन्विक्कृण्वयोश्च' इति उ प्रत्ययः ।

‘इदुपधस्य०’ इति पत्वम् । धृष्णवः—‘त्रिधृषा प्रागल्भ्ये’ ‘त्रसि गृध्रिधृषि०’ इति क्तुः । ‘रषाभ्यां०’ इति णत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—अन्तरिक्ष के पूर्वभाग में महान् प्रकाश अपनी विशालता के साथ तत्पर हो रहा है । अन्धकारावृत जगत् की चेतना के लिये उषा देवियाँ अपना प्रकाश वैभव फैला रहा हैं । समर-भूमि में जाने से पहले जिस प्रकार शूर-वीर अपने अस्त्र-शस्त्रों की देख-भाल करके उन्हें तीक्ष्ण और प्रखर बना लेते हैं उसी प्रकार उषा देवियाँ भी निरन्तर गमनशील होकर सूर्याविर्भाव करती हुई जगत् में चमत्कार पूर्ण प्रेरणा प्रकट करती हैं । तेजस्विता का आधार उषा देवियाँ ही हैं अतः हम उनके प्रति अवनत होते हैं ।

२

उदप॑प्तन्नरु॒णा भान॑वो वृ॒था

स्वा॒युजो अरु॑षी गा अयु॑क्षत ।

अक्र॑न्नुषा॒सो वयु॑नानि पु॒र्वथा

रु॒शन्त॑ भानु॒मरु॑षीरशि॒श्रयुः ॥

पद-पाठः—उत् । अप॒प्तन् । अरु॒णाः । भान॑वः । वृ॒था । सु॒ऽआयु॑जः ।

अरु॑षीः । गाः । अयु॑क्षत । अक्र॑न् । उषा॑सः । वयु॑नानि । पु॒र्वथा । रु॒शन्त॑म् ।

भानु॑म् । अरु॑षीः । अशि॒श्रयुः ॥ २ ॥

संस्कृत-व्याख्या—एता भानवः उपोदीप्तयः वृथा अनायासेनैव अरुणाः अरुण्यः अरुणवर्णाः ‘अरुण्यो गाव उपसामि’ त्युक्तेः उत् अपप्तन् सर्वतो विस्तारम् अभजन् । स्वायुजः स्वत एव रथे युक्ताः अरुषीः दीप्तवर्णाः गावः गाव इव किरणाः, ता एता उपसः अयुक्षत—स्वहिरण्यवत् प्रकाशिते रथे अयोजयन् । पूर्वथा पूर्वेषु दिनेषु इव उपसः उपसः वयुनानि प्रज्ञानानि अक्रन् अकुर्वन् । उपः कालो हि ब्रह्मवेलासमयः । तस्मिन् समये सर्वे प्राप्तचेतना भवन्ति । ततः एताः अरुषीः रोचनवर्णा उपसः भानुं भास्वरं सूर्यम् अशिश्नयुः सेवन्ते । तेन सह अविभागा जायन्ते ।

टिप्पणी—अप॒प्तन्—‘प॒तलू ग॒तौ’ लुङि । लृ॒दि॒त्वात् च्लेः अङ् । ‘प॒तः पु॒म्’ इति पु॒माग॑मः । अक्र॑न्—‘म॒न्त्रे घ॑स०’ च्ले लृ॒क् पु॒र्वथा—‘प्र॒त्नपू॒र्व’ इति

थाल् । अशिश्चयुः—‘श्रिम् सेवायाम्’ । बहलं इन्दसि’ इतिशपः श्लुः ।—‘सिजभ्यस्त-
विदिभ्यश्च’ इति श्लेर्जुस । ‘जुसिच’ इति गुणः ।

हिन्दी-व्याख्या—अनायास ही प्राची दिशा में घना प्रकाश फैल गया है ।
अरुण वर्ण के इस भीगे प्रकाश में प्राची दिशा अरुण-वर्ण में जगमगा रही है ।
स्वायं रथ में जुड़ जाने वाले बौलों के समान किरणों को उषा देवियों ने अपने
सुनहले रथ में संयुक्त कर लिया है । पूर्व दिनों के ही समान प्राणियों में जागृति
और चेतना आ गयी है । अब उषा देवियाँ सूर्य के साथ मिलकर एकीभाव का
आनन्द ले रही हैं ।

३- अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः

समानेन योजनेना परावतः ।

इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे

विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥

पद-पाठ—अर्चन्तिः । नारीः । अपसः न । विष्टिभिः समानेन । योजनेन ।

आ । परावतः । इषम् । वहन्तीः । सुकृते । सुदानवे । विश्वा । इत् । अह ।

यजमानाय । सुन्वते ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—एताः नारीः नेतृधर्मोपेता उषसः विष्टिभिः भारवत्त-
कुशलैः तेजोभिः समस्तम् आकाशम् अर्चन्ति पूजायोग्यं विदधति । ‘अपसो न’
यथा अप्सरसः=अप्सु संग्रामकर्मसु कुशलाः अल्पेनैव समयेन समस्तं संग्रामप्रदेशं
व्याप्नुवन्ति तद्वत् । परावतः दूरद आर्तं समानेन योजनेन एकेनैव समुद्येन । इमाश्च
उषसः सुकृतवे देशकालपात्र विचारदानकुशलाय सुकृते शोभनकर्मवते यजमानाय
संकलन व्यवकलनरूपयज्ञकुशलाय सुन्वते सोमाभिपवं कुर्वते विश्वा इत् अह
इषं वहन्तीः अन्नं प्रयच्छन्त्यः सर्वोपरि विराजन्ते ।

टिप्पणी—विष्टिभिः—भारवाहकैः । कहार इति प्रसिद्धैः । शिविका,

पिनस ढौने वाले । नारीः—‘नूनये’ । ऋदोरप् । ‘नूनरयोवृट्ठिश्च’ । शङ्खरवादिषु पाठात् ङीन् । जसि । ‘वा छन्दसि’ इति पूर्वसवर्णदीर्घत्वम् । अपसः अपः शब्दात् ‘अशं आदिभ्योऽच्’ इत्येच् । विष्टिभिः—‘विश प्रवेशने ।’ विशन्ति प्रविशन्ति इति विष्टयः किरणाः । ‘क्तिच् क्तो च संज्ञायाम्’ इति क्तिच् । विश्वा—‘मुपां मुलुक् ०’ इति उदेशः ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार लाल-पीले रंगों में वैष्टित पालकियों में घेठी सुन्दरियों को (विष्टिभिः) कुशल कहार ढोकर लाते हैं, उसी प्रकार इन नेतृत्व-कुशल उपा देवियों को (विष्टयः) तेजस्वी किरणें ढोकर लाती हैं । बहुत दूर देश से बिना देरी किये ही एक ही उद्योग में सभी उपा देवियाँ जगमगाने लगती हैं । जिस प्रकार कि ‘अपसः न’ अप्सर (अप्सर) लोग बिना विलम्ब किये ही समस्त रण-क्षेत्र को सुपूजित और विशेषित बना देते हैं उसी प्रकार उपादेवियों से समस्त आकाश पूजित और प्रशंसनीय हो रहा है । यह उपा देवियाँ शुभकर्मों से युक्त अच्छे दानशील, यज्ञ-क्रिया में निष्ठावान् और सोमाभिषेक करने वाले = आह्लादक अध्यात्म विद्या का रस-पान करने वाले यजमानों के लिये ‘विश्व इषः’ समग्र धन-धान्य को ‘वहन्तीः’ लाकर प्राप्त कराती हैं ।

४-

अधि पेशांसि वपते नूतुरिवा—

पोणुते वक्ष उसाव बर्जहम् ।

ज्योति विश्वस्मं भुवनाय कृण्वती

गावो न व्रजं व्युषा आवर्तमः ॥

पदे-पाठः—अधि । पेशांसि । वपते । नूतुः ऽइव । अप । कृणुते । वक्षः ।

उसाऽइव । बर्जहम् । ज्योतिः । विश्वस्मं । भुवनाय । कृण्वती । गावः । न ।

व्रजम् । वि । व्युषाः । आवर्तितावः । तमः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—नूतुः इव नायित इव । स यथा नून् मनुष्यान् त्वेवति केश—व्यतिरिक्तान् करोति तथा इयम् उषाः खल्वपि पेशांसि जगति संश्लिष्टानि तमांसि वपते समुच्छिनत्ति । अथवा नूतुः इव नतनशीला नतकीव इयम् उषा

पेशांसि स्वकीयान् रूपावयवान् अधि आधिक्येन वपते प्रकाशयति । एवं गमत् प्रकाशोपेतं विधाय पुनः वक्षः स्वकीयम् उरः स्थलं स्वर्णाभरणभूषितम् अपोर्णुते स्वत एव उद्धारयति । उस्त्रेव । गौ यथा । धेनुर्यथा पयोधरान् आविष्करोति तथा वः दुग्धत्यागकाले = पयः त्यागकाले उषाः खल्वपि स्वकीयम् उर = प्रदेशं प्रकटयति । इयमुषा विश्वस्मै भुवनाय समस्ताय संसाराय ज्योतिः कृण्वती प्रकाशं कुर्वती तमः अन्धकारं विवृतं करोति । 'गावो न व्रजम्' यथा गावः स्वगोष्ठं स्वयं शीघ्रमेव व्याप्नुवन्ति तथा उषसोऽपि प्राचीं प्राप्य शीघ्रमेव प्रकाशिता भवन्ति ।

टिप्पणी—नूतूः—'तूर्वी हिंसायाम् । 'विवप् च' इति विवप् । रात्रलोपः' इति वकारलोपः । 'वोरुपधायाः' इति दीर्घत्वम् । अथवा—'नृती गात्रविक्षेपे 'नृतिशृङ्गयोः कूः' इति कूः । वर्जहम्—वृणीते इति वः पयः । विच् । तज्जहातीति वर्जहम् । वर्जहं वक्षः—दुग्धक्षरणसमर्थं वक्षः । आवः—वृज् वरणे' । लृडि । 'मंत्रेघस०' इति च्ले लृक् ।

हिन्दी-व्याख्या—'नूतूः इव' जिस प्रकार नापित सिर से केशों को स्वच्छ कर देता है, उसी प्रकार आकाश-मण्डल से समस्त अन्धकार को उषा उच्छिन्न कर देती है । अथवा 'नूतूः इव' जिस प्रकार उत्तम कोटि की नर्तकी भावाभिव्यक्ति के लिये अपने समस्त अवयवों का प्रकाशन करती है । जिस प्रकार 'वर्जहं वक्षः' दूध से भरे हुये अपने पयोधरों को गौ प्रकाशित करती है, उसी प्रकार उषा भी अपने स्वर्णिम रूप का प्रकाशन करती है और समस्त भुवन के लिये ज्योति प्रदान करती है । जिस प्रकार गायें अपने गोष्ठ में अधीष्ट प्राप्त हो जाती हैं, उसी प्रकार उषा देवियाँ आकाश में शीघ्र ही व्याप्त हो जाती हैं और अन्धकार का उच्छेदन कर देती हैं ।

५—

प्रत्यर्ची रुशदस्या अर्दाशि

वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभवम् ।

स्वरं न पेशो विदथेवज्जञ्ज

चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्वतू ॥

पक्ष-पाठः—प्रति । अर्चिः । रुशत् । अस्याः । अर्दाशि । वि । तिष्ठते ।

वाधते । कृष्णम् । अश्वम् । स्वरम् । न । पेशः । विदधेपु । अञ्जन् चित्रम् ।

दिवः । दुहिता । भानुम् । अश्वेत् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—सर्वेः खलु प्राच्यां दिशि अस्या उपसः रुशत् कमनीयं प्रकाशमानम् अविः दीप्तं तेजः अर्दिशि दृश्यते । वितिष्ठते इयम् उपा विविधम् अवतिष्ठते नानाप्रकारेणात्मनं प्रकाशयति । अश्वं कृष्णं वाधते विपुलं कृष्णवर्णं तमः दूरीकरोति । स्वरं न यज्ञयूपम् इव यज्ञेषु इयं स्वकीयं पेशः रूपं व्यनक्ति अनन्तरम् इयमुपाः दिवः दुहिता चित्रं भानुं सूर्यम् अश्वेत् आश्रयति ।

टिप्पणी— वितिष्ठते—‘समव०’ इति आत्मनेपदम् । अश्वेत्—‘श्विञ् सेवायाम्’ । लङ् । ‘बहुलं छन्दसि’ इति शयो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रभावपूर्ण उपा का सुनहला रूप प्रभात केला में पूर्व की ओर सभी देखते हैं । यह उपा अपने तेज के विविध रूप को नाना प्रकार से प्रकाशित करती है और विस्तीर्ण अन्धकार को अपसारित करती है । यज्ञ भूमि में जगमगाते स्वर्णस्तम्भों के समान उपा का विविध रूप प्रकाशित हो रहा है । यह धु लोक की राजकुमारी अपने आनन्ददायक सूर्य का आश्रय लेकर अपने को एक कर देती है ।

६-

अतारिष्म तमसस्पा रसस्यी—

वा उच्छन्ती वयुना कृणोति ।

श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती

सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥

पद-पाठः—अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य । उपाः । उच्छन्ती ।

वयुना । कृणोति । श्रिये । छन्दः । न । स्मयते । विभाति । सुप्रतीका । सौमनसाय ।

अजीगरिति ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य रात्रिसम्बन्धिनोऽन्धकारस्य पारम् अतारिष्म उत्तीर्णा वयम् । इममुषा उच्छेन्ती तमो विवासयन्ती वयुनानि प्रज्ञानानि कृणोति कुरुते । 'श्रिये छन्दो न स्मयते' इयमुषाः सर्वेषां पुरतः हसन्तीव दृश्यते यथा कोपि कविः स्वकीयेन आह्लादकेन काव्यच्छन्दसा घनाढ्यप्रीत्यर्थं ततः श्रिये धनाय स्वप्रतिभानं प्रकटयति तथा विभाती विशिष्टप्रकाशा उषाः सोमनसाय सुप्रतीका शोभनावधेवा अन्धकारं सम्यग् अजीगः आत्मसात् कृतवती ।

टिप्पणी—अतारिष्म—'तृ प्लवनसंतरणयो' । लुङि । सिचि वृद्धिः । स्मयते—'स्मिङ् ईषद् हसने' । अजीगः—'गृ निगरणे' । लङि । 'बहुलं छन्दसि' इति शपः श्लुः । अभ्यासस्य इत्वम् । तुजादित्वाद् दीर्घः ।

हिन्दी-व्याख्या—इस भयावह रात्रि के अन्धकार से हम परे पार चले आये हैं । यह उषा अन्धकार का विनाश करती हुई नाना प्रकार से प्रज्ञान को प्रकट कर रही है । जिस प्रकार कोई प्रतिभापूर्ण कवि अपनी चारु वचनावली के छन्दोमय वितान से घनाढ्य को प्रसन्न करता हुआ धन की प्राप्ति के लिये उदार-प्रसन्नता को प्रकट करता है उसी प्रकार से उषा खुले गगन में अपना हास्यपरिधान प्रकट कर रही है । यह शोभनाङ्गी जगत् की प्रीति और प्रसन्नता के लिये ही मानों अन्धकार को निगल गयी है ।

७-

भास्वती नेत्री सूनृतानां

दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।

प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्या-

नुषो गो अग्रां उप मांसि वाजान् ॥

पद-पाठः—भास्वती । नेत्री । सूनृतानाम् । दिवः । स्तवे । दुहितौ ।

गोतमेभिः । प्रजावतः नृवतः । अश्व बुध्यान् । उषः गोऽ अग्रां । उप । मांसि ।

वाजान् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषाः भास्वती प्रभावस्वरूपा सूनृतानां प्रियमधुर

—सत्यस्वरूपाणां वाचां नेत्री प्रणेत्री । उपसि हि वीतान्धकारायां सर्वे प्राणिनः प्रियां मधुरां च वाचमुच्चारयन्ति । सेयं दिवो दुहिता अस्माभिः गोतयेभिः प्रकृष्टवाग्भि-
र्ऋषिभिः स्तवे स्तूयते । एवं स्तुता त्वं हे उपः वाजान् अन्नानि उपमासि । निर्मासि । कीदृशान् वाजान् ? 'प्रजावतः नृवतः अश्वबुध्यान् गो अग्रान्' प्रकृष्टाः प्रजाः पुत्रपौत्रादयः येषु तान् । नृवतः प्रशस्ता नेतारो येषु तान् । अश्वबुध्यान् अश्वाः बोहव्या येषु तान् । अश्वमूलं हि राष्ट्रधनम् । तै हि धनानि परदेशात् आहियन्ते । गोऽग्रान् गावोऽग्रे येषां तान् ।

टिप्पणी—भास्वती—'भा दीप्ती' । अमुन् । 'माधु' 'प्रायाः' । इति मतुपोव त्वम् 'उगितश्च' इति ङीप् । नेत्री—'ऋन्नेभ्यो ङीप् । स्तवे—'ष्टुञ् स्तुतौ' कर्मणि लटि 'बहुलं छन्दसि' इति यको लुक् । 'लोपस्त आत्मनेपदेषु' इति तलोपः । 'छन्दस्युभयथा' इत्यार्धधातुक्त्वे डित्वाभावात् गुणोऽवादेशश्च । नृवतः—व्यत्ययेन मतोर्वत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह उपा प्रभास्वर रूप होने के कारण भास्वती और प्रिय-सत्य वाणी का प्रेरक होने के कारण सूनृत—नेत्री है । उपः काल में ही सभी प्राणी मधुर वचनों का उच्चारण करने लगते हैं । अत्यन्त उत्कृष्ट वाणी वाले गोतम—ऋषियों के द्वारा यह सूर्य-पुत्री प्रशंसनीय और स्तुत्य रही है । हे उपा ! ऋषियों के द्वारा प्रिय स्तुतियों के कारण आप उन्हें उत्तम पुत्र-पौत्र, अच्छे उत्कृष्ट नेता, अच्छे वंश के अश्व, सुशील गायें तथा अन्य अभिषिक्त धनों से परिपूत करती हो ।

५-

उष॑ स्तम॑स्यां य॒शसं॑ सु॒वीरं॑

दा॒सप्रव॑र्गं र॒यिम॑श्वबु॒ध्यम् ।

सु॒वंस॑सा श्रव॒सा या वि॒भासि॑

वाज॑प्रसूता सुभगे बृ॒हन्त॑म् ॥

पद-पाठः—उषः । तम् अश्व्याम् । यशसम् । सुवीरम् । दासप्रवर्गम् ।

रयिम् । अश्वबुध्यम् । सुदंससा । श्रवसा । या । विभासि । वाजप्रसूता ।

सुभगे । बृहन्तम् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषो देवते ! यं बृहन्तं रयिं विभासि स्वकीयेन सुदंससा शोभनेन कर्मणा श्रवसा स्तुति समूहेन च प्रीता सती प्रकाशयसि, या च त्वं वाजप्रसूता दत्तधना सती सुभगा लब्धैश्वर्याऽसि । सा त्वं तं रयिं वैभवं मह्यं देहि । तद् धनम् अहं प्राप्नुयाम् । यशसम् । यशः पूर्णम् । सुवीरम् । वीरैः पुत्रादिभिः युक्तम् । दासप्रवर्गम् । कर्मकरवर्गोपेतम् । अश्वबुध्यम् । अश्वाः बुध्या बोद्धाव्या येन तादृशम् ।

टिप्पणी—अश्याम्—‘अशू व्याप्तौ’ । व्यत्ययेन परस्मै पदम् । ‘बहुलं छन्दसि’ इति विकरणस्य लुक् । यशसम्—‘अशं आदित्वात् मत्वर्थीयोऽच्’ । दासप्रवर्गम्—दासयति उप क्षपयति शत्रून् इति दासो भृत्यः । ‘दसु—उपक्षये’ अस्मात् प्यन्तात् अच् । या—‘सुपां सुलुक०’ इति अमः डादेशः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे उषा ! आपकी कृपा से मैं उत्तम रयि=धन-धान्य को प्राप्त करूँ जिसके कारण मुझे तेजस्वी यश सथा शूर-वीर पुत्र-पौत्रों की प्राप्ति हो । अच्छे अवसर-कुशल भृत्य-गण मिलें । अच्छे अश्व आदि पशु प्राप्त हों । हमारे शुभ कर्म तथा स्तुतियों से प्रसन्न होकर आप धन धान्य की उपलब्धि करती रहें और अपने विशाल ऐश्वर्य को ‘विभासि’ सदा प्रकाशित करती रहें ।

६-

विश्वानि देवी भुवानाभिचक्ष्या

प्रतीची चक्षुर्विया विभाति ।

विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती

विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः ॥

पद-पाठ—विश्वानि । देवी । भुवाना । अभिचक्ष्य । प्रतीची चक्षुः ।

उर्विया । वि । भाति । विश्वम् । जीवम् । चरसे । बोधयन्ती । विश्वस्य । वाचम् ।

अविदत् । मनायोः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—विश्वानि भुवनानि भूतजातानि अभिचक्ष्य सम्यक् प्रकाशय
इयम् उषा देवी द्योतनस्वभावा स्वकीयेन चक्षुः चक्षुषा प्रकाशेन उर्विया विस्तीर्णा
सती विभाति विभान् कुरुते । विश्वं समग्रं च जीव चरसे स्वस्वव्यापाराय बोधयन्ती
प्रवर्तयन्ती मनायोः मननसमर्थस्य समग्रस्य वाचं स्तुतिम् अविदत् अलभत ।

टिप्पणी—अभिचक्ष्य—‘चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि’ । अयं प्रकाशनेऽपि ।
कत्वा प्रत्ययस्य त्यवादेशः । प्रतीची-प्रतिपूर्वात् ‘अञ्चतेः ऋत्विक्’ इति विवृण् ।
‘अनिदिताम०’ इति न लोपः । ‘अञ्चतेश्चोपसख्यानम्’ इति ङीप् । उर्विया—
इयाजादेशः । मनायोः—व्यच् । क्याच्छ-दसि’ उः । यद्वा व्यङ् संकारलोपश्च ।
‘अकृत सार्वधातुकयोः’ दीर्घः ।

हिन्दी व्याख्या—यह उषा देवी अपने प्रख्यापित प्रकाश के माध्यम से
अपने को विस्तीर्ण करती हुई समस्त भुवनों में अवलोकन-सामर्थ्य भर कर जगमगा
रही है । अपने-अपने व्यापार में प्रेरित होने के लिये समस्त प्राणिवर्ग को यह उषा
सचेत कर रही है । इस प्रकार ‘मनायोः’ मननशील प्रबुद्ध समाज से निरन्तर
‘वाचम् अविदत्’ स्तुति-वचनों से प्राप्त करती रहती है ।

१०—

पुनः पुनर्जायमाना पुराणी

समानं वर्णमभि शुभमाना ।

स्वप्नोव कृत्नु विज आमिनाना

मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः ॥

पद-पाठ—पुनः ऽ पुनः जायमाना । पुराणी । समानम् । वर्णम् । अभि ।

शुभमाना । स्वप्नो ऽ इव । कृत्नुः । विजः आऽमिनाना । मर्तस्य । देवी । जर-

यन्ती । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषा यद्यपि पुराणी पुरातनी तथापि पुनः पुनः जाय-
माना नवं नवं रूपं धारयन्ती अभिनवेन दृश्यते । यद्यपि अस्या एकमेव परिचितमिव

रूपं तथापि शुम्भमाना अलंकृतावयव । इयं देवी द्यूतकरीव देवनशीला मतंस्य मरणधर्मवतो जनस्य आयु जर्जयन्ती न्यूनयन्ती दृश्यते । सा तु पुनः पुन नवीनेव जायते प्राणिनस्तु जीवनं प्रतिदिनं हीयत एव । यथा श्वघ्नी व्याधस्त्री कृतुः कर्त्तन-शीला विजः चलतः पक्षिणः आमिनाना पक्षादि कर्त्तनेन हीनान् विधाय तान् हिनस्ति तथेयम् उषा प्रतिदिनं प्राणिजातस्य आयु जर्जयन्ती दृश्यते ।

टिप्पणी-पुराणी—‘सायं चिरं०’ इति द्युः । योरनादेशः । टित्वात् डीप् । शुम्भमाना—शुम्भ दीप्ती’ । शानच् । श्वघ्नी—श्वभि मृगाम् हन्तीति श्वहा । हन्तेः क्विप् । ‘ऋन्नेभ्यो डीप्’ । ‘अल्लोपोऽनः’ इति अकारलोपः । ‘हो हन्तेः०’ इति घत्वम् । कृतुः—‘कृती छेदने’ । क्तु प्रत्ययः औणादिकः । विजः—‘ओविजी भयचलनयोः’ । विजन्ति चलन्ति इति विजः पक्षिणः । आमिनाना—मीञ् हिंसायाम् ‘प्वादीनां ह्रस्वः’ । शानच् ।

हिन्दी-व्याख्या—यद्यपि यह उषा देवी अत्यन्त प्राचीन है तथापि यह पुनः पुनः प्रकट होती रहती है अतएव नित्य नवीन ही रहती है । यद्यपि उषा का एक ही रूप सामने दृष्टिगोचर होता है तथापि यह प्रति दिन अलंकृत होकर अभिनव रूप में ही प्रस्तुत रहती है । यह उषा प्राणिवर्ग के आयु को निरन्तर क्षीण करती जा रही है । जिस प्रकार व्याध की क्रूर स्त्री स्वच्छन्द विचरण करने वाले विहंगमों के पक्ष-कर्त्तन करके उन्हें क्षीण कर देती है तथा उनका विनाश कर देती है उसी प्रकार यह उषा इस पृथ्वी के प्राणियों की अमरता का विनाश कर रही है ।

११-

व्यू॒र्ण्वती॑ दि॒वो अन्ता॑ अबो॒ध्य—

प॒ स्वसारं स॒नुत॑ यु॒योति॑ ।

प्र॒मि॒नती॑ म॒नुष्या॑ यु॒गानि॑

योषा॑ जा॒रस्य॑ चक्ष॒सा वि॒भाति॑ ॥

पद-पाठ—वि॒ऽऊ॒र्ण्वती॑ । दि॒वः अन्ता॑न् । अबो॒धि । अप॑ । स्वसार॑म् ।

स॒नुतः । यु॒योति॑ । प्र॒मि॒नती॑ । म॒नुष्या॑ । यु॒गानि॑ । योषा॑ । जा॒रस्य॑ । चक्ष॒सा ।

वि॒ । भाति॑ ॥ ११ ॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषा दिवः अन्तान् सीमान्त प्रदेशान् 'वि ऊर्ध्वती' तमो रहितान् सम्पादयन्ती अबोधि सर्वैर्जायते । स्वसारं स्वयमेव सरन्ती रात्रिं च स्वसारं सनुतः अन्तर्हिते स्थाने युयोति पृथक् स्थापयति । जारस्य रात्रे र्जरयितुः सूर्यस्य योषा पत्नी इयम् उषाः स्वागमननिर्गमन व्यवहारेण 'मनुष्या युगानि' मनुष्य सम्बन्धीनि युगानि 'प्रमिनती' प्रहिंसन्ती विभाति विशेषेण शोभते ।

टिप्पणी—व्यूष्वती—'अर्णुञ् आच्छादने' । शतृ । 'उगितश्च' इति ङीप् । सनुतः—'अव्ययादाप्पुपः' इति सप्तम्या लुक् । युयोति—'यु—मिथ्रणामिथ्रणयोः' । णपः श्लुः । मनुष्या—'सुपां सुलुक्०' इति डादेशः । युगानि—युजःषञ् । 'चजो कु षिण्यतोः' इति कुत्वम् । गुणाभावः । कालविशेषे रथाङ्गुपकरणे चङ उच्चादिषु युगशब्दः पठ्यते ।

हिन्दी व्याख्या—यह उषा आकाश के रमणीय प्रान्तभागों को अन्धकार रहित करके जगमगाती हुई सभी मनुष्यों से जानी-पहचानी जा रही है । स्वयं सरकने वाली अपनी भगिनी रात्रि को एकान्त में छिप जाने के लिए विवश कर रही है । यह उषा रात्रि के विध्वंसक सूर्य की हृदय-प्रिय दयिता है । यह स्वयं 'चक्षसा' अपने ही प्रकाश से मानवीय युगों का गमन-निर्गमन के माध्यम से विनाश करती है और स्वतः ही अपनी रूप-माधुरी से कमनीय रहती है ।

१२-

पशून् चित्रा सुभगा प्रथाना

सिन्धु न क्षोदर्विया व्यश्वैत् ।

अमिनती दंव्यानि व्रतानि

सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥

पद-पाठ—पशून् । न । चित्रा । सुभगा । प्रथाना । सिन्धुः । न । क्षोदः ।

उर्विया । वि । अश्वैत् । अमिनती । दंव्यानि । व्रतानि । सूर्यस्य । चेति ।

रश्मिभिः । दृशाना ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—इयम् उषाः चायनीया पूजनीया सुभगा सुन्दरैश्वर्या
प्रथाना स्वकीयानि तेजांसि विस्तारयन्ती शोभते । यथा गोपालकः अरण्ये सुरक्षिते
सम्पन्ने कानने पशून् विस्तारयति । तथा किणान् विस्तारयति । उर्विया उर्वी विशाला
सम्पन्ना इयं समस्तं भुवनं 'व्यश्वैत्' सम्यग् व्याप्नोति । 'सिन्धु न क्षोदः' यथा स्यन्दन-
शीलं जलं स्वत एव समस्तं निम्नं भूभागं व्याप्नोति तथेयमुषाः समस्तं गगन प्रदेशं
क्षिप्रमेव व्याप्नोति । सूर्यस्य रश्मिभिः सह दृशाना दृश्यमाना सेयमुषाः चेति प्रजायते या
दैव्यानि व्रतानि देवसम्बन्धीनि कर्माणि अनुष्णतुं पुरुषान् तत्परान् कुर्वती प्रेरणा-
कुशला विगजते । पूर्वं मंत्रे 'प्रमिनती मनुष्या युगानीति' उक्तम् । अधुना 'अमि-
नती-दैव्यानि व्रतानि' इत्युच्यते । महती सूक्ष्मेक्षिका विद्यते । मानवान् अहंकार-
रहितान् देवतत्परांश्च विद्यातुमिति ।

टिप्पणी—प्रथाना = 'प्रथ प्रख्याने' चानश् । सिन्धुः—'स्यन्दू प्रसवणे'
'स्यन्दे सम्प्रसारणं धश्च' इति उः । अश्वैत्—दुओरिव गतिवृद्धयोः' लुङि ।
इडभावः । 'सिचि वृद्धिः ०' अनिडादित्वात् 'ह्यन्तक्षण ०' इति वृद्धिप्रतिषेधाभावः ।
चेति—'चिती संज्ञाने' । कर्षणि लुङि । 'बहुलं छन्दसि ०' इत्यडभावः । दृशाना—
लटः शानच् । 'बहुलं छन्दसि' इति विकरणस्य लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह सुन्दर सौभाग्य वाली उषा समस्त भुवनों में पूजनीय
होकर अपने को विख्यापित कर रही है । जिस प्रकार गो-पालक अपने संरक्षित
कानन-प्रदेश में अपने पशुओं को फैला देता है । उसी प्रकार उषा भी अपनी
किरणों का विस्तार करके फैला देती है । यह उषा विशाल प्राङ्गण में अपने
अप्रतिम रूप के साथ व्याप्त हो रही है । जिस प्रकार जल स्पन्दनशील होकर
समस्त निम्न प्रदेश में फैल जाता है, उसी प्रकार उषा सारे गगन-प्रदेश में स्वतः
ही अपनी प्रकाशक किरणों के सहारे फैल जाती है । यह उषा सूर्य की किरणों
के साथ ही दृश्यमान होकर पहचानी जाती है । यह वही उषा है जो देव सम्बन्धित
कार्यों के अनुष्ठान में मनुष्यों को प्रेरित करती हुई उनका विनाश नहीं होने
देती ।

१३-

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।

येन तोकं च तनयं च धामहे ॥

पद-पाठः—उष । तत् । चित्रम् । आ । भट । अस्मभ्यम् । वाजिनीवति ।

येन । तोकम् । च । तनयम् । च । धामहे ॥ १३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वाजिनीवति उपः ! हविर्लक्षणैर्न अग्नेन परिपूर्णं उपो देवते । तत् चित्रं चायनीयं धनं वहिर्वैभवम् अन्तर्वैभवं चास्मभ्यम् आ भर आ हर । देहि । येन सम्यक् सम्पन्ना स्तृप्ताश्च वयं तोकं तनयं च पुत्रं तत्पुत्रं च धामहे । धारयामः । कुशल पुत्रपौत्र समर्था वयं सदैव तृप्ताः प्रसन्नाश्च भवेम ।

टिप्पणी—धामहे—दधाते लटि । शपो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वाजिनीवति ! उपा ! आप बाहर के तथा भीतर के चैभवों से तृप्त और परिपूर्ण हो । कृपा करके हमारे लिये उन समग्र ऐश्वर्यों को प्रदान करो जिससे कि पुत्र और पौत्र आदि सम्पदा से पूर्ण होकर हम सब मंगलमय कुशल-जीवन व्यतीत करें ।

१४-

उपो अद्यह गोमत्यश्वावति विभावरि ।

रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥

पद-पाठ—उपः । अद्य । इदृ । गोमति । अश्ववति । विभावरि । रेवत् ।

अस्मे इति । वि । उच्छ । सूनृतावति ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे विभावरि । विशिष्टदीप्ति युक्ते उपः ! त्वं गोमती, अश्ववती प्रियसत्यवाक्स्वरूपा शिवा चासि । अतः अस्मभ्यं शोभना गाः प्रदेहि । वाजिराजान् प्रयच्छ । विवेकमयी प्रतिभाम् उद्घाटय । प्रियां सत्यां मधुरां स्वाध्यायशीलां वाचं च धारय । 'रेवत् अस्मे व्युच्छ' । रेवत् धनयुक्तं कर्म यथा दीप्तं भवति तथा त्वं शीघ्रमेव अन्धकारं विनाशय । निवृत्तान्धकारा वयं स्वे स्वे व्यापारे लग्ना भवेम ।

टिप्पणी—अश्ववति—'मंत्रे सोमाश्व०' इति मतो दीर्घत्वम् । रेवत्—'रये मतो बहुलम्' इति सम्प्रसारणम् । उच्छ—'उच्छी विवासे' । विवासः—निवारणम् । विवासय—निवारय ।

हिन्दी-व्याख्या—हे विभावरि । विशिष्ट विभा वाली उपा देवि ! तुम्हारे ही कारण उत्तम गायें, श्रेष्ठ अश्व तथा प्रिय-मधुर वाणी के कौशल हमें प्राप्त होते हैं । अतः आप ही इन सब रत्नों की धात्री हैं । कृपा करके श्रेष्ठ सबल गायें, उच्च कोटि के अश्व तथा स्वाध्याय-निर्भर वाणी से हमें युक्त कीजिये । आप ऐसी कृपा कीजिये कि धन-सम्पन्न कर्म में हम शीघ्र तत्पर हों और इसके लिये अन्धकार का निवारण अभ्यावश्यक है । कृपया शीघ्र ही अन्धकार को दूर कीजिये ।

१५-

युक्ष्वा हि वाजिनी वत्पश्वो अद्यारुणां उषः ।

अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥

पद-पाठ—युक्ष्वा । हि । वाजिनीऽवति । अश्वान् । अद्य । अरुणान् । उषः ।

अथ । नः । विश्वा । सौभगानि । आ । वह ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वाजिनीवति । हवि लक्षणैर्न घर्मेन परिपूर्ण उषो देवते ! अरुणान् अश्वान् अद्य पुन योजय । अन्तरं विष्वक् विश्वानि सौभगा सौभाग्यानि नो ऽ स्मभ्यम् आ वह प्रीपय ।

टिप्पणी—अश्वान्—‘दीर्घादिति समानपादे’ इति नकारस्य स्त्वम् । आतोऽति नित्यम्’ इति सानुनासिक आकारः । सौभगानि—‘प्राणभृज्जाति—वयो वचन ०’ इति अञ् प्रत्ययः । ‘हृद्भगसिन्धु ०’ इति सूत्रेण उभयपदवृद्धौ प्राप्तायै छन्दसि विकल्पितत्वात् उत्तरपदवृद्धिर्न ।

हिन्दी व्याख्या—हे हवि आदि घन से परिपूर्ण उषा देवि ! आज पुनः अपने अरणवर्ण वाले क्षिप्रगामी अश्वों का संयोजन कीजिये । और हमारे स्थले समग्र सौभाग्यप्रद एवंक्यमों को ले आइये ।

१६-

अश्विना वतिरस्मदा गोमदृशा हिरण्यवत्

अर्वाग्रथ समनसा नि यच्छतम्

पद-पाठ—अश्विना । वतिः । अस्मद् । आ । गोऽस्मत् । दृशा । हिरण्य-

वत् । अर्वाक् । रथम् । समनसा । नि । यच्छतम् १६॥

संस्कृत-व्याख्या—उषः साहचर्यादिदानीम् अश्विनी स्तुतिपात्रतो गच्छतः । हे दक्षा शत्रूणां क्षपयितारो अश्विनी व्यापनशीली युवाम् अस्मत् अस्माकं वतिः वर्तनयोग्यं गृहं प्रति समनसा शोभनमनस्को गोमत् हिरण्यवत् गोभि युक्तं हित—

रमणीयं च धनं नियच्छतम् । आनीय प्रयच्छतम् तदर्थं च नैजं रथम् अर्वाक्
अर्वाचीनम् अस्मदीयं गृहं प्रति प्रवर्तयतम् ।

टिप्पणी—अश्विना—‘सुपां सुलुक्०’ इत्याकारः । वतिः—वर्ततेऽस्मिन् इति
वतिः गृहम् । इति प्रत्यय औणादिकः । अस्मत्—‘सुपां सु—लुक्०’ इति षष्ठ्या
लुक् । समनसा—समानं मनो ययोः तौ । समानस्य सभावश्छान्दसः ।

हिन्दी व्याख्या—अब उपा के साहचर्य के कारण अश्विनी की स्तुति की
जा रही है । हे अश्विनी । आप व्यापनशील हैं और ‘दत्ता’ शत्रुओं का अय करने
वाले हैं । आप ‘समनसा’ सौमनस्क=प्रसन्न मन वाले होकर अपने उस रमणीय
रथ को हमारे सदन की ओर प्रवर्तित कर दें जो गौ आदि पशुओं का तथा
हिरण्य आदि रमणीय ऐश्वर्य-प्रसाधनों का साधक और प्राप्त करने वाला है ।

१७—

यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥

पद-पाठः—यो । इत्था । श्लोकम् । आ । दिवः । ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः ।

आ । नः । ऊर्जम् । वहतम् । अश्विना । युवम् ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनी । सूर्याभिमानिनी चन्द्राभिमानिनी च देवी !
युवां दिवः सकाशात् श्लोकम् उपश्लोकनीयं कीर्तनीयं ज्योतिः आनीय जनाय चक्रथुः
अनुभूयमानं कृतवन्तौ । तेन प्रशंसनीयेन ज्योतिषा सर्वे जनाः कार्यतत्परा जाताः ।
इदानीं युवं युवाम् ऊर्जं बलहेतुभूतम् अन्नम् आ वहतम् आनयतम् ।

टिप्पणी—श्लोकम्—‘श्लोकं संघातं’ । अयं स्तुत्यर्थोऽपि । कर्मणि घञ् ।

हिन्दी व्याख्या—जौ अश्वि देवता ब्रुलोक से सूर्य रूप में तथा चन्द्र रूप
में प्रभाप्रद और कान्तिप्रद ज्योति को लाकर जन-कल्याण के लिये वितरित करते
हैं, जिस ज्योति की प्रशंसित व्यवस्था में जगत् व्यवस्थित रहता है । हे अश्वि
देवता । आप दोनों हमारे मनोबल तथा वैभव को धारण करने के लिये उचित
भोग्य सामग्री तथा सामर्थ्य प्रदान करें ।

१८—

एह देवा मयोभुवा दद्या हिरण्यवर्तनी ।

उष बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥

पद-पाठः—आ इह देवा । मयोऽभुवा । दत्ता । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्य-

वर्तनी । उपऽबुधः वहन्तु । सोमऽपीतये ॥१८॥

संस्कृत-व्याख्या—इह अस्मिन् विभान समये देवा बिजिगीषा हेतवः उषर्बुधः उपसि प्रबुद्धा अश्वाः सोम पानाय मयोभुवा मयसः आरोग्यस्य भावयितारौ दत्ता शत्रूणां क्षपयितारौ हिरण्यवर्तनी हिरण्यमयः स्वर्णमयो वर्तनी रथे । ययो वर्तन्ते तौ हिरण्यवर्तनी देवो आ वहन्तु आनयन्तु ।

टिप्पणीः—मयः—मय इति सुख नाम । ‘अश्विनी वै देवानां भिषजी । हिरण्यवर्तनी—वर्तन्तेऽनेनेति वर्तन्ति । वर्तन्तिशब्देन रथ उच्यते । हिरण्यमयः स्वर्णमयो वर्तन्ति विद्यते ययो स्तौ । देवा—देवौ । दत्ता—दत्तौ, मयोभुवा—मयोभुवौ इति सर्वत्र ‘सुपां सुलुक्’ इति आकारः । सोमपतिये—‘पा पाने’ भावे क्तिनि । ‘घुमा—स्था’ इति ईत्वम् । सोमस्य पीतिः ।

हिन्दी-व्याख्या—जो अश्वि देवता दिव्य-विजय से युक्त हैं, जो आरोग्य-सुख के प्रदाता और प्रसन्नता के विधाता हैं, जो निरन्तर स्वर्णमय रथ पर यात्रा करते हैं और जो ‘दत्ता’ शत्रुओं को क्षीण और विनाश करते हैं, उन अश्वि देवों का इस प्रभात वेला में ‘उषर्बुधः’ प्रबुद्ध होने वाले अश्व अवश्य ही सोम-पान के निमित्त आवहन करें और हमारे घरों को सुख-सुविधाओं से सम्पन्न करें ।

मण्डल १

सूर्य-सूक्तम्

सूक्त ११५

त्रिष्टुप् छन्द—सूर्यो देवता, ऋषिः—कुस्त आङ्गिरसः ।

चित्र देवानामुदगादनीकं

चक्षु मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आ॒प्रा॒द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी अ॒न्तरि॒क्षम्

सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑त॒ स्तस्थु॑षश्च ॥१॥

प॒द-पा॒ठ—चि॒त्रम् । दे॒वानाम् । उ॒त् । अ॒गात् । अ॒नीकम् । चक्षुः॑ । मि॒त्रस्य॑ ।

वरु॑णस्य । अ॒ग्नेः । आ । अ॒प्राः । द्या॒वा॒पृ॒थि॒वी । इति॑ । अ॒न्तरि॒क्षम् । सूर्यः॑ । आ॒त्मा ।

जग॑तः । तस्थु॑षः । च ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—अयं सूर्यः उदगात् उदयं प्राप्तवान् । कीदृश सूर्य-मण्डलम् ? देवानाम् दिव्यानां किरणानां वाऽनीकम् बलभूतं समूहरूपम् । मित्रस्य अहरभिमानिनो देवस्य वरुणस्य राज्यभिमानिनो देवस्य समग्रस्य वा जगतः चक्षुः प्रकाशकत्वात् नेत्रस्थानीयम् । स च देवः उदयाचलं प्राप्य द्यावा पृथिवी द्युलोकं पृथिवी लोकम् अन्तरिक्षं च स्वकीयेन प्रकाशात्मना तेजसा आ अप्राः सम्यग् आ अपूरयत् पूरितवान् एवं सूर्यं मण्डलाभिमानिनी देवता ज्ञतर्यामितया सर्वस्य प्रेरिका सती जगतो गतिशीलस्य जंगमस्य तस्थुषश्च स्थावरस्य च आत्मा स्वरूपभूता सा हि देवता जडात्मकस्य संसारस्य चेतनात्मकस्य च कारणरूपिणी ।

टिप्पणी—उदिते हि सूर्ये मृतप्रायं जगत् पुनश्चेनामिव प्राप्नोति । कारणाच्च कार्यं न पृथक् “तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः” ब्रह्मसूत्र २-१-१४ ।

देवा—आदित्य रश्मयः, दीव्यन्ति प्रकाशन्ते । अगात्—इण् धातो—लुङि ‘इणो गा लुङि ।’ अप्राः—‘प्रा पूरणे’ लङ् । सूर्यः—सरतीति, वयप् । जगतः—गम + क्विप् । गमे द्वे, अनुनासिकलोपः तस्थुषः—स्था + क्वसु, वसोः संप्रसारणम् ‘आतो लोप इटि च’ षत्वम् अनीकम्—अन् प्राणने’ ईकक् प्रत्ययः ।

हि॒न्वी व्याख्या—यह सूर्य-मण्डल उदित हो रहा है जो (चित्रम्) आप॒चयं जन्तु तेज से युक्त है, मित्र, वरुण तथा अग्नि का भी प्रकाशक होने से नेत्र रूप है, द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष लोक को अपने प्रकाश से पूर्ण करने वाला है और समस्त स्थावर-जंगम जगत् की आत्मा है ।

२-

सूर्यो॑ दे॒वीमु॒षसं॑ रोच॒मानां॑

मर्यो॑ न योषाम॒भ्येति॑ प॒श्चात् ।

यत्रा नरो देवयन्तो युगानि

वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥

पद-पाठ—सूर्यः । देवीम् । उपसम् । रोचमानाम् । मर्यः । न । योषाम् ।

अभि । एति । पश्चात् । यत्र । नरः । देवयन्तः । युगानि । वितन्वते । प्रति ।

भद्राय । भद्रम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—रोचमानां दीप्यमाना मुषसं देवी पश्चात् अभ्येति ताम् अनुसरति । भर्यो न योषाम् यथा कश्चन युवा युवति ममिलक्ष्य शोभयाकृष्टोऽनुसरति । यत्र यस्यामुषसि प्रसन्नायां नरो नेतारः युगानि स्वकीयानि शास्त्रविहित कर्माणि वितन्वते विस्तारयन्ति तन्तुवाया इव । कृषका इव वा । एवं भगवन्तं भद्रं कल्याणप्रदं सूर्यं प्रति भद्राय कर्मफलाय वर्यं स्तुमोऽभिनन्दायः । देवयन्त आत्मनो देवत्वं कामयमाना वा यजमाना यस्यां प्रसन्नायामुषसि जातायां युगानि युगमानि पत्नीभिः सहिता भद्रं कर्म यज्ञादिकं वितन्वते विस्तारयन्ति ।

टिप्पणी—रोचमानाम्—रुच + शानच् + टाप् । मुगागमः । मर्यः—मृङ् प्राणत्यागे' यत् निपातनात् । युगानि—युज् + घञ्, गुणाभावश्छान्दसः । (२) युग का अर्थ हल जोड़ना लुङविग तथा राथ करते है ।

हिन्दी व्याख्या—अपने सुन्दर उदार रूप से जगमगाने वाली उषा देवी के पीछे-पीछे सूर्य भगवान् अनुगमन कर रहे हैं मानो किसी आकर्षक युवति के पीछे-पीछे कोई युवक अनुगमन कर रहा हो । जिस उषा के प्रसन्न होने पर सभी कार्य-द्रष्टा नेता अपने-अपने कार्य में संलग्न होते हैं । उसी प्रकार आनन्ददायक सूर्य के प्रति सभी अपना अभिनन्दन प्रस्तुत करते हैं ।

३-

भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य

चित्रा एतन्वा अनुमाद्या सः ।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः

परि द्यावा पृथिवी यन्ति सद्यः ॥३॥

पद-पाठ—भद्राः । अश्वाः । हरितः । सूर्यस्य । चित्राः । एतग्वाः अनुमा-

द्यासः । नमस्यन्तः । दिवः । आ । पृष्ठम् । अस्थुः । परि । द्यावापृथिवी इति ।
यन्ति । सद्यः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—भद्राः मङ्गलमयाः सुखकारिणः अश्वाः व्यापनशीलाः हरितः हरणशीलाः सूर्यस्य चित्राः विचित्राः विस्मयकराः एतग्वाः एतं शबलवर्णं प्राप्नुवन्तोऽश्वाः । अनुमाद्यासः अनुक्रमेण मादनीयाः स्तुत्याः । नमस्यन्तः अस्माभिः नमस्यमानाः पूज्यमानाः दिवोऽन्तरिक्षस्य पृष्ठम् उपरिप्रदेशम् आ अस्थुः सम्यक् प्राप्नुवन्ति । आ तिष्ठन्ति । स्थित्वा च द्यावापृथिव्यौ सद्यः एकेनैव दिवसेन परियन्ति परितः प्राप्नुवन्ति । रसहरणशीलाः सूर्यस्य रश्मय एतेन वाग्बलासेन स्तूयन्ते ।

टिप्पणी—अश्व—अश्व व्याप्तौ क्वन् । एतग्वाः—इण् गतौ तन् प्रत्ययः, 'इ' इत्यस्य गुणः । गम् घातो ड्व प्रत्ययः । एतं गमनम् एतव्यं प्रति श्वः गमनं येषां ते एतग्वाः । एत शब्दः शबले वर्णं वर्तते वा, शबलं वर्णं प्रति गमनं येषां ते एतग्वाः । सूर्यरश्मयः । अनुमाद्यासः—मदी हर्षं, स्तुतौ च णिच् । अचोयत् । अनुमाद्यन्ति अनुमन्दन्ते, अनुमादयति योग्याः । नमस्यन्त—नमस् क्वच् । अस्थुः स्था + लङ् । 'गातिस्था० सिचो लुक् ।

हिन्दी-व्याख्या—'सूर्यस्य अश्वा भद्राः, सूर्य की किरणें मंगलदायक हैं । उन्हीं का अश्व रूप में विशेषण दिया गया है—'हरितः' हरे वर्ण वाले अश्व अथा 'हरितः' नाम है इनका क्योंकि ये रस-हरण करते हैं । 'चित्राः'—विचित्र=विस्मयकारी । 'एतग्वाः' चितकवरे वर्ण को प्राप्त करने वाले अथवा गन्तव्य-पथ पर ही अग्रसर होने वाले । 'अनुमाद्यासः—अनुमादनशील=सदा प्रश्न और आनन्दित रहने वाले—सबसे स्तुति—प्रशंसा प्राप्त करने वाले । 'नमस्यन्तः'—सबसे स्तुति—मोद-मद प्राप्त करने वाले 'दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः' अन्तरिक्ष के पीठ पर आकर विराजमान हो जाते हैं । 'सद्यः' एक ही दिन में 'द्यावापृथिवी परियन्ति' समस्त द्युलोक तथा पृथ्वी लोक में प्रवेश कर जाते हैं । सूर्य के अश्वों (किरणों) की यह महिमा है, उस सूर्य भगवान् के प्रति में प्रणत हूं, यह व्यंग्य है ।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं

मध्या कर्तो विततं संजभार ।

यदेतद्युक्त हरितः सद्यस्था

दाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्म ॥४॥

पद-पाठ—तत् । सूर्यस्य । देवत्वम् । तत् । महित्वम् । मध्या । कर्तोः ।

विस्तृतम् । सम् । जभार । यदा । इत् । अयुक्त । हरितः । सद्यस्थात् । आत् ।

रात्री । वासः । तनुते । सिमस्म ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—सूर्यस्य सरणात्मकस्य देवस्य सूर्याभिमानिनः तत् देवत्वं दिव्यत्वं तद् महित्वं महित्वं महत्वम् माहात्म्यम् । यत् कर्तोः कर्मणः मध्या मध्य एव विततं विस्तीर्णं रश्मिसमूहं संजभार उपसंहारं करोति । कर्मकराश्च अस्तं गच्छन्तं सूर्यं दृष्ट्वा स्वकीयानि विस्तीर्णानि कर्माणि उपसंहरन्ति । असमाप्तान्यपि कर्माणि त्यक्त्वा ग्रामाभिमुखा भवन्ति । यदा च सद्यस्थात् सहस्थानात् पृथिव्याः सम्बन्धिनो लोकात् हरितः रसहरणशीलान् स्वरश्मीन् आदाय अयुक्त अन्यत्र संयोजयति आद् अनन्तरमेव रात्रिः इयं इयं संयमिनी विभावरी वासः आच्छादयितुं तमः सिमस्म सर्वस्म तनुते विस्तारयति यद्वा वासरं दिनमपनीय रात्री तमः प्रबलं तनुते ।

टिप्पणी—महित्वम्—‘मह पूजायाम्’ इन् । भावेत्वं प्रत्ययः । मध्या—मध्ये सप्तम्या डादेशः । जभार—जहार, हृग्रहोभश्छन्दसि । रात्री—रात्रेश्चाजसौ, इति डीप् । सद्यस्थात्—सह + स्था ‘घञर्थेक विधानम्’ सहस्थाने ‘सध’ आदेशः । सिमस्म—सर्वस्म । कर्तोः—‘कृ + तुन्’ पठ्ठी । तोसुन् प्रत्यय इति सायणः । कार्यारम्भ एव विततं विस्तीर्णम् अन्धकारं सूर्यः संहृतवान् इति सूर्यस्य देवत्वम् । इति केचन ।

हिन्दी-व्याख्या—(मध्या कर्तोः) कार्य के बीच में ही (विततम्) अपने फैले

हुए किरण जाल को यह सूर्य 'संजभार' समेट लेता है और सभी व्यक्तियों को अपना-अपना कार्य बीच में ही छोड़कर समेटना पड़ता है। यही 'सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वम्' सूर्य की दिव्यता और भव्यता है। 'यदा' जब 'सधस्थात्' इस सहस्था-नीय पृथ्वी लोक से 'हरितः अयुक्त' अपने रस-हरण शील किरण समूह को सूर्य भगवान् समेट लेते हैं (आत्) इसके अनन्तर ही 'सिमस्मै' सबके लिये रात्रि 'वासः तनुते' अपने आच्छादक अन्धकार को विस्तीर्ण कर देती है।

५-

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे

सूर्यो रूपं कृणुते द्यौरपस्थे ।

अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः

कृष्ण मन्यद्हरितः संभरन्ति ॥५॥

पद-पाठ—तत् । मित्रस्य । वरुणस्य । अभिचक्षे । सूर्यः । रूपम् । कृणुते ।

द्योः । उपस्थे । अनन्तम् । अन्यत् । रुशत् । अस्य । पाजः । कृष्णम् । अन्यत् ।

हरितः । सम् । भरन्ति ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—सूर्यः रूपं द्योः उपस्थे कृणुते—प्रेरकः सूर्यो देवः द्योः आकाशस्य उपस्थे उपस्थाने मध्ये रूपं तन् निरूपणीयं तेजः कृणुते करोति । प्रकाशयति । तत् तदानीम् उदयसमये मित्रस्य दिनाभिमानिनो देवस्य वरुणस्य रात्र्यभिमानिनो देवस्य च एतयोर्लक्षितस्य समग्रस्य संसारस्य अभिचक्षे आभिमुख्येन प्रकाशनाय । अस्य अन्यत् पाजः अनन्तं रुशत्—अन्यत् पाजः तेजः तमसो विलक्षणं बलम् दिवसे स्वकीयागमनेन उत्पादयन्ति । कीदृशं तत् ? अनन्तम्, रुशत् । अस्य सूर्यस्य हरितः रसहरणशीला रश्मयः किरणाः हरिद्वर्णा वा । अनन्तम् अन्तरहितम् । अवसान-रहितम् । रुशत्—दीप्यमानम् । अन्यत् कृष्णं संभरन्ति—कृष्ण कृष्णवर्णं तमः स्वकीयागमनेन रात्रौ कुर्वन्ति ।

टिप्पणी—पाजः—बलयुक्तम् । बलयुक्तस्यापि रात्रितमसो निवारणे समर्थम् ।

अभिचक्षे—अभि + चक्ष + क्विप् । उपस्थे—उप + स्था + क । पाजः—‘पा—रक्षणे’
पा + असुन् ‘पाते बंले जुट’ । रुशत्—‘रुशदीप्तौ’ शतृ । सूर्यकिरण एव दिनस्य रात्रेश्च
नियामकाः ।

हिन्दी-व्याख्या—मित्र और वरुण के रूप में दिन और रात्रि के नियामक
भगवान् सूर्य अपने निरूपणीय प्रकाश को समग्र आकाश में प्रकट करते हैं । इस सूर्य
के अनन्त—सीमाहीन देदीप्यमान प्रकाश को दिवस के रूप में तथा रसहरणशील
किरणों स्वकीय—अनागम से रात्रि के रूप में प्रकट करती हैं । सूर्य भगवान् ही
अपनी उपस्थिति तथा अनुपस्थिति से दिवस का प्रकाश तथा रात्रि का अन्धकार
प्रकट करते हैं । इससे सूर्य का महान् माहात्म्य प्रकट होता है ।

६-

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य

निरहसः पिपृता निरवद्यात् ।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्ताम्

अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥६॥

पद-पाठ—अद्य । देवाः । उत्ऽदिता । सूर्यस्य । निः । अहसः । पिपृता । निः ।

अवद्यात् । तत् नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् । अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी ।
उत । द्यौः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य अस्मिन् काले सूर्यस्य उदिता आदित्यस्य उदये सति
देवाः ! हे सूर्यरश्मयः शूर्यं सर्वे अहसः पापात् निष्पिपृत निष्कृष्य पालयत ।
अवद्याच्च निष्पिपृत । निन्दायोग्याच्च कर्मणः पालयत । यदिदं चास्माभिः कथितं
तन्मित्रादयो देवा ममहन्ताम् । अनुमन्यन्ताम् । गौरवान्वितं सम्पादयन्तु ।

टिप्पणी—उदिता—उत् + इण + क्तिन् । सप्तमी । वैदिक प्रयोगः । अद्या-
निपातस्येति दीर्घः । पिपृता—‘पृ पालनपूरणयोः’ लोटि । शपः श्लुः । द्वित्वम् ।
उरत् । ‘अतिपिपत्योश्च’ इतीत्वम् । ‘ऋचितुनु०’ इति दीर्घः ।

(२) पटिसंत ने अंहम् का अर्थ 'भय' तथा अवय का अर्थ लज्जा किया है अर्थात् पापकर्म से उत्पन्न लज्जा ।

हिन्दो-व्याख्या—'सूर्यस्य उदितौ' आज इस सूर्योदय की रमणीय वेला में (देवाः अंहसः निष्पिपृत) हे देवगण (सूर्य की किरण) आप अपराधों से मेरी मुक्ति दिलायें । 'अवघात् च निष्पिपृत' पाप जन्य निन्दनीय अपवादों से भी मेरी रक्षा करें । मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी, द्यौ आदि देवगण भी सदा शुभकर्मों के लिये मुझे प्रोत्साहन देते रहें जिससे मेरी गरिमा दिनों दिन समृद्ध हो ।

मण्डल १

अग्नि-सूक्तम्

सूक्त १४३

ऋषि—दीर्घतमाः । देवता—अग्निः । छन्दः त्रिष्टुप् ८, जगती -१, २, ३, ४, ५, ६, ७ ।

१-

प्र तव्यसीं नव्यसीं धीतिमग्नये

वाचो मति सहसः सूनवे भरे ।

अपां नपाद्यो वसुभिः सह प्रियो

होता पृथिव्यां न्यसीदहत्विजः ॥१॥

पद-पाठ—प्र । तव्यसीम् । नव्यसीम् । धीतिम् । अग्नये । वाचः । मतिम् ।

सहसः । सूनवे । भरे । अपाम् । नपात् । यः । वसुभिः । सह । प्रियः । होता ।

पृथिव्याम् । ति । असीदत् । हत्विजः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अहम् 'अग्नये' अतितरां दीप्ताय अग्नये 'तव्यसीम्' अतिशयेन वर्धयित्री 'नव्यसीम्' नवीनामद्भुतां 'धीतिम्' प्राप्तावधानां क्रियां 'भरे' सम्पदयामि । 'सहसः सूनवे' तस्मै साहसनिर्माणकुशलाय अग्नये 'वान्यो मतिं भरे' स्वकीयां स्तुत्यां वाचः वाग्देवताया मनीषां निष्पादयामि । यो हि अग्निः 'अपां नपात्' अद्भय ओषण्यः ततश्चाग्निरिति अपां नप्ता, अथवाऽग्निर्विद्युद् रूपेणावस्थितोऽपि न तातयितां । यश्च 'प्रियः' प्रीणयिता 'वसुभिः सह' धनधान्यैः सह 'पृथिव्याम् न्यसीदत् ऋत्विग्यः' अधिगतप्रदानसमयः पृथिव्यां हि साधुत्वेनावस्थितो विराजते ।

टिप्पणी—तव्यसीम्—नव्यसीम्—तुवृद्धौ इति धातोः तृच् । अतिशये ईयसुन् प्रत्ययः । 'तुरिष्ठे ०' इति तृलोपः । तवीयस् इति जाते । छान्दस ईकारलोपः । नव शब्दादीयसुन । वसुभिः—निवास—योग्यैः धनैः ।

हिन्दी-व्याख्या—अहम् 'अग्नये' अग्निदेवता के लिये 'तव्यसी नव्यसीम्' अत्यन्त संवर्धनशील, अभिनव 'धीतिम्' क्रिया को 'भरे' धारण करता हूँ । 'सहसः सूनवे' उस शक्ति के सुपुत्र के लिये (वाचो मतिम्) उत्तम वाङ्मय की मनीषा 'भरे' अभिव्यक्त करता हूँ । 'योऽपानपात्' जो अग्निदेवता जलीय नप्ता है । = जल से ओषधि—वनस्पति और उनसे अग्नि, इस प्रकार जल का नप्तृत्व सिद्ध हुआ अथवा विद्युत् रूप में अवस्थित अग्नि जल का स्तम्भन करता है । (अपां न पातयिता) । जो सबके 'प्रिय' शुभ चिन्तक हैं । 'ऋत्विग्यः' प्रत्येक ऋतु काल तथा अवसर को विज्ञापित करने वाले हैं और वसुभिः सहः धन-धान्य मणि-माणिक्य आदि के साथ 'पृथिव्याम्' पृथ्वी पर 'न्यसीदत्' सर्वथा सर्वदा अधिष्ठित रहते हैं ।

२-

स जायमानः परमे व्योम—

न्याविरग्निरभव न्मात रिश्वने ।

अस्य कृत्वा समिधानस्य मज्जना

प्र द्यावा शोचिः पृथिवी अरोचयत् ॥२॥

पद-पाठ—सः । जायमानः । परमे । वि०ओ०मनि । आविः । अग्निः ।

अभवत् । मातरिश्वने । अस्य । कृत्वा । सं०इ०धानस्य । मज्जना । प्र । द्यावा ।

क

अस

शोचिः । पृथिवी इति । अरोचयत् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—‘सः जायमानः’ सोऽग्निरुत्पद्यमानः ‘परमे व्योमनि’ उत्कृष्टे रक्षणात्मके प्रदेशे ‘मातरिष्वने आविः अभवत्’ अन्तरिक्षसंचारिणे वायवे पूर्वम् आविरभवत् । वायु संयोगं प्राप्य उज्ज्वलितः । यद्वा फलनिर्मातरि यज्ञे श्वसिति कामनया उच्छ्वसिति उल्लासं तनुते इति मातरिष्वान् पुरुषः । स एनं प्रथमं साक्षात्करोति । ‘अस्य समिधानस्य मज्जना कृत्वा—’ अस्य इन्धनैः सम्यक् प्रवर्धमानस्य बलवता कर्मणा ‘शोचिः’ दीप्तिः । द्यावा पृथिवी प्र अरोचयत्’ द्युलोकं पृथ्वीलोकं सादीपयत् ।

टिप्पणी—समिधानस्य—इन्धी दीप्तौ । शानच् नकारलोपश्छान्दसः । व्योमनि-वि + अव + मनिन् । सप्तम्येकवचने । कृत्वा—कृतुना इति प्राप्ते ।

हिन्दी व्याख्या—‘सः जायमानः’ वह उत्पन्न होता हुआ ‘परमेव्योमनि’ उत्कृष्ट रक्षणात्मक स्थान में ‘मातरिष्वने आविः अभवत्’ मातरिष्वान् वायु अथवा यजमान के लिए प्रकट हुआ । इन्होंने ही प्रथम-प्रथम साक्षात्कार किया । ‘अस्य समिधानस्य’ ईधन-शक्ति के द्वारा निरन्तर प्रवर्धमान इस अग्नि के ‘मज्जना कृत्वा’ शक्तिशाली कार्य से उत्पन्न ‘शोचिः’ दीप्ति समस्त पृथिवी लोक तथा द्युलोक को ‘अरोचयत्’ अभिव्यक्त करती है । बिना ज्ञानग्नि के कोई भी पदार्थ प्रकाशित नहीं रहता ।

३--

अस्य त्वेषा अजरा अस्य भानवः

सुसंद्शः सु प्रतीकस्य सुद्युतः ।

भात्वक्षसो अत्यक्तु न सिन्धवो—

अग्ने रेजन्ते अससन्तो अजराः ॥३॥

पद-पाठः—अस्य । त्वेषाः । अजराः । अस्य । भानवः । सुसंद्शः । सुप्रती-

कस्य । सुद्युतः । भात्वक्षसः । अति । अत्यक्तुः । न । सिन्धवः । अग्नेः । रेजन्ते ।

अससन्तः । अजराः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्याग्नेः त्वेषा दीप्तयः अजरा जरारहिताः । न कदाचि-
ज्जीर्यन्ते । तथाऽस्य सुप्रतीकस्य सुन्दराकारस्य भानवः रश्मयः सुसन्दृशः नयनाभि-
रामाः । मुद्युतः सर्वतो द्योतमानाः । अस्याग्नेः भात्वक्षसः प्रभाशक्तयः सिन्धव इव
स्पन्दनशीलाः किरणा इव अत्यक्तुः अक्तुं जगदञ्जनभूतं नैशं तमः अतिक्रम्य
वर्तन्ते । एतेऽग्नेः किरणा अजरा जरारहिताः अससन्तः स्वदाहपाकप्रकाशाकर्षादिव्या-
पारेषु अस्वपन्तः अगृहीतविरामाः न रेजन्ते न कम्पन्ते । नान्यैश्चाल्यन्ते ।

टिप्पणी—भात्वक्षसः—भा एव त्वक्षः बलं यस्यासौ भात्वक्षाः, ते भात्व-
क्षसः । अक्तुः—अनक्ति लिम्पति जगत् तमसा इति अक्तुः रात्रिः । सुसन्दृशः—
दृश् + क्विप् । मुद्युतः—द्युत् + क्विप् । अससन्तः—पस—पसने + शतृ ।

हिन्दी-व्याख्या—इस अग्नि की 'त्वेषाः' दीप्तियाँ 'अजराः' जरा—रहित
हैं । 'अस्य भानवः सुसन्दृशः' इसके विस्फुलिग बहत ही रमणीक हैं । 'सुप्रतीकस्य'
सुन्दर मुख वाले इस अग्नि की 'मुद्युतः' चमक-दमक अतीव मनोहर है । 'अत्यक्तुः'
रात्रि के तम का अतिक्रमण करने वाली 'सिन्धवः' इस अग्नि की स्पन्दनशील किरणों
'भात्वक्षसः' चमक से पूर्ण बलवती हैं । यह अग्नि की 'अजराः' जरारहित दीप्तियाँ
'अससन्तो' निरन्तर सावधान रहकर सर्वत्र 'रेजन्ते' कम्पाकुल होकर विराजमान
रहती हैं ।

४-

यमे॒तिरे भृ॒गवो वि॒श्ववे॒दसं

माभा॑ पृथि॒व्या भुवन॑स्य म॒ज्मना॑ ।

अ॒ग्निं तं गी॒र्भि हि॒नुहि॒ स्व आ॒दमे

य ए॒को व॒स्वो वरु॑णो न राज॑ति ॥४॥

पद-पाठः—यम् । आ॒ई॒तिरे । भृ॒गवः । वि॒श्ववे॒दसम् । नाभा॑ । पृथि॒व्याः ।

भुवन॑स्य । म॒ज्मना॑ । अ॒ग्निम् । तम् । गी॒र्भिः । हि॒नुहि॒ । स्वे । आ । दमे॑ । यः ।

एकः । व॒स्वः । वरु॑णः । न । राज॑ति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यम् अग्निं भृगवः पापस्य भर्जकाः भुवनस्य मज्मना बलेन

पृथिव्या नाभौ वेद्याम् ईदरे प्रेरितवन्तः स्थायितवन्तः । कीदृशम् अग्निं विश्ववेदसम् विश्वधनम्, यद्वा विश्वप्रज्ञम् । तमग्निं स्वे दमे स्वकीय एव गृहे गीभिः स्तुतिभिः आ हिनुहि प्राप्तुहि । यथा वरुणः तमोनिवारक आदित्यः सर्वस्य ईश्वरस्तथाऽग्निरपि एको मुख्यः वस्वः विभवस्य राजति ईश्वरो भवति ।

टिप्पणी— हिनुहि—हि गतौ लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने । हेर्लोपो न । वरुणः— आदित्यः । निवारयति-तमः । विश्ववेदसम्—वेद इति धन नाम । सर्वधनम् । विश्वं वेत्तीति वा विश्ववेदाः तम् विश्ववेदसम् । भृगवः—भृगुगोत्रोत्पन्नाः । यद्वा भृगवो भर्जनात् । दमः—दम इति गृहनाम दमनात् । वस्वः—वसुनः ।

हिन्दी-व्याख्या—‘विश्ववेदसम्’ सभी प्रकार धन और विद्या से सम्पन्न जिस अग्नि को ‘भृगवः’ पाप के भर्जक भृगुगोत्रीय ऋषियों ने ‘नाभा पृथिव्याः’ पृथ्वी की वेदी में ‘आईदरे’ प्रेरित किया और ‘मुवनस्य मज्जना’ प्राणिमात्र की शक्ति से जिसे सम्पन्न तथा प्रतिष्ठित किया । उस अग्नि को अपने संयमयुक्त भवन में स्तुतियों से प्राप्त करो । जो अग्नि ‘वस्वः’ धन-वैभव का एक मात्र ईश्वर है, जिस प्रकार कि सभी प्रकार के धनैश्वर्य के स्वामी वरुण—आदित्य देवता हैं ।

५—

न यो वराय मरुतामिव स्वनः

सेनेव सृष्टा दिव्या यथा शनिः ।

अग्नि जम्भैस्तिगितैरत्ति भवति

योधो न शत्रून् स वना न्यञ्जते ॥५॥

पद-पाठ—न । यः । वराय । मरुताम् । इव । स्वनः । सेना इव । सृष्टा ।

दिव्या । यथा । अशनिः । अग्निः । जम्भैः । तिगितैः । अत्ति । भवति । योधः ।

न । शत्रून् । सः । वनानि । न्यञ्जते ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यो अग्निः ‘न यो वराय’ वराय वरणाय निग्रहाय नैव योग्यः । न केनापि मरुतां स्वन इव, तेजस्विनी सेना इव, दिव्या अशनिः इव ग्रहीतुं

शक्यते यमग्निः । मरुतां पवनाभि मानिनां देवानां स्वर्गो गर्जनं को ग्रहीतुं शक्नोति ? शत्रुक्षयार्थं प्रेषिता सेना यथा सर्वातिशायिनी भवति तथैवायमग्निः । दिवि भवाऽग्निं विद्युत् यथा भूमौ पर्वते वा पतन्ती न केनापि निवार्यते तथा ऽयमग्निर्न केनापि वराय निवारणाय उपयुक्तो भवति तेजसाधिकयात् सर्वातिशयाद् दिव्यभावाच्च । सोऽयमग्निर् 'तिगितैः जम्भैः अत्ति' अत्यन्ततीक्ष्णैः जम्भैर्दन्तस्थानीयैः ज्वालानिकरैः अत्ति विरोधिनो भस्मसात्करोति । सोऽग्निः 'योधो न शत्रून्' यथा संप्रहारकर्मणि कुशलः शूरः शत्रून् विनाशयति तथा ऽग्निः भवन्ति शत्रून् हिनस्ति । 'स वनानि ऋञ्जते' सोऽग्निः वृक्षसमूहान् ऋञ्जते दग्धान् करोति ।

टिप्पणी—तिगितैः—तिज—निशाने + क्तः । इडागमः कुत्वं च । वराय—वरीतुं योग्याय । दिव्या-दिविभवा । सृष्टा—सृज विसर्गो + क्तः । भवन्ति—भवं हिंसायाम् । लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—यह अग्नि 'न वराय' कभी भी ग्रहण की परिधि में नहीं आ सकता । यहाँ तीन दृष्टान्त हैं—'मरुतां स्वर्ग इव' मरुद्गण की गर्जना जिस प्रकार पकड़ में नहीं आ सकती । 'सृष्टा सेना इव' प्रकर्षारूढ सेना जिस प्रकार निरोध-रहित होकर अग्रसर होती है और 'दिव्या अग्निः यथा' मेघोदर से निकली हुई बिजली जिस प्रकार बेरोक-टोक गिरती है इसी प्रकार अग्नि की गति का निरोध नहीं हो सकता । 'तिगितैः जम्भैः अग्नि अत्ति' अपनी तीक्ष्ण ज्वालाओं से अग्नि विरोधियों को भस्मसात् कर देता है और 'योधो न शत्रून्' संप्रहार-कुशल शूर के समान 'सर्वन्ति' शत्रुओं का विध्वंस करता है । 'स वनानि ऋञ्जते' वही अग्नि वृक्ष-समूहों का प्रसाधन करता है—पर्वत के केश-कलाप को संवार देता है ।

६—

कुवि॒न्तो अ॒ग्निरु॒च॒थस्य॒ वी॒रस॒द्

वसु॒कु वि॒द्वसु॒भिः का॒मभा॒वरत् ।

चो॒दः कु॒वित्तु॒ज्यात्सा॒तये॒धियः॒

शुचि॑ऽ प्रती॒कं त॒मया॒धिया॒ गृ॒णे ॥६॥

पद-पाठ—कु॒वित् । नः । अ॒ग्निः । उ॒च॒थस्य॒ । वीः । अ॒सत् । वसुः । कु॒वित् ।

वसुभिः । कामम् । आवरत् । चोदः । कुवित् । तुतुज्यात् । सातये । धियः ।

शुचि ऽ प्रतीकम् । तम् । अया । धिया । गृणे ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अयमग्निः अस्माकमुच्यस्य उच्यस्य स्तुतिसमूहस्य कुवित् प्रीत्या वीः कामयिता असत् भवेत् । अयं वसुः वासयिता वसुभिः धनैः कामं प्रभूतं कुवित् अत्यर्थम् अवरत् प्रदानेन कामान् प्रपूरयतु । अयमग्निः चोदः प्रेरकः सन् 'धियः सातये' कर्मलाभाय 'कुवित्, अत्यर्थ 'तुतुज्यात्' त्वरयतु । शुचिप्रतीकं शोभन-स्वरूपम् अग्निमहम् अनया धिया स्तुतिरूपया गृणे स्तौमि ।

टिप्पणी—असत्—भवतु । लेट् । आवरत्—वृञ् लेट् । तुतुज्यात्—तुज प्रेरणे । शपः श्लुः । चोदः चुद प्रेरणे । घञ् । अया-अनया । सातये—सनीतेः 'जनसनखनाम् ०' इत्याकारादेशः । चतुर्थी ।

हिन्दी-व्याख्या—'अयमग्निः उच्यस्य नः वीः' यह उदारप्रेरणाप्रद अग्नि हमारे स्तुति-समूहों को प्रीति पूर्वक स्वीकार करें । 'वसुः वसुभिः कामम् आवरत्' सबके निवास-भूत अग्नि अपने धन-साधन के उपायों से हमें पूर्ण-मनोरथ करें । 'चोदः' अत्यन्त प्रेरक बनकर 'धियः सातये' कर्म की प्राप्ति के लिये 'कुवित् तुतु-ज्यात्' निरन्तर हमें त्वरायुक्त करते रहें । शुचि प्रतीकम्' सुन्दर—स्वरूप से प्रशंसित इस अग्नि देव की हम 'अया' स्तुतिपूर्ण वाणी में 'धिया' मनीषा पूर्वक 'गृणे' स्तुति करते हैं ।

७-

घृत प्रतीकं व ऋतस्य धूर्षदम्

अग्नि मित्रं न समिधान ऋज्जते ।

इन्धानो अक्रो विदथेषु दीद्यच्च

शुक्रवर्णामुदु नो यंसते धियम् ॥७॥

पद-पाठ—घृत ऽ प्रतीकम् । वः । ऋतस्य । धूः ऽ सदम् । अग्निम् । मित्रम् ।

न । सम॒द्ध॒धानः । ऋ॒ञ्ज॒ते । इ॒न्धानः । अ॒क्रः । वि॒दथे॑षु । दी॒द्यत् । शु॒क्रव॑र्णाम् ।

उत् । ऊ॒ इति॑ । नः य॒स॒ते । धि॒यम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—‘घृत प्रतीकम्’ प्रदीप्तज्वालास्वरूपम् ‘ऋतस्य धूर्पदम्’ यज्ञस्य धुटि प्रमुखे स्थाने विराजमानम् ‘मित्रं न’ मित्रम् इव प्रियं समिधानः स्तोत्र-लक्षणैः इध्मै दीप्यमानः अग्निं यजमानः प्रसाधयति । सोऽयमग्निः इत्थम् ‘इन्धानः’ दीप्तः सन् ‘अक्रः’ अन्यैः अनाक्रान्तः ‘विदथेषु’ स्तोत्र निमित्तेषु दीद्यत् स्वयं दीप्यमानो भवति । सोऽग्निः अस्माकं ‘शुक्रवर्णा धियम्’ रागद्वेषरहितां निर्मलां प्रज्ञां ‘यसते’ तेजयति ।

टिप्पणी—घृतप्रतीकम्—घृक्षरणदीप्तयोः । प्रदीप्तज्वालास्वरूपम् । धूर्पदम्—घू + सद + अच् । अक्रः—अन्यैः नराक्रान्तः । नञ् + क्रम । ऋञ्जोतः प्रसाधनकर्मा । विदथेषु—रुविदिभ्यां डित् । वेत्ति इति विदथः ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रदीप्त ज्वाला रूप अंग वाले ‘ऋतस्य धूर्पदम्’ यज्ञ की धुरा को धारण करने वाले अग्नि की हम ‘मित्रं न’ मित्र के समान ‘समिधानः ऋञ्जते’ स्तुतियों से सम्बर्धन करते हैं । स्तोत्ररूपी इन्धन से ‘इन्धानः’ दीप्यमान अग्नि ‘अक्रः’ अनाक्रान्त होकर ‘विदथेषु दीद्यत्’ सर्वदैव यज्ञ-वेदी में अभिनन्दन पाते रहें । अग्नि देवता हमारे लिये शुक्लवर्णा राग-द्वेष रहित निर्मल वाणी ‘यसते’ को प्रदान करते रहें ।

८- अ॒प्र॒यु॒च्छन्त॑प्र॒यु॒च्छ॑दि॒भ्र॒ग्ने

शि॒वेभि॑ नः पा॒युभिः॑ पा॒हि॒ श॒ग्मैः॑ ।

अद॑ब्धेभि॒रदृ॑पितेभि॒रिष्टे॑

ऽनि॑मिषद्भिः परि॑पाहि नो॒ जाः ॥८॥

पद-पाठ—अ॒प्र॒ ऽयु॒च्छन् । अ॒प्र॒यु॒च्छत् ऽभिः॑ । अ॒ग्ने । शि॒वेभिः॑ । नः॑ ।

पायुभिः । पाहि । शग्मैः । अदब्धेभिः । अदृयितेभिः । इष्टे । अनिमिषत्भिः ।
परि । पाहि । नः । जाः ।

संस्कृत-व्याख्या—हे अग्ने ! शिवेभिः कल्याणोपायैः अप्रयुच्छद्भिः
अप्रमाद्यद्भिः सावधानैः शग्मै निरूपद्रवैः पायुभिः रक्षणसाधनैः त्वम् अप्रयुच्छन्
अप्रमाद्यन् अनवधानरहितः सन् नः अस्मान् पाहि सततं रक्ष । अथ च अदब्धेभिः
अहिसितैः अदृपितेभिः अनभिभूतैः अनिमिषद्भिः निमेषरहितैः निरालसैः हे इष्टे !
अग्ने ! सर्वरेषणीयाग्ने ! नोऽस्माकं जाः प्रजाः पुत्रपौत्रादीन् परिपाहि परितः
पालय ।

टिप्पणी—शिवेभिः—शिवैः, अदब्धेभिः—अदब्धैः, अदृपितेभिः—अदृपितैः ।
एतेषु भिसः ऐस् भावो न । अप्रयुच्छन्—युच्छ प्रमादे । शतृ । अदब्धेभिः—दम +
क्तः । पायुभिः—पाति रक्षतीति पायुः । पा + उण् । तैः । इष्टेः—इष्टिः सम्बुद्धौ ।

हिन्दी व्याख्या—हे अग्निदेवता! आप प्रमाद-रहित कल्याणमय साधनों से
सदा 'पाहि नः' हमारी रक्षा कीजिये । हम सदा उन निरूपद्रव और आप के द्वारा
दिये गये आनन्ददायक साधनों से शान्त, प्रसन्न और प्रगतिशील रहें । 'परि पाहि
नो जाः' हमारे पुत्र, पौत्र आदि सन्ततियों की भी 'अदृयितेभिः अदब्धेभिः, अभि-
मिषद्भिः पायुभिः' अपने सिद्ध शौर्य-सम्पन्न, प्रतापपूर्ण, निरालस रक्षा-साधनों से
सदैव रक्षा कीजिये ।

मण्डल १

विष्णु सूक्तम्

सूक्त १५४

ऋषि—दीर्घतमा । देवता—विष्णुः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१-
विष्णो नु कं दीर्याणि प्रवोचं

यः पाथिवानि विममे रजांसि ।

यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं

विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१॥

पद-पाठः—विष्णोः । नु । कम् । वीर्याणि । प्र । वोचम् । यः । पार्थिवानि ।

विऽ ममे । रजांसि । यः । अस्कमायत् । उत्तरम् । सधऽ स्थम् । विऽचक्रमाणः ।

त्रेधा । उरुगायः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मनुष्याः ! विष्णोः वेवेष्टि जगत् इति विष्णुः तस्य सर्वव्यापकस्य वीर्याणि प्रशस्तानि वीर कर्माणि नु कं प्रवोचम् अत्यादरेण प्रब्रवीमि । यः विष्णुः पार्थिवानि रजांसि पृथिवीसम्बन्धिनो रञ्जनात्मकान् लोकान् अथ च तत्राभिमानिनो अग्निवायुसूर्यरूपान् देवांश्च विममे निमंमे । यश्च विष्णुः उत्तरं सधस्थं सहस्थानं लोकाश्रयभूतमन्तरिक्षम् अस्कमायत् स्तम्भितवान् । लोकत्रयाश्रयरूपम् अन्तरिक्षमपि दिष्टवान् । तच्च ध्रुवं कृतवान् । त्रेधा त्रिप्रकारं स्वस्वष्टान् लोकान् क्रममाणः उरुगायः उरुभिर्बहुभिर्महद्भिश्च गीयमानः अतिप्रशस्तं गीयमानो वा । एवं भूतस्य विष्णोर्वीरकर्माणि प्रब्रवीमि ॥१॥

टिप्पणी—विष्णोः—‘विष्णु व्याप्तो’ नु । प्रवोचम्—प्र + वच् + लङ्—उत्तमपुरुषैकवचने छन्दसि । पार्थिवानि—पृथिवी + अण् । पृथिव्याः सम्बन्धीनि । अस्कमायत्—स्कम्भ + लङ् + शायञ् छन्दसि । विचक्रमाणः—वि + क्रम + लिङ्थे कानच् । उरुगायः—उरुभिर्गीयते—उरु + गे + अच् । रजांसि—लोकाः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मनुष्यों ! भगवान् विष्णु के वीरकर्मों को मैं कहने जा रहा हूँ जिन्होंने अग्नि-वायु और आदित्य रूप से पृथिवी सम्बन्धित लोकों की रचना की है, जिन्होंने विस्तीर्ण सहस्थानभूत आश्रय रूप में अवस्थित अन्तरिक्ष लोक का निर्माण किया है, जो स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण रूप से अवस्थित होकर इन स्वरचित लोकों में सदा विद्यमान रहते हैं और महान् पुरुषों से अभिनन्दन पाते रहते हैं ।

२-

प्र तद्विष्णुः स्तवते वीर्येण

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ।

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेषु

अधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥२॥

पद-पाठः—प्र । तत् । विष्णुः । स्तवते । वीर्येण । मृगः । न । भीमः ।

कुचरः । गिरिस्थाः । यस्य । उरुषु । त्रिषु । विक्रमणेषु । अधि ऽ क्षियन्ति ।

भुवनानि । विश्वा ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—विष्णुरेव वीर्येण स्वकीयेन प्रभुक्रमणा सर्वत्र हि स्तवते स्तूयते मृगो न भीमः यथा भयकारी सिंहः कुचरः क्वायं न चरतीति सर्वत्र गतिकर्मा गिरिष्ठाः उन्नत-प्रदेशस्थायी, स यथा ऽऽ कृतिविशेषात् प्रशंसामाप्नोति तथा अप्रतिहतगतिरयं विष्णुः स्तुति भजते । यस्य विष्णोः त्रिषु विक्रमणेषु पादप्रक्षेपेषु विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि अधिक्षियन्ति आश्रित्य निवासं भजन्ते । स स्तूयते ।

टिप्पणी—स्तवते—स्तूयते, यक् स्थाने व्यत्ययेन शप् । गिरिष्ठाः गिरिषु तिष्ठति क्विप् । मृगः—मृगयिता, अन्वेष्टा । मृज् + क । कुचरः—कु + चर + ट ।

(२) पटिर्सन ने कुचर का अर्थ 'स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने वाला' किया है । 'गिरिष्ठाः' का अर्थ 'पर्वतों में विचरण करने वाला' किया है । ग्राह्यमान ने 'वीर्येण' का अर्थ 'बल' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'वीर्येण' अपने पराक्रमयुक्त शुभ कार्यों से विष्णु की ही सर्वत्र प्रशंसा होती आयी है । 'मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः' विष्णु का तेजस्वी मस्तक भयंकर सिंह जैसा है । दोनों उन्नत प्रदेशों में रहने वाले तथा निर्बाध गति से विचरण करने वाले हैं । विष्णु की ही तीन विस्तीर्ण चरणों की सीमा में समग्र भुवन शान्तिपूर्वक आश्रय तथा विश्रान्ति पाते हैं । अतः महानुभाव एवं प्रभावपूर्ण विष्णु ही स्तुति-प्रशंसा के लिये अभिनन्दनीय पात्र हैं ।

३-

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म

गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे ।

य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थम्

एको विममे त्रिभिरित्पदेभिः ॥३॥

पद-पाठ—प्र । विष्णवे । शूषम् । एतु । मन्म । गिरि ऽ क्षिते । उरु ऽ
गायाय वृष्णे । यः । इदम् । दीर्घम् । प्र ऽ यतम् । सध ऽ स्थम् । एकः ।

विममे । त्रिभिः । इत् । पदेभिः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्माकं स्तुतिजन्यं मन्म मननीयं शूषं शोषकं बलं विष्णवे व्यापकाय देवाय प्र एतु प्राप्नोतु । कीदृशाय विष्णवे गिरिक्षिते गिरिवदुन्नते प्रदेशे स्थिताय वाचि स्थिताय वा । उरुगायाय उरुभिर्महात्मभिर्गीयमानाय । वृष्णे वर्षित्रे । यो विष्णुरिदं दीर्घमिति विस्तीर्णं प्रयतं संयतं सधस्थं सहस्थानं भुवनत्रयम् एकः एक एवासहाय एवाद्वितीयः सन् त्रिभिःपदेभिः पादैर्विममे निमित्तवान् । विशेषेणान्तर्गतं करोति ।

टिप्पणी—शूषम्—शूष + घञ् । गिरिक्षिते—गिरोगिरि वा क्षियति, तस्मै, 'क्षिनिवासे' क्विप्, तुगागमः । वृष्णे—वृष् + कनिन् । चतुर्थी । उरुगायाम् । उरु + गा + युक् + अण् । सधस्थम्—सह + स्था + क । हकारस्य धकारः । विममे—वि + मा + लिट् । शूषम्—शोषकं बलम् ।

हिन्दी-व्याख्या—सर्व व्यापक विष्णु भगवान् के लिये हमारी स्तुतियों से उत्पन्न मननीय, शोषक शक्ति प्राप्त होती रहे । वह विष्णु निरन्तर वाग्—बल में अथवा गिरि=उन्नत प्रदेशों में निवास करने वाले हैं । जो 'उरुगायाय'—श्रेष्ठ-पुरुषों से निरन्तर प्रशंसनीय हैं और 'वृष्णे' सुखों की आनन्द-वृष्टि करने वाले हैं । जो 'त्रिभिः इत् पदेभिः' अपने तीन चरणों में एक अकेले ही इस दीर्घ विस्तीर्ण सहस्थान रूप भुवनत्रय का निर्माण करते हैं । जो कि लोकत्रय 'प्रयतम्' अपने नियम और उपक्रम में विधिवत् संयत और अनुशासित है ।

४-

यस्य त्री पूर्णा सधुना पदानि—

अक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति ।

य उ त्रि धातु पृथिवीमुत द्याम्

एको दाधार भुवनानि विश्वा ॥४॥

पद-पाठ-यस्य । त्री । पूर्णानि । मधुना । पदानि । अक्षीयमाणा । स्वधया ।

मदन्ति । यः । ऊँ इति । त्रिधातु । प्रथिवीम् । उत । द्याम् । एकः । दाधार ।

भुवनानि । विश्वा ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्य विष्णोः अक्षीयमाणानि मधुना पूर्णानि त्रीणि पदानि स्वधया स्वकीयया प्रधानशक्त्या मदन्ति सुखयन्ति । य उ त्रिधातु प्रथिव्य-प्तेजोरूपं धातुत्रयं दाधार धृतवान् । पवना काशयोरपि त्रिवद्ग्रहणे ग्रहणम् । य एवेमां प्रथिवीम् अपि च द्यां द्युलोकं भुवनानि चान्यानि समग्राणि प्रभुत्वेनावस्थितः संधारयति ।

टिप्पणी—अत्र त्रिधातु इति त्रिवृत् करणात् मृष्टिरुत्पादिता । त्री—त्रीणि । जस् लोपः । दीर्घत्वम् । अक्षीयमाना—अक्षीयमाणानि = क्षि + यक् + मुक् + शानच् । न क्षीयमाणानि अक्षीयमाणानि । त्रिधातु—त्रयाणां धातूनां समाहारः ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस विष्णु के कभी न क्षीण होने वाले माधुर्य पूर्ण पद अपनी स्वधाशक्ति से प्रधान-पुरुष की संश्लिष्टि से आनन्दित करते हैं । जो विष्णु भगवान् पृथिवी-जल तथा तेज को धारण करते हैं तथा आकाश और वायु का भी नियमन करते हैं । यह सत्य है कि एक ही विष्णु समस्त भुवनों के धारक और पोषक हैं ।

५—

तदस्य प्रियमभि पाथो अश्यां

नरो यत्न देवयो मदन्ति ।

उरुक्रमस्य स हि बन्धुरित्था

विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः ॥५॥

पद-पाठ—तत् । अस्य । प्रियम् । अभि । पाथः । अश्याम् । नरः । यत्र ।

देवऽयवः । मदन्ति । उरुक्रमस्य । सः । हि । बन्धुः । इत्था । विष्णोः । पदे । परमे ।

मध्वः । उत्सः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य विष्णोः प्रियं पाथः पेयं ब्रह्मलोकम् अश्याम् व्याप्नुयाम् । यत्र देवयवः देवत्वं कामयमानाः नरः नेतारः मदन्ति तृप्तिं प्राप्नुवन्ति । उरुक्रमस्य अधिकं क्रममाणस्य विष्णोः व्यापकस्य परमे पदे उत्कृष्टे स्थाने मध्वः मधुरस्य उत्सः निष्पन्दो वर्तते । अनेन प्रकारेण स विष्णुः सर्वेषां बन्धु स्नेहाधीनोऽस्ति ।

टिप्पणी—देवयुः—देव + यु + क्विप् । प्रथमा बहुवचने । इत्था—इत्थम् । मध्वः—मधुनः । पण्ठी । पाथ—पा + अमुन् । थुडागमः । अश्याम्—अश् + लिङ् । उत्तमपुरुषैकवचने ।

(२) पिशेल ने 'इत्था बन्धुः' का अर्थ किया है—'मित्रों का समाज ।'

हिन्दी-व्याख्या—विष्णु जगत् के विधाता-बन्धु हैं, उनके पद को प्राप्त कर लेने पर फिर दुःख-जन्म आदि की पुनरावृत्ति नहीं होती । जहाँ पर भूख-प्यास जरा-मरण-पुनरावृत्ति आदि का भय नहीं है, वह विष्णु का परम पद = श्रेष्ठ स्थान है । सारे संसार को अपने पद-विक्रम से व्याप्त करने वाले विष्णु के उत्तम पद में माधुर्य का निष्पन्द झरता रहता है । मैं भी उस विष्णु के प्रिय 'पाथ' पान योग्य ब्रह्मलोक का आनन्द प्राप्त करूँ । यज्ञ-दान-शुभकर्म आदि से 'देवयवः' देवत्व की कामना वाले 'नरः' नेतृवन्द जिस अनश्वर सुख की प्राप्ति करते हैं, वह आनन्द मुझे भी प्राप्त हो ।

६—

ता वां वाल्न्युदमसि गमध्वे

यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः ।

अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः

परमं पदमव भाति भूरि ॥६॥

पद-पाठ—ता । वाम् । वास्तूनि । उश्मसि । गमर्ध्वे । यत्र । गावः ।

भूरिशृङ्गाः । अयासः । अत्र । अह । तत् । उरुगायस्य । वृष्णः । परमम् । पदम् ।

अव । भाति । भूरि ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—वाम् युवयोः इन्द्राविष्णवोः ता तानि वास्तूनि निवास-योग्यानि स्थानानि गमर्ध्वे गमनाय उश्मसि वयं कामयामहे । येषु लोकेषु भूरिशृङ्गाः प्रभूतविषाणाः प्रभूतकान्तयः अयासः अयनशीलाः गमनस्वभावाः क्रियावन्तः गावः धेनवः किरणावा लसन्ति । अत्र ह एषु लोकेषु उरुगायस्य श्रेष्ठपराक्रमस्य महायशसः वृष्णो मनोरथपूरकस्य विष्णोः तत् परमम् उत्कृष्टं पदं स्थानम् अवभाति ।

टिप्पणी—उश्मसि—कामयामहे—‘वश कान्ती’ लट्, सम्प्रसारणम् । अयासः—अयाः ‘आज्जसेरसुक्’ । गन्तारः । वाम्—युवयोः युष्मदर्थं वा । गमर्ध्वे—तुमर्थेऽर्ध्वे । वृष्णः—वृष + कनिन् भूरिशृङ्गाः—बहुभिराश्रयणीयाः, अत्यन्तोन्नताः । अयासः—यासः—गन्तारः, अतादृशाः, अत्यन्त प्रकाश युक्ताः ।

हिन्दी-व्याख्या—महान् गतिशील विष्णु की परम प्राप्ति का स्थान अपनी ही महिमा से स्फुरित हो रहा है । आप सबके लिए उन प्रसिद्ध स्थानों तथा प्रवेश के लिए ‘उश्मसि’ हम कामना करते हैं जिन स्थानों पर ‘गावः’ किरणें बहुतों को आश्रय देती हुई प्रवेश करती हैं । कामनाओं की वृष्टि करने वाले और उन्हें पूर्ण करने वाले भगवान् विष्णु के आधार रूप द्युलोक में स्तुत्य निरतिशय—आनन्द को छटा है ।

मण्डल १
द्यावापृथिवी-सूक्तम्

सूक्तं १६०

ऋषिः—दीर्घतमाः, छन्दः—जगती ।

१—

ते हि द्यावापृथिवी विश्वशंभुव—

ऋतावरी रजसो धारयत्कवी ।

सुजन्मनी धिषणे अन्तरीयते

देवो देवी धर्मणा सूर्यः शुचिः ॥१॥

पद-पाठ—ते इति । हि । द्यावापृथिवी इति । विश्वशंभुवा । ऋतावरी

इत्यृतावरी । रजसः । धारयत्कवी इति धारयत्कवी । सुजन्मनी इति सुजन्मनी ।

धिषणे । इति । अन्तः । ईयते । देवः । देवी इति । धर्मणा । सूर्यः ।

शुचिः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे द्यावापृथिव्यौ 'विश्वशंभुवा' समग्रस्य विश्वस्य शमने सुखदात्र्यौ 'ऋतावरी' जगती धारणाय शुभसत्यजलवत्यौ रजसः उदकपरमाणूनां 'धारयत्कवी' धारणशीले 'सुजन्मनी' शोभन प्रादुर्भावे 'धिषणे' धर्षणकुशले 'देवी' विद्योतमाने परी शोभां धारयतः । 'अन्तः' एतयोरेतराले 'शुचिः' रागद्वेष-विवर्जितः 'देवः' द्योतमानः 'धर्मणा' उदकधारण प्रकाशपाचनकर्षणादिव्यापारविद्योत्यं सूर्यः सदैव 'ईयते' स्वकीयं महिमानं स्थापयति ।

टिप्पणी—धारयत्कवी—धृधातोर्णिचि शतृ । धारयन्त्यौ कवी चेति । कं जलं यत्रास्ति तत् कवि, स्त्रियो कवी । मनुवर्थे कं शब्दात् वि प्रत्ययः । ऋतावरी—ऋत शब्दात् 'छन्दसीवनियो०' इति वनिप् । 'वनोरच' इति ङीप् रेफश्च ।

मैक्डानल ने ऋतावरी का अर्थ 'नियम में रहने वाले' किया है । रजसः का अर्थ 'वायु के', धारयत्कवी का अर्थ 'ऋषि-रक्षक' और धर्मणा का अर्थ प्राकृतिक नियम किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह द्युलोक तथा पृथ्वीलोक समस्त विश्व को मुख देने वाले हैं । 'ऋतावरी' जगत् को धारण करने के लिए शुभ सत्य-जल से युक्त हैं । उदक पर-माणुओं को अपने भीतर बसाने वाले तथा सुन्दर प्रादुर्भाव रखने वाले हैं । ये दोनों लोक धर्षण-कुशल, चमक-दमक से युक्त उत्कृष्ट शोभा वाले तथा उद्यमशील हैं । इन्हीं दोनों लोकों के अन्तराल में 'शुचिः' रागद्वेष रहित 'देवः' प्रकाशमान सूर्य भगवान् 'धर्मणा' अपने प्रकाश-आकर्षण आदि नियमों से युक्त होकर अपनी महिमा का प्रतिष्ठापन करते हैं ।

२—

उरुव्यचसा महिनी असश्चता ।

पिता माता च भुवनानि रक्षतः ।

सुधृष्टमे वपुष्ये न रोदसी

पिता यत्सीमभि रूपैरवासयत् ॥२॥

पद-पाठ—उरुव्यचसा । महिनी इति असश्चता । पिता । माता । च ।

भुवनानि । रक्षतः । सुधृष्टमे इति सुधृष्टमे । वपुष्ये इति । न । रोदसी इति ।

पिता । यत् । सीम् । अभि । रूपैः । अवासयत् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे धावा पृथिव्यौ जगतः पितृभूते मातृस्थानीये च भूतानि जडचेतन रूपाणि समग्राणि रक्षतः पोषयतः । एते 'उरुव्यचसा' अतिव्यापन शीले विशाले 'असश्चता' असज्जमाने परस्पर संश्लेषरहिते विराजेते । एते धावापृथिव्यौ 'सुधृष्टमे' अतिशयेन प्राप्तप्रागल्भ्ये रोदसी रोधनशीले 'वपुष्ये' 'न' वपुषो हिते इव चर्तते । तयो मध्ये पितृस्थानीयः द्युलोकः 'सीम्' सर्वतः 'रूपैः' निरूपणीयैः साधनैः 'अवासयत्' अधिवासयति ।

टिप्पणी—उरुव्यचसा—‘व्यच विस्तारे’ अमुन् । उरु व्यचो ययोस्ते । असश्चता—‘पस्ज गती’ द्वान्दसः जस्य चः । शतृ । द्विवचनम् ।

मैक्डानल ने ‘असश्चता’ का अर्थ ‘श्रान्त न होने वाला’ अथवा ‘अपरिमेय’ किया है । ‘वपुष्ये’ का अर्थ ‘मुन्दर स्त्री’ तथा ‘मुधृष्टये’ का अर्थ ‘अहङ्कारी’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह द्युलोक यदि पालन करने के कारण पितृ तुल्य है तो यह पृथ्वी भी ‘माता’ मातृ-सदृश है क्योंकि ये दोनों जड़-चेतन का निर्माण तथा पालन करते हैं । ये दोनों ‘उरुव्यचसा’ अति-विस्तीर्ण ‘असश्चता’ परस्पर अनासक्त तथा ‘मुधृष्टमे’ अत्यन्त प्रगल्भ एवं ‘रोदसी’ नियमोल्लंघन करने वालों के लिए अवरोधक हैं । ये दोनों ‘वपुष्ये’ पुष्ट शरीर के हित-साधक हैं । इन दोनों में ‘पिता’ पिता के रूप में अवस्थित द्युलोक ‘रूपैः’ अपने निरूपण सामर्थ्य से ‘सीम्’ सभी ओर से ‘अवासयत्’ प्राणियों का अधिवास कराता है ।

३—

स व॒ह्निः पु॒त्रः पि॒त्रोः प॒वित्र॑वान्

पु॒नाति॑ धी॒रो भुव॑नानि मा॒यया॑ ।

धे॒नुं च॒ पृ॒श्निं वृ॒षभं॑ सु॒रेत॑सं

वि॒श्वाहा॑ शु॒क्रं प॒यो अ॒स्य दृ॒क्षत॑ ॥३॥

पद-पाठ—सः । व॒ह्निः । पु॒त्रः । पि॒त्रोः । प॒वित्र॑वान् । पु॒नाति॑ । धी॒रः ।

भुव॑नानि । मा॒यया॑ । धे॒नुम् । च॒ । पृ॒श्निम् । वृ॒षभम् । सु॒रेत॑सम् । वि॒श्वाहा॑ ।

शु॒क्रम् । प॒यः । अ॒स्य । दृ॒क्षत॑ ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं सूर्यः पित्रोः द्यावापृथिव्योः ‘पुत्रः’ पुत्रस्थानीयः पवित्रवान् अत्यन्तः शुचिः धीरः ध्यानवान् वह्निः यज्ञफलस्य वोढा स्वकीयया मायया भुवनानि सर्वाणि पुनाति पवित्रयति । स्वप्रकाशेन दीपयति । स इमां धेनुम् प्रणिनसमर्था पृश्निम् नानावर्णा भूमिं वृषभम् वर्षणोयेत द्युलोकं च विश्वाहा सर्वेषु अहः सु

सुरेतसम् शोभनसामर्थ्यं सम्पादयति । अस्य च वृषभस्य वर्षणशीलस्य द्युलोकस्य शुक्रं पयः प्रसन्नं दुग्धसदृशम् उदकं दुग्धत दोरिध ।

टिप्पणी—पृश्निः—पृच्छधातोः निङ् । धुधतः—दुह धातोः लुङि 'शलङ्गु-पधादनिटः क्सः' इति च्लेः क्सादेशः ।

मैक्झानल ने 'मायया' का अर्थ अद्भुत शक्ति, 'पृश्नि' का अर्थ 'चित्तकवरी', 'सुरेतसम्' का अर्थ वीर्यवान् और धेनु तथा वृषभ का अर्थ गाय और बैल किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह सूर्य द्युलोक तथा भूमि के पुत्र सदृश हैं । अपनी शुद्ध किरणों से पवित्र तथा धीर हैं वे ही वह्निरूप होकर यज्ञ फल को वहन करते हैं । और समग्र भुवनों को अपने प्रकाश से जागरूक करते हैं । वही सूर्य 'पृश्नि' नाना वर्ण वाली 'धेनुम्' प्रीति और तृप्ति करने वाली पृथ्वी को तथा 'वृषभम्' वर्षा करने वाले द्युलोक को 'विश्रवाहा' सर्वकाल में 'सुरेतसम्' सामर्थ्यवान् बनाते हैं । इस वर्षणशील द्युलोक से अत्यन्त शुचि दुग्धरूप जल का दोहन करते हैं ।

४—

अयं देवानामपसामपस्तमो

यो जजान रोदसी विश्वशंभुवा ।

वि यो ममे रजसी मुक्तूयया

अजरेभिः स्कम्भनेभिः समानृचे ॥४॥

पद-पाठ—अयम् । देवानाम् । अपसाम् । अपःस्तमः । यः । जजान ।

रोदसी इति । विश्वशंभुवा । विः । यः । ममे । रजसी इति । मुक्तूयया ।

अजरेभिः स्कम्भनेभिः । सम् । आनृचे ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं सूर्यो देवः 'अपसाम् अपस्तमः' कर्मरतानां देवानां मध्ये सर्वाङ्गीणः कर्मकृत् । अपमेव वर्चस्वी देवः रोदसी द्यावापृथिव्यो निर्माणं चक्रे । ते द्यावापृथिव्यौ 'विश्वशंभुवा' सर्वात्मना शुभस्य भावयित्र्यौ 'रजसी' लोकरञ्जन-समर्थे वर्तते । 'मुक्तूयया' शोभनकमेच्छया स सूर्यः द्यावापृथिव्यौ विमये उत्तादित-

वान् । ते च द्यावापृथिव्यौ 'स्कम्भनेभिः' स्थिरैः अजरेभिः अजीर्णैः स्तम्भैः 'समानृचे' स्थापितवान् । स्वे स्वे धर्मे नियते ते चकार ।

टिप्पणी—आनृचे—'ऋच स्तुतौ' लिटि । 'तस्मान्नृङ् द्विहलः' इति नृट् । अपसाम्—अप इति कर्मनाम् ।

मैकडानल ने 'अजरेभिः' का अर्थ 'अनादि' और 'स्काम्भनेभिः' का अर्थ 'सहारा देने वाले' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह सूर्य भगवान् 'अपसाम् अयस्तमः' कर्मरत देवों में सर्वाधिक कार्यकुशल हैं । इसी सूर्य-भगवान् ने 'सुकृतयया' शुभकर्म की इच्छा से इस 'रजसी' रंजनात्मक द्यु तथा पृथ्वी लोक को 'विमये' बनाया है । सूर्य भगवान् से निर्मित ये दोनों लोक 'विश्वशंभुवा' प्राणि मात्र के लिए सुखप्रद हैं जिन्हें 'अजरेभिः' स्कम्भनेभिः कभी जीर्ण न होने वाले स्तम्भों के सहारे दृढ़ किया है ।

५—

ते नो गृणाने महिनी महि श्रवः

क्षत्रं द्यावापृथिवी धासथो बृहत् ।

येनाभि कृष्टीस्ततनाम विश्वहा

पनाय्यमोजो अस्मे समिन्वतम् ॥१॥

पद-पाठ—ते इति । नः । गृणाने इति । महिनी इति । महि । श्रवः ।

क्षत्रम् । द्यावापृथिवी इति । धासथः । बृहत् । येना । अभि । कृष्टीः । ततनाम ।

विश्वहा । पनाय्यम् । ओजः । अस्मे इति । सम् । इन्वतम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे द्यावापृथिव्या ! युवाम् अस्माभिः 'गृणाने' स्तूयमाने 'महिनी' महती सत्यी अस्मभ्यं महत् श्रवः व्यापनीयम् अन्नं यशो वा धासथः धारयेतम् तथा बृहत् क्षत्रं बलं नः धासथः धारयेतम् । तेन वयं कीर्तिबलेन अन्न बलेन च 'विश्वहा' सर्वेषु दिनेषु कृष्टीः प्रजाः ततनाम विस्तारयेम । अथ च अस्ये अस्मासु 'पनाय्यम् ओजः' स्तुत्यं तेजः सम् सम्यक् इन्वतम् प्राप्नोतु ।

टिप्पणी—ततनाम्—तनोते लॅटि । छान्दसः श्रुतः । 'आहुतमस्य०'
इत्याडागमः । धासथः—दधाते लॅटि । अडागमः । 'सिब्वहुलं लेटि' इति सिप् ।

मैक्डानल ने 'महि' का अर्थ पर्याप्त किया है और 'श्रवः' का अर्थ 'राज्य'
किया है ।

हिन्दी-व्यख्या—हे छावा पृथिवी ! आप दोनों स्तुत्य रही हैं । आपको
विशालता के ही कारण आपको 'महिनी' कहा गया है । आप हमारे लिए सर्वदा
'श्रवः' कीर्ति, अन्न तथा 'श्रवम्' तेजोबल देती रहें जिससे हम प्राणवान् राष्ट्र के
प्रबल नागरिक कहलायें और 'विश्वहा' सदा ही 'कृष्टीः ततनाम्' योग्य, हृष्ट पुष्ट
सन्ततियों से विश्व में विस्तीर्ण होते रहें तथा 'अस्मे' हमारे भीतर 'पनाय्यम्'
ओजः स्तुत्य तेज का 'सम् इन्वतम्' सम्बर्धन होता रहे । ●

इन्द्र-सूक्तम्

(देवता—इन्द्रः । ऋषिः— गृत्समदः । छन्दः—त्रिष्टुप् । स्वरः— ध्रैवतः)

यो जा॒त ए॒व प्रथ॑मो मनस्वा॒न्

दे॒वो दे॒वान् क्र॑तुना पर्य॑भूषत् ।

यस्य शु॒ष्माद्रो॑दसी॒ अभ्य॑सेतां

नृ॒म्णस्य॑ । म॒ह्ना स॑ ज॒नास॑ इन्द्रः ॥१॥

पद-पाठः—यः । जा॒तः । ए॒व । प्रथ॑मः । मनस्वा॒न् । दे॒वः दे॒वान् । क्र॑तुना ।

परि॒ऽअ॒भूष॑त् । यस्य॑ । शु॒ष्मात् । रो॑दसी॒ इति॑ । अभ्य॑सेताम् । नृ॒म्णस्य॑ । म॒ह्ना ।

सः । ज॒नासः॑ इन्द्रः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—इन्द्रजिघांसया दैत्या वैन्ययज्ञे भान्त्या गृत्समदं जगृहुः । इन्द्रश्च गृत्समदाकृतिस्ततो निर्जगाम । गृत्समदश्च कर्माण्यैन्द्राणि कीर्तयन् प्रोवाच नाह - मिन्द्रोऽयमिन्द्र इति प्रत्युवाच—हे असुराः ! 'यो जात एव' जायमान एव देवानां 'प्रथमः' प्रथमः प्रधानभूतः 'मनस्वान्' मनस्विनामपि साहसधनः 'देवः' जयशीलः सर्वान् अपि देवान् पर्यभूषत् परिभूषितवान् अथवा पर्यभूषत् पर्यभवत् अतिक्रम्य वर्तते क्रतुना वृत्रवध—सोमपान—वज्रहस्त—विष्णुत्वादिना कर्मणा यः सर्वान् देवान् अलं करोति । यस्य शुष्मात् तेजसा बलेन रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभ्यसेताम् अविभीताम् भयवस्ते भवतः नृम्णस्य मत्ता बलस्य महिम्ना महावेन युक्तः स इन्द्रः, नाहम् इति । ऋषे दृष्टार्थस्य प्रीति भवत्याख्यान संयुक्ता ।

टिप्पणी—प्रथमः—प्रथमः—उत्कृष्टतमः । पर्यभूषत् = परि + अभूषत् । 'भूष—अलंकारे' लङ् । यद्वा—परि + अभूषत् = परि + अभवत् । भवते व्यत्ययेन वसः । 'श्रुपकः किति' इति इट् प्रतिबोधः । अभ्यसेताम्—'भ्यस—भये' वेपने चेति—अविभीताम्—अवेपेताम् । निरु १०. १० । जनासः—जनाः ।

हिन्दी-व्याख्या—ऐश्वर्यशाली इन्द्र की महिमा वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं—'यो जात एव प्रथमः' जो प्रकट होता हुआ ही अपनी गरिमा और महिमा से समन्वित है 'मनस्वान्' जो मनस्वी वीरों में भी अग्रगण्य है, जो दिव्यता और भव्यता के कारण दमक रहा है और जो 'देवान् क्रतुना पर्यभूषत्' स्वकीय कार्य-व्यापार से देवों को अलंकृत करता है (अथवा समस्त देवों का ऐश्वर्य एवं प्रताप के कारण उल्लंघन करता है) 'यस्य शुष्मात्' जिसके शारीरिक बल से 'रोदसी' द्युलोक और पृथिवी लोक भी 'अभ्यसेताम्' त्रस्त होकर कांप उठते हैं । 'नृम्णस्य मत्ता' जो स्वकीय तेज और बल की महिमा से शोभायमान है, वही इन्द्र है ।

२-

यः पृथिवीं व्यथमानामदृहद्

यः पर्वतान् प्रकुपितान् अरम्णात् ।

यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो—

यो द्यामस्तम्नात् स जनास इन्द्रः ॥२॥

पद-पाठः—यः । पृथिवीम् । व्यथमानाम् । यः । अदृहत् । पर्वतान् । प्रकु-

पितान् । अरम्णात् । यः । अन्तरिक्षम् । विष्ममे । वरीयः । यः । द्याम् । अस्तम्नात् ।

सः । जनासः । इन्द्रः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—‘यः व्यथमानां पृथिवीम् अदृहत्’ य इन्द्रो भयात् त्रासात् व्यथमानां कम्पनशीलां भूमिं स्वनियमे दृढाम् अकरोत् । यश्च ‘प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्’ इतस्ततो गर्जनशीलान् मेघान् नियमे स्थापितवान् । यो ह ‘वरीयो-
ऽन्तरिक्षं विममे’ विस्तीर्णम् अन्तरिक्षं चकार यश्च द्याम् अस्तम्नात् निरुद्धाम् अकरोत् । स एव इन्द्रः खलु । इन्द्र एव स्वप्रकाशेनान्तरिक्षं पूरयति विद्युत् सूर्यं चाधाय भूमिं पालयति, कोपमुक्तान् मेघांश्च वर्षणयोग्यान् सम्पादयति ।

टिप्पणी—अदृहत्—‘दृह दृहि वृद्धौ’ । अरम्णात्—रमु क्रीडायाम्, व्यत्ययेन णा, अन्तर्भावितोऽर्थश्च । अस्तम्नात्—‘स्तम्भु रोधने’ इति सौत्रोच्चारणः इन्द्रः—‘इदि परमैश्वर्ये’ ।

हिन्दी-व्याख्या—‘यः व्यथमानां पृथिवीम् अदृहत्’ जिस परमैश्वर्यशाली इन्द्र ने चंचल पृथिवी को अपने बन्धन में नियमित किया है, जिसने कोपाकुल मेघों को वर्षा करने के लिये विवश किया है, जिसने विशाल अन्तरिक्ष की सर्जना की है और जिसने ‘द्याम् अस्तम्नात्’ प्रकाश-लोक का नियमन किया है, हे मनुष्यो ! वही इन्द्र है, अन्य नहीं ।

३-

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून्

यो गा उदाजदपधा बलस्य ।

यो अश्मनोर्न्तरग्निं जजान

संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः ॥३॥

पद-पाठ—यः हत्वा । अहिम् । अरिणात् । सप्त । सिन्धून् । यः । गाः ।

उत्-आजत् । अप-पधा । बलस्य । यः । अश्मनोः । अन्तः । अग्निम् । जजान ।

सम्बृक् । समत्सु । सः जनासः । इन्द्रः ॥३॥

संस्कृत व्याख्या—(यो हत्वा अहिम् सप्त सिन्धून् अरिणात्) यः खल्विन्द्रो अहिं मेघं हत्वा सप्त सर्पणशीलाः सिन्धून् स्यन्दनशीलाः जलधारा अरिणात् प्रेरयति । यो बलस्य बलनाम्नोऽसुरस्य अपधा सकाशात् निरुद्धं गा उदाजत् निरगमयत् । यः अश्मनोः कोमलरूपयो मॅघयो मॅध्ये अग्निं वैद्युतम् अग्निं जजान प्रकटयामास । यश्च समत्सु संग्रामेषु संबृक् जेता एव भवति । स एव इन्द्र इति ।

टिप्पणी—अहिः, अश्मा मेघं नाम । आ हन्ति गच्छतीत्यहिः । अश्नुते व्याप्नोत्यन्तरिक्षयित्यश्मा मेघः । समत्सु-संभक्षयन्ति वीराणामायूषि इति समदः संग्रामाः । संबृक्—संपूर्वस्य वृणक्तेर्हिंसार्थस्य क्विप् । सिन्धून्—समुद्रान् नदी वा । अपधा—सुपां सुलुगिति विभक्ते डदिशः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे जनासः मनुष्यों ! जिसने मेघ का विनाश करके 'सप्त सिन्धून्' सर्पणशील नदियों का 'अरिणात्' निर्माण किया और उन्हें प्रेरणा देता है जो बल नामक असुर से निरुद्ध गायों का आहरण करता है (अथवा जो गायों पृथिवी के परमाणुओं) का मिश्रण—अभिभ्रण करता रहता है । जिसने (अश्मनोः) व्यापक मेघों के अन्तराल में विद्युत् को स्थापित किया है और जो (संबृक् समत्सु) संग्रामों में सला जयशील वीर रहा है, वही इन्द्र है ॥

४-

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमादद्

अर्थः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥४॥

पद-पाठः—येन । इमा । विश्वा । च्यवना । कृतानि । यः । दासम् ।

वर्णम् । अधरम् । गुहा । अकस्ति्यकः । श्वघ्नीव । यः । जिगीवान् । लक्षम् ।

आदत् । अर्यः । पुष्टानि । सः जनासः । इन्द्रः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि) येनेन्द्रेण इमानि विश्वानि भुवनानि च्यवनान्यपि स्थिरी कृतानि । यश्च दासं वर्णम् उपक्षपयितारं गुहायां निगूढे स्थाने नरके वा अकः अकार्षीत् । 'श्वघ्नी इव' श्वभि मृगान् हन्तीति श्वघ्नी व्याधः । यथा श्वघ्नी स्व लक्ष्यभूतं मृगमनायासेनैव गृह्णाति । तथा खल्विन्द्रोऽपि जिघृक्षितं वस्तु सहजतयैव परिह्णाति । यद्वा स्वं हन्तीति श्वघ्नी द्यूतकरः स यथा जिगीवान् विजयते लक्षम् आदत्, द्रव्याणां सहस्राणि आचिनोति, तथेन्द्रोऽपि जयशील द्यूतकर इव जयत्येव । स हि अर्यः पुष्टानि अरेः सम्बन्धीनि सर्वाणि पोषणद्रव्याणि आगृह्णाति । स एवेत्यभूत इन्द्रः ।

टिप्पणी—इमा विश्वा च्यवना=इमानि विश्वानि च्यवनानि कृतानि । दासम्—उपक्षपयितारम् । गुहा—गुहायाम् । अकः=अकार्षीत् करोते लुङि 'मंत्रे घस ह्वर०' इत्यादिना च्ले लुङि । लक्षम्-लक्ष्यम्, धनानां लक्षं च । जिगीवान्—'जि जये' क्वसौ 'सन् लिटोर्जः' इत्यभ्यासादुत्तरस्य कुत्वम् । दीर्घश्छान्दसः । अर्यः—अरेः । षष्ठ्येकवचने छान्दसो यणादेशः । आदत्-आदत्ते ।

हिन्दी व्याख्या—जिस श्रेष्ठ इन्द्र ने (इमा विश्वा च्यवना कृतानि) इस समस्त नश्वर जगत् को स्थिरता प्रदान की है, (यो दासं वर्णम्) जिसने नष्टकर्मी लोगों को (अघरं गुहाकः) निगूढ़ स्थान में (दुःख, दारिद्र्य, दैन्य, नरक आदि स्थानों में) कर दिया है । श्वघ्नी (कुत्तों के सहारे मृग-वध करने वाला बहेलिया) के समान जो कुशल लक्ष्य-वेधक है (अथवा स्वघ्नी=द्रव्य-विनाशी जुआरी के समान जो द्यूत-भूमि से लाखों का धन बटोर लेता है) जो सदा 'जिगीवान्' जयशील व्याध अथवा जुआरी के समान लक्ष्य-घटक अथवा लक्ष-घटक है । (अर्यः पुष्टानि) अरि सम्बन्धित पोषक धन-द्रव्य को बटोरने वाला वही जयशील इन्द्र है ।

५- यं स्मा पृच्छन्ति कुहं सेति घोरम्

उतेमाहु नॅषो अस्तीत्येनम् ।

सो अर्यः पुष्टी विज इवामिनाति

श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः ॥५॥

पद पाठ—यम् । स्म । पृच्छन्ति । कुह । सः । इति । घोरम् । उत् ।

ईम् । आहुः । न । एषः । अस्ति । इति । एनम् । सः । अर्यः । पुष्टीः । विजइव ।

आ । मिनाति । श्रत् । अस्मै । धत्त । सः । जनासः । इन्द्रः ।

संस्कृत-व्याख्या—हे जनाः (यं घोरम्) शत्रूणां घातकं घोरम् इन्द्रं (पृच्छन्ति कुह सः) कुत्र स वर्तते इति पृच्छन्ति । (उत च एनमाहुः नैषोऽस्तीति) दुर्बुद्ध्या खल्वाहुः स इन्द्रः तु नास्त्येव । एवं श्रद्धाविहीनास्य (अर्यः पुष्टीः) अरेः पोषणानि धनानि (विज इव) उद्वेजक इव स इन्द्रः (आ मिनाति) आसमन्ताद् हिनस्ति । हे जनाः (अस्मै) इन्द्राय (श्रद् धत्त) अस्तीति विश्वासं कुरुतः । सः एवं भूत एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—कुह=कुत्र । सेति—सोऽचि लोपे चेट्पादपूरणमिति सोर्लोपे गुणः । ईमिति पूरणः । अर्यः=अरेः । पुष्टीः=पोषकाणि आमिनानि—आ हिनस्ति । 'मीड् हिंसायाम्', 'मीनाते निगमे' इति ह्रस्वः । यद्यपि स न दृश्यतेऽस्या-भिस्तथापि तत्र विश्वासं कुरुतः ।

हिन्दी व्याख्या—(कुह स इति यं स्म घोरं पृच्छन्ति) नास्तिक लोग पूछते फिरते हैं कि वह कहाँ है=वह दुष्ट के प्रति चण्डत्व धारण करने वाला उन्हें दिखायी ही नहीं पड़ता । अतएव (उत ईम् आहुः) उसके सम्बन्ध में प्रलाप करते हैं कि (न एषः अस्तीति) होता तो दिखायी पड़ता, दिखाई नहीं पड़ता अतः वह नहीं है—जो वस्तु प्रत्यक्षगोचर नहीं, उसकी सत्ता भी नहीं । पर ऐसा नहीं है । वह (अर्यः पुष्टीः) शत्रु सम्बन्धी समस्त पोषक पदार्थों को (विज इव) उद्वेजक बनकर उजाड़ (आ मिनाति) देता है । अरे भाइयो ! (श्रद् अस्मै धत्त) इस महान् इन्द्र के प्रति गहन विश्वास करो । बहुत सी वस्तुयें हैं जो नेत्र से नहीं अपितु नेत्रेतर साधनों से ही देखी-परखी (जानी) जाती हैं ।

६- यो रघस्य चोदिता यः कृशस्य

यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरे ।

युक्तप्राणो योऽविता सुशिप्रः

सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः ॥६॥

पद पाद—यः । र॒ध्रस्य । चो॒दिता । यः । कृ॒शस्य । यः । ब्र॒ह्मणः । ना॒ध-

मा॒नस्य । की॒रेः । यु॒क्तग्रा॒व्णः । यः । अ॒विता । सु॒शिरः । सु॒तसो॒मस्य । सः ।

ज॒नासः । इ॒न्द्रः ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—(य इन्द्रः रध्रस्य कृशस्य च चोदिता) यः खलु तेजस्वी इन्द्रः रध्रस्य समृद्धस्य कृशस्य दुर्बलस्य च धनादिदानेन शुभे कर्मणि प्रेरयिता भवति (यश्च नाधमानस्य ब्रह्मणः कीरेः) यश्च नाधमानस्य याचमानस्य विप्रस्य स्तोतुः प्रेरयिता भवति । धनादि प्रदानेन पूरयिता भवति । यश्च (सुशिप्रः) शोभनहनुनासिकः सुशीर्षकः (युक्तग्राव्णः) उद्यतग्राव्णः (सुतसोमस्य) अभिषुतसोमस्य सोमसम्पादिनः पुरुषस्य (अविता) रक्षिता भवति । स एवेन्द्रोऽस्ति नाहुमिति ।

टिप्पणी—रध्रस्य—‘रध्रं हिंसासंराध्योः’ । समृद्धस्य । कृशस्य = दरिद्रस्य । नाधमानस्य—‘नाथृणाधृ याञ्चोपता पेश्वयशिः पु, याचमानस्य । कीरेः—करोतेः कीर्तयते वा । स्तोतुः । ब्रह्मणः = अन्नपरत्वे त्वाद्युदात्तता स्यादतः नात्रान्नपरत्वम् । विशेषेण स्तुत्यादिना पूरयतो ब्राह्मणस्य । सुशिप्रः—शिप्र शब्दो हनुवाची (जबड़ा) नासिकावचनोऽपि । केऽपिशिरोवाचकं वदन्ति ।

(२) मैकुडानल ने ‘सुशिप्र’ का अर्थ ‘सुन्दर अधरवाला’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य) जो इन्द्र धनी तथा निर्धन सभी व्यक्तियों को = चाहे वे दीन हों या दक्ष; शुभ कर्मों में प्रेरित करता ही रहता है (यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः) गुण—कीर्तन करने वाले ब्रह्मवर्चस्वी व्यक्ति की भी याचना को जो पूर्ण करके उन्नत करता रहता है । (युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य सुशिप्रः) जो सुन्दर मुखाकृति वाला है तथा क्रियाशील, तत्पर, सोमसम्पादक पुरुष के लिये जो (अविता) सर्वदा रक्षक रहा है । (स जनास इन्द्रः) वही प्रशंसित इन्द्र है, अन्य कोई नहीं ।

७-

यस्या॒श्वासः॑ प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो-

यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।

यः सूर्यं य उषसं जजान

यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७॥

पद-पाठ—यस्य । अश्वासः । प्रदिशि । यस्य । गावः । यस्य । ग्रामाः ।

यस्य । विश्वे । रथासः । यः । सूर्यम् । यः । उषसम् । जजान । यः । अपाम् ।

नेता । सः । जनासः । इन्द्रः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(यस्य अश्वासः प्रदिशि यस्य गावः) यस्य इन्द्रस्य प्रदिशि प्रदेशनेऽनुशासनेऽनुज्ञायां सर्वेऽश्वाः सन्ति, यस्य गावः, यस्य ग्रामा जनपदाः सन्ति । सर्वे रथा यस्य अन्तर्यामितया वर्तमानस्यानुशासने परिचलन्ति । यः खल्विन्द्रः वृत्रं मेघं तमोरूपमन्धकारं वा हत्वा विनाश्य (सूर्यं जजान) सूर्यं मुषसं च भावयामास । यः खल्वपामानेता भवति स एवेन्द्रः । इति ।

टिप्पणी—अश्वासः—अश्वाः ‘आञ्जसेरसुक्’ । प्रदिशि—प्रदेशनेऽनुशासनेऽनुज्ञायाम् । प्रपूर्वस्य दिश् धातोः क्विप् । जजान—जनी प्रादुर्भावे लिट् । अन्तर्भावितव्यर्थः । नेता—आनेता—मेघभेदन द्वारा जल प्रेरकः ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस अन्तर्यामी इन्द्र के (प्रदिशि) अनुशासन में अश्व, गायें, जनपद, रथ तथा सभी चर-अचर प्राणी विचरण करते हैं, जिस इन्द्र ने वृत्र का वध—विनाश करके (=तम अथवा मेघ का विदारण करके) सूर्य तथा उपा की उद्भावना की है, जो इन्द्र मेघ का भेदन करके जल-राशि का प्रेरक है, वही इन्द्र है, अन्य कोई ऐसा सामर्थ्यवान् नहीं है ।

८—

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते

परेऽवर उभया अमित्राः ।

समानं चिद्रथमातस्थिवांसा

नाना ह्वेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

पद-पाठ—यम् । क्रन्दसी इति । संयती इति सम्पद्यती । विह्वयेते इति

विह्वयेते । परे । अवरे । उभयाः । अमित्राः । समानम् । चित् रथम् । आ ।

तस्थिऽवांसा । नाना । हवेते इति । सः । जनासः । इन्द्रः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(यम् क्रन्दसी संयती विह्वयेते) यमिन्द्रं क्रन्दनशीले संयती संवद्धे द्यावापृथिव्यो विह्वयेते विविधमाह्वानं कुर्वति । उत्तमा अधमा च सेने विविध-माह्वयतः (परे अवरे उभया अमित्राः) उत्कृष्टा अधमाश्च उभयविधाः शत्रवः यं स्वऽक्षार्थमिन्द्रमाह्वयन्ति । (समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा) एकस्मिन्नेव रथे आस्थितौ द्वौ तौ रथारूढौ इन्द्राग्नी वर्तते तौ यज्ञार्थमाहूयमानौ तयोरेकतर एवेन्द्रः । स एव ज्यायान् इन्द्रः, नान्यः । इति ।

टिप्पणी — विह्वयेते—ह्वेञ् धातोः प्रथमपुरुष द्विवचने लटि । क्रन्दसी—क्रन्दनशीले । उभयाः—उभयप्रकाशः शत्रवः । परे अवरे उत्कृष्टा अधमाः । समानमेक-रथमारूढौ अग्नि सारथी रथः स चेन्द्रस्वामिकः । इति पदप्रयोगो द्विवचनताद्योतकः ।

(२) मैकुडानल ने परे-अवरे का अर्थ 'पास के और दूर के' अर्थ किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(क्रन्दसी संयती यं विह्वयेते) क्रन्दनशील और परस्पर सन्नद्ध सेनार्यो जिस इन्द्र का पुकार करती हैं (परे अवरे उभया अमित्राः) उत्कृष्ट तथा निकृष्ट शत्रु जिम इन्द्र को अपनी-अपनी सुरक्षा के लिये आह्वान करते हैं । (समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा) एक ही रथ पर सारथि तथा स्वामी के रूप में अग्नि तथा इन्द्र आरूढ हैं (नाना हवेते) उनकी पृथक्-पृथक् पुकार हो रही है, उन्हीं दोनों में जो अधिक तेजस्वी है, वही इन्द्र है । अन्य नहीं ।

६-

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो

यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।

यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव

यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ॥९॥

पद-पाठ—यस्मात् न । ऋते । विजयन्ते । जनासः । यम् । युध्यमानाः ।

अवसे । हवन्ते । यः । विश्वस्य । प्रतिमानम् । बभूव । यः । अच्युतच्युत् । सः ।

जनासः । इन्द्रः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—यस्मात् ऋते जनासः मनुष्या न विजयन्ते न विजयं प्राप्नुवन्ति । अस्माद् हेतोः युध्यमानाः परस्परं प्रहारं कुर्वाणा अवसे रक्षार्थम् इन्द्र-मेव यं हवन्ते सोत्साहं रक्षस्वेन्द्र इति प्रकारयन्ति । यश्चेन्द्रः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव प्रतिमानभूतोऽस्ति आदर्शरूपतया प्रतीकभूतः । यश्च अच्युतच्युत् अच्युतानामपि च्यावयिता स एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—अच्युतच्युत्—च्युत्पातोः विवप् । अत्रो रक्षणम्, तस्मै अवसे रक्षणाय । हवन्ते—आह्वयन्ति । प्रतिमानम्—प्रतिमा, उपमा, उपमानभूतः । प्रति-निधिरिति सायणः । विश्वस्य य प्रतिमानं प्रतिनिधिः ।

(२) मैकुडानल ने प्रतिमानम् का अर्थ सदृश किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यस्मान् न ऋते) जिस इन्द्र की सहायता के बिना (जनासो न विजयन्ते) मानव अपने शत्रुओं पर विजय नहीं प्राप्त कर सकते । (युध्यमानाः) युद्ध-संघर्ष करते हुए (यं हवन्तेऽवसे) रक्षार्थं जिस इन्द्र का आह्वान करते हैं । (यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव) जो इन्द्र इस समस्त भुवन का एक मात्र प्रकाश—स्तम्भ है (योऽच्युतच्युत्) जो अचल-अविचल दंभियों को भी चलायमान कर देता है, वही परम पुरुषार्थी इन्द्र है, अन्य नहीं ।

१०—

यः शश्वतो मह्यो नो दधानान्

अमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।

यः शर्धते नानुददाति शृङ्घ्यां

यो दस्यो हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥

पद-पाठ—यः । शश्वतः । महि । एनः । दधानान् । अमन्यमानान् । शर्वा ।

जघान । यः । शर्धते । न । अनुददाति । शृध्याम् । यः । दस्योः । हन्ता । सः ।

जनासः । इन्द्रः ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—(यः महि एनः दधानान्) यः खल्विन्द्रो बहूनि एनांसि दधानान् धारयतः शश्वतः बहून् अमन्यमानान् इन्द्रमपूजयतः दुष्टान् शर्वा शरुणा वज्रेण जघान आ हन्ति । यश्चेन्द्रः पापं प्रति शर्धते उत्साहं कुर्वते पुरुषाय शृध्यां नानुददाति नैव प्रोत्साहनीयं बलं प्रयच्छति । यश्चेन्द्रः दस्योः उपक्षपयितुः दुष्टस्य हन्ता घातकः । सोऽस्माकं पूज्यः स एवेन्द्रो नान्य इति ।

टिप्पणी—एनः—पापम् । शश्वतः=बहून् । शर्वा=शृणात्यनेनेति शरुर्वज्रः । तेन शर्वा शरुणा । शरुशब्दात्तृतीयकवचने धिसंज्ञत्वेपि नाभावो न । यणि रूपम् । जघान हन्ते लिटि ।

(२) मैकुडानल ने शर्वा का अर्थ वाण किया है । उनके अनुसार 'शृध्या' का अर्थ उद्दण्डता, शर्धते का अर्थ क्षमा करना है ।

हिन्दी व्याख्या—(महि एनो दधानान् यः) अत्यधिक पाप कर्म को धारण करने वाले (शश्वतः अमन्यमानान्) अगणित अनास्था वाले दूषित लोगों को जिस इन्द्र ने (शर्वा) अपने वज्र से (जघान) विनाश कर दिया है । जो इन्द्र (यः शर्धते शृध्यां नानुददाति) दूषित कर्म के प्रति उत्साह करने वाले साहसी दुष्टों को उत्साहित नहीं होने देता है और (यः) जो (दस्योः हन्ता) कर्म विनाशी लोगों का (हन्ता) घातक है, वही इन्द्र है, अन्य कोई नहीं ।

११-

यः शम्बरं पवतेषु क्षियन्त

चत्वारिंश्यां शरद्यन्व विन्दत् ।

ओजयमानं यो अहिं जघान

दानुम् शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥

पद-पाठः—यः । शम्बरम् । पर्वतेषु । क्षियन्तम् । चत्वारिंश्याम् । शरदि ।

अनुअविन्दत् । ओजायमानम् । यः । अहिम् । जघान । दानुम् । शयानम् । सः ।

जनासः । इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—(यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरम्) यः इन्द्रभिया पर्वतेषु क्षियन्तं निवसन्तं सम्बरं वृत्रं (चत्वारिंश्यां शरदि) चत्वारिंशे सम्बत्सरे (अन्वविन्दत्) अन्विष्य लब्धवान् । यश्च (अहिम्) आहन्तारं (ओजायमानम्) बलप्रदर्शनपरं मेघं (जघान) हतवान् । कीदृशं शम्बरम् ? (दानुम्) दानवन् (शयानम्) निद्रायमाणम् । स एवेन्द्रः ।

टिप्पणी—ओजायमानम्—ओजस् + वेपङ् । 'ओजसोप्सरसो नित्यम्' इति सकारलोपः । शानच् । अहिम्, दानुम्, शम्बरम् एते द्वितीयान्ताः शब्दा मेघपर्यायाः । क्षियन्तम्—'क्षि निवासगत्योः' निवसन्तम् ।

(२) मैक्डानल 'अहि' का अर्थ सर्प करते हैं । सायण हननकारी मेघ करते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(यः पर्वतेषु क्षियतं शम्बरम्) जो इन्द्र पर्वतों में निवास करने वाले शम्बर को (चत्वारिंश्यां शरदि) चालिसवें वर्ष में (अन्वविन्दत्) गवेषित किया । जिसने ओज-प्रदर्शन करने वाले आहननकारी दानव (मेघ) को जलावरोधी (शयानम्) के रूप प्राप्त किया तथा उसका विध्वंस करके जलीय-मार्ग को प्रशस्त किया वही इन्द्र है । अन्य नहीं ।

१२-

यः सप्तरश्मिवृषमस्तुविष्मान्

अवासृजत् सतवे सप्त सिन्धून् ।

यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहु—

धर्मारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

पद-पाठ—त्वाऽदत्तेभिः । रुद्र । शम्स्तमेभिः । शतम् । हिमाः । अशीय ।

भेषजेभिः । वि । अस्मत् । द्वेषः । विऽतरम् । वि । अंहः । वि । अमीवाः ।

चातयस्व । विपूचीः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! (त्वात्तेभिः शतमेभिः भेषजेभिः) त्वया दत्तः अतिशयेन सुखकरैः औषधैः (शतं हिमा अशीय) शतं संवत्सरान् अशीय सेवेमहि । 'अस्मत् द्वेषो वि चातयस्व' येऽस्मान् द्विपन्ति तान् विनाशय । पृथक् कुरु । तथा अंहः पापं वितरम् अत्यन्तं विचातयस्व । विनाशय । (अमीवाः) रोगांश्च सर्वत्र विचातयस्व । विनाशय ।

टिप्पणी—हिमाः = हेमन्तान् । अशीय—व्याप्नुयाम् । विपूचीः—विषु नानाऽञ्चतीः कृत्स्नशरीरव्यापकान् । शन्तमेभिः—शम् + तमप् । द्वेषः—द्विष् + विवप् । चातयस्व—विध्वंसय । चत् + णिच् = चातय + लोट । शन्तमेभिः भेषजेभिः—शन्तमैः, भेषजैः । प्रयोगश्छान्दसः ।

(२) मैकुडान्त ने 'शन्तमेभिः' का अर्थ 'प्रभावपूर्ण लाभकारी' किया है, 'द्वेषः' का अर्थ 'घृणा करने वाले' और 'अंहः' का अर्थ व्यथा किया है = 'सभी ओर से हमारी वेदनायें दूर कीजिये ।'

हिन्दी-व्याख्या—हे रुद्र ! आप द्वारा दिये गये सुखकर औषधियों से हम सौ वर्ष तक दृष्ट-पुष्ट शरीर द्वारा शुभ-कार्य करते रहें । हमारे भीतर से राग-द्वेष का विनाश कीजिये जिससे हमसे कोई द्वेष न करें और परस्पर शान्ति से रहें । हमारे पाप हमसे दूर हों और सभी प्रकार के रोग हमसे दूर हों ।

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि

तवस्तम स्तवसां वज्रवाहो ।

पषि णः पारमंहसः स्वस्ति

विश्वामीती रपसो युयोधि ॥३॥

पद-पाठ—श्रेष्ठः । जातस्य । रुद्र । श्रिया । असि । तवःस्तमः । तवसाम् ।

वज्रबाहो इति वज्रबाहो । पपि । नः । पारम् । अंहसः । स्वस्ति । विश्वाः । अभि-

इतिः । रपसः । युयोधि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! जातस्य समग्रस्य जगतः श्रिया स्वकीयेन महिम्ना त्वमेव श्रेष्ठः प्रशस्यतमोऽसि । त्वमेव हे वज्रबाहो ! (तवसां तवस्तमोऽसि) बलवतां मध्येऽतिशयेन बलवानसि । हे आयुधहस्त ! त्वं नोऽस्मान् अंहसः पारं स्वस्ति पारय । तथा च रपसः पापस्य विश्वा अभीतीः अभिगमनानि युयोधि दूरं गमय ।

टिप्पणी—श्रिया—ऐश्वर्येण । श्रेष्ठः=प्रशस्यतमः । वज्रबाहो=वज्रबाहौ हस्ते यस्य । जातस्य=जनी प्रादुर्भावे क्तः । अभीतीः=अभि+इ+क्तिन् बहुवचने द्वितीयायाम् । युयोधि—योतिः शपः श्लुः । पपि=पारं नय ।

(२) मेक्डानल ने श्रिया का अर्थ 'कीर्ति' तवसाम् का अर्थ बलवानों में रपसः का अर्थ 'दुर्गुण' किये हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(हे रुद्र ! श्रिया जातस्य श्रेष्ठोऽसि) इस समग्र प्रकट संसार में अपनी शोभा और समद्वि के कारण आप ही सबसे अधिक प्रशंसनीय हैं । (हे वज्रबाहो ! तवसां त्वमेव तवस्तम) हे वज्रधारिन् ! शक्तिशालियों में आप ही सर्वोत्तम शक्ति रखते हैं । (अतएव अंहसः पारं नः स्वस्ति पपि) समस्त दुर्गुणों से आप हमें मंगलपूर्वक पृथक् रखिये और (विश्वा अभीतीः) पाप के सभी मार्गों को हमसे दूर कीजिये ।

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभि-

र्मा दुष्टुतो वृषभ मा सहती

उन्नो वीराभर्ष्य भेषजेभि-

भिषक्तं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४॥

पर ऋषि गृत्समद का राजा पृथु ने बहुत सत्कार किया । इन्द्र समझ कर दैत्यों ने ऋषि को मारना चाहा तब ऋषि ने इन्द्र की पहचान बतायी । २-११-५ में श्रुत् शब्द श्रद्धा का वाचक है । लैटिन में 'थ्रेडो' इसी का अपभ्रंश है । Credo : Place you trust on Him. रघ्र शब्द २-१०-६ यहाँ प्रयुक्त है । अन्यत्र भी ऋ० ४-४४-१० तथा १०-३८-५ में आया है । सायण ने इसका प्रथं समृद्ध तथा राथ ने आलसी अर्थ किया है । अरघ्र शब्द के लिये जिन्दा वेस्ता में 'अरेड्रा' का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है—'अकृपण' । अतः रघ्र का अर्थ कृपण भी होता है । सम्पन्न होने पर दानशूर न हो उसे रघ्र कहते हैं । मैक्डानल ने 'कीरि' शब्द का अर्थ 'निर्धन' किया है । युक्त ग्राव्यः=युक्तो ग्रावा यस्य तस्य युक्त ग्राव्यः कार्यं तत्परस्य । सोम सम्पादन के लिये सदा अपने पत्थर को तत्पर रखना=किया कलाप में अपने (ग्रावा) शरीर को सन्नद्ध रखने वाला ।

२-१२-८—समानं चिद्रथम्—एक ही रथ में दो बैठे हैं, एक अग्नि सारथी और दूसरा उसका स्वामी इन्द्र ।

२-१२-१२ मेघों के वर्गीकरण में ऋषियों की सूक्ष्म दृष्टि का पता चलता है । सात प्रकार के पर्जन्य तै० आ० १-६-४५ में भी वर्णित है—ये चेमे शिभि-विद्विषः पर्जन्याः सप्त पृथिवीमभि वर्षन्ति वृष्टिभिः । 'जातं वंशे मुवन विरिस्ते पुष्करावर्त्तकानाम्' में कलिदास भी वर्गीकृत मेघों का वर्णन करते हैं ।

मण्डत-२

रुद्र-सूक्तम्

सूक्त ३३

ऋषि—गृत्समदः । देवता—रुद्रः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१

आ ते॑ पित॑ म॒रुतां॑ सु॒ग्रमे॑त

मा नः॑ सू॒र्यस्य॑ सं॒दृशो॑ यु॒योथाः॑

अ॒भि नो॑ वी॒रो अ॒वति॑ क्षमे॒त

प्र॒जाये॑महि॒ रुद्र॑ प्र॒जाभिः॑ ॥१॥

पद पाठः—आ । ते । पितः । महताम् । सुम्नम् । एतु । मा । नः ।

सूर्यस्य । समऽदृशः । युयोथाः । अभि । नः । वीरः । अर्वति । क्षमेत । प्र । जायेमहि

रुद्र । प्रजाभिः ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—हे मरुतां पितः ! मरुतसंज्ञानां देवानां पितृत्वेन जनयितः । ते त्वदीयं सुम्नं परमसुखमस्मभ्यमेतु प्राप्नोतु । त्वं सूर्यस्य संदृशो लोचनान् मा युयोथाः । पृथङ् मा कार्षीः । अर्वति शत्रून् प्रति नो वीरो ऽस्माकं कम्पयिता शूरोऽभिक्षमेत अभिभवं प्राप्नुयात् । त्वं च महावीरः, अस्मान् अभिक्षमेथाः । क्षमस्व । वयं च प्रजाभिः पुत्रपोत्रैः प्रजायेमहि । उत्कृष्टा भवेम ।

टिप्पणी—ऋग्वेद १-१४४-६ इत्यत्र रुद्रस्य मरुतां पितृत्वं सिद्धम् । सुम्नम्—सुखम्, सुष्ठु म्नायते । युयोथाः—‘यु मिश्रणामिश्रणयोः’ इति लङि मध्यमपुरुषैकवचने । छान्दसः शपः श्लुः । ‘छन्दस्युभयथा’ इति आर्धधातुकत्वेनङित्वाभावाद् गुणः । अर्वा = शत्रुः, तस्मिन् अर्वति (तन्निमित्तान् सन्तपी) प्रजायेमहि—प्रभूताः स्याम । संदृशः—सम् + दृश् + क्विप् ।

(२) मैकुडानलने ‘सुम्नम्’ का अर्थ ‘सुभेच्छा’ और अर्वति का अर्थ अश्व किया है । अर्थात् उनका आशय है ‘वीर रुद्र हमारे अश्वों के प्रति दयावान् रहें ।’

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुद्गण के उत्पादक रुद्र । (आ तू सुम्नमेतु) आपका कल्याणप्रद आनन्द हमें सदा मिलता रहे । (सूर्यस्य संदृशो मा नः युयोथाः) सूर्य के मधुर—दर्शन से आप हमें पृथक् न करें । (अर्वति नो वीरः अभिक्षमेत) हमारे वीर पुरुष शत्रुओं पर सदा विजय प्राप्त करें और आप हमें क्षमा करें (कृतापराधान्नः क्षमस्व) । (प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः) हम सब परमानन्द को प्राप्त करते हुये पुत्र-पोत्रादि से समन्वित रहें ।

२-

त्वा ऽदत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः

शन्तं हिमा अशीय भेषजेभि

व्य १ स्मद द्वषो वितरं व्य हो

व्यमीवा इचातयस्वा विषूचीः ॥२॥

पद-पाठः—यः । सु॒न्वन्तम् । अ॒वति । यः । प॒चन्तम् । यः । शंसन्तम् । यः ।

शश॑मानम् । ऊ॒ती । यस्य । ब्र॒ह्म । वर्ध॑नम् । यस्य । सोमः । यस्य । इ॒दम् । रा॒धः ।

सः । जना॑सः । इन्द्रः ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—(यः सु॒न्वन्तम् अ॒वति) इन्द्रो यः सु॒न्वन्तं सोमा॑भिषवं सम्पादयन्तम् अ॒वति र॒क्षति (यः प॒चन्तम्) यश्चेन्द्रः प॒चन्तं पुरोडा॑शादीनि इन्द्रमु॒च्छिष्य प॒चन्तम् अ॒वति र॒क्षति । (यः शंसन्तम् यः शश॑मानम्) यः मन्त्रान् उच्चारयन्तम् अ॒वति । (यस्य ब्र॒ह्म वर्ध॑नम्) यस्येन्द्रस्य ब्रह्म स्तोत्रं वृद्धि॑करं भवति (यस्य सोमः) यस्य चेन्द्रस्य सोमः समृद्धि॑हेतु भवति (यस्येदं रा॒धः) यन्निमित्तं स्वीकृतयस्माभी रा॒धः ह॒विः अन्नं च वृद्धि॑करं भवति स एवायमिन्द्रः, नान्यः इति ।

टिप्पणी—ऊ॒ती = ऊ॒तये 'सुपां सु॒लुगि॑ति' ६-१-३६ चतुर्थ्याः पूर्वसवर्णं दीर्घ-त्वम् । र॒क्षायै ।

(२) मँकडानल ने—शशमान का अर्थ 'जिसने यज्ञ को सम्पन्न किया है' ।

हिन्दी व्याख्या—(यः सु॒न्वन्तम् अ॒वति) जो इन्द्र सोम का अभिषव (सम्पादन) करने वाले की रक्षा करता है (यः प॒चन्तम्) इन्द्र को लक्ष्य करके पुरोडाश आदि पकाने वाले की जो रक्षा करता है । (ऊ॒ती यः शंसन्तम्) अपनी रक्षा के लिए स्तोत्र-पाठ करने वाले की जो रक्षा करता है (यः शश॑मानम्) (इन्द्र के लिए) सर्वदा सचेष्ट रहने वाले की जो रक्षा करता है । जिस (यस्य ब्र॒ह्म वर्ध॑नम्) इन्द्र के निमित्त किया गया स्तोत्र अत्यन्त सम्पन्नता ला देता है (यस्यः सोमः) जिसका सोम-रस भी अत्यन्त पावन और वृद्धिकारी है, (यस्य इदं रा॒धः) जिसकी ऋद्धि-सिद्धि भी अत्यन्त गुणकारी और शान्तिदायिनी है, वही इन्द्र है—अन्य नहीं ।

यः सु॒न्वते प॒चते दु॒ध आ चि॒द्

वाजं द॒र्द॑षि स किला॑सि स॒त्यः ।

व॒र्यं ते॑ इन्द्र विश्व॑ह प्रि॒यासः

सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॑मा वदे॑म ॥१५॥

पद-पाठ—यः । सुन्वते । पचते । दुध्रः । आ । चित् । वाजम् ! दर्दपि ।

स । किल । असि । सत्यः । वयम् । ते । इन्द्र । विश्वह । प्रियासः । सुवीरासः ।

विदथम् । आ । वदेम ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीमुपसंहरन्ताह—हे इन्द्र ! यस्त्वं दुध्रः सन् दुध्ररः सन् सुन्वते पचते यजमानाय सोमाभिषवं कुर्वते हवींषि वा पचते वाजम् अन्नं बलं वा दर्दपि सुखेनात्यन्तं ददासि प्रापयसि (स किलासि सत्यः) स एवंभूतस्त्वं सत्यः यथार्थ-भूतो देवोऽसि । त्वदीययैव सत्तया 'वयं स्मः' इति व्यवहारो घटते नान्यथा । वयमयि (विश्वह) सर्वेषु अहः सु दिनेषु तव (प्रियासः) प्रियाचरणे रताः (सुवीरासः) कल्याणपुत्रपौत्राः (विदथम् आ वदेम) स्तुतीनां समूहं स्तोत्रम् आ वदेम । प्रब्रूयाम ।

टिप्पणी—दुध्रः—दुर् पूर्वकस्य धृधातोः कप्रत्ययः । उपसर्गगतरेफलोपः छान्दसः । विश्वह—विश्वेषु अहः सु—अहोऽकारलोपश्छान्दसः सुन्वते—पचते= उभयत्र चतुर्थी । वाजम्=अन्नं बलं वा ।

(२) मँकडानल ने 'दुध्र' का अर्थ भयावह किया है । वाजम् का अर्थ 'लूटा हुआ धन' । आरदर्दपि का अर्थ 'देवों के लिए हठपूर्वक देता है' ऐसा किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यः सुन्वते पचते दुध्र आ चित्) अब इन्द्र को साक्षात् करके ऋषि गृत्समद कहते हैं—हे इन्द्र ! जो आप सोम-सम्पादन करने वाले अथवा पुरोडाश आदि पकाने वाले की रक्षा करते हैं तथा उन्हें (वाजं दर्दपि) सभी प्रकार से अन्न-धन-बल-वैभव आदि से पूर्ण करके सुख-सम्पन्न करते हैं (स किलासि सत्यः) यही आपका वास्तविक यथार्थ स्वरूप है (वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः) हे इन्द्र ! आप ऐसी कृपा-दृष्टि बनाये रखें जिससे कि हम सर्वदा आपके प्रिय बने रहें और (सुवीरासः) सुन्दर पुत्र-पौत्रों से युक्त होकर (विदथम्) स्तुति समूहों से गुणानुवाद (आ वदेम) करते रहें ।

अष्टमूर्ति— सूर्यो जलं महो वह्निं वायुराकाशमेव च ।

दोक्षितो ब्र ह्यणः सोम इत्येतास्तनवः स्मृताः ॥

—विष्णु पुराण ।

पुरुष उग्र—२-३३-६

प्रयाणे मृगस्यामनोज्ञवाचः श्रुत्वा 'स्तुहि०' इत्येतां जपेत् । २-३३-११

बृहद्देवता के अनुसार ऐश्वर्य सम्पन्न एक ऋषि को मारने के लिए धुनि और चुमुरि दैत्य आये । ऋषि ने उन्हें इन्द्र की पहचान बतायी (२-१२) महाभारत के अनुसार पृथु राजा (वैन्य) के यज्ञ से गृत्समद का रूप धारण करके इन्द्र के चले जाने

पद पाठः—यः सप्त॑र॒श्मिः । वृ॒षभः । तुवि॑ष्मान् । अव॒सृज॑त् । स॒र्त॒वे ।

सप्त । सि॒न्धून् । यः । रौहि॑णम् । अस्फु॑रत् । वज्र॑बाहुः । द्याम् । आ॒रोह॑न्तम् ।

सः । जना॑सः । इन्द्रः ।

संस्कृत व्याख्या—(या सप्तरश्मिः) सप्त सरणशीलाः पर्जन्या रश्मयो यस्यासी (वृषभः) वर्षिता (तुविष्मान्) बलवान् (सर्तवे) सरणाय (सप्त सिन्धून्) सर्पण-स्वभावान् सिन्धून् नदीः (अवासृजत्) अवसृष्टवान् । यश्च द्यामारोहन्तं रौहिणम् असुरं=मेघं वज्रबाहुः वज्रसदृशबाहुः अस्फुरत् जघान । स एवेन्द्रः, नान्यः ।

टिप्पणी—सप्तरश्मिः—सप्तसंख्याका रश्मयः—वराहवः, स्वतपसः, विद्युन्म-हसः, धूपयः, स्वापयः, गृहमेधाः, अशिमि विद्विषश्चेति । तै० आ० १.६.४-५ । ऋषीणां सूक्ष्म-दर्शनम् । वृषभः—वर्षकः । तुविष्मान् वृद्धिमान्, बलवान् वा । सर्तवे =सरणाय । अस्फुरत्=जघान; 'स्फुर स्फुरणे' ।

(२) मैक्डानल ने सप्तरश्मि का अर्थ 'सात लगाम वाला' किया है । इसी प्रकार वृषभ का अर्थ बैल, सप्त का अर्थ सात और सिन्धून् का अर्थ नदी किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(यः सप्तरश्मिः वृषभः तविष्मान्) जो इन्द्र सात रश्मियों से युक्त, वर्षा करने वाला तथा महान् शक्तिशाली है (अवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्) जो सरणशील नदियों जलावरोध का निराकरण करके उन्हें अग्रसारित करता है (यो रौहिणम् अस्फुरद् वज्रबाहुः द्यामारोहन्तम्) तथा जो आकाश में व्याप्त रक्तिम वर्ण मेघ का विनाश करके गगन के प्रकाश को स्वच्छ-प्रशान्त करता है, जिस इन्द्र के यशस्वी हस्त में सदा वज्र सुशोभित रहता है । वही वज्रधारी, सर्वशक्ति सम्पन्न इन्द्र है, अन्य नहीं ।

द्या॒वा चि॒दस्मै॑ पृ॒थि॒वी नमो॑ते

शु॒ष्माच्चि॒दस्य॑ पर्व॒ता भय॑न्ते ।

यः सोम॑पा नि॒चितो॑ वज्र॒बाहुः—

यो वज्र॑हस्तः स जना॑स इन्द्रः ॥१३॥

पद-पाठः— द्यावा । चित् । अस्मै । पृथिवी इति । नमेते इति । शुष्मात् ।

चित् । अस्य । पर्वताः । भयन्ते । यः । सोमस्याः । निश्चितः । वज्रस्याहुः । यः ।

वज्रहस्तः । स । जनास । इन्द्रः ।

संस्कृत-व्याख्या—(अस्मै द्यावा चित् पृथिवी नमेते) अस्मैन्द्रस्य शुभाति तेजांसि कर्माणि च दृष्ट्वा द्यावापृथिव्यौ नमेते नम्रीभवतः । (अस्य चित् शुष्मात्) अस्य च महाप्रतापात् (पर्वताः) पर्वताः खल्वपि (भयन्ते) त्रस्ता भवन्ति । निरन्तरं सोमपानेन प्रसिद्धत्वात् यः (सोमपाः) सोमपा इति यशसा संवृतः । यः (निश्चितः वज्रवाहुः) सर्वथा दृढशरीरावयवः, वज्रसदृशवाहुश्च । (यो वज्रहस्तः) यश्च स्वकीये वज्रसदृशहस्ते सदैव वज्रं बिभर्ति, तथाविधः स इन्द्रः स्मरत हे जनाः ।

टिप्पणी—नमेते—प्रह्वीभवतः । 'णमु प्रह्वत्वे' कर्मकर्तरि 'न दुहस्तुनयां यकचिणौ' इति यकः प्रतिषेधः । शुष्मात्—बलात् । शुष्मं बलं भवति शोषयतीति सतः । भयन्ते—विभ्यति । निश्चितः—दृढाङ्गः । वज्रवाहुः—वज्रसदृशवाहुः । वज्रहस्तः—वज्रो हस्ते यस्य सः ।

(२) मैकडानल ने निश्चित का अर्थ 'जाना गया' तथा वज्रबाहु एवं वज्रहस्त दोनों शब्दों का एक ही अर्थ किया है—वज्रधारी ।

हिन्दी व्याख्या—जिस इन्द्र के लिए द्युलोक तथा पृथिवीलोक स्वयं ही आनत होकर झुक जाते हैं, जिस इन्द्र के भय से पर्वत भी संव्रस्त हो उठते हैं । जो निरन्तर सोमपान करते रहने से 'सोमपा' नाम से प्रसिद्ध है, जिसके शरीर के प्रत्येक अवयव दृढ़ और पुष्ट हैं, जिसके वज्र सदृश हस्त से वज्र का कभी वियोग नहीं होता, वही शक्तिशाली इन्द्र है, अन्य किसी में साहस नहीं कि ऐसा प्रताप दिखा सके ।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं

यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।

यस्य ब्रह्मवर्धनं यस्य सोमो

यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥

१०—

अ॒ह॒न् वि॒भ॒र्षि सा॒य॒का॒नि ध॒न्वाऽ—

ह॒न्नि॒ष्कं य॒ज॒तं वि॒श्व॒रूप॑म् ।

अ॒ह॒न्नि॒दं द॒य॒से वि॒श्व॒स॒म्भ्वं

न वा ओ॒जी॒यो रु॒द्र त्व॑द॒स्ति ॥१०॥

पद-पाठ—अ॒ह॒न् । वि॒भ॒र्षि । सा॒य॒का॒नि । ध॒न्व । अ॒ह॒न् । नि॒ष्कम् ।

य॒ज॒तम् । वि॒श्व॒रूप॑म् । अ॒ह॒न् । इ॒दम् । द॒य॒से । वि॒श्व॒म् । अ॒भ्वम् । न । वै ।

ओ॒जी॒यः । रु॒द्र । त्व॒त् । अ॒स्ति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे रुद्र ! त्वम् (अहंन् सायकानि धन्व विभर्षि) समर्थ एव भवन् वाणान् धनुश्च विभर्षि धारयसि । (अहंन् यजतं विश्वरूपं निष्कं विभर्षि) अहंन्नेव सन् योग्य एव भवन् इदं पूजनीयं विश्वरूपं कण्ठहारं धारयसि । (इदं विश्वम् अभ्वम् अहंन्नेव दयसे) त्वं पूज्य एव सन् इदं तु अति विस्तीर्णं जगत् दयसे दयया पालयसि (न वा त्वत्) नैव त्वद् भिन्नं किञ्चिद् अन्यत् ओजीयः ओजस्वितरं बलवत्तरं वा विद्यते । त्वमेव सर्वेषामतिशय प्रवृद्धः ।

टिप्पणी—निष्कः—कण्ठहारः । अभ्वम्—महत् । दयसे=रक्षसि, देङ् रक्षणे । ओजीयः—ओजः शब्दात् मत्वर्थीयो वितिः । ततः आतिशायने इष्ठन् । विन्मतो लुक् । टेरिति टिलोपः । अहंन् = अहं + शतृ । यजतम् = यज + अतच् ।

(२) मैक्डानल ने 'अभ्वम्' का अर्थ 'बल' किया है तथा 'दायसे' का अर्थ 'प्रयोग में लाते हो ।' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(सायकानि धन्व । अहंन् विभर्षि) हे रुद्र ! आप सर्वथा ही समर्थ रहते हुए परम धनुर्धर रूप में एक महान् सेनानी का रूप धारण करते हुए धनुर्वाण ग्रहण करते हैं (अहंन् निष्कं यजतं विश्वरूपम्) तथा महान् अनुभाव रखते हुए इस चन्द्र-तारक मण्डित मणिमय कण्ठहार को परम पूजनीय रूप में धारण करते हैं । (इदं विश्वम् अभ्वम् अहंन् दयसे) इस विशाल विश्व-वृक्ष की उत्कृष्ट सामर्थ्य के साथ

आप ही रक्षा करते हैं। (न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति) आप से भिन्न किसी में यह सामर्थ्य नहीं है कि इतना विशाल व्यापक सामर्थ्य का प्रदर्शन कर सके।

११—

स्तुहि श्रुतं गतंसदं युवानं

मृगं न भीममुपहन्तु मृगम् ।

मृडा जरित्रे रुद्र स्तवानो

अन्यं ते अस्मन्निवपन्तु सेनाः ॥११॥

पद-पाठ—स्तुहि । श्रुतम् गतंसदम् । युवानम् । मृगम् । न भीमम्

उपहन्तुम् । मृगम् । मृडा । जरित्रे । रुद्र । स्तवानः । अन्यम् । ते । अस्मत् । नि ।

वपुन्तु । सेनाः ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—(स्तुहि श्रुतम्) हे स्तुति—सम्पादक ! तं श्रुतं विश्रुतं प्रख्यातं रुद्रं कुशलाभिर्वाग्भिः स्तुहि । कीदृशं रुद्र ? (गतंसदं युवानम्) रमणीये स्पन्दने शोभमान् नित्यतरुणम् (मृगं न भीमम्) । सिंह इव संधृतपराक्रममतिभयङ्करम् (उपहन्तुम् मृगम्) उपहन्तारम् अतीव चण्डम् । हे रुद्र ! (स्तवानः) अस्माभिः स्तूयमानः सन् (जरित्रे) स्तोत्रे मह्यं मृडा । सुख्य । (ते सेनाः) त्वदीयाः नेश्वराः सेनाः (अस्मत्) अस्मद् भिन्नं व्यतिरिक्तं दुष्टं पुरुषं प्रति (निवपन्तु) निष्पतन्तु ।

टिप्पणी—गतं:—रथः । मृगः—मार्गणशीलः सिंहादिः । जरित्रे—जू + तृच् (इट्) जरितृ चतुर्थ्यकवचने । स्तवानः—स्तु + शानच् ।

(२) मैक्डानल ने 'मृगं न भीमम् उपहन्तुम्' का अर्थ किया है—भयंकर सिंह के समान घातक । इसी प्रकार सेना शब्द का अर्थ गुडिका (गोली) = हनन समर्थ गोली किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मधुर—स्तुतियों के सम्पादक ! (श्रुतं स्तुहि) उस प्रख्यात रुद्र की वन्दना कर जोकि (गतंसदं युवानम्) नित्य तरुण तथा सुन्दर रथ पर शोभायमान है । (मृगं न भीमम्) जो सिंह के सदृश भयंकर (उपहन्तुम् मृगम्) हननशील तथा दुष्ट के प्रति अत्यन्त कोपकारी है । हे रुद्र ! (जरित्रे मृडा) स्तुति-

पद-पाठ—प्र । व॒भ्रवे । वृ॒षभा॒य । शि॒वती॒चे । म॒हः । म॒हीम् । सु॒ष्टु॒तिम् ।

ई॒रया॒मि । न॒मस्य॑ । क॒ल्मली॑किनम् । न॒मः॑ऽभिः । गृ॒णीम॑सि । त्वे॒षम् । रु॒द्रस्य॑ ।

नाम॑ ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(व॒भ्रवे वृ॒षभा॒य शि॒वती॒चे) जगतो भर्त्रे कामानां वर्षित्रे शुभ्रसात्त्विकवर्णाय (महो महीम् सुष्टुतिम्) महतो महीयसीं शोभनां स्तुतिमहं (प्र ईरयामि) प्रकर्षेण ईरयामि । हे स्रोतः ! (तं कल्मलीकिनं रुद्रं नमोभिः नमस्य) तं तेजसा ज्वलन्तं रुद्रं त्वं हविर्भिर्नमस्कारैश्च नमस्य पूजय । वयमपि (रुद्रस्य त्वेषं नाम) त्वेषं दीप्तं नाम गृणीमसि कीर्तयामः ।

टिप्पणी—शिवतीचे—‘शिवता वर्णे’ इन् प्रत्ययः, शिवतिमञ्चतीत्यञ्चते—ऋ त्विगित्यादिना विवन् । चतुर्थ्येकवचने । व॒भ्रवे—व॒भ्रुवर्णा॒य, विश्वस्य भर्त्रे वा । वृषभा॒य = वर्षणशीलाय । महो महीम् = महतोऽपि महतीम् । सुष्टुतिम् = सु + स्तुतिम् = शोभनां स्तुतिम् । कल्मलीकिनम् = निर्ध० १-१७ ज्वलतो नामधेयम् । ज्वलन्तम् कलयत्यपगमयति मलमिति कल्मलीकं तेजः, तद्वन्तम् । त्वेषम् = दीप्तम् । गृणीमसि = गृणीमः—संकीर्तयामः ‘गृ शब्दे’ क्रेयादिकः । ‘इन्द्रन्तो मसिः’, प्वादीनां ह्रस्वः ।

(२) मैक्डानल ने—‘महो महीम्’ का अर्थ किया है ‘महान् रुद्र की महती स्तुति ।’ इसी प्रकार ‘त्वेषम्’ अर्थ भयावह किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जगत् के भरण-पोषण करने वाले (व॒भ्रवे वृ॒षभा॒य) और कामनाओं की पूर्ति तथा तृप्ति करने वाले सुन्दर सात्त्विक वर्ण (शि॒वती॒चे) वाले महान् रुद्र के लिए मैं (महो महीम् सुष्टुतिम् ईरयामि) उत्तम से उत्तम स्तुतियों द्वारा आत्म-प्रेरणा दे रहा हूँ । हे स्तुति करने वाले स्रोतः ! तुम दोष निवारक महान् तेजस्वी रुद्र की हविष्य आदि से पूजा कर । हम सभी (रुद्रस्य त्वेषं नाम गृणीमसि) भगवान् रुद्र के दीप्त नाम का संकीर्तन करते हैं ।

६—

स्थि॒रेभि॒रङ्गैः पु॒रुष॑ उ॒ग्रो

व॒भ्रुः शु॒क्रेभिः पि॒पिशे॑ हिरण्यैः ।

ई॒शाना॑दस्य भुवनस्य भूरे—

न वा उ योषद्द्रादसुर्यम् ॥६॥

पद-पाठ—स्थिरेभिः । अङ्गैः । पुरुरूपः । उग्रः । वभ्रुः । शुक्रेभिः ।

पिपिशे । हिरण्यैः । ईशानात् । अस्य । भुवनस्य । भूरेः । न । वे । ऊँ इति ।
योषत् । रुद्रात् । असुर्यम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(पुरुरूपः) अष्टमूर्त्यात्मकः बहुरूपः स रुद्रः (हिरण्यैः पिपिशे) स्वर्णालङ्कारैः दीप्यते । हितरमणीयं वा शरीरैः सुन्दरतयाऽभिव्यज्यते । अलङ्काराश्चास्य शक्राः शुचिकराः, तैः शुद्धैरलङ्कारैरसौ दीप्यते । (उग्रः वभ्रुः) स च उग्रस्तेजस्वी जगतो भर्ता स्थिरैः दृढैः शरीरावयवैः (स्थिरेभिः अङ्गैः) नितरां शोभते । (अस्य भुवनस्य भूरेः) अस्य जगतः भर्तुः (ईशानात्) ऐश्वर्य-शालिनः सकाशात् (असुर्यम्) बलम् (न वा उ योषत्) नैव कदापि पृथक् भवति । स सर्वज्ञः सर्वदेव सर्वशक्तिमान् ।

टिप्पणी—पुरुरूपः—अष्टमूर्त्यात्मकः—पृथिवी—जलम्—अग्निः—वायुः । आकाशम् । चन्द्रः—सूर्यः—यजमानश्च । असुरः—असेरुरन् । असुरः क्षेप्ता, तत्र साधुः । असुर्यं बलम् । योषत्—यौते लोट् । अडागमः । 'सिब्वहुलं लेटि' इति सिप् । पिपिशे—पिश—लिट् ।

(२) मैक्डानल ने 'भूरेः' का अर्थ 'महान्' किया है । इसे भुवन का विशेषण मानते हैं । असुर्यम् का अर्थ वे 'दिव्य साम्राज्य' करते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—अष्टमूर्ति रूप में विद्यमान् रुद्र अपने (स्थिरेभिः अङ्गैः) दृढ़ शरीरावयवों से (उग्रः) अतीव शक्तिशाली है । (वभ्रुः शुक्रेभिः हिरण्यैः पिपिशे) जगत् के भर्ता स्वामी स्वर्णिम आभूषणों से (= हित रमणीय कान्ति से) जगमगा रहे हैं । (अस्य भुवनस्य भूरेः ईशानात्) इस ऐश्वर्य सम्पन्न जगत् के स्वामी से (असुर्यम्) शारीरिक बल तथा मानसिक तेज (न वा उ योषत्) कभी भी पृथक् नहीं हो सकता । वे सदा ही सर्वज्ञ हैं और सदा ही सर्व शक्तिसम्पन्न हैं ।

घृणीव॑ च्छायामरपा॑ अशीया॑

विवासेमं॑ रुद्रस्य॑ सुम्नम् ॥६॥

पद-पाठ—उत् । मा । ममन्द । वृषभः । मरुत्वान् । त्वक्षीयसा । वयसा ।

नाधमानम् । घृणि॑ऽइव । छा॒याम् । अरपाः । अशी॒य । आ । वि॒वासे॒यम् । रु॒द्रस्य॑ ।
सु॒म्नम् ।

संस्कृत-व्याख्या—(त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम्) त्वक्षीयसा दीप्तेन वयसाऽऽयुषाऽन्तेन हविषा वा नाधमानं याचमानं मां (मरुत्वान्) मरुद्भिः युक्तो (वृषभः) कामानां वर्षिता (उन्ममन्द) उत्कर्षेण हर्षयतु सुखयतु । (घृणीव छायां) यथा सूर्यधर्मसन्तप्तः पुरुषः शान्तिदायिनीं छायामाश्रयति तथाऽहमहि (अरपाः) निष्पापः सन् (रुद्रस्य सुम्नम् अशीय) शोभनं मनः प्राप्नुयाम् । एतदर्थं च तमाविवासेयम्, परिचरेयम् ।

टिप्पणी—त्वक्षीयसा—त्वक्ष + ईयसुन् । तृतीया ।

(२) मंक्डानल ने 'त्वक्षीयसा' का अर्थ शक्तिसम्पन्न, अरपाः=अक्षत, वयसा=बल और सुम्न का अर्थ शुभेच्छा किया है । सुम्नम्=सुन्दरं मनः ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्वक्षीयसा वयसा नाधमानं माम्) दीप्त आयुष्य एवम् अन्नादि हविष्य के साथ याचना करने वाले मुझ भक्त को (वृषभो मरुत्वान्) मरुद्गण रूप पुत्र श्री से समन्वित, आनन्द की वर्षा करने वाले रुद्र भगवान् (उत् ममन्द) उत्कर्ष के साथ आनन्दित करें । (अरपाः घृणीवच्छायाम् अशीय) मैं निष्पाप होकर भगवन् रुद्र की कृपा का पात्र बनूँ । जिस प्रकार कि सूर्य सन्तप्त व्यक्ति छाया का आश्रय लेता है, उसी प्रकार मुझे रुद्र का सहारा मिले । रुद्र के पवित्र संकेत मुझे मिलते रहें और मैं सदा उनकी परिचर्या में (विवासेयम्) लगा रहूँ ।

७—

क्व॑स्य॒ ते रु॒द्र मृ॒डयाकु॑ हंस्तो—

यो अस्ति॑ भेष॒जो जला॑षः ।

अपभर्ता रपसो दैव्यस्या—

भो नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥

पद-पाठ—क्व । स्यः ते । रुद्र । मृडयाकुः । हस्तः । यः । अस्ति । भैषजः ।

जलाषः । अपभर्ता । रपसः । दैव्यस्य । अभि । नु । मा । वृषभ । चक्षमीथाः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(हे रुद्र ! स्य ते मृडयाकुः हस्तः क्व ?) हे स्वामिन् भवतः स मुखकरो हस्तः क्व वर्तते ? (यो अस्ति भैषजः जलाषः) यो हस्तोऽस्माकं कृते जलाषः सुखस्पर्शः भैषज्यकृच्चास्ति । पश्च हस्तः (दैव्यस्य रपसः अपभर्ता) देवकृतस्य पापस्य अपहर्ता भवति । (अभि नु मा वृषभ चक्षमीथाः) हे कामानां धर्षितः । कृतमनोनिग्रहं मां नु कृपया अभिक्षमस्व ।

टिप्पणी—अभिक्षक्षमीथाः—‘क्षभूषसहने’ लङि शपः श्लुः छान्दसः । बहुलं छन्दसीतीडागमः । स्यः—‘त्यद्’ अस्य पुल्लिङ्गे प्रथमैकवचने अपभर्ता—अप + भृ + वृच् ।

(२) मैक्डानल ने मृडयाकु का अर्थ ‘दयालु’ और जलाषः का अर्थ शीतलता प्रदान करने वाला किया है तथा ‘रपसः’ का अर्थ क्षत-विक्षत किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(क्व स्य ते रुद्र मृडयाकुः हस्तः) हे दुःखहर्ता रुद्र ! आपका यह आनन्दवर्धक हस्त कहाँ है जो कि अत्यन्त (मृडयाकुः) सुखदायक, (भैषजः, जलाषः) रोगहारी रसायन और शान्तिदायक सुधा है । जो कि (दैव्यस्य रपसः) देवसम्बन्धित समस्त पापों का (इन्द्रियः—दुःखों का) (अपभर्ता) अपहरण करने वाला है । हे (वृषभ) आनन्द की वर्षा करने वाले स्वामिन् ! (अभि नु मा चक्षमीथाः) हमें सर्वथा क्षमा करते ही रहना ।

८—

प्र बभ्रवे वृषभाय शिवतीचे

महो महीं सुदुतिमीरयाभि ।

नमस्या कल्मलोकितं नमोभि

गृणीमसि त्वेष रुद्रस्य नाम ॥८॥

पद-पाठ=मा । त्वा । रुद्र । चुक्रुधाम । नमः ऽभिः । मा । दुःस्तुती । वृषभ ।

मा । सहृती । उत् । नः । वीरान् । अर्पय । भेषजेभिः । भिषक्त्तमम् । त्वा ।

भिषजाम् । शृणोमि ॥४॥

संस्कृत व्याख्या—हे रुद्र ! त्वां नमोभिः नमस्कारैः पूजाभिः मा चुक्रुधाम न कोपयेम । हे वृषभ ! वर्षणशील ! दुष्टदुती दुःखदया स्तुत्या मा चक्रुधाम न क्रोधयाम । तथा सहृती सहाह्वानेन असदृशैः देवैः सहामंत्रणेन मा क्रोधयाम । त्वं सर्वेषां प्राण-भूतोऽसि, अतः नोऽस्माकं वीरान् पुत्रादीन् भेषजेभिः भेषजैः उत्कृष्टं प्रापय । हे रुद्र ! भिषजां मध्ये त्वां भिषक्तमं शृणोमि । त्वमेव श्रेष्ठो भिषगिति विश्वसिमि ।

टिप्पणी—दुष्टदुती - दुष् + स्तुति, 'सुपां सुलुगिति' दीर्घः । चुक्रुधाम क्रुध-कोपे अस्मान्मन्यन्ताल् लुङि चङि । यजुर्वेदे १६-५ इत्यत्र 'प्रथमो दैव्यो भिषक्' इत्युक्त्वा रुद्रस्य भिषगरूपता वर्णिता । भेषजम् = विभेत्यस्मादिति भेषो रोगः, तं जय-नीति भेषजम् । अशिष्टतया कृतो नमस्कारोऽपि सर्वथोद्वेजकः । अनुरूपैः शब्दैरपि कृता स्तुतिर्न शर्मदा । निम्नैः सहाह्वानमपि नोचितम् । श्रेष्ठो हि स्वस्मान्नयूनैः सहाह्वानेन कुपितो भवति । सहृती = सहृत्या सहाह्वानेन ।

(२) मैकुडानल ने (वृषभ) का अर्थ बेल किया है, जो उचित नहीं है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे रुद्र ! (नमोभिः मा त्वा चुक्रुधाम) अशिष्ट नमस्कार के द्वारा हम आपको कुपित न करें । 'मा दुष्टदुती' अननुकूल शब्दों द्वारा स्तुति करके हम आपको क्रुद्ध न करें और (सहृती) सादृश्यहीन देवों के साथ आह्वान करके भी हम आपको क्षुब्ध न करें । अपनी सुदूर-मधुर ओषधियों के द्वारा आप (वीरान् इत् नय) हमारे वीर पुरुषों को उत्कृष्टता दिलाइये । (भिषक्तमं त्वां भिषजां शृणोमि) चिकित्सकों में आप ही श्रेष्ठ भिषक् हैं, इस प्रसिद्धि को मैं भी श्रवण करता हूँ ।

हवीमभि हंवते यो हर्विभि—

रव स्तौर्मन्त्र रुद्रं दिषीय ।

ऋद्वदरः सुहवो मा नो अस्ये

बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥

पद-पाठ—हवीमऽभिः । हवते । यः । हविऽभिः । अव । स्तोमेभिः ।

रुद्रम् । दिषीय । ऋदूदरः । सुहवः । मा । नः । अस्यै । बभ्रुः । सुशिश्रः ।

रीरधत् । मनार्यै ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(हवीमभिः यो हवते) यो रुद्रः हवीमभिः स्तुतिलक्षणैः आह्वानैः सदा हवते आहूयते स्तूयते । (यो हविभिः) यश्च हविषा चरुणा पुरोडाशादिना च स्तूयते । अहमपि (स्तोमेभिः) स्तुति समूहै स्तं रुद्रम् (अवदिषीय) अवखण्डयामि अनुकूलयन् शान्तं करोमि । तत् करोमि येनासौ कोपं त्यजति, प्रीत्या च करुणायते । यतो हि स (ऋदूदरः) मृदूदरः सरलस्वभावः, (सुहवः) शोभनाह्वानः (बभ्रुः) सकलस्य भर्ता (सुशिश्रः) शोभनहनुनासिकः । (स रुद्रः मा नोऽस्यै मनार्यै रीरधत्) हन्मीति बुद्धिर्मना, तस्यै मनार्यै सरोषायै मा रीरधत् मा वशं कार्षीत् ।

टिप्पणी—हवते=हूयते व्यत्ययेन कर्मणि कर्तृप्रत्ययः । बहुलं इन्द्रसीति हूयतेः सम्प्रसारणम् । दिषीय—‘दो अवखण्डने’ लिङ् । बहुलं छन्दसी मीत्वम् । रीरधत्—‘रध् हिंसासंराद्धयोः’ ण्यन्ता ल्लुङि । चङि । ऋदूदरः=मृदूदरः । सुशिश्रः—शिश्रम्—हनु नासिका वा । सुन्दरहनुनासिकः ।

(२) मैक्डानल ने—ऋदूदर का अर्थ दयालु, सुशिश्रः का अर्थ सुन्दर अधर वाला किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(हवीमभिः यो हवते) स्तुति और आह्वानों के द्वारा सदा ही रुद्र स्तुत्य रहे हैं । (यो हविभिः) हविष्यन्न आदि से सदा ही रुद्र की परिचर्या होती है । (अव स्तोमेभिः रुद्रं दिषीय) मैं अपनी मंगलमय स्तुतियों के द्वारा रुद्र को शान्त और प्रसन्न करता हूँ । मैं मन-वचन तथा कर्म से ऐसा आचरण करता हूँ कि रुद्र शान्त और प्रसन्न हों । रुद्र बहुत ही (ऋदूदर) कोमल स्वभाव के हैं । (सुहवः) सरलता से पुकारे जाने योग्य हैं और (बभ्रुः) जगत् के भर्ता तथा (सुशिश्रः) सुन्दर नख-शिख वाले हैं । वे (अस्यै मनार्यै) हनन-बुद्धि से युक्त होकर कभी भी हम पर (मानो रीरधत्) क्रोध न करें ।

६—

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्

त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।

सम्पादक के प्रति आप सदैव कोमल-कान्त और मुखदायक रहें । (स्तवानः) आपके प्रति स्तुति करने वाला सदा सुखी रहे और आप स्तुति पाते हुए सदा प्रसन्न रहें । (सेनाः) आपकी ऐश्वर्यसम्पन्न सेनायें (अन्यम् अस्मत्) हमसे भिन्न दुष्ट पुरुषों के प्रति (निवपन्तु) निपात करती रहें ।

१२--

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं

प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।

भूरे दातारं सत्पतिं गृणीषे

स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्ये ॥१२॥

पद-पाठ—कुमारः । चित् । पितरम् । वन्दमानम् प्रति । नानाम । रुद्र ।

उपयन्तम् । भूरेः । दातारम् । सत्पतिम् । गृणीषे । स्तुतः । त्वम् । भेषजा । रासि

अस्मे इति ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—(पितरं वन्दमानं कुमारश्चित्) आयुष्मान् भव, वर्धस्वेति पितरमभिनन्दनं कुमार इव (हे रुद्र उपयन्तम्) अस्मत्समीपे उपागच्छन्तं भवन्तं प्रति (नानाम) अहं अतीव प्रणतोऽस्मि । (भूरेः दातारं सत्पतिम्) भूरेः बहूनां धनस्य दातारं सतां पालयितारं त्वां मनसा स्तौमि (गृणीषे) अभिनन्दामि । त्वं च (स्तुतः) स्तुतः सन् अस्ये अस्यभ्यं (भेषजा) भेषजानि विविधानि सुखावहानि रसायनानि (रासि) दत्त्वा सुखय ।

टिप्पणी—कुमारः—कौ पृथिव्यां मार इव कामदेव इव । चिदित्युपमार्थे । गृणीषे—तिङां तिङो भवन्तीति मिपः से आदेशः । भेषजा—भेषजानि । विभेत्यस्मादिति भेषः रोगस्तं जयतीति भेषजं रसायनम् । वन्दमानम् वदि + शानच्—आनेमुक् । उपयन्तम्—उप + इ + शतृ । नानाम—नम् + लिट् । अभ्यासस्य दीर्घत्वम् । अस्ये—अस्मभ्यम् । रासि—ददासि, 'रा दाने' ।

हिन्दी-व्याख्या—(पितरं वन्द्यमानं कुमारः चित्) वत्स ! बढ़ो, उन्नति करो, आयुष्मान् भव आदि गुण-वचनों से अभिनन्दन करते हुए = पिता की ओर से ऐसे मधुर उत्साहवर्धक मंगल-वचन को श्रवण करके (उपयन्तम्) अपनी ओर आपकी कृपा-दृष्टि पाकर हे रुद्र ! मैं (प्रति नानाम्) आपकी ओर अत्यन्त प्रणत हूँ । (भूरेः दातारं सप्ततिम्) अत्यधिक दाता तथा सज्जनों के पालक आपके प्रति मैं (गृणीषे) स्तुति करता हूँ । और आप (स्तुतः सन् अस्य भेषजा रासि) मधुर स्तुतियों से हमें पुलकित करते हुए नाना प्रकार के रसायन प्रस्तुत करते हैं ।

१३—

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि

या शन्तमा वृषणो या मयोभु ।

यानि मनुरवृणीता पिता न

स्ता शं च योश्च रुद्रस्य वशिम ॥१३॥

पद-पाठ—या । वः । भेषजा । मरुतः । शुचीनि । या । शमृज्जमा ।

वृषणः । या । मयःऽभु । यानि । मनुः । अवृणीत । पिता । नः । ता । शम् । च ।

योः । च । रुद्रस्य । वशिम् ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—(मरुतः ! या वो भेषजा शुचीनि) हे मरुतः ! रुद्र-पुत्राः ! यानि वः युष्माकं भेषजानि आरोग्यसम्पादकानि रसायनानि शुचीनि शुद्धानि हिंसादिदोषरहितानि (या शन्तमा) यानि चातिशयेन सुखकराणि (वृषणः या मयोभु) या नि च मयोभूति मयसः सुखस्य विभावनानि सन्ति तानि हे वृषणः कामानां वर्षितारो मरुतः ! अस्मभ्यं सम्पादयत । (यानि मनुः अवृणीत पिता नः) यानि भेषजानि रसायनानि अस्माकं पिता पालको मनीषी वृत्तवान् । तानि रुद्रस्य सम्बन्धी-नि भेषजान्यहं वृणे । (शं च योश्च ता रुद्रस्य वशिम्) अहं कायये शम् रोगानां दुःखानां च शमनं यावनीयानां पृथक्करणीयानां च भयानां यावनं पृथक्करणम् । इति ।

टिप्पणी—भेषजा = भेषजानि । शन्तमा—शन्तमानि । मयोमु = मयोभूति
‘मयस् + भू + डु’ । ऊकार लोपः । अवृणीत = वृ + लङ् । वश्मि ‘वश कान्ती’
लटि । शम् = शमनीयानां शमनम् । योः = यावनीयानां यावनं पृथक्करणम् । ‘यु
मिश्रणामिश्रणयोः’ ।

(२) मैक्डानल ने ‘शन्तमा’ का अर्थ स्वास्थ्यप्रद, ‘वृषणः’ का अर्थ शक्ति-
शाली, ‘मयोमु’ का अर्थ लाभप्रद तथा शम् एवं योः का अर्थ रसाधायक एवं आशी-
र्वचन के रूप में किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुतः ! रुद्र के स्वाभिमानी पुत्रगण ! (या वो भेषजा
शुचीनि) जो आपकी शुद्ध ओषधियाँ हैं (या शन्तमा) जो शान्तिदायक एवं
(मयोमु) सुखाधायक हैं (यानि मनुः अवृणीत पिता नः) जिन्हें हमारे मनीषी मनु
पिता ने वरण किया है, उन्हीं रसायन रूप ओषधियों की मैं भी कामना करता हूँ
जिनसे (शम्) रोगों का पूर्ण रूप से शमन हो तथा (योः) अनागत रोगों तथा
चिन्ताओं का विनाश हो जाय ।

१४—

परि॑ ए॒तो हे॒ती रु॒द्रस्य॑ वृ॒ज्याः

परि॑ त्वे॒षस्य॑ दु॒र्मति॑ म॒ही गा॒त् ।

अ॒व स्थि॑रा म॒घव॑द्भू॒च स्तनु॑ष्व

मी॒द्वः स्तो॒काय॑ तनयाय मृ॒द्व ॥१४॥

पद-पाठ—परि॑ । नः॑ । हे॒तिः । रु॒द्रस्य॑ । वृ॒ज्याः । परि॑ । त्वे॒षस्य॑ ।

दुः॒ऽमतिः॑ । म॒ही । गा॒त् । अ॒व । स्थि॑रा । म॒घव॑त्ऽभ्यः । तनु॑ष्व । मी॒द्वः । तो॒काय॑ ।

तनयाय । मृ॒द्व ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—(रुद्रस्य) महतो देवस्य (हेतिः) हनन साधनम् आयुधम्
(नः) अस्मान् (परिवृज्याः) परिवर्जयतु । (त्वेषस्य मही दुर्मतिः परिगात्) तथा
दीप्तस्य रुद्रस्य महती क्रोधकारिणी बुद्धिः अस्मान् परित्यज्य अन्यत्र गच्छतु ।
(मीद्वः) हे सेचनसमर्थ ! (स्थिरा) स्थिराणि स्वकीयानि धनूषि (मघवद्भूचः)

हविर्धनयुक्तेभ्यो महापुरुषेभ्यो रक्षार्थम् (अव तनुष्व) शिथिलय, अवनतानि कुरु तथा (तोकाय तनयाय मृड) सुखय च अस्मत्पुत्राय पौत्राय च ।

टिप्पणी—हेतिः = हननसाधनमायुधम् । वृज्याः—वृज् लिङ् । मीद्वः—‘मिह सेजने’ क्वसुः । मघम् इति धननामधेयम् । तनुष्व—‘तनु विस्तारे’ लोट् ।

(२) मैक्डानल ने ‘त्वेष’ का अर्थ भयानक और मीद्व का अर्थ उदार किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(रुद्रस्य हेतिः नः परिवृज्याः—) रुद्र देवता के हनन साधन (=मारक अस्त्र) हमसे दूर रहें । (त्वेमरम मही दुर्मतिः परि गात्) महादेव की भयंकर कोप-भावना हमसे दूर रहे । हे रुद्र ! (मघवद्भुचः स्थिरा अव तनुष्व) ऐश्वर्य सम्पन्न उदार पुरुषों से अपने दृढ़ धनुष को शिथिल करके उनकी रक्षा करो और (तोकाय तनयाम मृड) हमारे पुत्रों-पौत्रों की रक्षा करो । उन्हें सुखी बनाओ ।

१५—

ए॒वा ब॒भ्रो वृष॑भ चे॒कितान्

यथा॑ दे॒व न ह॒णीषे॑ न ह॒ंसि ।

ह॒वन श्रु॒न्नो रु॒द्रेह॑ बो॒धि

बृ॒हद् व॒देम॑ वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥१५॥

पद-पाठ—ए॒व । ब॒भ्रो इति॑ । वृष॑भ । चे॒कितान् । यथा॑ । दे॒व । न ।

ह॒णीषे॑ । न । ह॒ंसि । ह॒वनश्रु॑त् । नः । रु॒द्र । इह॑ । बो॒धि । बृ॒हत् । व॒देम॑ । वि॒दथे॑ ।

सु॒वीराः॑ ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—(हे बभ्रो) जगतः भर्तः स्वामिन् ! (वृषभ) कामानां वषितः ! (चेकितान) सर्वं जानन् (देव) विद्योतमान ! रुद्र ! (यथा न हणीषे) न कुप्यसि (न हंसि) न च व्यापादयसि (हवनश्रुत् नः इह बोधि) वयं त्वदीयाः स्म इत्यस्माकं हवनम् आह्वानं शृण्वन् बुध्यस्व । (विदथे) शोभने गृहे यज्ञमण्डयेवा सुवीराः कल्याणपुत्राः सन्तो वयं (बृहद् वदेम) त्वदीयं स्तुतिसमूहम् उच्चारयेम ।

टिप्पणी—चेकितानः—‘कित जाने’ कानच्, द्वित्वं गुणश्च । हृणीषे—
‘हृणीङ् लज्जायां क्रोधे च’ ।

(२) मैक्डानल ने ‘चेकितान’ का अर्थ ‘प्रख्यात’, वृषभ का अर्थ बैल और
‘विदथे’ का अर्थ दैवी प्रार्थना किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(वभ्रो वृषभ चेकितान) हे जगत् के पालक, आनन्द की
वर्षा करने वाले सर्वज्ञ रुद्र ! (यथा देव न हृणीषे न हंसि) आप जैसे भी सन्तुष्ट
हों, हम पर प्रसन्न रहें । हम पर संकोच अथवा क्रोध न करें । हमारा कभी विनाश
न हो । (हवन श्रुत् नः रुद्र इह बोधि) हमारे आत्मानों को आप सुनें और आपकी
दृष्टि में ही हम रहें, ऐसा आप समझें । हम भी (सुवीराः) कल्याणकारी पुत्र-पौत्रों
के साथ आपके मार्ग दर्शन में (विदथे बृहद् वदेम) सदा प्रसन्न होकर यज्ञ की वेदी
पर अथवा घर पर ऋचाओं का उच्चारण करते रहें ।

मण्डल-२

अश्वि सूक्तम्

सूक्त ३६

ऋषिः—गृत्समद, देवता—अश्विनी, छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१-

ग्रावा॑णेव॒ तदिद॑र्थं जरे॒थे

गृध्रे॑व वृक्षं॑ निधि॒मन्त॑मच्छ ।

ब्र॒ह्माणे॑व दिद॑थ उक्थ॒शासा॑

दू॒तेव॒ हव्या॑ ज॒न्या पु॒रुषा॑ ॥१॥

पद-पाठ—ग्रावा॑णा ऽ इव । तत् । इत् । अर्थ॑म् । जरे॒थे इति॑ । गृध्रा॑ ऽ इव ।

वृक्ष॑म् । निधि॒मन्त॑म् । अच्छ । ब्र॒ह्माणा॑ ऽ इव । वि॒दथे॑ । उक्थ॒ ऽ शासा॑ । दू॒ता ऽ इव ।

हृदया । जन्या । पु॒त्रा ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनो ! युवां 'ग्रावाणोव' क्षिप्रक्षिप्ती यन्त्रपाषाणो इव 'तत् इत् अर्थम्' तमेव अरातिं शत्रुं प्रति गत्वा जरमेथे जरमेथे बाधेथाम् । यथा क्षिप्रक्षिप्ती भुशुङ्गिलिकौ शत्रुं प्राप्य विनाशयतः तथा युवामित्यर्थः । 'गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ' फलसमृद्धं वृक्षं प्रति यथा लुब्धौ पक्षिणौ क्षिप्रं गच्छतस्तथा युवां स्तुतिसमृद्धं स्वच्छान्तः करणमृषिं प्रति सौविध्येन शीघ्रमेव तत्सेवार्थं तत्परौ भवथः । 'ब्रह्माणोव विदथ उक्थशासा' उक्थशंसितारौ ऋतम्भरौ ऋषी इव ब्रह्माणौ बृहन्ती अधिगुणौ 'दूतेव हव्या जन्या पु॒त्रा' बहुभिः पुरुषं ह्वितव्यौ दूताविव प्राप्तगुप्त-भावाविव । गूढौ दृढौ मुदितौ प्रियकरौ युवामित्यर्थः ।

टिप्पणी—अर्थम्—'अर्थोऽर्थः' इति यास्कः । गृध्रेव—गृध्रौ इव । लुब्ध-प्रतीकार्थम् । अश्विनो—प्राणापानौ, सूर्याचन्द्रमसौ, द्यावापृथिव्यौ तदभिमानिनौ देवौ ।

हिन्दी व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप तोप से फेंके गये भयावह गोलों के समान शीघ्र ही शत्रु-विध्वंस कर देते हैं । 'निधिमन्तं वृक्षम्' फल-सम्पदा से भरे हुए वृक्ष के समान बाह्य एवम् अन्तः विभूतियों से सम्पन्न ऋषि के पास लोभी गृध्र के समान तत्काल पहुंच जाते हैं । स्तुति समूहों में प्रशंसा करने वाले प्रतिभा सम्पन्न ऋषि के समान उत्तम स्वभाव से युक्त आप हैं तथा प्रतिनिधित्व सम्पादन करने वाले गूढ़, दृढ़ एवं प्रियकर दूतों के समान आप नित्य ही प्रशंसा एवं प्रीति के पात्र हैं ।

२-

प्रा॒त॒ र्वा॒णा र॒थ्ये॒व वी॒राजे॒व-

य॒मा व॒र॒मा स॒चे॒थे ।

मे॒ने इ॒व त॒न्वा ३ शु॒भ॒मा॒ने

द॒म्पती॒व ऋ॒तु॒वि॒दा ज॒नेषु ॥२॥

पद-पाठः—प्रा॒तः ऽ या॒वाना । र॒थ्योऽइ॒व । वी॒रा । अ॒जा ऽ इ॒व य॒मा । व॒रम् ।

आ । स॒चे॒थे इति । मे॒ने इ॒वेति॒ मे॒ने ऽ इव । त॒न्वा । शु॒म्भ॒मा॒ने इति । द॒म्प॒ती इ॒वेति॒

द॒म्प॒ती ऽ इव । क॒तु ऽ वि॒दा । ज॒नेषु ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनी ! युवां 'प्रात रयावाणी' प्रसन्नो स्फूर्तियुक्तौ प्रभातवेलाया मेव मनुष्यान् बोधयथः । 'रथ्येव वीरा' रथिनाविव रणकर्मणि दक्षौ । अजेप अजाविव दृढप्रहारी । यमा यमो यमलौ नियन्तारौ । 'मेने इव तन्वा शुम्भमाने' यथा दयितहितचिन्तिके मान्ये प्राणप्रिये वल्लभे तन्वा शरीरेण सदैव मुदिते प्रसन्ने कान्ते रमणीये शोभमाने भवतस्तथा युवां सदैव तृप्तौ कृतालङ्कारौ प्रसाधितवेशौ कमनीयौ नयनानन्ददायिनौ भवथः । जनेषु जनं जनं प्रति युवां 'कतुविदा' किं वस्तु कस्मै प्रियमिति सदैव कर्मविदौ 'दम्पतीव' दम इति गृहनाम, तस्य पालकौ जायापती इव अगधिततावज्ञौ प्राप्तसर्वर्थौ समयचतुरौ च तथा विधौ युवां वरम् आ सचेथे । क्षिप्रमेव वरणीयं प्रति आगच्छथः ।

टिप्पणी—रथ्येव—रथस्येमौ 'तस्येदम्' यत् प्रत्ययः । कतुविदा—कर्मविदौ, प्रज्ञाविदौ ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्विदेव ! आप दोनों सुप्रभात वेला में ही हमारी तन्द्रा दूर कर देते हैं तथा हमारी चेतना में प्रसन्नता उत्पन्न करते हैं । आप दोनों अच्छे रण-कुशल वीर के समान सहनशील और हृष्ट-पुष्ट छाग के समान दृढ़ प्रहार करने वाले हैं । आप 'यमा' नियमनशील और अन्तः प्ररु हैं । आप गमन—आगमन समय के लिये अपने आपको सुन्दर स्त्रियों की भाँति सजते और सजाते हैं । मानवीय कर्तव्य निष्ठा में आप गृह-पालक दम्पती (पत्नी और पति) के समान कार्य-प्रज्ञा को प्रदर्शित करते हैं ।

३-

शृ॒ङ्गा॒व नः प्रथ॒मा गन्त॑ म॒र्वाक्—

छ॒फा॒वि॒व ज॒भु॒रा॒णा त॒रो॒भिः ।

च॒क्र॒वा॒के॒व प्र॒ति॒व॒स्तो॒रु॒रु॒षा—

व॒ज्रि॒चा या॒तं र॒थ्ये॒व श॒क्रा ॥

पद-पाठः—शृ॒ङ्गा ऽ इव । नः । प्र॒थ॒मा । गन्त॑म् । अ॒र्वाक् । श॒क्रोऽइव ।

ज॒र्मु॒रा॒णा । त॒रः ऽ भि॒ । च॒क्र॒ वा॒का ऽ इ॒व । प्र॒ति॒ । व॒स्तोः । उ॒त्सा॒ । अ॒र्वाञ्च॒ ।

या॒तम् । र॒थ॒या ऽ इ॒व । श॒क्रा ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां देवेषु प्रथमौ प्रतमौ उत्कृष्टतमौ शृंगौ इव परस्परम् अविभागापन्नौ स्वाश्रयौ दृढौ च । युवां शफौ इव जर्मु॒रा॒णा यथा शफौ धारणसमर्थौ तथा युवाम् । 'तरोभिः अर्वाक् आ गन्तम् वेगातिशयेन अस्मदभिमुखं शीघ्रम् आगच्छतम् । प्रतिवस्तोः प्रतिदिनं चक्रवाक विव अवियक्तौ । उत्सा इव वृहन्तौ वृषभौ इव शक्ति सम्पन्नौ । रथ्येव शक्रा रथिनौ इव शूरकर्मणि शक्तौ समर्थौ अर्वाञ्चा अस्मदभिमुखौ यातम् आगच्छतम् अस्माकं स्वस्तये ।

टिप्पणी—उत्सा—शत्रूणामुत्सारकौ गमनशीलौ वा, इति सायणाचार्यः । वस्तः—वस्त इत्यहं नमि । चक्रवाकेव—चक्रवाकौ इव—चक्रवाकौ दिने संयुक्तौ रात्रौ च वियुक्तौ भवत इति कवि समयः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप दोनों महिष आदि के शृंगों के समान परस्पर अविभागापन्न और दृढ़ हैं । शफों (टापों) के समान धारण समर्थ और संभरण करने वाले हैं । आप वेग के साथ आयें और हमारे दुःख—रोग आदि कष्टों का निवारण करें । आप दोनों चक्रवाक्—मिथुन के समान सदा साथ रहने वाले, वृषभों के समान विशाल और पुष्ट तथा महारथी के समान सशक्त हैं । अतः कृपा करके हमारे कल्याण के लिये शीघ्र पधारें ।

४-

ना॒वे॒व नः॑ पा॒र॒य॒तं यु॒गे॒व—

न॒भ्ये॒व न॑ उ॒प॒धी॒व प्र॒धी॒व ।

इ॒वा॒ने॒व नो॑ अ॒रि॒ष॒ण्या त॒नू॒नां

खृ॒ग॒ले॒व वि॒स्र॒सः पा॒त॒म॒स्मा॒न् ॥४॥

प॒व॒-पा॒ठः—ना॒वा ऽ इ॒व । नः॑ । पा॒र॒य॒तम् । यु॒गा ऽ इ॒व । न॒भ्या॑ ऽ इ॒व ।

नः । उपधी इवेत्युपधी ऽ इव । प्रधी इवेति प्रधी ऽ इव । श्वाना ऽ इव । नः ।

अरिपण्या । तनूनाम् । खृगला ऽ इव । वि ऽ स्रसः । पातम् । अस्मान् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनी ! युवां दुःखशोकावेगेभ्यः नो ऽस्मान् पारयतम् परे पारं नयतम् । नावेव यथा नावी दुर्गमनान् सिन्धून् पारयतः । तथा पारयतम् । युगेव नभ्येव उपधीव प्रधीव इति चतस्र उपमाः । युगेव यथा रथस्य युगे, नभ्येव यथा रथस्य नाभिभूते फलके उपधीव यथा रथपाश्वर्यस्थफलके प्रधीव यथा चक्रबाह्यबलयौ तथा रक्षणसमर्थौ आश्रयभूतौ युवामित्यर्थः । 'श्वानेव नो अरिपण्या तनूनाम्' युवां गृह-रक्षकौ श्वानौ इव बोधकेभ्यो रक्षथः । अरिपण्या तनूनाम्' अङ्गानाम् अरिपण्यौ दुःख-वर्जितौ मातेव रक्षकौ पालकौ सुखप्रदौ भवतम् । विस्रसः विस्रस्तात् शिथिलात् वृद्ध-भावात् अस्मान् युवां पातम् । खृगलेव यथा कवचः कवचहरं पाति तद्वत् ।

टिप्पणी—खृगला—कवचः । तनुत्राणम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप दुःख-सागर से हमारा उद्धार करते हैं । जिस प्रकार दृढ़ सुन्दर नौकायें सागर-पार कराने में समर्थ होती हैं उसी प्रकार आप दोनों शोक-सागर से परे पार पहुंचा देते हैं । युगेव, नभ्येव, उपधीव, प्रधीव यह चार उपमायें दी हैं । रथ-युग के समान, रथ-नाभि के समान, रथ-फलक के समान और रथ के लोह-घेरे के समान आप हमारे आश्रय, शरण-स्थान और रक्षक हैं । आप संतत सावधान सारमेयों (कुत्ता) के समान बाधा पहुंचाने वालों से रक्षा करते हैं । आप अंगों को शिथिल करने वाली वृद्धावस्था से हमारी रक्षा करें । खृगला के समान । खृगला कवच को कहते हैं । जिस प्रकार विक्रान्त वीर की रक्षा में खृगला = तनुत्राण दक्ष है उसी प्रकार आप दोनों हमारी रक्षा में सक्षम हैं ।

५-

वातेवा जु॒र्या न॒द्येव री॒ति—

रक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।

हस्ता विव तन्वे उ शंभविष्ठा

पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥

पद-पाठ—वा॒ता ऽ इव । अ॒जु॒र्या । न॒द्या ऽ इव । री॒तिः अ॒क्षी इ॒वेत्य॒क्षी ऽ

इव । चक्षु॑षा । आ । या॒तम् । अ॒वाक् । ह॒स्तौ ऽ इव । त॒न्वे । श॒म् ऽ भ॒वि॒ष्ठा ।

पा॒दा ऽ इव । नः । न॒य॒तम् । व॒स्यः । अ॒च्छ ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनी ! युवां वातेव अजुर्या जटितुमशक्यौ 'वायुरिव दीर्घायु'रिति भासः । नद्येव रीतिः सतत प्रवाहोपेतौ आत्मनिर्भरौ । सरसी च । अक्षी इव अक्षिणी इव चक्षुषा शोभनदर्शनेन प्रियदर्शनौ भूत्वा अस्माकं चक्षुः स्थानीयौ भवतम्—'धर्मं जिज्ञासमानानां चक्षुर्भवतु नो भवान्' इति भीष्मं प्रति युधिष्ठिर—प्रश्ने (महाभारते प्रयोगः) । अवाक् अस्मदभिमुखम् आयातम् आगच्छतम् । तन्वे अस्माकं शरीराय हस्तौ इव शंभविष्ठा सुखस्य भावयितारौ पादेव पादौ इव च वस्यः वसीयः श्रेष्ठं धनं प्रति अच्छ नयतम् ।

टिप्पणी—अजुर्या—'जृष् वयोहानौ' । भावेऽप्यत् । वृद्धौ कृतायाम् आकारस्य व्यत्ययेन उकारः । जुर्जरा नास्ति अस्येति बह्व्रीहिः । 'नञ् सुभ्याम्' इत्युत्तरपदान्तोदात्तत्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आप वायु के समान दीर्घायु और 'अजुर्या' वृद्धत्व अथवा अंगशौथिल्य से रहित हैं । सदा प्रसन्न, तृप्त और वज्रबली है । आप दोनों सदैव नदियों के समान आत्मनिर्भर, प्रवाहपूर्ण और सरस हैं । आप नयनों के समान प्रियदर्शन और मार्ग-द्रष्टा हैं । दोनों आप हस्त युगल के समान शरीर के लिये सुख प्रदाता तथा चरणों के समान श्रेष्ठ धन के प्रति गतिप्रद हैं ।

६-

ओ॒ष्ठा वि॒व म॒ध्वा॒स्ने वद॒न्ता

स्त॒ना वि॒व पि॒प्य॒तं जी॒वसे॒ नः ।

ना॒सेव॒ न स्त॒न्वो र॒क्षि॒ता॒रा

कर्णा॑विव सु॒श्रु॒ता भू॒तम॒स्मे ॥६॥

पद-पाठ—ओ॒ष्ठी ऽ इव । म॒धु । आ॒स्ने । वद॒न्ता । स्त॒नी ऽ इव । पि॒प्य॒तम् ।

जीवसे । नः । नासा ऽ इव । नः । तन्वः । रक्षितारा । कर्णी ऽ इव । सु ऽ श्रुता ।

भूतम् । अस्मे इति ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां हि आस्ने । आस्याय वदनाय मधु मधुरं वदन्तौ जीवसे जीवनाय स्तनौ इव पिप्यतम् प्याययतम् । जीवनसंवर्धन-साधकौ भवतम् । अस्मां क तन्वः तनौः शरीरस्य रक्षितारौ नासेव नासिके इव प्राणप्रदौ भूतं भवतम् । कर्णौ इव सुश्रुता सुश्रवणसाधनौ भूत्वा बहुश्रुतान् अस्मान् सम्वादयतम् ॥

टिप्पणी—आस्ने—‘पदन् ०’ इति आस्यस्य आसन् । ‘अल्लोपोऽनः’ इति अकारलोपः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्विदेव ! आप दोनों ही मिल कर मधुर-मंगल ध्वनि का उच्चारण करते हैं जिस प्रकार कि दोनों ओष्ठ मिल कर ही मधुर-ध्वनि के उच्चारण में कारण बनते हैं । हमारे जीवन के लिये स्तनों के समान आप रसायन देते हैं । जिस प्रकार हमारी नासिका हमारी स्थिरता के लिये प्राणदायिनी प्रतिष्ठा है उसी प्रकार आप भी हमारे लिये प्राणाधायक हेतु हैं । जिस प्रकार हमारे लिये कर्ण शब्द-रसायन देकर हमें बहुश्रुत बनाते हैं उसी प्रकार विद्या-वैभव देने में आप कर्ण-रसायन प्रस्तुत करते रहते हैं ।

सर्वेषामिन्द्रियाणां वै शुभे श्रवणदर्शने ।

श्रवणाद् वस्तु विज्ञानं दर्शनाच्चित्तरञ्जनम्

—दे० भा०

७-

हस्तेव शक्तिमभि सन्ददी नः

क्षामेव नः समजतं रजांसि ।

इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः

क्षणेत्रेणैव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥

पद-पाठः—हस्ताऽइव । शक्तिम् । अभि । संददी इति सम्ऽददी । नः । क्षाम

ऽ इव । नः । सम् । अजतम् रजांसि । इमाः । गिरः । अश्विना । युष्मऽयन्तीः ।

क्षणोत्रेण ऽ इव । स्वऽधितिम् । सम् । शिशीतम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनौ ! युवां हस्ती इव अस्माकम् करावलम्बनौ भवतम् । यथा कश्चन सखा (दोस्त=दोस्थः) दुःखसमये अवलम्बनो भवति तथा युवां नः अस्माकम् अभि अस्मान् अभि शक्तिं प्रदाय समर्थान् कुरुतम् बलं संददी नः सम्यक् प्रयच्छन्ती भवतम् । क्षामेव द्यौरिव पृथिवी इव च रजांसि उदकानि सम् अजतम् सम्यक् प्रेरयतम् । यथा कश्चन अयस्कारः क्षणोत्रेण तेजनशाणेन स्वकीयां स्वधितिं तीक्ष्णां करोति तथा हे अश्विनौ इमा अस्माभिः सम्यक् सम्पादिता गिरः स्तुतयः युष्मयन्ती ताः स्तुतीः युवां कामयमानाः । इमाः सं शिशीतम् सम्यक् तीक्ष्णीकुरुतम् । यथा शब्दारिघ्नं प्रतिभादारिघ्नं वा न श्येत् ।

टिप्पणी—रजांसि—‘उदकं रज उच्यते’ इति यास्कः । क्षणोत्रम्—शाणयन्त्रम् । स्वाधितिः—लोहायुधम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे अश्वि देव ! आय दोनों हमारे लिए हाथ के समान हस्तावलम्बन बनें । हमें सामर्थ्य प्रदान करें । द्युलोक और पृथ्वी लोक के समान जीवन प्राप्ति के लिये जल क्षेपण करते रहें । जिस प्रकार तलवार, आदि हथियारों को सान पर चढ़ा कर चमकाया जाता है और उन्हें तीक्ष्ण किया जाता है इसी प्रकार हमारी स्तुतियों को चमका कर तीक्ष्ण कर दीजिये जिससे कि हमारी शब्द दरिद्रता और प्रतिभा की दरिद्रता दूर हो और हमारे मुख में सदा चमकती हुई वाणी का चमत्कार प्रकट हो ।

८-

एतानि वामश्विना वर्धनानि

ब्रह्म स्तोमं गुत्समदासो अक्रन् ।

तानि नरा जुजुषाणोप यातं

बृहद्वदेभ विदथे सुवीराः ॥८॥

पद-पाठः—ए॒तानि॑ । वा॒म् । अ॒श्वि॒व॒ना । व॒र्ध॒नानि॑ । ब्र॒ह्म । स्तो॒मम् ।

गृ॒त्स॒म॒दासः॑ । अ॒क्रन् । ता॒नि । न॒रा । जु॒जु॒षा॒णा । उप॑ । या॒तम् । बृ॒हत् । व॒दे॒म ।

वि॒द॒थे । सु॒वी॒राः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अश्विनी ! एतानि वां युवयोः वर्धनानि संवर्धनपराणि स्तुतिशस्त्राणि यानि ब्रह्म ब्रह्माणि बृहन्ति स्तोमं स्तुतिसमूहान् गृत्समदासः गृत्समदा ऋषयः स्तत्र भवन्तोऽक्रन् कृतवन्तः । सम्पादितवन्तः । हे नरा ! नेतारी तानि स्तोत्राणि जुजुषाणा प्रीत्या सेवमानौ भवन्तौ उप यातम् आगच्छतम् । वयमपि विदथे वेदितव्ये यज्ञरणे बृहत् स्तुत्यं स्तुति समूहं वदेम वदनाय समर्था भवेम । सुवीराः कल्याणवीराः सन्तः । यथेयाः स्तुतपरम्परा वर्धेरन् ।

टिप्पणी—गृत्समदासः—अञ्जसेरसुक् । गृत्समदाः ।

हिन्दी व्याख्या—हे अश्विदेव ! आपके लिए इस प्रकार स्तुत्य शब्द समूहों में गृत्समद ऋषियों ने संवर्धनशील स्तुतियों को प्रोत्साहन दिया है । इनका रसास्वादन करते हुए आप हमारी अभिलाषाओं को प्रीति और तृप्ति के साथ श्रवण करें और हम भी पूत्र-पौत्रों के साथ सदैव स्तुतियों द्वारा आपके गुण-ग्राम का कीर्तन करते रहें ।

मण्डल-३

नदी-सूक्तम्

सूक्त ३३

ऋषिः—विश्वामित्रः देवता—नद्यः छन्दः—त्रिष्टुप् । १३-अनुष्टुप् ।

१-

प्र पर्व॑ताना मु॒शती॑ उप॒स्थाद्-

अ॒श्वे इ॒व वि॒षिते॑ हा॒स॒माने॑ ।

गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे

विपाट् छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

पद पाठः—प्र । पर्वतानाम् । उ॒शती इति । उप॒स्थात् । अ॒श्वे इवेत्य॒श्वे इव ।

वि॒सिते इति । वि॒सिते । ह्रा॒स॒माने इति । गा॒वा इति । शु॒भ्रे इति । मा॒तरा रिहा॒णे

इति । वि॒पाट् । शु॒तु॒द्री । प॒यसा । ज॒वेते इति ।

संस्कृत-व्याख्या—हिमाच्छादित शरीरे विपाशा नदी शुतुद्री नदी च पयसा जलराशिना संभृतकलेवरे जवेते वेगवत्यो गच्छतः । कीदृश्यौ ते ? पर्वतानाम् उपस्थात् सामीप्यात् निःसृत्य पति रूपेणावस्थितं समुद्रं कामयमाने । अश्वे इव वशे इव विषिते विघटित बन्धने । ह्रासमाने हसुन्त्यौ । श्वेतशुभ्रतुहिनावृतत्वात् सुष्मिन्ते इव । शुभ्रे धवलवर्णे गावौ इव सवत्से मातरा मातराविव रिहाणे लेढुमिच्छन्त्यौ । यथा वत्साभिमुखं लेढुमिच्छन्त्यौ गावौ आवेगसहिते गच्छतस्थिता एते गच्छतः ।

टिप्पणी—उशती—वश कान्ती । शतृ । संप्रसारणम् । विषिते—विपूर्वस्य विब् बन्धने धातौः क्तः । टाप् । ह्रासमाने—हास—शानच् । मुक् टाप् । रिहाणे—लिह + शानच् । टाप् रेफश्च । जवेते—जु + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हिम-लेप के कारण शुभ्र बलेवर वाली विपाट् (व्याम) तथा शुतुद्री (सतलज) दोनों नदियाँ जल-राशि के कारण मद्भरी सी बड़े वेग से चली जा रही हैं । कहाँ जा रही हैं ? 'पर्वतानां उपस्थात्' हिम-तुङ्ग, पर्वतों से उतर कर अपने पति-प्रेम में लबालब भरी हुई सागर की कामना से उसी ओर बढ़ रही हैं । जिस प्रकार दृढ़-बन्धन के खुल जाने पर दो श्वेत—शुभ्र अश्व—ललनायें । अथवा दो अत्यन्त कोमल उज्ज्वल वत्स—कामना वाली गायें, वत्स को अवलेहन की इच्छा से बढ़ रही दो गौमाताओं के समान; ये दोनों नदियों हर्ष-विभोर होकर मुद-मंगल के साथ आनन्द में उल्लसित होती हुई आगे बढ़ रही हैं ।

२-

इन्द्रे॒षिते प्रस॒वं भि॒क्ष॒माणे

अच्छा॑ स॒मु॒द्रं र॒थ्येव॑ याथः ।

स॒भारा॑णे अ॒मिभिः॑ पि॒न्वमा॑ने

अ॒न्या वा॑म॒न्याम॑प्येति शु॒भ्रे ॥२॥

पद-पाठः—इ॒न्द्रे पि॒ते इती॑न्द्र॒इषि॑ते । प्र॒सव॑म् । भि॒क्षमा॑णे इति । अ॒च्छ ।

समु॒द्रम् । र॒थ्याऽइ॒व । या॒यः । स॒भारा॑णे इति स॒म्भारा॑णे । अ॒मिभिः॑ । पि॒न्वमा॑ने

इति । अ॒न्या । वा॒म् । अ॒न्याम् । अ॒पि । ए॒ति । शु॒भ्रे इति ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—उभे नद्यो इति प्रसङ्ग, ते उभे नद्यो विपाट् च शुतुद्री च इन्द्रेषिते सर्वसमर्थेन इन्द्रेण लब्धप्रेरणे । प्रसवं भिक्षमाणे ऐश्वर्यं कामयमाने 'रथ्येव' सुवारथी इव 'अच्छा' स्वच्छप्रायणे 'समुद्रं यातः' सम्मोदमाने प्रसन्नं रण-सागरं प्रति अभिमुख्यं भजेते । ते उभे नद्यो उमिभिः तरङ्गैः सोत्सुके इव चञ्चले इव समाराणे बद्धालिङ्गने शुभ्रे सत्त्वोद्रेके शृंगारंकरसे परितृप्तमनोरथे इव यातः । तत्र अन्या एका खलु अन्याम् वाम् उभयो मध्ये अप्येति लीनेव संसृष्टेव अनुध्यायन्तीव परामृशति ।

टिप्पणी—इन्द्रेषिते—इन्द्रेण इषिते । इष + क्त + इट् । टाप् । प्रसवम्—प्र पूर्वस्य सोरप् । भिक्षमाणे—भिक्ष + शानच् । मुक् । टाप् । रथ्या—रथ + यत् । समाराणे—सम् + आ + ऋगतौ + कानच् । पिन्वमाने—पिवि सेचने । शानच् । मुक् । ऊभिः—'ऊत्तेरुच्च' । मिप्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—वे दोनों विपाट् (व्यास) और शुतुद्री (सतलज) नदियाँ 'प्रसवं भिक्षमाणे' 'इन्द्रेषिते' सर्वसमर्थ इन्द्र के द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करके अपने ऐश्वर्य के महत्त्व को प्राप्त करती हुई समराङ्गण के वीर रथी के समान प्रभुदित होकर स्वच्छन्दता के साथ समुद्र की ओर जा रही हैं । ये दोनों नदियाँ परस्पर आलिङ्गन बद्ध होकर जलत रंगों के साथ मचलती हुई-सी सत्त्वोद्रेक से आकुल-सी एक-दूसरी से मिश्रित होती हुई-सी जा रही हैं ।

३-

अ॒च्छा सि॒न्धुं मा॒तृत्त॑ माम॒यासं॑

वि॒याश॑ सु॒र्वो सु॒भगा॑म॒डान्म॑ ।

वत्समिव मातरा संरिहाणे

समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥

पद-पाठः—अच्छ । सिन्धुम् । मातृ॒तमाम् । अया॒सम् । विडपा॒शम् । उर्वी॒म् ।

सु॒भगा॒म् । अ॒गन्म । वत्स॒म् इव । मा॒तरा । संरिहा॒णे इति । सम्॒रिहा॒णे ।

स॒मानम् । यो॒निम् । अ॒नु । संचर॑न्ती इति । सम्॒चर॑न्ती ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—विश्वामित्रः प्रार्थयते—हे नद्यौ ! मातृ॒तमामुत्कृष्ट॑तमां मातरं सिन्धुं स्यन्दन शीलां शुतु॒द्रीम् अहम् अच्छ अया॒सम् । प्रा॒प्तोऽस्मि । सु॒भगां प्रा॒प्तश्चि॒व च उर्वीं विपा॑शम् विशालां विपाशं च त्वम् 'अगन्म' वयं प्रा॒प्तः । संरिहा॒णे लेदु॑मिच्छन्त्यौ वत्सनिव मातरा धेनू इव । समान योनि मेक भेवायनं स्थातं ते अनु सञ्चरन्ती संचरन्त्यौ ।

टिप्पणी—मातृ॒तमाम्—अतिशयेन मातरम् । मातृ + तमय् । अया॒सम्—या + लुङ् । उर्वीम्—उरु + डीय् । अगन्म—गम् + लुङ् । संरिहा॒णे—सम + लिह + कानच् । लेदु॑मिच्छन्त्यौ ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र आश्वस्त होकर कहते हैं कि मैं 'मातृ॒तमां सिन्धुम् अया॒सम्' अत्यन्त मृदु हृदय, माता के समान प्रसन्न वदन वाली सतलज के पास पहुँच गया हूँ और सौभाग्यशालिनी व्यास की विशालता भी अब हमारे सामने ही है । ये दोनों नदियाँ लेहन की लालसा से बछड़े की ओर बढ़ती हुई दो धेनुओं के समान एक ही प्राप्य स्थान समुद्र की ओर अनुगमन कर रही हैं ।

४-

ए॒ना व॒यं प॒यसा॒ पि॒न्वमा॒ना

अ॒नु यो॒निं दे॒व कृ॒तं च॒रन्तीः ।

न व॒त्वे प्र॒सवः॒ स॒गत॒क्तः

कि॒यु वि॒प्रो न॒द्यो जो॒हवी॒ति ॥४॥

पद-पाठः—ए॒ना । व॒यम् । प॒यसा । पि॒न्व॒मा॒नाः । अ॒नु । यो॒निम् ।

दे॒व ऽ कृ॒तम् । च॒रन्तीः । न । वर्त॑वे । प्र ऽ स॒वः । सर्ग॑ ऽ त॒क्तः । कि॒म् ऽ युः । वि॒प्रः ।

नद्यः । जो॒ह्वी॒ति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—प्राप्तं स्तुतिवचने नद्यौ प्रकथयतः—एना पयसा अनेन जलराशिना 'पिन्वमानाः' वयं संवर्धमानाः देवकृतं योनिम् इन्द्रेण निर्मितं योमिं स्थानं प्रति अनुलक्ष्य गच्छन्त्यः स्मः । अस्माकं सर्गतक्तः सर्गो विसर्गो गमने प्रवृत्तः प्रसवः उद्यमः न वर्तवे न पुन निर्वर्तनाय भवति' किं युः किम् इच्छन् अयं विप्रः स्तोता नद्यः नदीः अस्मान् जोह्वीति भृशं शब्दयति ।

टिप्पणी—एना-इदं शब्दस्य तृतीयायाम् एनादेशः । सुपां मुलुगिति' आजादेशः । पिन्वमानाः—पिबि सेचने । वर्तवे—वृत्तु वर्तने । तुमर्धे तवेन् प्रत्ययः । सर्गतक्तः—सृज विसर्गो घञ् । सर्गः । तक्तः—तक् + क्तः । किं युः—किम् इच्छन् वयञ् । 'क्याच्छन्दसि' उ प्रत्ययः । जोह्वीति—पुनः पुनः द्वयते । यङ् । संप्रसारणे कृते 'गुणोयङ्लुकोः' इत्यभ्यासस्य गुणः । ऽडागमः ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियों द्वारा उत्तर दिया जाता है—हम इस महान् जल-राशि से लबालब भर कर उमङ्ग में उभर कर जा रही हैं । 'देवकृतम्' देवराज इन्द्र ने जो स्थान हमारे लिए लक्षित किया है उसी मार्ग पर उसी स्थान तक हमें जाना है । 'सर्गतक्तः' निर्गमन के लिये निर्दिष्ट मार्ग से हमारी अब निवृत्ति नहीं हो सकती फिर 'किं युः' किस बड़ी बात की कामना से यह ब्राह्मण हम अचेतन नदियों की ओर अपनी कल्याणी वाणी का सोत्र बढ़ा रहा है ।

५-

रम॒ध्वं मे॒ वच॑से॒ सो॒भ्या॒य

ऋ॒ता॒वरी॒रूप॑ मु॒हूर्त॑मवैः ।

प्र॒ सि॒न्धु॒भच्छा॑ वृ॒हती॑ म॒नीषा—

ऽ व॒स्युर॑ह्वे॒ कु॒शिक॑स्य॒ सूनुः॑ ॥५॥

पद-पाठः—रम॒ध्वम् । मे॒ । वच॑से । सो॒भ्या॒य । ऋ॒त ऽ वरीः । उप॒ । मु॒हूर्त॑म् ।

ए॒वैः । प्र । सि॒न्धु॒म् । अ॒च्छ । वृ॒ह॒ती । म॒नी॒षा । अ॒व॒स्युः । अ॒ह्ने । कु॒शिक॑स्य ।

सू॒नुः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना विश्वामित्रः स्वाभिमतं प्रकाशयति । हे उदकवत्यो नद्यः मुहूर्तमात्रम् उपरमध्वम् । क्षणमात्रं वेगान् धारयत । सोम्याय मे वचसे सोम-युक्ताय मह्यं यूयमुपरतवेगा भवत । अहं कुशिकस्य राजर्षेः सूनुः अहं विश्वामित्रः वृहती मनीषा स्तुतिरूपया मनीषया ऽवस्युः आत्मीयक्षणां इच्छन् सिन्धुम् स्यन्दनशीलां त्वां शुतुद्रीं प्र अह्ने प्रकृष्टतया आह्वयामि ।

टिप्पणी—ऋतावरीः—ऋत + वनिप् । नकारस्य रेफः । डीप् । दीर्घत्वम् । सोम्याय—सोम + यत् । एवैः—इ + वन् । पञ्चम्यर्थे तृतीया । अवस्युः—अवस् + क्यच् + हः ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र अपना स्वाभिमत प्रकाशित करते हुए प्रार्थना करते हैं—‘ऋतावरीः’ हे जल से लबालब भरी हुई नदियों ! मेरी पुकार सुनो । क्षणमात्र के लिए ‘एवैः उपरमध्वम्’ अपने जलवेग को धारण करो । इसी में मेरा कल्याण है क्योंकि मुझे सोम-सम्पादन में निरत होना है । मैं ‘कुशिकस्य सूनुः’ राजर्षि कुशिक का पुत्र ‘अवस्युः’ जल-प्लावन से अपनी रक्षा के लिए ‘वृहती मनीषा’ अपनी शुद्ध सात्विक स्तुतिपूर्ण वाणी से ‘सिन्धु’ प्र अह्ने ‘स्यन्दनशील शुतुद्री नदी से प्रार्थना करता हूँ ।

६—

इन्द्रो॑ अ॒स्मां अ॒रद॑द् वज्र॑बा॒हु—

र॒पा॒हन् वृ॒त्रं प॒रिधि॑ न॒दीना॑म् ।

दे॒वो॒नय॑त् स॒विता॑ सु॒पा॒णि—

स्तस्य॑ व॒यं प्र॒सवे॑ याम॒ उर्वोः॑ ॥६॥

पद-पाठः—इन्द्रः । अस्मान् । अरदत् । वज्र ऽ बाहुः । अपः । अहन् । वृत्रम् ।

परिधिम् । नदीनाम् । देवः । अनयत् । सविता । सु ऽ पाणिः । तस्य । वयम् ।

प्रऽसवे । यामः । उर्वीः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—नद्यः उत्तरयन्ति—हे कुशिक-नन्दन ! विश्वामित्र !
असी वज्रधर इन्द्रोऽस्मान् अरदत् । मार्ग-लेखनम् अकरोत् । अस्माकं नदीनां परिधि
परितो निहितं वृत्रं तम् आवरकं मेघम् अपाहन् । हतवान् । तस्मिन् मेघे निहते सति
जलानि असरन् । तैर्जलावेगैर्व्यं प्राप्तमार्गाः । एवं मेघहनन व्यापारेण इन्द्र
एवास्मान् धरण्यामानयत् । एवं सुपाणिः हिरण्यपाणिः सविता प्रेरकः देव द्योतन-
स्वभाव इन्द्रोऽस्मान् आनयत् । अस्माकं मुदराणि निरुद्धवाणि अपूरयत् । तस्य
तादृशस्य इन्द्रस्य प्रसवेऽनुजायां वयमपि उर्वीः उदकरसपूर्णा यामः स्वाभिप्रेतं
गच्छामः ।

टिप्पणी—अरदत्—रद विलेखने । लङ् । अहन्—हन हिंसापत्योः । लङ् ।
अनयत्—णीञ् प्रापणे लङ् । यामः—या प्रापणे । लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियाँ उत्तर देती हैं । हे कुशिक नन्दन ! आपका स्वागत
है । पर इस बात को न भूलिये कि वज्रहस्त इन्द्र ने ही भूमि को खुरच-खुरच कर
हमारे लिए मार्ग-सीमा निर्धारित की है । हमारी उदर-पूर्ति के लिए महान् आवरक
वृत्र (मेघ) का हनन किया है । उस मेघ विध्वंस के अनन्तर ही अपार जलराशि हमें
प्राप्त हुई । उस भीषण जलावेग से ही हमको निर्गमन-मार्ग मिला । इस प्रकार मेघ-
हनन व्यापार के कारण धरणी पर हमारे अन्तःकरण को उल्लिखित करने वाला वही
एक महान् प्रतापी इन्द्र है । वह इन्द्र सुपाणि, सविता (प्रेरक) और द्योतन-स्वभाव
वाला है । उदक-रस से परिपूर्ण होकर हम उसी इन्द्र की अनुमति में उल्लास के
साथ चलती हैं । तुम्हारे जैसे किसी अन्य की आज्ञा-अनुज्ञा हमें नहीं चाहिये ।

७—

प्रवाच्यं शश्वधा वीयीन्तद्—

इन्द्रस्य कर्म यदाहि विवृश्चत् ।

वि वज्रेण परिषदो जघाना—

यन्नापोऽयनमिच्छ मानाः ॥७॥

पद-पाठः—प्रऽवाच्यम् । शश्वधा । वीर्यम् । तत् । इन्द्रस्य । कर्म । यत् ।

अहिम् । वि ऽ वृश्चत् । वि । वज्रेण । परि ऽ सदः । जघान् । आयन् । आपः ।

अयनम् । इच्छमानाः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—तद् इन्द्रस्य वीर्यं वीरतापूर्णं शौर्योपेतं कर्म शश्वधा सदैव प्रवाच्यम् कीर्तनीयं भवति । किं तत् कीर्तनीयं कर्म ? 'यद् अहिं विवृश्चत्' यदयमिन्द्रोऽहिं तम् आगत्य आहन्तारं मेघं विदारितवान् । अथ च 'वज्रेण परिषदः' परिषदः परितः आसीनान् परिषद् रूपेणावस्थितान् असुरान् जघान हतवान् । तदनन्तरं किमभूत् ? अयनं स्थानं कामयमाना आपः जलधारा आपन् आगच्छन्ति ।

टिप्पणी—शश्वधा—शश्वत् + धा । तकारलोपः । प्रवाच्यम्—प्र + वच् + ण्यत् । उपधावृद्धिः । विवृश्चत्—विपूर्वस्य वृश्चते लङ् । परिषदः—परि + सद + विवप् । जघान—हन हिंसागत्योः । लिट् । अयनम्—इण् + ल्युट् । इच्छमानाः—इच्छ + शानच् । आने मुक् । टाप् । आयन्—इण् + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियाँ इन्द्र का प्रशस्ति-गान करती हुई कहती हैं कि इन्द्र के निरातङ्क शौर्य की सदा प्रशंसा होनी ही चाहिये जिस बल-समुदय के कारण निकट ही हनन-व्यापार करने वाले मेघ का विध्वंस किया और उसकी परिषद् के समस्त असुरों को वज्रधर ने मार डाला इसके परिणामस्वरूप अपना स्थान बनाती हुई, कामना प्रबल नदियाँ जलावेग से निकल पड़ीं ।

८—

पतद्वचो जरित मर्षी मृष्टा

आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।

उक्थेषु कारो प्रतिनो जुषस्व

मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

पद-पाठः—एतत् । वच् । जरितः । मा । अपि । मृष्टाः । आ । यत् । ते ।

घोषान् । उत्तरा ५ तरा । रुगानि । उक्थेषु । कारो इति । प्रति । नः । जुषस्व ।

मा । नः । नि । करिति कः । पुरुष ५ वा । नमः । ते ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—एव मिन्द्र स्तुति विधाय विश्वामित्रं प्रति नद्यः कथं
यन्ति—हे जरितः स्तोतः ! एतद् वचः 'प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषा ५ वस्यु
रह्णे कुशिकस्य सूनुः' इति नदीः प्रति उक्तं त्वया, तद् वचो नदीः प्रति संवाद-
रूपकं 'मापि मृष्टाः' विस्मृतं मा कार्षीः । एते मंत्रात्मका घोषाः 'उत्तरा युगानि'
उत्तरेष्वपि युगेषु उक्थेषु कारो सूक्तानां कर्तः त्वं नोऽस्मान् प्रति जुषस्व । प्रीत्या
सेवस्व । नदीः प्रति विश्वामित्रो ५ वीचत्, नद्य एव तं प्रत्यवोचन्' इति सूक्तात्मकं
वचः पारस्पर्यं स्थिरं स्यात् । पुरुषत्रा पुरुषेषु 'मा नो नि कः' अस्मान् निम्नः
मा कार्षीः । ते तुभ्यं 'नमः' नमोऽस्तु ।

टिप्पणी—जरितः—जृ स्तुती । तृ । इट् । मृष्टाः—मृज धातो लङ्
उत्तरा युगानि—उत्तराणि युगानि=उत्तरेषु युगेषु । घोषान्—उद्घोषयन् ।
कारो—कृ + उण् । सम्बुद्धौ' जुषस्व—जुषी—प्रीतो सेवने च । लोट् । पुरुष-
त्रा—पुरुष + वा । कः —कृ + लुङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार इन्द्र की स्तुति कर लेने के अनन्तर विश्वा-
मित्र के प्रति नदियाँ कहती हैं—हे स्तोता विश्वामित्र ! अपने तथा अपनी नदियों
के बीच प्रादुर्भूत संलाप को तुम विस्मरण मत कर जाना । तुमने मनीषा के साथ
नदियों की स्तुति की और नदियों ने तुम्हारे प्रति मंगल-वचन कहे, यह संवाद
आगे भी आने वाले युगों में उद्घोषित रहें और तुम स्तुतियों में नदियों को
भी स्थान देते रहो' कभी भी पुरुषों में हमें नीचा न दिखाना और तुम्हारी
भगवत्भता में चातुरी की चन्द्रिका छिटकती रहे ।

८-

ओ षु स्वसारः कारवे शणोत

ययौ वो दूरादनसा रथेन ।

नि वू नमध्वं भवता सुपारा

अधो अक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥

पद-पाठ—ओ इति । सु । स्वसारः । कारवे । शृणोत । ययौ । वः ।

दूरात् । अनसा । रथेन । नि । सु । नमध्वम् । भवत । सु ऽ पारा । अधः ऽ अक्षाः ।

सिन्धवः । स्रोत्याभिः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना विश्वामित्रः प्रति वक्ति—हे स्वसारः ! सिन्धवः । भागिन्यः ! कारवे स्तोत्रे विश्वामित्राय स्तुतिवचनानि । ‘शृणोत’ सुष्ठु प्रकारेण शृणुत । ‘ययौ वो दूराद् अनसा रथेन’ योऽहम् अतिदूरात् अनसा शकटसमूहेन रथेन रथसमूहेन च पुष्कलसामग्रीजुट् वः युष्मान् प्राप्तोऽस्मि । ‘नि पू नमध्वम्’ यूयं सम्यक् प्रकारेण निम्ना नम्रा भवत । ‘भवता सुपारा’ सरलतया पारयोग्या च भवत । यूयं स्रोत्याभिः रसणयोग्यैः स्रोतोभिः ‘ऊधो अक्षाः’ रथाङ्गस्य अक्षस्याधस्तात् निम्ना भवत ।

टिप्पणी—स्वसारः—स्वसृ शब्दस्य बहुत्वे कारवे—कृ + उण् । चतुर्थी । शृणोत—शृ + लोट् । ययौ—या लिट् । नमध्वम्—नम् + लोट् । सुपाराः—कल्याणपाराः ।

हिन्दी व्याख्या—अब विश्वामित्र प्रत्युत्तर में कहते हैं—हे बहनों ! मेरी स्तुतियों को तुम प्रीति और आदर से सुनो । मैं बहुत दूर से शकट (छकड़ा) और रथों के साथ यज्ञ-सामग्री लेकर आया हूँ । तुम निम्न और नम्र हो जाओ । इतनी झुक जाओ कि हमारी गाड़ियाँ और सभी रथ सरलता से पार हो जायें । अपने समस्त स्रोतों को झुका लो जिससे जल का स्तर रथ के अक्ष (धुरे) से नीचे हो जाय ।

१०-

आ ते कारो शृणवामा वचांसि

ययाथ दूरादनसः रथेन ।

नि ते नसं पोष्यानेव योषा

मयमिव कन्या शश्वचै ते ॥१०॥

पद-पाठः—आ । ते । कारो इति । शृणवाम । वचांसि । ययाथ । दूरात् ।

अनसा । रथेन । नि । ते । न॒प् । पी॒प्याना ऽ इव । यो॒पा । म॒र्याय ऽ इव । क॒न्या ।

शा॒श्वचै । त इति ते ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—पूर्वं विश्वामित्रस्य वचनं प्रत्याख्यातम् । अधुना नद्यः प्रतिशृण्वन्ति । हे विश्वामित्र स्रोतः ! स्रोत्रं कुर्वाणस्य ते तव वचांसि वयं शृण्वाम शृणुमः । तव समीहितमभीष्टं सम्पादयामः । त्वम् अनसा शकटेन रथेन च सह पुष्कल सामग्री—जुषा यथाथ गच्छ । यतोऽतिदूराद् आगतोऽसि । वयमपि ते त्वदर्थं नितनै निम्ना भवाम । ‘पीप्यानेव योपा’ यथा स्तनं पाययन्ती पुत्रं प्रति माता निम्ना भवति । यथा वा कन्या शाश्वचै परिव्वजनाय पित्रे भ्रात्रे वा नम्रा भवति तद्वत् ते तुभ्यं वय कम्प्रा भवामः ।

टिप्पणी—कारो—कृ + उण् । कारुः । तत्सम्बुद्धौ । शृण्वाम—शृ + लोट् । यथाथ—या प्रायणे लिट् । पीप्याना—पी + कानच् + टाप् । घातो द्वित्वमभ्यास कार्यं च । न॒प्—नम् + लेट् । शाश्वचै—श्वञ्ज + लेट् । कन्या—कन्यते दीप्यते काम्यते वा सा कन्या । कनी + यक् ।

हिन्दी-व्याख्या—नदियों ने विश्वामित्र की प्रार्थना का उचित भर्पादित मधुर—उत्तर दिया—हे कारो ! स्तुति—समूह का निर्माण करने वाले ! हम आपके कष्ट—कठिनाई से अपरिचित नहीं हैं । आपके संवेदनशील वचनों के प्रति भी हमारा अन्तः समर्पण है । आप बहुत दूर से आये हैं और आपकी पुष्कल सामग्री इन रथों = शकटों पर पड़ी है । अब आप इस दुष्पार जल-राशि को पार कर लें । हम भी दूध पिलाने वाली माँ की भाँति शिशु के लिये झुक जाती हैं अथवा मनुष्य के प्रति कन्या के समान नम्र हो जाती हैं ।

११-

यद॒ङ्ग त्वा भ॒रताः स॒न्तरेयु—

ग॒च्छन् ग्राम इ॒षित इन्द्र॑जूतः ।

अ॒र्षदि॒ह प्रस॑वः स॒र्गैत॑क्त—

आ वो वृ॒णे सु॒मतिं य॒ज्ञिया॑नाम् ॥११॥

पद-पाठः—यत् । अ॒ङ्ग । त्वा । भर॒ताः । सं ऽ तरे॒युः । ग॒व्यन् । ग्रामः ।

इ॒षितः । इन्द्र ऽ जू॒तः । अ॒र्षात् । अ॒ह । प्र ऽ स॒वः । सर्गं ऽ त॒क्तः । आ । वः ।

वृ॒ण्णे । सु ऽ म॒तिम् । य॒ज्ञि॒याना॑म् ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—पुन विश्वामित्रः प्रार्थयते—हे स्वसारः नद्यः । अहं यज्ञि-
यानां यज्ञाह्निषां वः सुमति दयां शोभनां मतिम् आवृणे कामये । भरताः भरतवंशीया
जना यदि संतरेयुः उत्तरणाय अभीष्टकामाः स्युः । ते तदा तथैव यथा उत्तितीर्षु रहं
तरणसफलकामोऽभूवम् । तेऽपि तथैव युष्माकं कृपया तीर्णाः स्युः । गव्यन् उदकानि
तरीतुमिच्छन् इषितः युष्माभिरनुज्ञातः । तथैव इन्द्रजूतः इन्द्रेण प्रेरितः युष्माकं
प्रवर्तकेन इन्द्रेण दत्तप्रेरणः ग्रामः भरतानां मंघः अर्षात् सोऽपि तरीतुं समर्थः स्यात् ।
यतोऽहि सर्गतक्तः सर्गाय गमनाय प्रवृत्तः तेषां प्रसवः उद्योगोऽयथाऽहम् अभ्यनुज्ञातः ।
तथैव सोऽपि प्राप्तानुज्ञः स्यात् ।

टिप्पणी—गव्यन्—गो + शतृ + क्यच् । इषितः—इष + क्त + इट् । इन्द्र-
जूतः—इन्द्र + जू + क्तः । संतरेयुः—संम् + तृ + लिङ् । सर्गतक्तः—तक् + क्तः ।
अर्षात्—ऋ + -लेट् । यज्ञियानाम्—यज्ञ + घ । टाप् । षष्ठी बहुवचन ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्वामित्र कामनापूर्वक नदियों से प्रार्थना करते हैं—हे
बहिनों ! आपकी कल्याणी कामना और दया की मैं भीख माँगता हूँ । यदि कभी अपनी
अभीष्ट-कामना के साथ भरतवंशीय आपको पार करना चाहें तो जिस प्रकार आज
पार जाने की मेरी लालसा आपकी मंगल-कामना से पूर्ण हुई है इसी प्रकार उनकी
भी याचना पूर्ण होवे । 'गव्यन्' जलधाराओं को पार करने की इच्छा वाला मैं 'इषितः'
आपके द्वारा अनुगृहीत हुआ इसी प्रकार 'इन्द्रजूतः' इन्द्र के द्वारा प्रेरित 'ग्रामः'
भरतवंशीयों का सार्थवाह 'अर्षात्' तैरने में = पार जाने में समर्थ और सफल होवें ।
'सर्गतक्तः' गमन के लिए जिस प्रकार आपकी ओर से मुझे अनुज्ञा मिली इसी प्रकार
भरतवंशीयों को भी अनुज्ञा मिले—मिलती रहे । मैं आपकी कल्याणी कामना का
सदा अभिनन्दन करता हूँ ।

१२-

अ॒तारि॒षु भरि॒ता ग॒व्यवः॒ सम्

अ॒भक्त॒ वि॒प्रः सु॒म॒ति॒ न॒दीना॑म् ।

प्र पि॒न्व॒ध्वमि॒षय॑न्तीः सुरा॒धा—

आ व॒क्षणाः॑ पृ॒णध्वं॑ या॒त शी॒भम् ॥१२॥

पद-पाठः—अ॒तारि॒षुः । भ॒रताः॑ । ग॒व्यवः॑ । स॒म् । अ॒भक्तः॑ । वि॒प्रः । सु॒म॒तिम् ।

न॒दीना॑म् । प्र । पि॒न्व॒ध्वम् । इ॒षय॑न्तीः । सु॒रा॒धाः । आ । व॒क्षणाः॑ । पृ॒णध्व॑म् ।

या॒त । शी॒भम् ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—एवमतिहासाचष्टे—गव्यवः आत्मनो गा इच्छन्तः पारे गन्तुकामा भरता अतारिषुः नदीः उत्तीर्णाः, पारं गताः खलु । विप्रः स्रोता विश्वामित्रः नदीनां सुमति कृपाम् अभक्तं सम् अभजत । अलभत । इषयन्तीः धनं कुर्वाणाः सुराधाः शोभनधनोपेता यूयं प्र पिन्वध्वम् । तर्पयत प्रकृष्टतया । वक्षणा आ पृणध्वम् । कृत्रिम-सरितः कुल्याः पूरयध्वम् । शीभं यात । शीघ्रं प्रवहत । सदैव तेजो जलराशिभिः सवेगाः प्रवाहोपेता भवत ।

टिप्पणी—गव्यवः—गो + क्यच् । अतारिषुः—तृ + लुङ् । समभक्तसम्-पूर्वस्य भजधातोलुङ् । इषयन्तीः—इष् + णिच् + शतृ । डीप् । पिन्वध्वम्—पि॒वि (पिन्ड) + लोट् । पृणध्वम्—पृणधातोलौ रूपम् । यात—या प्रापणे लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—इस प्रकार इस मनोरञ्जक प्राकृतिक-सौन्दर्य का अभीक्षित आख्यान उपसंहार की ओर उन्मुख होता है—भरतवंशीय लोगों ने नदियों के विशाल लोगों ने नदियों के विशाल जल-राशि को पार-गमन की इच्छा से अपना सकल पूर्ण किया । विप्र स्रोता ऋषि ने भी नदियों की सुमति-कृपा प्राप्त किया । आशीर्वादित नदियों ! 'इषयन्तीः' धन-धान्य का कारण बनती हुई और 'सुराधाः' सुन्दर ऋद्धि-सिद्धि से सम्पन्न होकर 'प्र पिन्वध्वम्' सदा प्राणियों की प्रसन्न और तृप्त करती रहो । 'वक्षणाः' मनुष्यों द्वारा निमित्त कृत्रिम सरिताओं को (नहरों को) सदा लबालब भरती रहो । 'शीभं यात' शीघ्र बहती रहो । तुम्हारी तीव्र जल-धारा में सदा बेग-सामर्थ्य बना रहें ।

१३-

उ॒द्व ऊ॒र्मिः श॒म्या ह॒न्तु

आपो॑ यो॒क्ताणि॑ मुञ्चत ।

मा दुष्कृतौ व्येनसा—

ऽअन्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

पद-पाठः—उत् । वः । ऊर्मिः । शम्याः । हन्तु । आपः । योक्त्राणि ।

मुञ्चत । मा अदुः ऽ कृती । वि ऽ एनसा । अअन्यौ । शूनम् । आ । अरताम् ॥१३॥

संस्कृत व्याख्या—एवं विश्वामित्रः नदी स्तोत्ररूपेण प्राञ्चल वाचा तुष्टाव । ऋषिः स्तत्सम्बन्धिनो भरता एव पारं जग्मुः । यदा स ऋषिः उत्तिणीषुः पारं गच्छति तदा मध्येनदं प्रार्थयते—हे नद्यः युष्माकं ऊर्मिः तरङ्गः 'शम्या उद् हन्तु' बलीवर्द-संलग्ना रज्जवः ऊर्ध्वं यथा भवन्ति तथा हन्तुं प्राप्नोतु । तरङ्गै रज्जव आर्द्रा न न भवन्तिवत्यर्थः । हे आपः ! तस्मिन् नद्यः । 'योक्त्राणि मुञ्चत' योक्त्रसम्बद्धा रज्जूः मुञ्चत । नीचैः प्रवहत । अल्पतोया भवत्यो भवत । अदुष्कृतौ दोषरहितौ व्येनसा निरपराधौ अअन्यौ शूनं संकटं 'मा अरताम्' मा गमताम् ।

टिप्पणी—हन्तु—हेर्न्सागत्यो लोटि । योक्त्राणि—युजेः षट् । अदुष्कृती—नञ् + दुस् + कृ + विवप् + तुक् । व्येनसा व्येनसोऽएनः पापकं व्यपगतम् ऐनः ययोः तौ व्येनसौ, व्येनसा इति छन्दसि । अअन्यौ—हन् धातो र्यक् । नत्र् । उपधालोपः । घत्वम् । शूनम्—शिव + क्त । सम्प्रसारणम् । इकारस्य पूर्वरूपत्वम् । निष्ठा न त्वम् । आरताम्—ऋ गतौ लुङि ।

सायणस्तु 'व्येनसा विगतपापे अत एवादुष्कृतौ कल्याणकारिण्यौ अअन्यौ अअन्ये न केनापि तिरस्करणीये विपाट्छुतुघ्नौ शूनं समृद्धिम् आरताम् आगच्छताभिति' व्याख्यां चकार ।

हिन्दी व्याख्या—नदी के बीच में विश्वामित्र प्रार्थना करते हैं—हे बहनो ! आपकी चंचल तरंगें पगहे (रस्सी) से नीचे ही रहें । 'आपो योक्त्राणि मुञ्चत' आप अल्प जल वाली हो जायें जिससे हमारी रस्सियाँ भीगने से बच जायें । हमारे ये निरपराध, दोष रहित, वृषभ 'शूनम्' किसी प्रकार के संकट में 'न फँसें' इतनी कृपा आपकी होनी चाहिये ।

मण्डल ३
मित्र-सूक्तम्

सूक्त ५६

१-

मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो

मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।

मित्रः कृष्टीरनिमिषाभि चष्टे

मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥

पद-पाठः—मित्रः । जनान् । यातयति । ब्रुवाणः । मित्रः दाधार ।

पृथिवीम् । उत । द्याम् मित्रः कृष्टी । अनि ऽ मिषा । अभि । चष्टे । मित्राय ।

हव्यम् । घृत ऽ वत् । जुहोत ।

संस्कृत-व्याख्या—अयं मित्रः अहरभिमानि सूर्यो देवः जनान् सर्वान् प्रगिनः यातयति कर्मसु चेष्टयते । मित्र एव 'पृथिवीम् उत द्याम्' पृथ्वीलोकं द्युलोकं च धारयति । दृष्टि द्वारा संयोजयति । मित्र एव 'अनिमिषा' सावधानतया अनुग्रह-बुद्ध्या सर्वाः कृष्टीः कर्मवतो जनान् अमितः चष्टे पश्यति । अतः हे मनुष्याः । यूयं तस्मै मित्राय घृतवद् हविः जुहोत श्रद्धया प्रयच्छत ।

टिप्पणी—यातयति—'यती प्रयन्ते' लटि । दाधार—'तुजादीनाम्०' इति अभ्यासस्य दीर्घत्वम् । मैकुडानलं ने 'ब्रुवाणः' का अर्थ कहता हुआ तथा कृष्टीः का अर्थ मनुष्य मात्र [कृषि करने वाला न करके] किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—दिन के अभिमानि देवता मित्र रूप से समग्र मनुष्यों को 'यातयति' कर्म में प्रेरित करते हैं । मित्र ही पृथ्वी तथा आकाश को अपने आकर्षण से धारण किये हुए हैं । मित्र ही निर्निमेष (सावधान होकर) समस्त प्रजाओं की देख-

रेख करते हैं अतः सभी मनुष्यों का परम कर्तव्य है कि वे घृत, हवि आदि पवित्र सामाग्री से मित्र को प्रसन्न करें ।

२-

प्र स मित्र॑ मर्तो॑ अस्तु॑ प्रयस्वान्

यस्त॑ आदित्य॑ शिक्षति॑ व्रतेन॑ ।

न ह॑न्यते॒ न जी॑यते॒ त्वोतो॑

नैन॑म॒हो अ॒न्नोत्प॑न्ति॒तो न दू॒रात् ॥२॥

पद-पाठ—प्र । स । मि॒त्र । म॒र्तः । अ॒स्तु । प्र॒यस्वा॒न् । यः । ते । आ॒दि॒त्य ।

शि॒क्ष॒ति । व्र॒तेन॑ । न । ह॒न्य॒ते । न । जी॒य॒ते । त्वा ऽ ऊ॒तः । न । ए॒नम् । अ॒हः ।

अ॒न्नो॒ति । अ॒न्ति॒तः न । दू॒रात् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आदित्य ! व्रतेन नियमसंयमवताऽऽचारेण युक्तः यः पुरुषः ते तुभ्यं शिक्षति अहं त्वदीयोऽस्मीति हविः प्रयच्छति सः सदैव प्रयस्वान् अन्नधन सम्पन्नोऽस्तु भवतु । तदेतत् सत्यम्, त्वोतः पुरुषः त्वया संरक्षितः पुरुषः न केनापि हन्यते नापि जीयते पराभूयते । एनं श्रद्धोपेतं पुरुषं न कदापि अहंः पापं दुःखं वाऽन्तितः समीपात् न वा दूरात् अन्नोति प्राप्नोति ।

टिप्पणी—शिक्षति—शिक्षति दीनार्थकः । व्यत्येन परस्मै पदम् । प्रय—अन्न नाम ।

मैकुडानल ने—प्रयस्वान् का अर्थ 'मुख्य' किया है । शिक्षति का अर्थ 'नमस्कार' तथा 'व्रतेन' का अर्थ 'आदेश' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे आदित्य ! नियम-संयम के साथ जो व्यक्ति आदर और स्नेह पूर्वक आपके लिए हवि को प्रदान करता है वह सदैव अन्न धन आदि से सम्पन्न बना रहे । यह सत्य है कि मित्र देवता से संरक्षित पुरुष किसी भी व्यक्ति से किसी भी प्रकार की पीड़ा नहीं प्राप्त कर सकता और न तो वह जीवन-संग्राम में कभी पराजित ही होता है । उस व्यक्ति को 'अन्नितो न दूरात्' निकट से अथवा दूर से पाप स्पर्श नहीं कर सकता ।

३-

अ॒न॒मी॒वा॒स॒ इ॒ल॒या॒ म॒द॒न्तो

मि॒त॒ज्ञ॒वो॒ वा॒रि॒म॒न्ना॒ पृ॒थि॒व्याः ।

आ॒दि॒त्य॒स्य॑ व्र॒त॒ मु॒प॒ क्षि॒य॒न्तो॒
मैं -

व॒यं मि॒त्र॒स्य॑ सु॒म॒तौ॒ स्या॑म ॥३॥

पद-पाठः—अ॒न॒मी॒वा॒सः । इ॒ल॒या॒ । म॒द॒न्तः । मि॒त॒ऽज्ञ॒वः॒ व॒रि॒म॒न् । आ ।

पृ॒थि॒व्याः । आ॒दि॒त्य॒स्य॑ । व्र॒त॒म् । उ॒प॒ऽक्षि॒य॒न्तः । व॒य॒म् । मि॒त्र॒स्य॑ । सु॒ऽम॒तौ॒
स्या॑म ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मित्र ! वयं एते 'अनमीवासः' मीवा रोगः तद्रहिताः इलया अन्तेन मदन्तः सुखिनः सन्तः पृथिव्याः वरिमन् विस्तीर्णं स्थाने मितज्ञवः मितजानुकाः सर्वम् आदित्यस्य तव व्रतम् उपक्षियन्तः उपेत्य सम्पादयन्तः सुमतौ अनुग्रहबुद्धौ स्याम निवसेम ।

टिप्पणी—मदन्तः—'मदी हर्षे' व्यत्येन शप् । शतृ । वरिमन्—उरु शब्दात् इमनिच् । 'प्रिय स्थिर०' आदिना वरादेशः । 'मुपां सूलुक्०' इति सप्तम्या लुक् ।

मैकुडानल ते—मितज्ञवः का अर्थ 'दृढ़ जंघा वाले' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हम लोग निरोग होकर अन्न धन से परितृप्त रहते हुए पृथ्वी के विशाल प्रदेश में मितज्ञवः—नमिन जानु=घुटने टेक कर आदित्य सम्बन्धित वृत्तोपसना का सम्पादन करते हुए नित्य ही मित्र देवता की अनुग्रह-बुद्धि में आनन्दित बने रहें ।

४-

अ॒यं मि॒त्रो॒ न॒म॒स्यः॑ सु॒शे॒वो

रा॒जा॒ सु॒क्ष॒त्रो॒ अ॒ज॒नि॒ष्ट॒ वे॒धाः ।

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्या—

पि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥

पद-पाठ—अयम् । मित्रः । नमस्यः । सु ऽ शेवः । राजा । सु ऽ क्षत्रः ।

अजनिष्ट । वेधाः । तस्य । वयम् । सु ऽ मतौ । यज्ञियस्य । अपि । भद्रे । सौमनसे ।
स्याम ॥४॥

संस्कृत व्याख्या—अयं सुशेवः शोभनसुखः राजा प्रियतमः स्वामी सुक्षत्रः शोभनसामर्थ्यः सदैव अस्माभिः नमस्यः पूज्यः । यतो हि स वेधाः जगतो विधाता । अजनिष्ट—प्रादुरभूत् । तस्य यज्ञियस्य यज्ञार्हस्य देवस्य सुमतौ कल्याणायां बुद्धौ भद्रे सौमनसे सौमनस्ये वयं स्याम भवेम ।

टिप्पणी—नमस्यः—नमसि साधुः । यत् । सुक्षत्रः—क्षत्रेति—बलनाम । सुशेवः—शेव इति सुख नाम ।

मैक्डानल ने सौमनसे का अर्थ 'उत्तम प्रभाव वाला' । और सुशेव का अर्थ कृपालु किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह दिन का अभिमानी देव सूर्य हम सभी के द्वारा अभिवादन के योग्य है । 'सुशेवः' सभी सुन्दर सुख इसी सूर्य से उपलब्ध होते हैं । यही सूर्य प्रकाशमान होने से राजा और सर्वाधिक प्रभावशाली होने से 'सुक्षत्र' हैं यही सूर्य विश्व के विधाता (वेधाः) हैं । ऐसे यज्ञर्ह पवित्र सूर्य देव की सुमति में हम सदा बने रहें और उन्हीं की सुमनस्कता में सभी प्रकार की शान्ति तथा सुख की प्राप्ति करें ।

५-

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो

यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।

तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टम्-

अग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

पद-पाठः—महान् । आदित्यः । नमसा । उप ऽ सद्यः । यातयत् ऽ जनः ।

गृणते । सुशेवः । तस्मै । एतत् । पन्य ऽ तमाय । जुष्टम् । अग्नी । मित्राय ।
हविः । आ । जुहोत ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—अयम् मित्रभूत आदित्यो महान् खलु । अत एव नमसा नमनेन उपसद्यः । उपसदनीयः उपगमनीयः कीदृशः सूर्यः ? यातयज्जनः । स्वकर्मणि प्रवर्तनीया जना येन तथाविधः । स च मित्रः गृणते स्तुतिं कुर्वते पुरुषाय सुशेवः सुखस्वरूपोऽस्ति । तस्मै पन्यतमाय स्तुत्यतमाय मित्राय जुष्टं तृप्तिकारि हविः आ जुहोत जुहुत । सम्पादयत ।

टिप्पणी—यातयज्जनः । 'यती प्रयत्ने' णिचि शतृ । पन्यतमायपन स्तुतौ, यत् ।

मेकडानल ने जुष्टम् का अर्थ 'स्वीकरण योग्य' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—यह मित्र रूप में अवस्थित अधित्य महान् है । अत एव अभिवादन—अभिनन्दन के साथ साक्षात्करणीय है । यह आदित्य कैसा है ? 'यातयज्जनः' अपने-अपने कर्म में मनुष्यों को प्रवृत्त होने के लिये प्रेरित करने वाला है । यह आदित्य अपने स्तोता के लिये सर्वदा सुखस्वरूप है । उस अत्यन्त स्तुत्य (पन्यतमाय) मित्र के लिये प्रीति-तृप्ति देने वाले हविष्य का सम्पादन करना चाहिये ।

६-

मित्रस्य चर्षणोधृतोऽवो देवस्य सानसि ।

द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६॥

पद-पाठः—मित्रस्य । चर्षणिधृतः । अवः । देवस्य । सानसि । द्युम्नम् ।

चित्रश्रवःस्तमम् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य चर्षणोधृतः मेघाद् वृष्टिप्रदानेन कृपकाधारभूतस्य देवस्य मित्रस्य अवः अन्नं रक्षणसाधनं सानसि सर्वे जनेः प्रीत्या सेवनीयम् । संमजनीयम् । तदीयं च चित्रश्रवस्तमम् अतिशयेन कीर्ति युक्तं द्युम्नं द्योतनात्मकं धनं सर्वेषां कृते सुलभम् अस्ति ।

टिप्पणी—चर्पणीधृतः—चर्पणयो मनुष्यास्तान् धारकत्वे पातीति । अवः—
अन्ननाम । अवतीति । सानसि—वनपण समक्तो । निपातनात् वृद्धि द्युम्नम्—
धनम् । द्योतते इति । श्रवः—यशः ।

हिन्दी-व्याख्या—मेघ से जल प्रदान करने के कारण कृषकों के लिये मित्र
ही धारक-पालक हैं । उस मित्र के रक्षण साधन बने हुए 'अवः' अन्न की सेवा
करनी चाहिये । उस मित्र का यश अत्यन्त व्यापक और धन-धान्य से परिपूर्ण है ।

७-

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।

अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७॥

पद-पाठः—अभि । यः । महिना । दिवम् । मित्रः । बभूव । सप्रथाः ।

अभि । श्रवःऽभिः । पृथिवीम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं मित्रः स्वकीयेन महिना महिम्ना दिवम् अभिवभूव
अभिव्याप्य वर्तते । सः सप्रथाः प्रभूतेन यशसा युक्तः सन् श्रवोभिः उत्पादितः अन्नः
पृथिवीम् अपि बह्वन्तां सम्पादयन् अभिव्याप्नोति । सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तं प्रत्यस्मि-
नत इवि गम्यते ।

टिप्पणी—सप्रथाः—'प्रथ प्रख्याते' इति धातोरसुन् । 'वोपसर्जनस्य' इति
सहस्य सभावः ।

मैक्डानल ने 'श्रवोभिः' का अर्थ 'कीर्ति' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—यह मित्र अपनी महिमा से 'दिवम्' द्युलोक में भी अभि-
व्यापक रूप में विराजमान हैं और अत्यन्त 'श्रवोभिः' वृष्टि जल से उत्पादित अन्न
आदि के कारण 'पृथिवीम्' पृथ्वी लोक का भी संमरण एवम् अतिक्रमण कर रहे
हैं ।

८-

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टि शवसे ।

स देवान् विश्वान् विभर्ति ॥८॥

पद-पाठः—मित्राय । पञ्च । येमिरे । जनाः । अभिष्टि । शवसे । सः ।

देवान् । विश्वान् विभर्ति ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—‘अभिष्टि शवसे’ शत्रूणामभिभवनसमर्थाय मित्राय ‘पञ्च जनाः’ निपादपञ्चमाः सर्वे वर्णाः ‘येमिरे’ हवींषि प्रयच्छन्ति । स मित्रः विश्वान् देवान् दिव्यकर्मस्वभावान् विभर्ति धारयति ।

टिप्पणी—अभिष्टि शवसे—इपेः क्तिन् ।

मैकडानल ने ‘अभिष्टि शवसे’ का अर्थ ‘वलवान् सहायक’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—‘अभिष्टि शवसे’ शत्रुओं के तिरस्कार में समृद्ध तथा समर्थ मित्रभूत सूर्य के लिये पाँचों वर्ण ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य—शूद्र तथा निपाद) प्रीति से हविष्यान्न को समर्पण करते हैं । वह सूर्य भी अपने प्रताप से समस्त देवों को अपने अनुग्रह में धारण करते हैं ।

६-

मित्रो देवेवायुषु जनाय वृक्तवर्हिषे ।

इष इष्टव्रता अकः ॥९॥

पद-पाठ—मित्रः । देवेपु । आयुषु । जनाय । वृक्तऽ वर्हिषेः । इषः । इष्टऽ

व्रताः । अकरित्यकः ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—मित्रभूतो भगवान् सूर्यः देवेपु अथ आयुषु आयुष्मत्सु मनुष्येषु वृक्तवर्हिषे जनाय लूनवर्हिषे पुरुषाय कर्मतत्पराय नितरां प्रसन्नो भवति तस्मै च ‘इष्टव्रताः’ इच्छितव्रत-साधिकाः इषः अन्नानि अकः करोति ।

टिप्पणी—वृक्तवर्हिषे—‘ओत्रश्चू छेदने’ निष्ठा । ‘यस्य विभाषा’ इति इष्टप्रतिषेधः । अकः कृ धातोः लुङि० च्लेः लुक् ।

मैकडानल ने ‘वृक्तवर्हिषे’ का अर्थ ‘कुशा को वेदि के ऊपर फैलाने वाला’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—आयु की अपेक्षा से परे रह कर स्वयं स्वेच्छा से आयु पा लेने वाले (त्रिदशाः= तिस्रो दशा येषां ते=अपनी इच्छा के अनुसार बालक-युवक—वृद्ध बन जाने वाले, देशों में तथा आयु के आधीन चलने वाले मनुष्यों में वेदि पर कुशा आदि का फैलाव करने में चतुर व्यक्ति की तत्परता को देख कर सूर्य प्रसन्न होते हैं और ऐसे सावधान एवं कर्तव्य परायण व्यक्ति के लिए ‘इष्ट व्रताः’ इच्छित व्रत में साधक ‘इषः’ अन्नों का उत्पादन करते हैं ।

मण्डल ३

उषः-सूक्तम्

सूक्त ६१

ऋषि—विश्वामित्रः ।

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

देवता—उषाः ।

१—

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः

स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।

पुराणी देवि युवतिः पुरन्धि—

रनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

पद-पाठः—उषः । वाजेन । वाजिनि । प्रचेताः । स्तोमम् । जुषस्व ।

गृणतः । मघोनि । पुराणी । देवि । युवतिः । पुरन्धिः । अनु । व्रतम् । चरसि ।

विश्ववारे ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उषः दुःखदाहिके ! वाजिनि सम्पन्नधनयोगे ! मघोनि ऐश्वर्यसम्पन्ने ! प्रचेताः प्रचेतनामयी त्वं गृणतः तव स्तोत्रं कुर्वतो जनस्य स्तोमं स्तुतिसमूहं जुषस्व प्रीत्या सेवस्य । वाजेन अग्नेन कृपया सेवस्व । हे विश्ववारे सर्वजनवरणीये ! उषो देवि ! त्वं पुराणी नित्यनूतनाऽपि पुरातनि युवतिः युवतिरिव कमनीया तरुणी पुरन्धिः बहुता स्तोत्रलक्षणेन कर्मणा युक्ता सततशोभना । एतादृशां त्वयि वयं गुणोयेतायां श्रद्धालवः । त्वं च अनुव्रतं यज्ञकर्म प्रति चरसि अनुकूलतया वर्तसे ॥

टिप्पणी—पुरन्धिः—पुरम् + धा + किः । यद्वा—पुरुधीः—पुरुधी र्यस्याः पुरु इत्यस्य स्थाने पृषदरादित्वात् 'पुरम्' बहुव्रीहि ह्रस्वश्च । मघोनि—मघ शब्दात् मत्वर्थीयो वनिप् । मघशब्दो धनवाची । 'ऋन्नेभ्यो डीप्' इति डीप् । 'श्वयुव-मघोनाम् ०' इति सम्प्रसारणे गुणश्च । सम्बोधन शब्दः । वाज शब्दस्य बहवोऽर्थाः—

तीव्रः, संधर्षः, पुरस्कारः लाभः, कोपः, अन्नम्, हविः, वेगः, त्यागः, बलम्, युद्धम्, जयः, मित्रकेलिः, शत्रु क्रीडा, जयधनम्, रणश्रीः, सर्वमुपसः प्रभावात्त्वभते ।

हिन्दी-व्याख्या—(उपः, वाजिनि, मघोनि, देवि !) हे दुःख-शोक को दग्ध करने वाली धन-धान्य सम्पन्न, वेग और कान्ति को देने वाली शुभदात्री उपा ! तुम स्तुति करने वाले महानुभाव की स्तुतियों को कृपा करके श्रवण करो । तुम प्राचीन काल के आख्यानों से नित्य परिचित रहने पर भी नित्य सुन्दर तथा कमनीय तरुणी के सदृश आकर्षक हो । तुम्हारे कार्य और सौंदर्य की कोई सीमा नहीं है । संसार ने तुम्हारा वरण किया है और शुभाचारण को संसार के अन्तःकरण में तुम्हीं धारण करती हो ।

२—

उ॒पो दे॒व्यम॒र्त्या वि भा॒हि

च॒न्द्रर॒था सू॒नृ॒ता ई॒रय॑न्ती ।

आ त्वा वह॑न्तु सु॒यमा॑सो अ॒श्वा

हि॒र॒ण्यव॑र्णां पृ॒थु॒पाज॑सो ये ॥२॥

पद-पाठः—उपः । देवि । अमर्त्या । वि । भाहि । चन्द्ररथा । सूनृताः ।

ईरयन्ती । आ । त्वा वहन्तु । सुयमासः । अश्वाः । हिरण्यवर्णाम् । पृथुपाजसः ।
ये ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—चन्द्ररथा सुवर्णरथोपेताऽऽनन्दमयी अमर्त्या मरणधर्मरहिता हे उपो देवि ! त्वं वि भाहि सूर्यकिरणसम्बन्धेन विमानं कुरु । दीप्ता भव सूनृताः प्रियसत्यरूपा वाच ईरयन्ती उच्चारयन्ती नितरां त्वं दीप्यस्व । सुयमासः सुष्ठु नियन्त्रिता दान्ताः पृथुपाजसः प्रभूतबलवर्णा येऽश्वां सन्ति ते त्वाम् आ वहन्तु ।

टिप्पणी—सुयमासः—सु + यम + खल् । सूनृता—सु + ऋत, नुडागमः डकारदीर्घश्च । हिरण्यवर्णाम्—हितरमणीयवर्णाम्, स्वर्णवत्कमनीयवर्णाम् । चन्द्र-रथा—चन्द्रशब्दः स्वर्णपर्यायः । चदि आह्लादाने दीप्ती च । स्वर्णवत्कमनीयरथो-पेता ।

हिन्दी-व्याख्या—‘चन्द्ररथा उपो देवि !’ हे स्वर्णमय रथ पर आसीन होकर विचरण करने वाली उषा ! तुम ‘सूनृता ईरयन्ती’ प्रिय मधुर वाणी का उच्चारण करती हुई—प्रेरणा प्रदान करनी हुई ‘विभाहि’ विभान (विहान) करो जिससे समस्त संसार विकास की आभा से आभासित हो उठे । ‘पृथुपाजसः सुयमासः अश्व’ अत्यन्त बलवर्ण वाले सुगठित—नियन्त्रित अश्व निरन्तर तुम्हें वहन करके विश्व को आनन्दित करते रहें और तुम्हारा हिरण्यवर्ण रूप इसी प्रकार जगमगाता रहे ।

३—

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वा—

धर्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।

समानमर्थं चरणीयमाना

चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥

पद-पाठः—उपः । प्रतीची । भुवनानि । विश्वा । ऊर्ध्वा । तिष्ठसि ।

अमृतस्य केतुः समानम् । अर्थम् । चरणीयमाना । चक्रम् ऽ इव । नव्यसि । आ ।

ववृत्स्व ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—प्रतीची विश्वा सर्वाणि भुवनानि प्रति अञ्चतीति अभिमुख्येन प्राप्नोति इति प्रतीची । अमृतस्य केतुः अमृतस्य निर्माणस्य सूर्यस्य त्वमेव प्रज्ञापयित्री । उषस दृष्ट्वैव सूर्यागमनं प्रति विश्वसिति लोकः । ऊर्ध्वा तिष्ठति नभसि औन्नत्यं प्राप्य वर्तसे । समानम् अर्थम् एक मेव मार्गम् आश्रित्व नव्यसि पुनः पुनरुत्पन्ना सती नवतरा—हे नवीने उपो देवि । एकमेव मार्गमाश्रित्य चरणीयमाना अभिमुखं चरन्ती चक्रमिव यथा चक्रं रथाङ्गं पुनः पुनरावर्तते तथा त्वमपि पुनः पुनस्तस्मिन्नेव मार्गे आवर्तस्य आवृता भव सूर्यस्य चक्रमिव ।

टिप्पणी—प्रतीची—‘अञ्चते श्चोपसंख्यानम्’ इति डीप् । अर्थम् अर्थते गम्यते इत्यर्थो मार्गः । ऋ गतौ स्थन् प्रत्ययः । चरणीयमाना चरिन्त । यत्र तत्र चरणं मार्गः । चरणम् इच्छति इति क्यप् । आत्मनेपदम्, शानच् । टाप् । केतुः—चायः की, तुन् प्रत्ययः । नव्यसि—नवभवाद् ईयसुन्, ईकारलोपऽछान्दसः । आववृत्स्व—वृत्तु धातो ‘वहुलं छन्दसि’ शपः श्लुः । आत्मनेपदम्, लोट्, मध्यमपुरुषैकवचने ।

हिन्दो-व्याख्या—‘अमृतस्य केतुः’ अमरधर्मः सूर्य की पताका प्रजापतित्री धनकर सभी भुवनों पर व्याप्त होती हुई उषा गगन की ऊँची स्थली पर जगमगा रही है । अपने नित्य के ही परिचित मार्ग पर विचरण करती हुई सूर्य-चक्र के ही समान हे कल्याणी तुम अपने मार्ग पर सानन्द आवर्तन करती रहो ।

४—

अ॒द॒सू॒मे॒व चि॒न्व॒ती म॒घो—

न्यु॒षा या॒ति स्व॒सर॒स्य प॒त्नी ।

स्व १ ज॒नन्ती॑ सु॒भगा सु॒दं॒सा

आ॒न्ता॒द्वि॒वः प॒प्र॒थे आ॑ पृ॒थि॒व्याः ॥४॥

पद-पाठः—अ॒व । स्यू॒म १ इ॒व । चि॒न्व॒तो । म॒घो॒नी । उ॒षाः । या॒ति ।

स्व॒सर॒स्य । प॒त्नी । स्वः । ज॒नन्ती॑ । सु॒भगा । सु॒दं॒साः । आ । अ॒न्तात् । दि॒वः ।

प॒प्र॒थे । आ । पृ॒थि॒व्याः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—इयमुषाः स्वसरस्य स्वयं सारिणः सूर्य पत्नी पालयित्री सती स्यूमेव वस्त्रमिव विस्तीर्णं तमः अवचिन्वती अपक्षयं प्रापयन्ती मघोनी धनैश्वर्यसम्पन्ना याति मार्गानुसरणं करोति । स्य ज॑नन्ती स्वकीयं तेज उत्पादयन्ती सुभगा कल्याण-धना सौभाग्यवती सुदंशाः शोभनवर्मा सा खलु उषा दिव आ अन्तात् पृथिव्याश्च आ अन्तात् पप्रथे प्रधत्ते प्रकाशं तनुते ।

टिप्पणी—स्वसरस्य—सुष्ठु अस्यति क्षिपति तम इति स्वसरः सूर्यः । इति सायणः । स्यूम—सिन्धु ‘अवि णिवि शुषिभ्यः कित्’ इति कित् मन् प्रत्ययः । वकारस्य ऊठ् । यण् । सुलुक् । जनन्ती—जन् जनने णिच्, शन्, डीप् । छन्दस्युभयथा इति णिलोपः । स्वसरः—सु + असु + अरक् ।

(२) पीटर्सन ने ‘स्वसरस्य पत्नी’ का अर्थ किया है संसार की महारानी । सुदंसाः का अर्थ भी ‘सुन्दर रूप वाली’ किया है । स्यूम का अर्थ राय ने लगाम (रश्मि) किया है । लुडविग ने भी ‘लगाम को ढीला करती हुई’ अर्थ किया है ।

हिन्दो-व्याख्या—स्वयं सर्वशक्तिमान् सूर्य की पालिका उषा अन्धकार के आवरण को विध्वंस करती हुई ऐश्वर्य सम्पन्न महारानी के समान अपनी यात्रा पर

अग्रसर है । अपने तेज से विश्व को आक्रान्त करती हुई पृथिवी और आकाश के बीच में अपने शुभकर्म और सौभाग्य का विज्ञापन उपा कर रही है ।

५—

अच्छा वो देवी मुषसं विभाती

प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।

ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्

प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

पद-पाठः—अच्छ । वः । देवीम् । उपसम् । विभातीम् । प्र । वः भरध्वम् ।

नमसा । सुवृक्तिम् । ऊर्ध्वम् । मधुधा । दिवि पाजः । अश्रेत् । प्र । रोचना ।

रुरुचे । रण्वसंदृक् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे स्तोतारः यूयं विभाती शोभमानां देवी दिव्याम् उपसं प्रति अभिलक्ष्य सुवृकितं शोभनां स्तुतिं नमसा नमनभावेन प्रभरध्वं संपादयध्वम् । मधुधा मधुराणि सुखकराणि सौभ्यानि स्तुतिलक्षणानि वाक्यानि दधातीति मधुधा । उषा । सेयमुषा दिवि द्योतनात्मके नभसि ऊर्ध्वंभूर्ध्वाभिमुखं पाजः स्वकीयं तेजो विभानं सा अश्रेत् आश्रयति । रोचना रोचनशीला रण्वसंदृक् रमणीयसंदर्शना सेयमुषाः प्ररुरुचे प्रकर्षेण दीत्यते ।

टिप्पणी—मधुधा—मधुः सोमः, तं दधाति धारयतीति मधुधाआदित्यः । यद्वा—मधुधा उषाः, सा च मधुं सूर्यं दधाति । सुवृक्तिम्—सु + वृजी + क्तित् । सुष्ठुतया वज्र्यते आवज्र्यते जनो यसा सा सुवृक्तिः स्तुतिः । अश्रेत्—अश् + लृट् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—हे स्तुति करने में निपुण महानुभाव ! आप अत्यन्त नम्रता के साथ इस प्रभात वेला में देदीप्यमान उषा देवी के प्रति उत्तम स्तुतियां प्रारम्भ कीजिये । ऊपर गगन में आदित्य को धारण करने वाली उषा अपने दिव्य अलौकिक

तेज से जगमगा रही है। नयन के लिए हितकर रमणीय विभा चारों ओर सानन्द विखरा रही है।

६—

ऋ॒ता॒वरी॑ वि॒दो अ॒र्क॑र॒बो॒ध्या—

रे॒वती॑ रो॒दसी॑ चि॒त्रम॑स्थात् ।

आ॒य॒तीम॑ग्न उ॒षसं॑ वि॒भाती॑

वा॒यमे॑षि द्रवि॑णं भि॒क्षमा॑ण ॥६॥

पद-पाठः—ऋ॒ता॒वरी॑ । दि॒वः । अ॒र्कः । अ॒बो॒धि आ । रे॒वती॑ । रो॒दसी॑ इति॑ ।

चि॒त्रम् । अ॒स्थात् । आ॒य॒तीम् । अ॒ग्ने । उ॒ष॒सम् । वि॒भा॒तीम् । वा॒मम् । ए॒षि ।

द्रवि॑णम् । भि॒क्षमा॑णः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—ऋतावरी सत्यशीलस्वभावा इयभुषा दिवः द्युलोकात् अर्कः स्वकीयैस्तेजोभिः अबोधि सर्वैः सम्यक् प्रजायते । इयं रेवती धनैश्वर्यसम्पन्ना उषा रोदसी द्यावापृथिव्यौ अभिव्याप्य चित्रं नानाविधम् अस्थात् उपस्थिता तिष्ठति । हे अग्ने ! भिक्षमाणः याचमानस्त्वम् उषसं विभातीं भासमानां यदा याचसे तदा वामं कमनीयं द्रविणं धनम् एषि प्राप्तोपि ।

टिप्पणी—ऋतावरी—ऋत + वनिप् । 'मनोरच' नकारस्य स्थाने रेफः । 'ऋन्तेभ्यो ङीप्' । अर्कः—अर्कशब्दः सूर्यपर्यायः बहुवचन निर्देशात् लक्षणया 'तेजोभिः' इत्यर्थः । रेवती—रयि + मतुप् । 'रये मंती बहुलम्' यकारस्य सम्प्रसारणम् पूर्वरूपता गुणश्च । 'छन्दसीरः' मकारस्य वकारः । तथा 'उगितश्च' इति ङीप् । आयतीम्—आङ् + इण् + शतृ + ङीप् ।

हिन्दी-व्याख्या—'ऋतावरी' पदार्थों के यथार्थरूप को प्रकाशित करने वाली उषा गगन से आने वाले अपने तेज पुंज के कारण 'अबोधि' पहचान ली जाती है । 'रेवती' यह धनैश्वर्य की स्वामिनी अपने अंगलावण्य से जगमगा रही है । 'विभातीम्' अपनी विभा से अत्यन्त कमनीय कान्ति वाली इस उषा से हे अग्नि देव जब-जब आप भिक्षा मांगते हैं । कमनीय रत्न-धन को प्राप्त करते हैं ।

७—

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्

वृषा मही रोदसी आ विवेश ।

मही मित्रस्य वरुणस्य माया

चन्द्रेव भानुं विदधे पुरुत्रा ॥७॥

पद-पाठः—ऋतस्य । बुध्ने । उषसाम् । इषण्यन् । वृषा । मही इति ।

रोदसी इति आ । विवेश । मही । मित्रस्य । वरुणस्य । माया । चन्द्राऽइव ।

भानुम् । वि । दधे । पुरुत्रा ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—उषसाम् इषण्यन् प्रेरयन् अयं वृषा धर्मभूतः सूर्यः वृष्टि-
कारी मही महत्या रोदसी धावापृथिव्यो आ विवेश सर्वतः प्राप्नोति । कदा ? ऋतस्य
सत्यभूतस्य दिवसस्य बुध्ने मूलभागे प्रभातकाले इति यावत् इयमपि उषा मित्रस्य
दिनाभिमानिनो देवस्य वरुणस्य राज्यभि—मानिनो देवस्य च मही महती माया
ब्रभारूपा, सा च चन्द्रा इव सुवर्णानीव भानुं स्वकीयां विभां पुरुत्रा सर्वेषु विदधे
विस्तारयति ।

टिप्पणी—बुध्ने—बुधधातो नङ् । इषण्यन्—इच्छतीति इषन्, इषन्तम्
आत्मानम् इच्छतीति इषण्यति—इष + शतृ + क्वच् । नही—महत् + डीप् । उप-
धातकारयोर्लोपश्छान्दसः । पुरुत्रा—पुरु शब्दात् 'देव मनुष्य०' इति त्र प्रत्ययः ।
चन्द्रा—चन्द्रशब्दोऽत्र सुवर्णवाची ।

हिन्दी-व्याख्या—'ऋतस्य बुध्ने' यथार्थरूप से दीप्तमान् दिवस के मूल में
स्वर्णपीतवसना उषा को 'इषण्यन्' प्रेरित करता हुआ 'वृषा' वर्षा करने वाला सूर्य
'मही रोदसी' विशाल पृथ्वीलोक एवम् आकाशलोक के अन्तराल में 'आ विवेश'
प्रवेश पा रहा है । यह उषा 'मित्रस्य वरुणस्य' दिवस और रात्रि के मिलन की 'मही
माया' एक बड़ी विभा-विभूत है जो स्वर्ण के समान पीतप्रभा 'पुरुत्रा' सभी ओर
'विदधे' विस्तीर्ण कर रही है ।

उषः सूक्तम्

सूक्त ५१

ऋषिः—वामदेवः । देवता—उषाः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१-

इदमु॒ त्यत् पु॒रु॒त॒मं पु॒र॒स्तात्—

ज्योति॑ तम॒सो व॒यु॒नाव॒द॒स्थात् ।

नूनं॑ दि॒वो दु॒हि॒त॒रो वि॒भा॒तो—

गा॒तुं कृ॒णव॑न्नु॒ष॒सो ज॒नाय॑ ॥१॥

पद-पाठः—इदम् । ऊँ इति । त्यत् । पुरु ऽ तमम् । पुरस्तात् । ज्योतिः ।

तमसः । वयुन ऽ वत् । अस्थात् । नूनम् । दिवः । दुहितरः । वि ऽ भातीः । गातुम् ।

कृणवन् । उषसः । जनाय ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—‘इदमु॒ त्यत् पु॒र॒स्तात्’ इदं तत् प्राच्यां दिशि ‘पुरु॒त॒मं ज्योतिः वयु॒नाव॒त्’ आनन्द प्रदं तेजः ‘तमसः’ अन्धकारात् निः सृत्य ‘अस्थात्’ उत्तिष्ठति । कीदृशं ज्योतिः पुरु॒त॒मम् अत्यन्त-प्रभास्वरं प्रभूतम् । ‘नूनं दि॒वो दु॒हि॒त॒रः’ स्पष्टं दिवो ललनाया दुहितरः दुहितृस्थानीया उषसः ‘वि॒भा॒तोः’ विमानं प्रभातं कुर्वाणाः जनाय मनुष्याणां कृते ‘गा॒तुं कृ॒णव॑न्’ गमनादिव्यापार सामर्थ्यम् अकुर्वन् ।

टिप्पणी—दुहिता—दोघ इति दुहिता । गातुम्—इण् गतौ । तुन् प्रत्यायः । गा आदेशश्छान्दसः एति येन स गातुः मार्गः । जीवन साधन-प्रकारः । वयुनम्—इति पदनाम निषेधो ।

हिन्दी-व्याख्या—‘इदमु॒ त्यत्’ यह वह है ‘वयु॒नाव॒त् ज्योतिः’ आनन्द प्रद तेज जोकि ‘पुरस्तात्’ सामने पूर्व दिशा से ‘तमसः अस्थात्’ अन्धकार में से निकलता

हुआ 'पुरुतमम्' प्रभास्वर रूप में 'अस्थुः' प्रकट हो रहा है। 'नूनम् निश्चम ही 'दिवो दुहितरः' ध्रुलोक की पुत्रियाँ, 'विभातीः' विभान करती हुई 'जनाय' मनुष्यों के लिये 'उषसः' देवियाँ 'गातुं कृणवन्' गमनादि व्यापार के लिये सामर्थ्य प्रदान कर रही हैं।

२-

अस्थुः चित्रा उषसः पुरस्तात्

मिता इव स्वरवो ऽध्वरेषु ।

व्यू व्रजस्य तमसो द्वारो—

च्छन्ती रवञ्छुचयः पावकाः ॥२॥

पद-पाठः—अस्थुः । ऊँ इति । चित्राः । उषसः पुरस्तात् । मिताः इव ।

स्वरवः अध्वरेषु । वि । ऊँ इति । व्रजस्य । तमसः द्वारा । उच्छन्तीः । अव्रन् ।

शुचयः । पावकाः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—चित्राः चायनीया उषसः पुरस्तात् प्राच्यां दिशि 'अस्थुः' स्पष्ट प्रभावाः तिष्ठन्ति । 'मिता इव अध्वरेषु स्वरवः' अध्वरेषु मिताः खाताः स्वरवो यूपा इव । ते यथा प्रभूताः स्वर्णमया दीप्यन्ते तथा प्राच्यां दिशि उषसो द्योतन्ते । एता उषसः 'व्रजस्य तमसः द्वारा' व्रजस्य निवारकस्य अन्धकारस्य द्वाराणि 'वि उच्छन्तीः' उत्सारयन्त्यः 'शुचयः' शुद्धाः 'पावकाः' शोधयित्र्यः । 'अव्रन्' तेजसा आवृण्वन् ।

टिप्पणी—अव्रन्—लङ् । विकरण लोपश्छान्दसः । शुचयः—शुचयतीति शुचिः 'इगुपधात् क्ति' इन्प्रत्यय औणदिकः । स्वरवः—स्वृधातोः उप्रत्ययः । स्वर्त्यन्त इति स्वरवः । तमः—ताम्यतीति तमः । तमु कांक्षायाम् । असुन् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—'चित्रा उषसः' अद्भुत शोभा प्रदान करने वाली उषा-देवियाँ 'पुरस्तात्' प्राची दिशा में 'मिताः स्वरव इव' स्थापित किये गए यूप स्तम्भ की भाँति 'अस्थुः' जगमगा रही हैं । जिस प्रकार सजाये गए यज्ञस्तम्भ लाल-पीले

नीले जगमगाते हैं उसी प्रकार स्वर्णिम-प्रकाश के साथ प्राची दिशा में लालिमा चमक रही है । यह उषा देवियाँ 'शुचयः पावकाः' अत्यन्त शुभ और शोधक हैं जो 'व्रजस्य तमसः द्वारा वि उच्छन्तीः' आवरण करने वाले अन्धकार के द्वारों का स्वकीय प्रकाशमय तेज से उद्घाटन करती हैं ।

३-

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्

राधो देयासोषसो मघोनी ।

अचित्रे अन्तः पणयः ससन्तु—

बुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

पद-पाठः—उच्छन्तीः । अद्य । चितयन्त । भोजान् । राधः ऽ देयाय उपसः ।

मघोनीः । अचित्रे । अन्तरिति । पणयः । ससन्तु । अबुध्यमानाः । तमसः ।

विमध्ये ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अद्य उच्छन्तीः तमो विवासयन्त्यः 'मघोनीः' धनैश्वर्य-सम्पन्नाः 'राधो देयाय' धनप्रदानाय 'चितयन्त' प्रबोधयन्ति । 'अबुध्यमानाः' शयाना एव 'पणयः' कृपणाः 'अचित्रे अन्तः ससन्तु' अचायनीये प्रभावहीने 'तमसो विमध्ये' गाढान्धकारे ससन्तु स्वपन्तु ।

टिप्पणी—उच्छन्तीः—उच्छी विवासे । मघोनीः—मघ इति धननाम । तद्वतीः । राधः—धनम् । पणयः—कुसीदिनः कृपणाः । ससन्तु—पस—पसने, पसर्न च स्वप्नः ।

हिन्दी व्याख्या—आज प्रभातवेला में (उच्छन्तीः) अन्धकार को निर्वासन देती हुई उषा देवियाँ 'भोजान् चितयन्त' दानशील, उदार महानुभावों को प्रबुद्ध कर रही हैं । 'पणयः अचित्रे अन्तः अबुध्यमानाः तमसो वि मध्ये ससन्तु' पर पीड़ाकारी कञ्जूस लोग गाढ़ अन्धकार में प्रभावहीन होकर सोते रहें ।

४-

कु॒वित्स॑ दे॒वीः स॒मयो॑ न॒वो वा॒

यामो॑ व॒भूयादु॑ष॒सो वो अ॒द्य ।

येना॑ न॒वग्वे॑ अ॒ङ्गिरे॑ द॒शग्वे॑

स॒प्तास्ये॑ रे॒वती रे॒वदु॑श ॥४॥

पद-पाठः—कु॒वित् । सः । दे॒वीः । स॒नयः॑ । न॒वः । वा । यामः॑ । व॒भूयात् ।

उष॒सः । वः । अ॒द्य । येन॑ । न॒व ऽ ग्वे । अ॒ङ्गिरे॑ । द॒श ऽ ग्वे । स॒प्त ऽ अस्ये॑ । रे॒वती ।
रे॒वत् । ऊष॑ ।

संस्कृत-व्याख्या—हे उषसः वः युष्माकं 'यामः' यमनसाधनः रथः 'सनयो वा नवो वा' पुराणो वा नवीनो वा अद्य कुवित् बहुवारं 'वभूयात्' अम्माकं यज्ञं भूषयेत् । येन रथेन सप्तास्ये सप्तछन्दोयुक्तमुखे 'नवग्वे दशग्वे अङ्गिरे' नवनीतगतये नवाश्वगतये दशाश्वगतये वा ऽ ङ्गिरः समूहाय 'रेवत्' धनवत् कुलं यथा भवति तथा 'रेवतीः' रेवत्यः धनवत्यः यूयं भवत ।

टिप्पणी—देवीः—द्योतमानः । यामः—रथः, गमनसाधनः । नियमनसाधनो वा । नवग्वेः—अंगिरसः नवगवा उच्यन्ते नवगमनाः, नवाश्वगमना वा । अङ्गि प्राणा वा अङ्गिरसः । सनयः—पुराणः ।

हिन्दी व्याख्या—हे उषा देवियों ! 'सनयः नवो वा यामः' आपका रमणीय रथ चाहे प्राचीन हो या नवीन; वह रथ आज इस यज्ञ की पावन-वेला में हमारे लिए 'वभूयात्' शुभ और आनन्द का निष्पादन करे जिससे 'सप्तास्ये' सप्त छन्दोयुक्त मुख वाले 'नवग्वे' नव अश्वों पर अथवा 'दशग्वे' दश अश्वों पर (=नव संधारक प्राणों पर अथवा दशेन्द्रिय युक्त अश्वों पर) यात्रा के लिए चलने वाले 'अङ्गिरे' अंगिरा ऋषियों के लिए 'रेवत्' उनका कुल-कुटुम्ब धन-सम्पन्न हो, ऐसा 'रेवतीः ऊष' धनसम्पन्न उषा देवियाँ सम्पादन करें ।

५-

यूयं हि देवी ऋतयुग्मिभरश्वैः

परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।

प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं

द्विपा च्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥

पद-पाठः—यूयम् । हि । देवीः । ऋतयुक् ऽ भिः । अश्वैः । परि ऽ प्रयाथ ।

भुवनानि । सद्यः । प्र ऽ बोधयन्तीः । उरुषः । ससन्तम् । द्वि ऽ पात् । चतु ऽ
पात् । चरथाय । जीवम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उरुषः ! ऋतयुग्मिभः यज्ञगामिभिः अश्वैः यूयं भुवनानि सद्यः परिप्रयाथ परितः प्रयाणं कुरुथ । कथं गच्छथ ? ससन्तं स्वपन्तं जीवलोकां प्रबोधयन्तीः प्रबोधयन्त्यः येन द्विपात् चतुष्पाद् मनुष्य-खग-गवादियणः चरथाय स्व-स्वकर्मव्यापारार्थं प्रवर्तेत । प्रवृत्तिं लभेत ।

टिप्पणी—चरथाय—चरधातोरथच् प्रत्यय औणादिकः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दिव्य उषा देवियो ! आप अपने ऋत (यज्ञ) गामी अश्वों के साथ समस्त भुवन में एक साथ ही अभिव्याप्त हो जाती हो । समस्त स्वप्न-ग्रस्त जीवों को प्रबोधन देती हो और दो चरण वाले तथा चार चरण वाले (मानव-खग-गवादि) प्राणियों को अपने-अपने व्यापार में प्रवृत्त होने के लिए प्रेरित करती हो ।

६-

क्व स्विदासां कतमा पुराणी

यया विधाना विदधु ऋभूणाम् ।

शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति

न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

पद-पाठः—क्व । स्वि॒त् । आ॒साम् । क॒त॒मा । पु॒रा॒णी । य॒या । वि ऽ धा॒ना ।

वि ऽ द॒धुः । ऋ॒भू॒णाम् । शु॒भम् । य॒त् । शु॒भाः । उ॒षसः । च॒र॒न्ति । न । वि ।

ज्ञा॒यन्ते । सा॒दृ॒शीः । अ॒जु॒र्याः ।

संस्कृत-व्याख्या—एतासाम् उषसां माध्ये का स्वि॒त् पुरा॒णी पुरा॒तनी उषाः क्व स्वि॒त् आसी॒त् यया ऋ॒भू॒णाम् उपा॒सकाः वि॒धाना वि॒धानानि निर्मा॒णानि वि॒दधुः अकुर्वन् । इमा उषसः शु॒भा देदी॒प्यमा॒नाः शु॒भं तेजः (चरन्ति) उत्पा॒दयन्ति । तेन ए॒ता अजु॒र्याः अशी॒र्णाः सदृ॒शीः एकरू॒पाः समा॒नाका॒राः अतो न वि॒ज्ञायन्ते ए॒तासु का खलु नवी॒ना क॒त॒मा वा पु॒रा॒णी ।

टिप्पणी—अजुर्याः—नञ् उपपदात् जृधातोः । शुभ्राः—स्फायितंजि इत्यादिना रक् ।

हिन्दी-व्याख्या—इन उषा देवियों में कौन-सी पुरानी उषा थी जिसके कारण ऋभु ऋषियों के उपासकों ने 'विधाना' अपने यज्ञ-विधानों का 'विदधुः' सम्पादन किया । यह सभी उषा देवियों शुभ्र देदीप्यमान होकर अपने तेज का निरन्तर निष्पादन करती हैं । इनका वयोवर्णरूप एक-सा ही समान है अतः यह जाना नहीं जाता कि इनमें कौन प्राचीन है और कौन-सी नवीन है ।

७-

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासु—

रभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्या ।

यास्वीजानः शशमान उक्थेः

स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥

पद-पाठः—ताः । घ । ताः । भद्राः । उपसः । पुरा । आसुः । अभिष्टि ५

द्युम्नाः । ऋतजात ५ सत्याः । यामु । ईजानः । शशमानः । उक्थैः । स्तुवन् । शंसन् ।

द्रविणम् । सद्यः । आप ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—‘पुरा ता घा ता भद्रा उपस आसुः’ पुरा काले ता एव उप-
कारिण्य उपस आसन् । ‘अभिष्टिद्युम्नाः’ अभिगमनमात्रेण द्युम्नं द्योतकं धनम् अन्त-
र्वाह्यविभवौ यासां ताः । ‘ऋतजातसत्याः’ यज्ञार्थं जाताः सत्याः सत्यफलाश्च ।
यामु उपः सु ईजानः यागं कुर्वाणः उक्थैः स्तोत्रलक्षणैः शशमानः प्रशंसमानः स्तुवन्
स्तुतिं निष्पादयन् शंसन् प्रशंसन् द्रविणम् वैभवजातम् सद्यः तत्कालमेव आप
प्राप्नोति ।

टिप्पणी—भद्राः—भदि कल्याणे सुखे च । औणादिको रन् प्रत्ययः । नकार-
लोपः । द्युम्नम्—द्योतकम् । द्युम्नमिति पद नाम निघण्टो ।

हिन्दी-व्याख्या—वही उपकार-परायण उषा देवियाँ प्राचीनकाल में आविर्भूत
हुई ‘अभिष्टिद्युम्नाः’ जिनके अभिगमन स्पर्श से ही कान्ति-प्रद धन-वैभव की प्राप्ति
हुई । ‘ऋतजातसत्याः’ जिनका प्रादुर्भाव ही देवपूजा, संगतिकरण दान आदि शुभ
कर्मों के लिए हुआ है और जो प्रवृत्ति की सफलता में मूल कारण हैं । ‘यामु ईजानः’
जिन उषा देवियों के साक्ष्य में देव-पूजा आदि के माध्यम से प्रगति करता हुआ मानव
‘उक्थैः शशमानः’ स्तुति-वचनों से सराहना करता हुआ ‘स्तुवन् शंसन्’ स्तुति=गुण-
विस्तार एवं शंसन्=गुणानुरागपूर्वक प्रशंसा के कारण ‘द्रविणं सद्य आप’ तत्काल
ही धन आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है ।

८-

ता आ चरन्ति समना पुरस्तात्

समानतः समना पप्रथानाः ।

ऋतस्य देवीः सदसो बुधाना

गवां न सर्गा उषसो जरन्ते ॥८॥

पद-पाठः—ताः । आ । चरन्ति । समना । पुरस्तात् । समानत । समना ।

पप्रथानाः । ऋतस्य । देवीः । सदसः । बुधानाः । गवाम् न । सर्गाः । उपसः ।

जरन्ते ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—समानतः समानाद् देशाद् अन्तरिक्षात् समानाः समान-
मनस्काः समानाराश्च 'समना पप्रथानाः' सर्वस्मिन् प्रदेशे पुरस्तात् प्राच्यां दिशि
विस्तीर्णास्ता उपसः चरन्ति प्रादुर्भावं गच्छन्ति । इमा उपसः 'ऋतस्यदेवीः' यज्ञ-
रूपस्य संकलन-विकलनरूपस्य देव्यः प्रज्ञापयिष्यः 'सदसः बुधानाः' दिव्यरुचीन् सद-
स्यान् बोधयन्त्यः 'गवां सर्गां न' किरणानां सृष्टय उद उदकानां सृष्टय इव जरन्ते
स्तूयमानाः प्रादुर्भवन्ति ।

टिप्पणी—सदः 'सर्वज्ञातुभ्यो ऽ मुन् । उषाः—'उषः किच्च' । ओषति
दहति इति उषाः ।

हिन्दी व्याख्या—समान देश अन्तरिक्ष से समान-आकार और मन वाली पूर्व
दिशा में सभी ओर फैलने वाली उषा देवियाँ विचरण कर रही हैं । 'ऋतस्य देवी'
यह सत्य का प्रज्ञापन करती हैं । 'सदसो बुधानाः' दिव्य रुचि वाले सत्पुरुषों को
निरन्तर सावधान करती रहती हैं । 'गवां न सर्गाः' उदक-सृष्टि के समान,
किरण-सृष्टि के समान सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिए उषा देवियाँ स्तुति-पात्र
बनती हैं ।

६—

ता इन्वे ३ व समना समानी—

रमीतवर्णा उषसश्चरन्ति ।

गूहन्तीरम्बुमसितं रुशद्भिः

शुक्रास्तनूभिः शुचयो रुक्षाना ॥९॥

पद-पाठः—ताः । इत् । नु एव । समना । समानी । अमीत ऽ वर्णाः ।

उपसः । चरन्ति । गूहन्तीः । अन्वम् । असितम् । रणत् ऽ मिः । शुक्राः । तनूभिः ।

शुचयः रुचानाः ।

संस्कृत-व्याख्या—ता एवः अभीतवर्णाः, अपरिमित स्वरूपाः समानीः समानाख्यानाः समनो समानरूपाः उपसः चरन्ति । विचरन्ति । स्वकीयैः रुग्णदम्भिः अतिदीप्ताः प्रकाशैः असित रूपं कृष्णसन्धकारं गूहन्तीः पृथक् स्थापयन्त्यः एताः शुचयः रागद्वेष विवर्जिताः शुद्धाः तनूभिः रुचानाः रोचमानाः शुक्राः दीप्ताः सन्तीति ।

टिप्पणी—शुक्राः—शुच्यते पवित्रो भवतीति शुक्रः । रन् प्रत्ययः औणादिकः । अभीतवर्णाः—अहिंसितवर्णाः, अपरिमितवर्णा च । मीम् हिंसायाम् । त्तः । गूहन्तीः—गूह संवरणे ।

हिन्दी-व्याख्या—वही अपरिमित-स्वरूप वाली, समान रूप और आख्यान वाली उपा देवियाँ विचरण कर रही हैं । अपने वे 'रुग्णदम्भिः तनूभिः' कान्तिमान् और देदीप्यमान शरीर-अवयवों से अन्धकार को 'गूहन्तीः' निराचरण करती हुई, 'शुक्राः' अत्यन्त शुभ-वर्ण में जगमगाती हुई रुचाना' रुचिकर रूप में अवस्थित होकर 'शुचयः' राग-द्वेष को दूर करती हुई नेत्रों के लिये आनन्द की स्थापन करती हैं ।

१०-

रयिं दिवो दुहितरो विभातीः

प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवोः ।

स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः

सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥

पद-पाठ—रयिम् । दिवः । दुहितरः । वि ऽ भातीः । प्रजा ऽ वन्तम् ।

यच्छत । अस्मासु । देवोः । स्योनात् । आ । वः । प्रति ऽ बुध्यमानाः सु ऽ वीर्यस्य ।

पतयः । स्याम ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दिवो दुहितस्य द्योतनात्मकस्य सूर्यस्य दुहितृभूता उपसः ! विभातीः भानं प्रकाशं कुर्वाणाः दिव्याः यूयं 'प्रजावन्तं रयिम्' पुत्र-पौत्रादिसंवर्धनरूपं धनम् अस्मासु शरणपरायणेषु यच्छत प्रयच्छत । हे देव्यः ! वयं स्योनात् मुद-मङ्गलरूपात् सुखात् 'प्रतिबुध्यमानाः' निरन्तरं सावधानाः प्रतिबोधयन्तः सुवीर्यस्य सुपुष्टस्य परिवारोपेतस्य धनस्य पतयः स्वामिनः स्याम भवेम ।

टिप्पणी—दिवः—द्योतनात्मकस्य आदित्यस्य । स्योनात्—'सिवेष्टे—यूँ च' इति बाहुलकात् केवलोऽपि न प्रत्ययः । तेन ऊठादेशे कृते स्योनम् । सुवीर्यस्य-भवे यत् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे 'दिवो दुहितरः' सूर्य भगवान् की पुत्रीरूप उषा देवियो ! 'विभातीः देवीः' दिव्यरूप में द्युलोक से प्रकाश—किरणें फेंकने वाली आप 'अस्मासु' हम शरणागत उपासकों के लिये 'प्रजावन्तं रयिम्' संतति—सम्बर्धन रूप धन को 'यच्छत' देती रहो जिससे कि प्रतिदिन आनन्दमय वातावरण से अत्यन्त (स्योनात्) आनन्द की ओर 'प्रतिबुध्यमानाः' सावधान होकर हम बढ़ते-वृद्धि पाते रहें और 'सुवीर्यस्य पतयः स्याम' सदा हृष्ट-पुष्ट—प्रगतिशील परिवार से युक्त होकर इस लोक तथा परलोक के सुखों की प्राप्ति में दत्तावधान रहें ।

११—

तद्वो दिवो दुहितरो विभातीः

उप ब्रूवे उषसो यज्ञकेतुः ।

वयं स्याम यशसो जनेषु

तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवीः ॥११॥

११-पाठ—तत् । वः । दिवः । दुहितरः । वि ऽ भातीः । उप । ब्रूवे ।

उषसः । यज्ञ ऽ केतुः । वयम् । स्याम । यशसः । जनेषु । तत् । द्यौः । च । धत्ताम् ।

पृथिवी । च । देवीः ॥११॥

संकृत व्याख्या—यज्ञकेतुः यज्ञ एव केतुः संकेतस्थानो यस्य सोऽहम् उपब्रुवे उप सामीप्यं प्राप्य ब्रुवे प्रार्थये । हे दिवो दुहितरः प्रकाशात्मकस्य आदित्यस्य दुहितृ-
रूपाः विभातीः प्रकाशस्थानीयाः उपसः 'वयं जनेषु यशसः स्याम' वयं शौर्यादिना
जायमानस्य दानादिना प्रादुर्भूतस्य च यशसः स्वामिनो भवेम । तद् यशो नयन-
रमणीयेय पृथ्वी देवी धारयतु द्यौश्च भगनावरणा धारयतु ।

टिप्पणी—दिवः—द्योतनात्मकस्य सूर्यस्य । यज्ञकेतुः—यज्ञ एव केतुः
प्रज्ञापको यस्य ।

हिन्दी व्याख्या—'हे दिवो दुहितरः' सूर्य भगवान् की पुत्री बनी हुई उपा
देवियो ! मैं 'यज्ञकेतुः' यज्ञरूप विधान से ज्ञान प्राप्त करने वाला 'उपब्रुवे' निरन्तर
आपकी प्रार्थना में संलग्न रहा करूँ । 'विभातीः' हे प्रकाशस्वरूप वाली उपा
देवियो ! हम 'जनेषु यशसः स्याम' मनुष्यों में सदा कीर्ति प्राप्त करते रहें और
उस कीर्ति से यह आनन्ददात्री वसुधा सदा पुलकित रहे तथा द्युलोक भी प्रशंसित रहे
जिससे पृथ्वी के पुत्र उत्तरोत्तर श्रेष्ठ कार्यों में संलग्न रहें ।

मण्डल-४

सवितृ-सूक्तम्

सूक्त ५४

ऋषिः—वामदेवः । देवता—सविता । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१- अभूद्देवः सविता वन्द्यो नु न-

इदानीमहं उपवाच्यो नृभिः ।

वि यो रत्ना भजति मानवेभ्यः

श्रेष्ठो नो अत्र द्रविणं यथा दधत् ॥१॥

पद-पाठः—अ॒भू॒त । दे॒वः । स॒वि॒ता । व॒न्द्यः । नु॒ । नः । इ॒दानी॑म् । अ॒ह्णः ।

उ॒प॒वा॒च्यः । नृ॒भिः । वि॒ । यः । र॒त्ना । भ॒ज॒ति । मा॒न॒वे॒भ्यः । श्रे॒ष्ठम् । नः । अत्र॑ ।

द्र॒वि॒णम् । यथा॑ । द॒धत् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अयं सविता प्रसविता सर्वप्रेरक उत्पत्तिकर्ता च देवोऽभूत् । स्व महिम्ना प्रादुरभूत् । असौ देवो नु नोऽस्माकं सर्वेषां वन्द्यो वन्दनीयः खलु । अयं देवाऽह्णः दिवसस्य सवनकाले इदानीं नृभिः नेतृभिः उपवाच्य उपेत्य स्तुत्यो भवति । यो देवः मानवेभ्य रत्ना रमणीयानि धनानि विभजति वितरति । स देवः नः अस्मभ्यं श्रेष्ठं प्रशस्यं द्रविणं धनं यथा दधत् दद्यात् तथा ऽस्माभिः स प्रणम्यः ।

टिप्पणी—उपवाच्यः—ब्रुवो वच् 'ऋहलोर्ष्यत्' इत्युपधावृद्धि नु—क्षिप्रवाची । रत्ना—रत्नानि, रमणीयानि धनानि । देवः—द्योतनशीलः सूर्यः । अह्ण इति तृतीय सवनोपलक्षणम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जगत् के उत्पत्तिकर्ता और सर्वप्रेरक सविता देव का यह उदय काल है । यह समय भगवान् सविता देव के लिये नमन का समय है । सभी नेताओं को चाहिये वे इस समय मधुर, प्रिय एवं मननशील वाणी में उस देवता की प्रशंसा और अभिनन्दन करें । यही तो वे देव जो मनुष्यों के लिये विविध प्रकार के रमणीय सुख-साध और रत्नों को धारण करते हैं और देते हैं । वह प्रभु हमारे लिये प्रशंसनीय द्रव्यों से अलंकृत करें इस कारण सभी के द्वारा वही प्रणम्य एवम् अभिनन्दन के योग्य हैं ।

२-

दे॒वे॒भ्यो॑ हि॒ प्र॒थ॒मं॑ य॒ज्ञि॒ये॒भ्यो॑-

ऽमृ॒त॒त्वं॑ सु॒व॒सि॑ भा॒ग॒मु॒त्त॒मम्॑ ।

आ॒दि॒ह्मा॒मान॑ स॒वि॒त व्यू॑र्ण॒षे-

ऽनू॒ची॒ना जी॒वि॒ता मा॒नु॒षे॒भ्यः॑ ॥२॥

पद-पाठः—दे॒वे॒भ्यः । हि॒ । प्र॒थ॒मम् । य॒ज्ञि॒ये॒भ्यः । अ॒मृ॒त ऽ त्वम् । सु॒व॒सि॑ ।

भागम् । उत् ५ तमम् । आत् । इत् । दामानम् । सवितः । वि ५ ऊर्णुपे । अनुचीना ।

जीविता । मानुषेभ्यः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—यज्ञार्हेभ्यो देवेभ्योऽमृतत्वम् अतीवानन्दप्रदं सुखहेतुम् उत्कृष्टतया सोमादिरूपम् उत्पादयसि सुवसि प्रेरयसि च । आदित् अनन्तरमेव च दामानं दातारं हे सवितः ! त्वं वि ऊर्णुपे विशेषेण प्रकाशयसि । अनुचीना अनुक्रम-युक्तानि जीविता जीवितानि च मानुषेभ्यो मानवेभ्यस्त्वमेव प्रकाशयसि ।

टिप्पणी—भागम्—भज् भावे घञ् । दामानम्—दा + मनिम् । अनुचीना—अनुक्रमयुक्तानि पितृ पुत्र पौत्रादिरूपाणि । अन्वग्—भवा अनुचीना—अनु + अञ्च् + ख ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सर्वप्रेरक ! जगत् के उत्पत्तिकर्ता ! सूर्यदेव ! आप ही यज्ञोपयोगी देवों के लिये 'अमृतत्वं' सुवसि' उस आनन्द की सृष्टि करते हैं जिससे अमरता धर्म की सृष्टि होती है । यही जीवन का उत्कृष्ट भाग है । 'आदित्' अनन्तर है । 'दामानम्' हवि पदार्थों के दाताओं के लिये 'अनुचीना-जीविता' अनुक्रम युक्त (पिता-पुत्र-पौत्र आदि रूप) जीवन मनुष्यों के लिये 'विऊर्णुपे' विशेष कर प्रकाशित करते हैं जिससे कि मानव स्वस्थ, प्रसन्न जीवन प्राप्त करके जीवन के अमृत-आनन्द को प्राप्त कर लेता है ।

३- अचि॑त्ती यच्च॑कृ॒मा दै॒व्ये जने॑

दी॒ने दक्षे॑ः प्र॒भूती॑ पू॒रुष॒त्वता॑ ।

दे॒वेषु॑ च स॒वित॒ मानु॑षेषु च

त्वं नो॒ अत्र॑ सु॒वता॒दन॑गसः ॥३॥

पद-पाठः—अचि॑त्ती । यत् । च॒कृ॒म । दै॒व्ये । जने॑ । दी॒नेः । दक्षे॑ः ।

प्र ५ भू॑ती । पू॒रुष॒त्वता॑ । दे॒वेषु॑ । च । स॒वितः॑ । मानु॑षेषु । च । त्वम् । नः॑ । अत्र॑ ।

सुवतात् । अनागसः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः ! दैव्ये जने त्वादृशे दिव्यस्वभावके महात्मनि 'अचित्ती यत् चकृम' अचित्याऽप्रज्ञानेन यत् किमपि दुष्टं कर्म कृतवन्तः 'दीनैः दक्षैः प्रभूती पुरुषत्वता' यत् किमपि वा दीनतया दक्षतया प्रभुतया पुरुषतया वा पापं वयं कृतवन्तः । तत् पापकर्म स्यात् देवमुद्दिश्य वा कृतं भवेन् मानवं वा, हे देव सवितः ! त्वमत्र नोऽस्मान् अनागसः निष्पापान् सम्पादय सुवतात् । क्षमस्व कुरुष्व च निरपराधान् ।

टिप्पणी—अचित्ती, प्रभूती 'सुपां सुलुक्०' इति पूर्वसवर्णता । सुवतात्—'पुञ् अभिषवे' शप् । अनागसः—आगः पापम्, न विद्यते, आगो यस्यासौ अनागास्तेऽनागसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सविता देव ! 'अचित्ती' अज्ञान के कारण 'दैव्ये जने' आप जैसे देवता के प्रति अथवा महामानव के प्रति यदि कुछ हमसे अपराध हो गया हो तो आप कृपया क्षमा करें । 'दीनैः दक्षैः' चाहे वह अपराध देने के कारण हो गया हो अथवा 'दक्षता' के कारण हुआ हो 'प्रभूती पुरुषत्वता' चाहे प्रभुता (ऐश्वर्यमद) के कारण हो गया हो अथवा मैं ही पुरुष हूं, मुझमें ही पौरुष है, इस कारण हो गया हो, 'देवेषु च सवितः मानुषेषु च' चाहे वह अपराध देवताओं के प्रति हुआ हो अथवा मानवता के प्रति हो गया हो, 'त्वं नो अत्र' आप ही यहाँ पर अन्तर्यामी रूप से अवस्थित हैं, अतः आप हमें अनागसः सुवतात् निष्पाप बना दें । और कृपा करके क्षमा करें जिससे हम प्रायश्चित् आदि करके पुनः उज्ज्वल भविष्य की कल्पना-कामना कर सकें ।

४-

न प्रमीये सवितु दैव्यस्य तद्-

यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।

यत् पृथिव्या वरिमन्ता स्वङ्गरि-

र्वस्मन् दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

पदपाठः—न । प्रमीये । सवितुः । दैव्यस्य । तत् । यथा । विश्वम् ।

भुवन्म् । धारयिष्यति । यत् । पृथिव्याः । वरिमन् आ । सुऽअङ्गुरिः । वर्ष्मन् ।

दिवः । सुवति । सत्यम् । अस्य । तत् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—‘यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति’ येन सामर्थ्येन सविता इदं समग्रं भुवनं धारयति, तत्तस्य सामर्थ्यं सवितु देवात् न प्रमीये न प्रमीयेत नैव हिंस्येत । नैव कोऽपि तदपहर्तुं शक्नोति । विश्वधारण रूपं सामर्थ्यं तत्सवितुरेव देवस्यास्ति नान्यस्य कस्यचित् । तस्य च दैव्यं कर्म अहिंस्यम् ‘स्वङ्गुरिः’ शोभनाङ्गुलिः शुभलक्षणहस्तः पृथिव्या वरिमन् वरिमणि उरुत्वे यद् आसुवति प्रेरयति तथा च दिवः ध्रुलोकस्य वर्ष्मन् उरुत्वे चासुवति, तदस्य देवस्य सत्यभूतं कर्म सदैव भवादध्यम् ।

टिप्पणी—प्रमीये—प्र + मीञ् हिंसायाम्, कृत्यार्थे केन प्रत्ययः । धातोश्च ष्यङादेशः । वरिमन्—उरु + इमनिच् ‘प्रिय स्थिर०’ इत्यादिना वरादेशः । सुवति—‘षूप्रेरणे’ तुदादौ लटि ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस साहस एवं सामर्थ्य से सविता देव समस्त भुवनों का धारण-पोषण कर रहे हैं (तत् न प्रमीये) यह सामर्थ्य उनसे क्षीण नहीं किया जा सकता । उनका यह दिव्य कर्म सदैव पूज्य और अहिंस्य है । ‘पृथिव्या वरिमन्’ पृथिवी के विस्तीर्ण प्रदेश में तथा ‘दिवः वर्ष्मन्’ ध्रुलोक के विशाल क्षेत्र में भी ‘स्वङ्गुलिः’ सुन्दर अंगुली वाले (शुभहस्त) सविता देवता अपने ऐश्वर्य युक्त चमत्कार का विस्तार कर रहे हैं । यह सविता का यथार्थ कार्य सदैव निर्वाध तथा शिष्टानुमोदित है ।

५-

इन्द्रज्येष्ठान् बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः

क्षयां एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।

यथा यथा पतयन्तो वियेमिर-

एवैव तस्थुः सवितः सवाय ते ॥५॥

पद-पाठः—इन्द्रऽज्येष्ठान् । बृहत् ऽभ्यः । पर्वतेभ्यः । क्षयान् । एभ्यः ।

सुवसि । पस्त्यऽ वतः । यथाऽ यथा । पतयन्तः । विऽ येमिरे । एव । एव । तस्थुः ।

सवितरिति । सवाय । ते ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—‘इन्द्रज्येष्ठान्’ इन्द्र एव त्वमेव ज्येष्ठः श्रेष्ठः पूज्यो येषां ते, तान् अस्मान् ‘बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः’ पर्वतेभ्यः खल्वपि अधिकान् सुखविलासान् सुवसि उत्पादयसि । किंच ‘पस्त्यावतः क्षयान् एभ्यः सुवसि’ गृहवतः क्षयान् निवासान् एभ्यः गृहक्षेत्रादीन् सुवसि प्रकाशयसि । यथा-यथा पतयन्तः गच्छन्तः प्राणिनस्त्वया वियेमिरे विशेषेण निमग्न्यन्ते ‘एवैव’ एवमेव तथा तथा सवाय ते प्रसवाय अनुशासनाय ऐश्वर्याय च यथानियमं नियममनतिक्रम्य तस्थुः तिष्ठन्ति मर्यादायां स्थिता भवन्ति ।

टिप्पणी—इन्द्रज्येष्ठान्—इन्द्रः सविता, स एव ज्येष्ठो येषां ते, इन्द्रज्येष्ठाः तान् । पस्त्यावतः—पस्त्यावतः, पस्त्या इति गृहनाम्, मतुप् तद्वतो गृहवतः । पतयन्तः—स्वार्थे णिच्, ततः शतृ । वियेमिरे—वि + यम + लिट्, प्रथम पुरुष बहुवचने । तस्थुः—स्था + लिट् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘इन्द्र ज्येष्ठान्’ इन्द्रकोर आप को ही’ ज्येष्ठ-श्रेष्ठ मानने वाले हम लोगों के लिये आप ‘बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः’ पर्वतों से भी बड़कर सुख-सुविधा की सामग्री एकत्र करते हैं । ‘पस्त्यावतः क्षयान् एभ्यः सुवसि’ गृह लक्ष्मी से युक्त सुन्दर निवास-स्थानों का भी आप ही निर्माण करते हैं । जिस-जिस प्रकार से ‘पतयन्तः’ क्रियाशील प्राणी ‘वियेमिरे’ आपके द्वारा नियमन एवं नियन्त्रण पाते हैं ‘एवैव’ उसी-उसी भाँति ‘सवाय’ ते तस्थुः’ हे सविता देव ! आपकी अनुज्ञा में ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये वे अपने को उपयोगी एवं समर्थ बनाते हैं ।

६-

ये ते त्रिरहनत्सवितः सवासो

दिवे-दिवे सौभगमासुवन्ति ।

इन्द्रो द्यावा पृथिवी सिन्धु-

रद्भिरादित्यै नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

पद-पाठः—ये । ते । त्रिः । अहन् । सवितरिति । सवासः । दिवे ऽ दिवे ।

सौभगम् । आ ऽ सुवन्ति । इन्द्रः । द्यावापृथिवी इति । सिन्धुः । अत् ऽ भिः ।

आदित्यैः । नः । अदितिः । शर्म । यंसत् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सवितः ! जगत्पितः ! ये मनीषिणः ते तुभ्यं विरहन् प्रतिदिनं वारत्रयं (प्रातरादीनि सवनानि=प्रातः सवनं माध्यन्दिनं तृतीय सवनं चेति) सवासः अभिषवाः सोमाः सोमान् (द्वितीयार्थे प्रथमा) (=यद्वा सवासः सवनानि) दिवे-दिवे प्रतिदिनं सौभगं सौभाग्यं शुभोपलक्षणम् आसुवन्ति अभिषुण्वन्ति । तस्मादस्मान् इन्द्रः शर्म यंसत् शान्तिं सुखं च प्रयच्छतु । द्यावा पृथिव्यौ सिन्धुः आपः आदित्या अदितिः सर्वे नः अस्मान् शर्म यंसत् शान्तिं सुखमानन्दं च प्रयच्छन्तु ।

टिप्पणी—त्रिः—त्रिशब्दाद् भृशार्थे सुच् । अहन्—विभक्ते लुक् सप्तमी । सवासः—सवाः- द्वितीयार्थे प्रथमा, सवान् । सौभगम् सुभगशब्दाद् भावेऽण् । भगणव्दोऽत्रैश्वर्यवाची । आसुवन्ति—अनुप्रत्ययस्य स्थाने व्यत्ययेन शप् । यंसत्—यम धातो लेटि 'सिब्वहुलं लेटि' सिवागमः । तिप इकारलोपश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे जगत् के पिता सविता देव ! एक ही दिन में जो आपके तीन सवन हैं, उनको सम्पादन करने वाले मनीषी लोग प्रतिदिन आपके लिये अभिषव निर्माण करते हैं और ये तीनों सवन शुभ सम्पादित होकर हमारे लिये सौभाग्य का सृजन करते हैं । उन मनीषी पुरुषों के लिये इन्द्र देवता सदैव 'शर्म यंसत्' सुख-शान्ति की व्यवस्था करते रहें तथा द्युलोक की अभिमानिनी देवता, पृथिवी, सिन्धु, जल, आदित्य, मास, ऋतु तथा अदिति आदि देवता एवं उन-उन स्थानों के अभिमानी देवगण सदैव हमारे लिये 'शर्म यंसत्' सुख-सुविधा एवं शान्ति की व्यवस्था करते रहें ।

मण्डल ५

पर्जन्य-सूक्तम्

सूक्त ८३

ऋषि— अत्रिः— छन्दः— १, ५, ६, ७, ८, १० त्रिष्टुप्
२, ३, ४ जगती, ६ अनुष्टुप्

१—

अच्छा॑ वद॒ तव॑सं॒ गोभि॑राभिः

स्तु॒हि पर्ज॑न्यं॒ नम॑सा वि॒वास ।

कनि॑क्रदद् वृष॒भो जी॒रदा॑नु—

रेतो॑ दधा॒त्योष॑धीषु॒ गर्भ॑म् ॥१॥

पद-पाठः— अच्छा॑ वद॒ तव॑सम् । गोः ५ भिः । आभिः । स्तु॒हि । पर्ज॑न्यम् ।

नम॑सा । आ । वि॒वास । कनि॑क्रदत् । वृष॒भः । जी॒र ५ दानुः । रेतः । दधा॒ति ।

ओष॑धीषु । गर्भ॑म् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे स्तोतः ! आभिः प्रशस्ताभिः वाग्भिः एनं तवसं प्रतवसं प्रवृद्धं बलोपेतं तर्पयितारं पर्जन्यं अच्छ स्वच्छाशयेन वद ब्रूहि । स्तुहि च । स्वकीयेन नमसा हविः साधनेन 'विवास' परिचर । अयमेव वृषभः वर्षणशीलः पर्जन्य कनिक्रदत् गर्जन् स्वाभिप्रायम् आविर्भावयन् 'जीरदानुः' शिप्रदानकुशलः ओषधीषु रेत गर्भ-स्थानीयम् उदकं दधाति स्थापयति ।

टिप्पणी—पर्जन्य—तृपेराद्यन्तविपरीतस्य । तर्पयिता । परोजेता वा । जनयिता वा । पार्जयिता रसानाम् । आ विवास—आविवासय णिच् । लोट् । कनिक्रदत्—अतिशयेन क्रन्दति । शतृ । निवातनाम् । वृषभः—वर्षिता । जीरदानुः—जीवेरदानुक् ।

मैकुडानल ने नमसा का अर्थ 'नमस्कार', कनिक्रदत् का अर्थ दहाड़ता हुआ ब्रैल, गर्भ का अर्थ बीज तथा रेतः का अर्थ वीर्य किया है । राय ने विवास का अर्थ जीतना और जीरदानु का अर्थ 'शीघ्र दानी' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे स्तोता, इन प्रशस्त वचनावलियों से तृप्ति करने वाले पर्जन्य देवता की स्तुति, प्रशंसा तथा परिचर्या कर । क्षिप्र दानशील पर्जन्य 'कनिक्रदत्' गर्जन करता हुआ ओषधियों में वृष्टि के साथ जलीय गर्भ का स्थापन करता है ।

२—

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो

विश्वं विभाय भुवनं महावधात् ।

उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो

यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

पद-पाठ—वि । वृक्षान् । हन्ति । उत । हन्ति । रक्षसः । विश्वम् ।

विभाय । भुवनम् । महा ऽ वधात् । उत । अनागाः । ईषते । वृष्ण्य ऽ वतः । यत् ।

पर्जन्यः । स्तनयन् । हन्ति । दुष्कृतः ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य पर्जन्यस्य महान् हि वधः । अवृष्ट्या ऽ तिवृष्ट्या चास्य महावधात् विश्वं भुवनं समस्तं जगत् विभाय विभेति । अयं प्रकुपितः पर्जन्यः वात्यया दृढानपि वृक्षानुन्मूलयति । समस्तानि च रक्षांसि रक्षः स्वाभावानुद्वेजयति । अनागाः खल्वपि निरपश्वधो ऽपि पुरुषः वृष्ण्यातः वर्षकर्मवतः पर्जन्यात् ईषते भयहेतोः पलायते । करकापात समुद्यतो मेघाभिमानी पर्जन्यः स्तनयन् गर्जन् यदा दुष्कृतः दूषितमनोव्रतान् वृष्ण्यावतः वृषलवत् दुष्टाचारान् हन्ति लब्धपरिणामान् करोति तदा स्थिरानपि अधीरयति ।

टिप्पणी—वृष्ण्यावतः—वृष्ण्यावतः वर्षकर्मवतः । वृषणं पावम् तदिच्छति इति वृष्ण्यः । अकारलोपः । दीर्घश्छान्त्सः । अनागाः—न विद्यते आगः अपराधो यस्येति अनागाः । महावधः—वज्रवधः ।

बृलन्ट ने मेघाभिमानी दैत्यों को ही 'दुष्कृतः' माना है ।

हिन्दी-व्याख्या—इस मेघाभिमानी पर्जन्य देव का प्रहार वज्र-प्रहार के समान महान् वध है। अवृष्टि अथवा अतिवृष्टि के द्वारा प्रजा में भय-विह्वल शङ्का उपस्थित करने वाले पर्जन्य के महावध से सारा संसार थर्रा उठता है। यह प्रकुपित पर्जन्य अपने हिमानी झंझावात से महान् से महान् वृक्षों को भी उखाड़ फेंकता है। समस्त राक्षस स्वभाव वालों को भी सर्प-पतिल तुल्य निपीड़ित कर देता है। 'वृष्ण्यावतः' वर्षा करने वाले पर्जन्य के भीषण रूप को देखकर 'अनागाः' निष्पाप व्यक्ति भी घबरा जाता है। ओलावृष्टि के साथ गर्जन करता हुआ मेघाभिमानी पर्जन्य जब 'वृष्ण्यावतः' वृषल की भांति दुष्ट कर्म करने वालों पर अपने भयानक प्रहार से उनके पापों का फल-स्वाद दिखाता है तब बड़े-बड़े ध्यानवान् के भी हृदय में भय व्याप जाता है।

३—

रथीव कशयाश्वान् अभिक्षिपन्

आवि दूतान् कृणुते वर्ष्मन् ३ अह ।

दूरात् सिंहस्य स्तनथा उदीरते

यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्मन् १ नभः ॥३॥

पद-पाठ—रथी ऽ इव । कशया । अश्वान् । अभि ऽ क्षिपन् । आविः ।

दूतान् । कृणुते । वर्ष्मन् । अह । दूरात् । सिंहस्य । स्तनथाः । उत् । ईरते । यत् ।

पर्जन्यः । कृणुते । वर्ष्मन् । नभः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा 'रथी' रथ स्वामी कशया अश्वतर्जन्या अश्वान् अभिक्षिपन् अभिप्रेरयन् दूतान् स्वकीयान् युद्धकुशलान् भटान् आविष्करोति तथा ऽ यं पर्जन्यो ऽ पि कशया विद्युता अश्वान् मेघान् अभिक्षिपन् अभिप्रेरयन् स्वकीयान् दूतवदवस्थितान् वर्ष्मान् वर्षकान् मेघान् प्रकटयति । यत् यदा पर्जन्यः नभः आकाशं वर्ष्मन् वर्षोपेतं कृणुते करोति तदा दूरादेव सिंहस्य 'स्तनथाः' गर्जनानीव उदीरते उद्भवन्ति ।

टिप्पणी—स्तनथाः—स्तनात् थन् प्रत्ययः । बहुवचनम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार रथ का स्वामी चावुक से अपने अश्वों को प्रेरित करता हुआ अपने युद्ध-कुशल शूरों को प्रकट करता है उसी प्रकार यह पर्जन्य भी अपनी विद्युत् के चावुक से अपने जल-कुशल मेघों को प्रेरित करता हुआ वर्षण-शील मेघों को उद्भासित करता है । जिस समय यह मेघाभिमानी पर्जन्य आकाश को वर्षादक से भर देता है तब दूर से सिंह-गर्जन सा मुनाई देने लगता है ।

४—

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत

उदोषधी जिहते पिन्वते स्वः ।

इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते

यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

पद-पाठः—प्र । वाताः । वान्ति । पतयन्ति । वि ५ द्युतः । उत् । ओषधीः ।

जिहते । पिन्वते । स्वः १ रिति स्वः । इरा । विश्वस्मै । भुवनाय । जायते । यत् ।

पर्जन्यः । पृथिवीम् । रेतसा । अवति ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा पर्जन्यः मेघाभिमानी देवः रेतसा वृष्टि-जलेन पृथिवीम् अवति तर्पयति तदा वाताः प्र वान्ति मेघोदरविनिर्मुक्ताः शीतला वाता-श्चलन्ति । विद्युतः पतयन्ति आकाशे सगर्जनं विद्योतन्ते । ओषधीः ओषधयः उत् जिह्वते साङ्कुराः प्रवर्धन्ते । स्वः आकाशं च पिन्वते जलस्थोत्पन्नं भजन् महत्वं समुल्लासयति । इरा अन्नपूर्णा पृथ्वी च विश्वस्मै भुवनाय हितार्थं समर्था भवति ।

टिप्पणी—पतयन्ति—स्वार्थे णिच् । जिहते—ओहाड़ गतौ लटि रूपम् । रेतः—उदकम् ।

मैकडानल ने 'पिन्वते' का अर्थ 'पूर्ण होना', अवति का अर्थ अंकुर उत्पन्न करना लिखा है ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस समय मेघाभिमानी देव 'रेतसा' वृष्टि-जल से पृथ्वी को परितृप्त करते हैं उस समय मेघोदर से निकला शीतल पवन संचार करता है । गगन में गर्जना के साथ बिजली चमकती है । ओषधियाँ अंकुरित होकर लहलहा

उठती हैं । जल की पूर्णता के कारण आकाश झुक जाता है और अन्नपूर्णा वसुधा जगत्कल्याण के लिए समर्थ हो जाती है ।

५—

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति

यस्य व्रते शफवज्जभुरीति ।

यस्य व्रते ओषधी विश्वरूपाः

स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

पद-पाठः—यस्य । व्रते । पृथिवी । नन्नमीति । यस्य । व्रते । शफ ऽ वत् ।

जभुंरीति । यस्य । व्रते । ओषधीः । विश्व ऽ रूपाः । सः । नः । पर्जन्य । महि ।

शर्म । यच्छ ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य ! त्वं नः अस्मभ्यं महि महत् शर्म सुखं यच्छ प्रयच्छ यतो हि तवैव व्रते नियमे इयं सर्वसहना विश्वभरा वसुधा 'नन्नमीति' अत्यर्थं नम्रा भवति । तवैव व्रते कर्मणि पूर्णं सति एतत् शफवत् पादोपेतं गवादिकं 'जभुंरीति' संभ्रियते पोष्यते च । तवैव च व्रते नियमे ऽ वस्थिता इमा ओषधयो वनस्पतयश्च विश्वरूपा नानारूपाः प्रादुर्भवन्ति ।

टिप्पणी—नन्नमीति—नम धातो यङ् लुक् । लट् । जभुंरीति—'भृञ् भरणे' यङ्-लुक् । लट् । उकारागमश्छान्दसः । भुरण धारणपोषणयोरिति सायणः । भुर धातुमपि सायणाचार्यं इच्छति ।

मैक्डानल ने—व्रत का अर्थ 'आदेश', 'जभुंरीति' का अर्थ 'कूदने लगते हैं', तथा शर्म का अर्थ आश्रय किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! आप हमारे लिए बहुत ही जीवनोपयोगी सुख-सुविधा दीजिये क्योंकि आपके ही नियमों में यह माता धरित्री अत्यन्त सुशील रहती है । आपके ही कार्यकौशल के आधार पर यह चरणधारी पशु आदि भरण-पोषण पाते तथा संचार करते हैं और आपके ही नियम में अत्यन्त अवस्थित रहने के कारण ये ओषधि-वनस्पतियां नाना रूपों में पल्लवित तथा उल्लसित होती हैं ।

६-

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं

प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।

अर्वाङ्तेन स्तनयित्नुनेहि—

अपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥

पद-पाठः—दिवः । नः । वृष्टिम् । मरुतः । ररीध्वम् । प्र । पिन्वत । वृष्णः

अश्वस्य । धाराः । अर्वाङ् । एतेन । स्तनयित्नुना । आ । इहि । अपः ।

नि ऽ सिञ्चन् । असुरः । पिता । नः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मरुतः । यूयं दिवः सकाशात् नोऽस्मभ्यं वृष्टिं ररीध्वं प्रयच्छत । वृष्णो वर्षकस्य अश्वस्य व्यायिनो मेघस्य धारा जलधाराः प्र पिन्वत प्रपूरयत । हे पर्जन्य ! मेघाभिमानिन् । त्वमपि एतेन खलु स्तनयित्नुना गर्जनशीलेन मेघ-रथेन 'आ इहि' शीघ्रम् आयाहि । त्वमेव हि नः पिता यो हि शुष्कां पृथ्वीं वसुन्धरां सम्पादयत् उर्वरां करोषि । अपः निरसन् त्वमेव प्राणप्रदः असुरः उदकानां निरसिता । त्वमेव । 'अपो निषिञ्चन्' जलानि निक्षिपन् पृथ्वीमार्द्रां कोमलां सस्यश्यामलां विदधासि ।

टिप्पणी—ररीध्वम्—रीङ्, गतौ यङ्लुक् । उपधा ईकारस्य अकारः । लिङ् । स्तनयित्नुना—स्तन—णिच्—इष्णुच् असुरः—अस्यतीति ।

मैकुंडानल ने 'अश्वस्य' का अर्थ घोड़ा और 'अर्वाङ्' का अर्थ ऊँचा किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे मरुद्गण ! आप सब आकाश से हमारे लिए लाभप्रद वृष्टि प्रदान करें और इसके लिए व्यापक मेघ को सदा संभृत करते रहें । हे मेघ के अभिमानी देवता पर्जन्य तुम भी अपने गर्जनशील मेघ-रथ पर सवार होकर शीघ्र आगमन करो क्योंकि सूखी पृथ्वी को उर्वर बनाकर तुम ही उसे वसुन्धरा बनाते हो । तुम ही जल-क्षेपण करके प्राण-प्रदाता असुर हो । इस कारण तुम ही हमारे प्राणा-धायक पिता हो ।

७-

अ॒भि॒क्र॒न्द स्त॒नय॒ गर्भ॑मा॒धा—

उद॑न्व॒ता परि॑दीया रथे॒न ।

दृ॒ति॒ सु क॒र्ष वि॒षितं॑ न्यञ्चं

स॒मा भव॑न्तु॒द्वतो॒ निपा॒दाः ॥७॥

पद-पाठ—अ॒भि । क्र॒न्द । स्त॒नय॒ । गर्भ॑म् । आ । धाः । उद॑न् ऽ व॒ता ।

परि॑ । दी॒य । रथे॒न । दृ॒तिम् । सु । क॒र्ष । वि ऽ वि॒तम् । न्यञ्च॑म् । स॒माः ।

भव॑न्तु । उ॒तु ऽ व॒तः । नि॒पा॒दाः ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे जलाभिमानिन् । त्वम् अभिक्रन्द । स्तनय भूमि प्रति मधुरेण शब्देन आशवासय । ओषधीषु गर्भस्थानीयं जलमाधेहि : एतदर्थं च उदकवता रथेन परिदीय परितः प्राप्नुहि । दृति दृतिवत् जलाधारं विषितं विशेषेण बद्धं मेघं न्यञ्चम् अधोमुखं सुकर्ष सम्यक् वृष्ट्यर्थं कर्षय । तथा कृते सति उद्वतः उन्नतप्रदेशाः निपादाः निम्नप्रदेशाः खल्वपि जलपूर्णतया समा भवन्तु ।

टिप्पणी—उदन्वता—उदक + मतुप् । उदकस्य उदन् आदेशः । दृति = मशक । विषितम्—विपूर्वात् पिञ् वन्धने । विबद्धम् । यद्वा विगतबन्धनम् । उद्वतः—ऊर्ध्ववन्तं उन्नतप्रदेशाः । निपादाः—निकृष्टपादः = निम्नोन्नत प्रदेशाः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! आप पृथ्वी के लिए मंगल-ध्वनि बार-बार कीजिये, जिससे यह पृथ्वी पूर्णतया आश्वस्त हो । ओषधियों में जलीय गर्भ का आधान कीजिये और इसी निमित्त से जलवाही मेघ-रथ पर आसीन होकर चारों ओर विचरण कीजिये । 'दृति सु कर्ष विषितं न्यञ्चम्' दृति (मशक) की भाँति बँधे हुए जलाधार मेघ को वृष्टि के लिए आकृष्ट करके नीचे कीजिये जिससे 'उद्वतः निपादाः' ऊँचे-नीचे सभी प्रदेश जलपूर्ण होकर (समा भवन्तु) बराबर हो जायँ ।

६-

म॒हान्तं॑ को॒शमु॑द॒चा नि॒षिञ्च॑

स्य॑न्दन्तां॒ कु॒ल्या वि॒षिताः॑ पु॒रस्ता॑त् ।

धृ॒तेन॑ द्या॒वापृ॑थि॒वी व्यु॑न्धि

सु॒प्रपा॑णं भव॒त्वध॑न्याभ्यः ॥८॥

पद-पाठः—म॒हान्तम् । को॒शम् । उ॒त् । अ॒च । नि । सि॒ञ्च । स्य॑न्दन्ताम् ।

कु॒ल्याः । वि ऽ सि॒ताः । पु॒रस्ता॑त् । धृ॒तेन॑ । द्या॒वापृ॑थि॒वी इति॑ । वि । उ॒न्धि ।

सु ऽ प्र॒पा॒णम् । भ॒दतु॑ । अ॒ध॒न्याभ्यः॑ ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—हे पर्जन्य ! महान्तं विशालं कोशं कोशवत् प्रवृद्धं मेघम् उदच उपरि कुरु । निषिञ्च निम्नाभिमुखं सिंच । तथाकृते सति पुरस्तात् पूर्वाभिमुखं कुल्याः जलगर्भा नद्यः स्यन्दन्ताम् प्रवाहोपेताः भवन्तु । एतेन धृतेन जलराशिना दीप्तिमता दिवं च पृथिवीं च वि उन्धि सम्यक् आर्द्रा कुरु । एवं कृते सति अधन्याभ्यः गोभ्यः सुप्रपाणं स्वच्छतया पातव्यं जलं सुगमं भवतु ।

टिप्पणी—अच—अञ्चु गती लोट् । नकारलोपश्छान्दसः । उन्धि—‘उन्दी क्लेदने’ लोट् । विषिताः—विगतबन्धनाः ।

मैक्डानल ने कोश का अर्थ ‘बाल्टी’, धृतेन का अर्थ ‘घो’ से किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! इस महान् जल-कोश से युक्त मेघ को ऊपर उठाइये और नीचे की ओर तृषाकुल पृथ्वी पर वर्षा द्वारा सिंचन कीजिये । ऐसा करने पर सभी नदियाँ जल से लबालब भर कर पूर्व की ओर चल देंगी । इस प्रकार समस्त आकाश तथा भूलोक जल से गीला हो जायेगा और गायों के लिए भी स्वच्छ-मधुर जल पीने के लिए सुलभ हो पायेगा ।

६-

य॒ पर्जन्य॑ कनि॒क्रदत्

स्तनय॑न् हंसि॑ दु॒ष्कृतः॑ ॥

प्रती॑दं विश्वं॑ मोद॒ते

यत् किंच॑ पृथि॒व्यमधि॑ ॥६॥

पद-पाठः—यत् । पर्जन्य । कनि॒क्रदत् । स्तनय॑न् । हंसि॑ । दुः ५ कृतः॑ ।

प्रति॑ । इ॒दम् । विश्वम् । मो॒दते॑ । यत् । किम् । च । पृथि॒व्याम् । अधि॑ ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य । यत् यदा कनि॒क्रदत् मंगलमयी॑ वाचं प्रयच्छन् स्तनय॑न् गर्जन् दु॒ष्कृतः जलदाने संकोचशीलान् अत एव कृपणान् मेघान् हंसि दयावतो विदधासि । हनन साधनेन तान् प्रपीड्य कोमलान् करोषि तदानीं पृथिव्यां यत् किंचित् जडचेतनात्मकं विद्यते तत् सर्वं सानन्दं प्रतिमोदते स्वहर्षमुल्लासयति ।

टिप्पणी—कनि॒क्रदत् - अतिशयेन क्रन्दति । लटः शतृ । निगागमश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! जब आप मंगलमय ध्वनि के साथ गर्जन करते हुए जल-दान में संकोच करने वाले कृपण मेघों पर प्रहार करके उन्हें कोमल तथा सरस बनाते हैं उस समय पृथ्वी पर जितने जड-चेतन हैं सभी सानन्द होकर अपना हर्ष और आमोद-प्रमोद प्रकट करते हैं । वर्षा ही समस्त संसार के लिए प्रीति और क्रांति का निष्पादक है ।

१०-

अव॑र्षां वर्ष॑मुदु॒षू गृ॑भ॒याँ-

क॒र्ध्वा॒न्य॒त्ये॒त्वा उ॑ ।

अजी॑जन् ओष॑धी भोज॑नाय॒ कम्-

उ॒त प्र॒जाभ्यो॑ ऽ विदो॑ मनी॒षाम् ॥

पद-पाठः—अवर्षीः । वर्षम् । उत् । ऊँ इति । सु । गृभाय । अकः ।

धन्वानि । अति ऽ एतवै । ऊँ इति । अजीजनः । ओषधीः । भोजनाय । कम् । उत् ।

प्र ऽ जाम्भ्यः । अविदः । मनीषाम् ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पर्जन्य ! त्वं यथेष्टं वृष्टवानसि । ‘अवर्षीः वर्षम्’ कामम् अनतिक्रम्य अस्मभ्यं वृष्टिजलानि लब्धानि । इदानीमुपसंहर । ‘उदुसु गृभाय’ गृहाण इमां जल मोचनकरीं शक्तिम् । यतो हि ‘धन्वानि’ अपि निरुदक प्रदेशानपि नाव्यानि अकः कृतवानसि । यत्र मरुप्रदेशे मंहत् जलाभावेन कष्टमासीत् तत्रापि जलवैपुल्यं जातम् । तत्रापि अत्येतवै अतिक्रम्य गन्तुं गमनसाधनं वाच्छन्ति । भोजनाय भोगाय च ‘ओषधीः अजीजनः’ नानावीर्याः उदपादयः उत्पादितवानसि । एवं शान्ति सुखानि भोग्यानि च वस्तूनि दत्वा कृतज्ञाभ्यः प्रजाभ्यः मनीषां स्तुतिरूपां प्रशंसामपि ‘अविदः’ लब्धवानसि ।

टिप्पणी—गृभाय—‘छदसि शायजपि’ । अविदः—‘विदलू लाभे’ लङ् ।

म्योर ने मनीषा का अर्थ ‘कामना’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पर्जन्य ! आपने अच्छी वृष्टि की । अब उसका उपसंहार कीजिये । मरु-प्रदेश भी जल से तृप्त और पूर्ण हो गया । प्राणियों के भोग के लिए नाना प्रकार से सामर्थ्य युक्ति ओषधियाँ भी आपने उत्पन्न कर दीं । इस प्रकार अत्यन्त कृतज्ञ प्रजा से ‘मनीषा’ हादिक सान्त्वना और प्रशंसा भी आपने प्राप्त कर ली है । अब अधिक बरसने का प्रयोजन नहीं रहा ।

मण्डल-६

पूषा-सूक्तम्

सूक्त १३

ऋषिः—भरद्वाजः, देवता—पूषा, छन्दः—१-७, ६, १० गायत्री
८ अनुष्टुप् ।

१-

वयम् त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये ।

धिये पूषन्तयुज्महि ॥१॥

पद-पाठः—वयम् । ॐ इति । त्वा । पथः । पते । रथम् । न । वाजः ।
सातये । धिये । पूषन् । अयुज्महि ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—उदयं प्रत्यभिमुखः दिवसाभिमानि देवः पूषा । यस्मिन् काले आकाशे प्रकाशः पृथिव्यां च मनागन्धकारोऽस्ति तस्य कालस्य सूर्याभिमानिनी देवता स्तूयते । हे पूषन् ! पथस्पते ! मार्गस्य पालयितः ! वयं धिये प्रतिभारं कर्मणे च वाजसातये धनलाभाय युद्धे रथम् इव त्वाम् अयुज्महि युक्तं कुर्मः । त्वमेतदर्थं तत्परो भवेति भगवान् प्रार्थ्यते ।

टिप्पणी—पथस्पते—पूषा देवो हि मार्गपालक इति सूच्यते । वाजसातये—वाज इति धन नाम, सातये सातिः संमजनम् धनस्य लाभाय ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषा देव ! आप ही हमारे सम्मार्ग दर्शक हैं अतः बौद्धिक उन्नति एवं 'वाजसातये' धन की प्राप्ति के लिये हम आपको युद्ध के समय में रथ के समान संयुक्त करते हैं । आप हमारी इष्टपूर्ति में तत्काल तत्पर हों ।

२-

अभि नो नयं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम् ।

वामं गृह्णाति नय ॥२॥

पद-पाठः—अभि । नः । नयम् । वसु । वीरम् । प्रयतः । दक्षिणम् । वामम् ।

गृहः । पति । नय ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! नः अस्मभ्यं वामम् वननीयम् कमनीयं गृह्णाति गृहस्य पालकं पुरुषं गृहस्थं नय प्रापय । कीदृशम् ? वीरम् दारिद्र्यस्य विशेषण ईरयितारं क्षेप्तारम् । प्रयतदक्षिणम् प्रयत्नपूर्वकं उत्तधनम् । अथवा प्रयतं शृद्धं धनं यस्य तादृशं वीरं विशिष्टा इरा उत्साहमदो यस्य । अथ च नयं वसु नृभ्यो हितं धनम् अभि प्राप्तुं त्वं सदैव साभिलाषो भवास्मान् प्रति ।

टिप्पणी—नयम्—नरशब्दात् हितार्थं यत् । वामम्—वन + मन्, दीर्घं नकारलोपे च कृते रूप सिद्धिः ।

(२) ग्रासमान ने 'नयं वसु' का अर्थ किया है 'मानवीय' पूर्ति करने वाला धन ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूपा देवता ! हमारे लिए मनुज-हितकारी धन से हमें तृप्त और पूर्ण कीजिये और इसके लिए 'वीरम्' दरिद्रता के निवारक-प्रयत्न-दक्षिणम् शुद्ध धन वाले सन्तुष्ट और प्रसन्न गृहपति को दीजिये ।

३-

अदित्सन्तं चिदाधृणे पूषन् दानाय चोदय ।

पणेशिचद् विम्रदा मनः ॥३॥

पद-पाठः—अदित्सन्तम् । चित् । आधृणे । पूषन् । दानाय । चोदय ।

पणेः । चित् । वि । म्रद । मनः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आधृणे ! आगत दीप्ते ! पूषन् ! अदित्सन्तं पुरुषम् अनिच्छन्तमपि दातुं दानाय अस्मभ्यं दानार्थं चोदय प्रेरय । पणेशिचद् वार्धुषिकस्य लुब्धस्य मनः विम्रदा मृदू कुरु । कोमलं मनः सम्पादय ।

टिप्पणी—म्रदा—'म्रद मर्दने' ह्यान्दसं रूपम् । यद्वा मृदु शब्दात् णिचि म्रदयति, तदा णिचो लोपं सति लोटि मध्यमपुरुषैकवचने । आधृणे - 'धृणिः' शब्दों दीप्तिवाची । आसमन्तात् धृणि दीप्ति यंस्य, असी 'आधृणिः' आगतदीप्तिः, तस्य सम्मुद्धौ आधृणे ! । पणिः—पणि वणिग् भवति, लोभी । धनार्थी । निरन्तरं धनकामः । अन्यान् राष्ट्रकामान् कुलधर्माश्च विनाश्य यो धनं प्रत्येव गृध्र-दृष्टिः ।

हिन्दी-व्याख्या—प्रभाव पूर्ण प्रभा से आलोकित (आधृणे) हे पूषन् ! आप 'अदित्सन्तम्' दान के प्रति अनुदार (अनिच्छुक) पणि को दान के प्रति अति प्रेरित कीजिये और (मनः) इसकी धनामत्त चित्त-वृत्ति को (विम्रदा) अत्यन्त मृदुल बनाइये जिससे कि राष्ट्र धर्म और कुल-धर्मों की व्यवस्था और पालन हो सके ।

४-

वि पथो वाजसातये चिनुहि विमृधो जहि ।

साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥

पद-पाठः—वि । पथः । वाज ५ सातये । चिनुहि । वि । मृधः । जहि ।

साधन्ताम् । उग्र । नः । धियः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे उग्र ! दुष्टान् प्रति चण्डस्वभाव ! वाजसातये धन-
प्राप्तये पथः मार्गान् उपायान् प्राप्ति प्रकारान् विचिनुहि विशेष प्रकारेण त्वं शोधि-
तान् कुरु । आविष्कुरु । चिन्तय । यैः पथिभिः उपायैः धनानि लभेरन् तान् प्रकारान्
उपदिशः । 'मृधः विजहि' मार्गगतान् अवरोधकश्च जहि, विनाशय । तस्करादीन्
दूरी कुरु । अरी कुरु । चास्मान् पूरी कुरु मनोरथान् 'साधन्ताम्' च सिद्धयन्तु सिद्धा
भवन्तु सफलाः सन्तु । नो ऽस्माकं धियः बुद्धयः कर्माणि च ।

टिप्पणी—वाजसातये—वाजपूर्वस्य षणधातोः क्तिन् । नकारस्याकारः ।
मृधः—'मृध हिसायाम्' क्विप् । द्वितीया बहुवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दुष्टों के प्रति उग्रस्वभाव ! पूषन् ! आप 'वाजसातये'
धन की प्राप्ति के लिए 'पथ विचिनुहि' विशेष मार्गों का हमारे लिए चयन कीजिये ।
उन उपायों का निर्देश कीजिये जिससे हमारी शोभा-समृद्धि की वृद्धि हो । तथा
'मृधो विजहि' मार्गगत तस्कर आदि कण्टकों का शोधन भी कीजिये । 'धियः नः'
साधन्ताम्' हमारी बुद्धियों में कर्मसिद्धि, अर्थसिद्धि तथा नैपुण्यसिद्धि प्राप्त हो ।

५—

परितृन्धि पणीनामारया हृदया कवे ।

अथेस्मभ्यं रन्धय ॥५॥

पद-पाठः—परि । तृन्धि । पणीनाम् । आरया । हृदया । कवे । अथ ।

ईम् । अस्मभ्यम् । रन्धय ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तदर्शिन ! पणीनामनुदाराणां हृदया
हृदयानि आरया सूक्ष्म कीलमयेन दण्डेन वेधनकर्म्मणा 'परितृन्धि' परिविध्य लोभ-
पारुष्यम् अपनय । येन राष्ट्रं शुचि कुशलोप—रक्तं प्रशंसितं जायेत । अथ च 'ईम्'
एतान् पणीन् अस्मभ्यं रन्धय मृदुमनसः सम्पादय ।

टिप्पणी—तृन्धि—हिसार्थकस्य तृहधातोः लोटि मध्यम पुरुषैकवचने ।
आरया = 'ऋगतौ' घञ् प्रत्ययः । टाप् । आरा, तथा आरया । आरा अथवा
आरशब्दः कृषीवलैः वृषभ प्रेरणार्थम् अश्वं वाहोपयोगिनं वा प्रेरणार्थं सूक्ष्म लोह-
कीलमयं येष्वनसाधनं दण्डमादाय प्रयुज्यते । ईम्-ईम् शब्दः पदपूरणार्थः इति केचित् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तदंशिन ! तुकीली कील से चुभाये जाने पर जिस प्रकार बँल या घोड़ा अपने गन्तव्य मार्ग पर प्रेरित होते हैं उसी प्रकार 'आरया' आर से इन धन लोलुप (पणीनाम्) पणियों के (हृदया) हृदयों को (परितुन्धि) वेधित करो और उनके लोभ-काठोर्य (कठोरता) को दूर करो । 'अथ च ईम् अस्मभ्यं रन्धय' और इन्हें हमारे लिये 'रन्धय' अनुकूल बनाइये जिससे औदार्य को प्राप्त करके यह लोग भी राष्ट्र धर्म के परिपालन में लगें ।

६-

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् ।

अथेमस्यभ्यं रन्धय ॥६॥

पद-पाठः—वि । पूषन् । आरया । तुद । पणेः । इच्छ । हृदि । प्रियम् ।

अथ । ईम् । अस्मभ्यम् । रन्धय ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—हे पूषन् ! आरया प्रतोदेन पणेः वार्धुपिकस्य हृदयं वितुद विविधय । व्यथय । तस्य पणेः हृदि मनसि प्रियम् अस्माकमानुकूल्यम् इच्छ कुशलां मनोरुचिं जनय । 'अथेम्' अथ च एनान् व्यापारमात्रबुद्धीन् अस्मभ्यं रन्धय अध्यात्मपरायणान् सम्पादय ।

टिप्पणी—आरया—वेधनकीलकेन । वितुद—'तुद व्यथने' लोटि ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! 'आरया' आर से 'वितुद' वेधन करो, व्यथित करो । 'पणेः हृदि' पणि के हृदय में 'प्रियम्' हमारे प्रति अनुकूलता को स्पष्ट करो । और 'ईम्' इन्हें 'अस्मभ्यम्' हमारे लिये 'रन्धय' साधुकारी बनाओ ।

७-

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।

अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥

पद-पाठः—आ । रिख । किकिरा । कृणु । पणीनाम् । हृदया । कवे । अथ ।

ईम् । अस्मभ्यम् । रन्धय ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे कवे ! क्रान्तप्रज्ञ ! पूषन् ! पणीनाम् हृदया हृदयानि आ रिख आ लिख । 'किकिरा कृणु' आलिख्य च कीर्णानि शिथिलानि तेषां हृदयानि सम्पादय । मृदूनि कृत्वा तेषां हृदयानि अथ एनान् अस्मभ्यं रन्धय वशवतिनः सम्पादय ।

टिप्पणी—किकिरा—'कृ विक्षेपे' यङ्लुक् । अच् प्रत्ययः । चुत्वाभावः छान्दसः । आ रिख—आ लिख ।

हिन्दी-व्याख्या—हे कवे ! पूषन् ! इन पणियों के हृदयों को 'आ रिख' खुरच कर स्वच्छ एवं निर्दोष बना दीजिये । 'किकिरा कृणु' इनको कोमल, मृदु एवं सुशील कर दीजिये जिससे इनकी चेतना राष्ट्र-चेतना से संगत हो जाये । और इस प्रकार इन्हें हमारे लिये 'रन्धय' साधुदर्शी बना दीजिये ।

८-

यां पूषन् ब्रह्मचोदनीमारां विभर्षिस्तृणे ।

तया समस्य हृदयमारिख किकिरा कृणु ॥८॥

पद-पाठः—याम् । पूषन् । ब्रह्म ऽ चोदनीम् । आराम । विभर्षि । आघृणे ।

तया । समस्य । हृदयम् आ । रिख । किकिरा । कृणु ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आघृणे ! संगतदीप्ते ! पूषन् ! पुष्टिकर ! देव ! याम् ब्रह्मचोदनीम् आराम् अध्यात्मप्रेरयित्रीं ब्रह्मशक्तिं विभर्षि स्वहस्ते धारयति स्वायत्तां करोषि । तया समस्य सर्वस्य लोलुपमनसः हृदयम् आरिख आलिख । किकिरा किकिराणि कीर्णानि शिथिलानि शीतशीलानि कृणु सम्पादय ।

टिप्पणी—ब्रह्मचोदनीम्—ब्रह्म + चुद् प्रेरणे + णिच् + ल्युट् । ब्रह्मपराम् अन्नप्रेरिकां वा ।

हिन्दी-व्याख्या—हे ब्रह्मदीप्ति से दीप्तिमान् पूषन् । आप जिस अध्यात्म-प्रेरिका-शक्ति (आरा) को धारण करते हैं उससे समस्त लुब्ध व्यक्तियों के मन को प्रशिशिल एवं शील-शीतल बनाइये ।

९-

या ते अष्टा गो ओषशाधृणे पशुसाधनी ।

तस्यास्ते सुम्नसीमहे ॥९॥

पद-पाठः—या । ते । अष्ट्रा । गो ऽ ओपशा । आघृणे । पशु ऽ साधनी ।

तस्याः । ते । सुम्नम् । ईमहे ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे आघृणे ! आगत दीप्ते ! पूषन् ! या ते गो ओपशा गाव उपशेरते इति ओपशाः, गाव ओपशा यस्याः सा गो ओपशा । पशुसाधनी पशूनां साधयित्री पशु साधनस्वभावा । अष्ट्रा आर अस्ति, तस्या आरयाः सम्बन्धि सुम्नं सुखं शुभं वयं याचामहे ईमहे । प्रार्थयामः ।

टिप्पणी—अष्ट्रा—अश् व्याप्ती ऋन् प्रत्ययः । गो ओपशा—गो + आ + उप पूर्वस्व शीङ् स्वप्ने धातो ईः । सुम्नम्—सुष्ठु म्नायते सुम्नं सुखम् राय ने 'गो ओपशा' अर्थ 'शिरोभूषण' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे प्रकाश पुंज ! पूषन् ! 'गो ओपशा' गायों की सिद्धि और समृद्धि बढ़ाने वाली तथा 'पशु साधनी' पशुओं की प्राप्ति कराने वाली जो आपकी 'अष्ट्रा' आर है । हम आपकी उस आर शक्ति के द्वारा प्राप्त होने वाली सुख-सम्पदा (सुम्नम्) की 'ईमहे' हम कामना करते हैं ।

१०—

उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत ।

नृवत् कृणुहि वीतये ॥१०॥

पद-पाठः—उत । नः । गो ऽ सनिम् । धियम् । अश्व ऽ साम् । वाज ऽ साम् ।

उत । नृ ऽ वत् । कृणुहि । वीतये ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! उत अपि च नः अस्मभ्यं गोषणिं गवां च सनित्रीं च अश्वसां च अश्वानां सनित्रीं वाजसां वाजानामन्तानां सनित्रीं नृवत् नृणां च सनित्रीं एवं भूतां दात्रीं धियं प्रज्ञां कर्म वा ऽ स्माकं वीतये ऽ स्माकम् उपभोगार्थं कृणुहि कुरु ।

टिप्पणी—गोषणिम्—गो + षण् धातोः इन् प्रत्ययः । अश्वसाम्, वाजसाम्—अश्व + षण्, वाज + षण् । विट् प्रत्ययः 'जन् सन् खन क्रमगमो विट्' ३-२-६७ इति

विट् । 'विड्वनोमुनासिकस्यात्' । इति । नृवत्—नृ + मतुप् । वीतिः=वी + क्तिच् । वीतये—उपभोगाय ।

हिन्दी व्याख्या—हे पूषन् ! 'गोषणिम्' गायों को प्राप्त कराने वाली, अश्वसाम्, वाजसाम्, घोड़ों और अन्न को प्राप्त कराने वाली 'नृवत्' मानवता को सम्पन्न एवं सुशोभित करने वाली 'धियम्' प्रज्ञा तथा क्रिया को 'नः' हमारे 'वीतये' उपभोग के लिये 'कृणुहि' अनुकूल कर दीजिये जिससे सभी प्रसन्न, सानन्द और सुशोभित हो जायें ।

मण्डल ६

पूषा-सूक्तम्

सूक्त ५४

ऋषिः—भरद्वाजः । देवता—पूषा । छन्दः— गायत्री

१-

सं पूषन् विदुषा नय यो अञ्जसानु शासति ।

य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥

पद-पाठः—सम् । पूषन् । विदुषा । नय । यः । अञ्जसा । अनु ऽ शासति ।

यः एव । इदम् । इति । ब्रवत् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! यो विद्वान् अञ्जसा सरलतया अनुशासति योग्यता प्राप्त्युपायान् नष्टपदार्थान् वा ऋजुमार्गेणानयनप्रकारं ब्रवीति तेन सह अस्मान् नय संगमय । यश्च एवमिदं भवदीयं धनं तदेवेति दर्शयति तेन सह सङ्गतिं स्थापय ॥१॥

टिप्पणी—अनुशासति—अनु + शास् लटि प्रथमपुरुषैकवचने छन्दसि । ब्रवत्—ब्रू + लेट् । प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! 'तेन विदुषा नय' हमारी सङ्गति उस विद्वान् के साथ स्थापित कराइये 'यो अञ्जसा ऽ नुशासति' ज्यो सरल मार्ग से योग्यता

सम्पादन के उपाय बतलाता है तथा जो अदृष्ट-पदार्थों की प्राप्ति एवं जानकारी में पूर्ण प्राप्ति से सहायता करता है। 'य एव इदमिति' यह वही आपका नष्ट-धन है' जो हमें 'ब्रवत्' स्निग्ध वाणी में ज्ञान करा देता है।

२-

सामु॑ पू॒ष्णा गमे॑महि॒ यो गृ॒हाँ अभि॑शासति ।

इ॒म ए॒वेति॑ च॒ ब्रव॑त् ॥२॥

पद-पाठः—सम् ! ॐ इति । पू॒ष्णा । गमे॑महि । यः । गृ॒हान् । अभि॑ ५

शासति । इमे । इव इति । च । ब्रव॑त् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—पूष्णा देवेन अनुगृहीता वयं संगमेमहि तेन विदुषा संगताः स्याम, संगच्छेमहि यः तान् गृहान् अभिशासति अभिमुखं प्रबोधयति इमे त्वदीया अदर्शनं गताः पशवः 'एव इति ब्रवत्' इहैव वर्तन्ते इति ब्रूयात् ।

टिप्पणी—पशवः—दर्शनसाधनानीन्द्रियाणि । गृहाः—गृहणरूपाणि आश्रय-स्थानानि । पूष्णा—तृतीयायाम् । गमेमहि—गम + लिङ् बहुवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—पूषा देव से अनुगृहीत होकर हम उस महान् व्यक्ति से सङ्गति पाते हैं जो हमारे अदर्शन हुए गृहों की ओर संकेत करता है। जो यह स्पष्ट बता देता है कि तुम्हारे न दिखायी पड़ने वाले पशु इन घरों में तिरोहित हैं। तुम्हारी इन्द्रियाँ, तुम्हारा लक्ष्य यही कही भ्रष्ट हुआ है।

३-

पू॒ष्णश्च॒क्रं न रि॑ष्यति न को॒शो ऽ व प॑द्यते ।

ना अस्य॑ व्यथ॑ते प॒विः ॥३॥

पद-पाठः—पू॒ष्ण । च॒क्रम् । न रि॑ष्यति । न । को॒शः । अ॒व । प॑द्यते नो

इति । अस्य॑ व्यथ॑ते । प॒विः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—टीका—पूष्णः पोषकस्य देवस्य चक्रं न रिष्यति । नास्या-
युधं कदापि क्षतं क्षीणं वा भवति । अस्य चक्रस्य कोशश्च न अवपद्यते न क्षीयते ।
अस्य पवि धीरा च न व्यथते नैव क्षीणा क्षता वा भवति । अतः हे पूषन् त्वमपकार-
कान् इमान् चोरान् लम्पटान् क्रूरान् द्रव्याश्च विनाश्य सुखं शुभं धनं प्रकाशयेत्
जगति शान्तिः संतोष आनन्दश्च जायेरन् ॥३॥

टिप्पणी—पूष्णः—पूषन्, षष्ठी । रिष्यति—रिष् हिंसायाम्, लटि पद्यते—
पद् लट् । व्यथते—व्यथ + लट् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—पूषा देव का चक्र—आयुध कर्मी क्षीण या क्षत नहीं
होता । 'न कोशो ऽव पद्यते' चक्र का कोश भी कभी क्षीण नहीं होता और न तो
इसकी 'पवि' धार ही कभी (व्यथते) कुण्ठित होती है । इस हेतु हे पूषन् ! आप
कृपा करके हमारे अपकारक इन दुष्टों का विनाश करके सुख सन्तोष और शान्ति
की व्यवस्था कीजिये ।

४-

यो अस्मै हविषा विधन्तं तं पूषापि मृष्यते ।

प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥

पद-पाठः—यः । अस्मै । हविषा । अविधत् । न । तम् । पूषा । अपि ।

मृष्यते । प्रथमः । विन्दते । वसु ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यः पुरुषः अस्मैऽपूष्णे देवाय हविषा होतुमादातुं योग्येन
पुरोडाशादिना 'अविधत्' विधिवत् परिचरति तं पूषा नापि नैव 'मृष्यते' हिनस्ति ।
नैवाल्पमपि दुःखं सोढुं ददाति । स किल पुरुषः पूष्णः दृष्टिविधाने प्रथमः उत्कृष्टः
उत्कृष्टं च वसु योग्यं धनं विन्दते लभते ।

टिप्पणी—अविधत्—विध + लङ् । मृष्यते—मृष—लट् । विन्दते—विद्-
लट् । वसु—धनम् ।

हिन्दी-व्याख्या—जो व्यक्ति (हविष) हवि-पदार्थों से पूषा देव की 'अविधत्'
परिचर्या करता है उसे 'न अपि मृष्यति' पूषा देव भी क्षण-मात्र अथवा कण-मात्र भी
कष्ट नहीं देते हैं । पूषा देव की दृष्टि में वही व्यक्ति 'प्रथमः' उत्कृष्ट है और वह
'विन्दते वसु' सब प्रकार से सुख-सुविधा का पात्र है ।

५-

पू॒षा गाः अ॒न्वे॒तु नः पू॒षा र॒क्ष त्व॑र्व॒तः ।

पू॒षा वा॒जं स॒नोतु॑ नः ॥५॥

पद-पाठ—पू॒षा । गाः । अ॒नु । ए॒तु । नः । पू॒षा । र॒क्ष॒तु । अ॒र्व॒तः । पू॒षा ।

वा॒जम् । स॒नो॒तु । नः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—पूषा देव एव अस्माकं गा अनु एतु । स एव कृपया ऽ नुगृह्णातु न मम तथा शक्तिरस्ति । स एव रक्षतु । स एव पूषा 'अर्वतः' अश्वान स्मदीयान् रक्षतु । तथा नो ऽ स्मभ्यं वाजम् अन्नं च स एव देवः सनोतु । ददातु ॥

टिप्पणी—अन्वेतु—अनु + इ + लोट् । अर्वतः—अर्वन् द्वितीया—बहुवचने । सनोतु—षणु + लोट् प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—'पूषा गा अन्वेतु नः' हमारी गायों (इन्द्रियों) की रक्षा में पूषा देवता सदा तत्पर रहें । हमारे 'अर्वतः' अश्वों की भी रक्षा पूषा देवता करें । पूषा देवता निरन्तर 'वाजं सनोतु नः' हमारे धन-धान्य की वृद्धि करते रहें ।

६-

पू॒षन्ननु॑ प्र गा इ॒हि य॒ज॒मा॒नस्य॑ सु॒न्व॒तः ।

अ॒स्माकं॑ स्तु॒व॒तामु॒त ॥६॥

पद-पाठ—पू॒षन् । अ॒नु । प्र । गाः । इ॒हि । य॒ज॒मा॒नस्य॑ । सु॒न्व॒तः ।

अ॒स्माकम् । स्तु॒व॒ताम् । उ॒त ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! त्वं 'सुन्वतो यजमानस्य' सोभाभिवर्षं कुर्वत तत्र व्याप्तस्य यजमानस्य गा अनु इहि पशून् अनु गच्छ । अपि च स्तुवतां स्तोत्रं कुर्वतां त्वद्विषये रतानां गा अनुगच्छ रक्षणार्थम् ।

टिप्पणी—सुन्वतः—षु + श्नु + शत् । षष्ठी । यजमानस्य—यज + शान् + मुक् । स्तुवताम्—स्तु + शतृ (उवङ्) इहि—इ + लोट् ।

हिन्दी व्याख्या—हे पूषन् ! 'सुन्वतः' सोम-रस का सम्पादन करने वाले (ब्रह्म-रस से निष्पन्द में लवलीन) यजमानों की गायों की रक्षा के लिये 'प्र इहि' आप ही निरन्तर तत्पर रहें। तथा 'स्तुवताम् उत' आपके विषय में जो लोग ब्रह्म-स्तोत्रों में दत्तावधान है उनकी भी गायों (इन्द्रियों) की आप तत्परता से रक्षा करें। हम सभी निश्चित एवं निर्विकल्प होकर आपकी स्तुति उपासना में सावधान रहें।

७-

माकि नेशन् माकीं रिषन् माकीं संशारि केवटे ।

अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥

पद-पाठ—माकिः । नेशत् । माकीम् । रिषत् । माकीम् । सम् । शारि ।

केवटे । अथ । अरिष्टाभिः । आ । गहि ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! अस्माकं गोधनं माकिः नेशत् न नष्टं भवतु । माकीं रिषत्-हिंसितं मा भवतु । माकीं संशारि केवटे, केवटे कूपे च संशीर्णं मा भूत् । कूपपातेन च नैव नष्टं भवेत् । त्वं चारिष्टाभिः अहिंसिताभिः एताभिः गोभिः सह आगहि गृहं प्रत्यावर्तनकाले गोधूलिवेलायामिहा-गच्छ ।

टिप्पणी—नेशत्-णश् लेट् प्रथमपुरुषकवचने । रिषत्-रिष् लेट् । संशारि—'शृ विशरणे' लुङ् । अरिष्टाभिः—नञ् + रिष् + क्त + टाप् । आगहि—आ + गम + लोट् मध्यमपुरुषकवचने । माकिः, माकीम्—एतौ प्रतिषेधवाचिनौ । केवटे = कूपे ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! हमारा गो-धन 'माकिः नेशत्' कभी क्षीण न हो । 'माकीं रिषत्' कभी किसी प्रकार से हिंसित न हो । 'माकीं संशारि केवटे' कभी कूप, गर्त आदि में गिर कर जीर्ण—शीर्ण न हो । आप स्वयं सकुशल इन गायों के साथ निर्विघ्न पधारने की कृपा करें ।

८-

शण्वन्तम् पूषणं वयमिर्यमनष्ट वेदसम् ।

ईशानं राय ईमहे ॥८॥

पद-पाठ—शृ॒ण्वन्तम् । पू॒षणम् । व॒यम् । इ॒र्यम् । अन॒ष्ट ऽ वे॒दसम् ।

ई॒शानम् । रा॒यः इ॒महे ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—‘शृण्वन्तम्’ अस्माकं स्तोत्राणि सानन्दं शृण्वन्तम् इर्यम् दारिद्र्यस्य निवारकम् अनष्टवेदसम् न नष्टं वेदो धनं यस्य तादृशम् अनष्ट धनम् ईशानमीश्वरं पूषणं देवं वयं रायः धनानि ईमहे याचामहे ।

टिप्पणी—शृण्वन्तम्—श्रु + श्नु = शतृ । ईशानम्—ईश् + शानच् । रायः-‘रै’ द्वितीया बहुवचने ।

हिन्दी व्याख्या—‘शृण्वन्तम्’ हमारे स्तोत्रों को प्यार से सुनने वाले ‘इर्यम्’ दारिद्र्य के निवारक ‘अनष्टवेदसम्’ सदा-धन-धान्य से परिपूर्ण ‘ईशानम्’ सबके ईश्वर से हम ‘रायः’ धन-वैभव की ‘ईमहे’ याचना करते हैं ।

६-

पू॒षन् तव॒व्रते व॒यं न रि॒ष्येम कदा॑चन ।

स्तो॒तारस्त॑ इ॒ह स्म॑सि ॥९॥

पद-पाठ—पू॒षन् । तव॑ । व्र॒ते । व॒यम् । न । रि॒ष्येम । कदा॑चन । स्तो॒तारः

ते । इ॒ह । स्म॑सि ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पूषन् ! पुष्टिकर ! नव व्रते नियमे कर्मणि स्थिता वयं कदाचन न रिष्येम न हिसिता भवेम । अथ च ते त्वदीया वयं स्तोतारः स्मसि स्मः ।

टिप्पणी—रिष्येम—रिष् कर्मवाच्य, लिङ् । उत्तमपुरुषैकवचने । स्तोतारः—स्तु + तृच् बहुवचने । स्मसि—अस् + लट् उत्तमपुरुष बहुवचने छन्दसि ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पूषन् ! पोषक देव ! हम आपके पवित्र व्रत में ‘कदाचन’ कभी भी ‘न रिष्येम’ हिसित पीड़ित न हों । और ‘ते’ आपके हम सदा ही ‘स्तोतारः’ स्तुतिकर्ता बने रहें ।

१०—

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् ।

पुन नो नष्टमाजतु ॥१०॥

पद-पाठः—परि । पूषा । परस्तात् । हस्तम् । दधातु । दक्षिणम् । पुनः ।

नः । नष्टम् । आ । अजतु ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—पूषा पोषको देवः अस्माकं गोधनस्य रक्षार्थं परस्तात् दूरे ऽपि देशे 'दक्षिणं हस्तं दधातु' स्वकीयं सुखस्पर्शं दक्षिणं हस्तं कृपया रक्षतु येन अस्माकमिन्द्रियाणि गोधनानि सदैव संरक्षितानि सुरक्षितानि जायेरन् । पुनश्च नो ऽस्माकम् नष्टम् अदर्शनं गतं गोधनम् आजतु आगमयतु ।

टिप्पणी—दधातु—धा—लोट् । आजतु—आ + अज—लोट् ।

हिन्दी-व्याख्या—पोषणकारी पूषा देव हमारे गोधन की रक्षा के लिये 'परस्तात्' दूर देश में भी अवस्थित (हमारे गोधन पर) अपने सुखकारी हाथ को (दाहिने हाथ को) बढ़ाये रखे । हमारी (नष्टम्) तिरोहित गायें पुनः (आजतु) हमको प्राप्त हों ।

मण्डल ७

आपः सूक्तम्

सूक्त ४६

ऋषि—वसिष्ठ

छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

समुद्र ज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्

पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।

इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद

ता आपो देवी रिह मामदन्तु ॥१॥

पद-पाठः—समुद्रऽज्येष्ठाः । सलिलस्य । मध्यात् । पुनानाः । यन्ति ।

अनिऽविशमानाः । इन्द्रः । याः । वज्री । वृषभः रराद । ताः । आपः । देवीः ।

इह । माम् । अवन्तु ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—‘पुनानाः’ विश्वं पवित्रयिष्यः इमा आरः समुद्र एव ज्येष्ठः यासां ताः खलु सलिलस्य मध्यात् अस्य अन्तरिक्षस्य मध्यात् अनिविशमानाः विश्रामं विनैव निरन्तरं प्रवाहोपेताः यन्ति गतिशीलाः दृश्यन्ते । यासां मार्गान् वज्री वज्र-हस्तः इन्द्र एव रराद विरदति विलिखति । ताः आपो देव्यः अस्मान् सदैव अवन्तु प्रीत्या तर्पयन्तु ।

टिप्पणी—समुद्र ज्येष्ठाः—समुद्र एव ज्येष्ठः प्रशस्तो यासां ता आपः । रराद—‘रद विलेखने’ लिट् ।

मैकुडानल ने—सलिल का अर्थ सागर तथा अवन्तु का अर्थ ‘सहायता करें’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—‘अनिविशमानाः’ बिना विश्राम किये ही जो निरन्तर ‘सलिलस्य मध्यात्’ अन्तरिक्ष के मध्य से होकर समस्त वातावरण का ‘पुनानाः’ शोधन करती हुई ‘आपो देवीः’ जलाभिमानिनी देवियां ‘यन्ति’ गतिशील हैं । इनका प्राप्तव्य लक्ष्य केवल समुद्र है क्योंकि समुद्र को ही ये प्रशस्त मानती हैं । (समुद्र ज्येष्ठाः) । ‘वृषभः वज्री’ वज्रधारी जलवर्षक इन्द्र ने ही ‘रराद’ खुरच-खुरचकर जिनके लिए मार्ग-निर्माण किया है । वह जलाभिमानिनी देवियां सदा हमारा कल्याण करती रहीं ।

२—

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति

खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।

समुद्रार्था याः शुचयः पावका—

स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

पद-पाठः—याः । आपः दिव्याः । उत । वा । स्रवन्ति । खनित्रिमाः । उत ।

वा । याः । स्वयम् ऽ जाः । समुद्र ऽ अर्थः । याः । शुचयः । पावकाः । ताः ।

आपः । देवीः । इह । माम् । अवन्तु ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—या आपः दिव्याः अन्तरिक्ष प्रभवाः उत वा स्रवन्ति नदी निर्झरिणीरूपेण अधस्तात् प्रवहन्ति याश्च आपः खनित्रिमाः खननसाधनेन प्राप्ताः (कूपदीधिकारूपेणावस्थिताः) अपि च याः स्वयंजाः स्वत एव हि प्रादुर्भूताः । ताः सर्वा एव आपः समुद्रार्थाः समुद्र एव अर्थो यासां लक्ष्यभूतः । याः आपः शुचयः रागद्वेषरहिता दीप्ताश्च । याः पावकाः पवित्रयित्र्यः । ताः सर्वा एव जलदेव्योऽस्मान् प्रीणयन्तु ।

टिप्पणी—दिव्याः—दिविभवाः ।

मैक्डानल ने शुचयः का अर्थ स्वच्छ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जो जलधारार्थे 'दिव्याः' अन्तरिक्ष से उत्पन्न होती हैं अथवा जो 'स्रवन्ति' नदी, स्रोत, झरना आदि के रूप में बहती हैं । जो 'खनित्रिमाः' खनन साधन से कूप-बावड़ी आदि रूप में हमें प्राप्त हैं अथवा जो 'स्वयंजाः' स्वतः ही पर्वत आदि से प्रकट होकर समतल की ओर आती हैं । जो 'शुचयः पावकाः' स्वच्छ, शुद्ध, दीप्त तथा पवित्र करने वाली हैं । जिनका गमन-लक्ष्य एकमात्र समुद्र है क्योंकि समुद्रार्थ ही इनका सारा प्रयास है; वह जल-देवियां हमें सदा प्रसन्न, तृप्त और प्रगतिशील बनायें ।

३—

यासां राजा वरुणो याति मध्ये

सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।

मधुश्चुतः शुचयो या पावका—

स्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

पद-पाठः—या॒साम् । रा॒जा । वरु॒णः । या॒ति । म॒ध्ये । स॒त्या॒नृ॒ते इति ।

अ॒व ऽ पश्यन् । जना॑नाम् । म॒धुः ऽ श्चु॒तः । शु॒चयः । याः । पा॒वकाः । ताः । आ॒पः ।

दे॒वीः । इ॒ह । मा॒म् । अ॒वन्तु ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—जनानां सत्यानृते सत्यम् असत्यं च पश्यन् यासां जल-
देवतानां मध्येऽवस्थितो वरुणो राजा याति स्वसान्निध्यं प्रकटयति । या आपः
मधुश्चुतः मधु क्षरन्त्यः शुचयः पावकाः ता आपः अस्मान् सदैव शोधयन्तु ।

टिप्पणी—वरुणः—जलाभिमानी देवः । शुचयः—रागद्वेषविवर्जिताः ।

मैक्डानल ने 'मधुश्चुतः' का अर्थ माधुर्य की टपकाने वाली तथा 'देवीः'
का अर्थ देवतास्वरूप किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—मानवों के सत्य-असत्य कर्मों के साक्षात् साक्षी वरुण
भगवान् जिन जलदेवियों का सहारा लेकर अवस्थित होते हैं । जो 'मधुश्चुतः'
निरन्तर माधुर्य का ही सम्पादन करती हैं । जो शुची और पवित्र हैं, वे जल-
धारार्यें सदा हमें प्रसन्न और पूजित बनायें ।

४—

या॒सु रा॒जा वरु॒णो या॒सु सो॒मो

वि॒श्वे दे॒वा या॒सूर्जं म॒दन्ति ।

वै॒श्वान॒रो या॒स्वग्निः प्र॒विष्ट—

स्ता आ॒पो दे॒वीरि॒ह मा॒मवन्तु ॥४॥

पद-पाठः—या॒सु । रा॒जा । वरु॒णः । या॒सु । सो॒मः । वि॒श्वे । दे॒वाः । या॒सु ।

अ॒र्जम् । म॒दन्ति । वै॒श्वान॒रः । या॒सु । अ॒ग्निः । प्र ऽ वि॒ष्टः । ताः । आ॒पः । दे॒वीः ।

इ॒ह । मा॒म् । अ॒वन्तु ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यामु अप्सु वरुणो राजा राजते, यामु सोमो राजा महिमानं प्रकाशयति, यामु अप्सु मध्ये विश्वे सर्वे देवा ऊर्जं मदन्ति अनुकूलं हविः प्राप्य सानन्दास्तिष्ठन्ति । यामु अप्सु विश्वेनरा यस्य तादृशः समस्ताग्रगामी देवो ऽग्निः स्वप्रभावं प्रकटयन् प्रतिष्ठां लभते ता आपो देव्यः अस्मान् सुखयन्तु ।

टिप्पणी—राजा—‘राजू दीप्तौ’ । सोमः—उमया सहितो महेश्वरः । ऊर्जम्—अन्नम् । वैश्वानरः—विश्वेनरा यस्य असौ विश्वानरः, विश्वानर एव वैश्वानरः ।

मैक्डानल ने ‘ऊर्जं मदन्ति’ का अर्थ ‘शक्ति प्राप्त करते हैं’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जिन जल देवियों के मध्य में वरुण देवता शोभायमान होते हैं, जिनमें अवस्थित होकर सोम देवता अपने महात्म्य का प्रकाशन करते हैं, जिनका सहारा प्राप्त करके सभी देवगण अनुकूल हविष्य प्राप्त होने के कारण सानन्दित रहते हैं, जिनके अवलम्बन से वैश्वानर (विश्व का कल्याण करने वाले) अग्नि भी अपने प्रभाव को प्रकट करके प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं वह जलाभिमानिनी शक्तियाँ हमें सदा सन्तुष्ट रक्खें ।

मण्डल ७

वास्तोष्पति-सूक्तम्

सूक्तम् ५४

ऋषिः—वसिष्ठः देवता—वास्तोष्पतिः छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१—

वास्तोष्पते॑ प्रति॑ जानी॒ह्यस्मान्

स्वा॒वेशो॑ अ॒नमी॒वो भ॒वा नः॑ ।

य त्वे॒महे॑ प्रति॑ त॒न्नो जष॑स्व

श॒न्नो भव॑ द्वि॒पदे॑ शं चतु॒ष्पदे॑ ॥१॥

पद-पाठः—वास्तोः । प॒ते । प्रति॑ । जानी॒हि । अ॒स्मान् । सु॒ ऽ आ॒वेशः ।

अनमीवः । भव । नः । यत् । त्वा । ईमहे । प्रति । तत् । नः । जुषस्व । शम् ।

नः । भव । द्विऽपदे । शम् । चतुःऽपदे ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! गृहस्य स्वामिन् ! वयं त्वदीया इति अस्मान् प्रतिजानीहि इत्यात्मना स्वीकुरुष्व । त्वं स्वावेशः सुन्दरगृहावासकृत् अनमीघः रोगनिवारकश्च नः अस्माकं भव । 'यत् त्वा ईमहे' यद् धनमभिलक्ष्य त्वाम् ईमहे याचामहे 'तद् नः प्रति जुषस्व' तद् धनम् नोऽस्मभ्यं प्रति जुषस्व कृपया ददस्व । तथा च 'नः' अस्माकं 'द्विपदे' पुत्रपौत्रादिगणाय 'क्षम् अमीवा' सुखप्रदो भव । 'चतुष्पदे च शं भव' गवाश्वादिपशुसमूहाय च सुखकरो भव ।

टिप्पणी—स्वावेशः—शोभन आवेश यस्मादिति बहुव्रीहिः । अनमीघः—रोगस्तद्वाहित्यं यत्र । द्विपदे—'पाद' शब्दस्य पदादेशः । बहुव्रीहिश्च वास्तोष्पते—वसधातोः तुण्, वसतु + पति । विभक्ते लुङ्भावः । 'पठयाः पति पुत्र०' इति विसर्गस्य सकारः ।

(२) ग्रासमान ने 'स्वावेश' का अर्थ 'शुभ-प्रवेश' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! गृह के देवता ! 'हम आपके ही सदा बने रहें, 'अस्मान् प्रतिजानीहि' ऐसी कृपा और स्वीकृति आपकी बनी रहे । आप हमारे लिए 'स्वावेशः अनमीघः भव नः' सदा सुन्दर-गृहप्रदाता तथा नीरोग बनाये रखें । 'यत् त्वा ईमहे' जिस कामना को लेकर हम आपसे याचना करें, 'तत् नो जुषस्व' कृपा करके हमारी उस अभिलाषा को पूर्ण कीजिये । 'शन्तो भव द्विपदे शं चतुष्पदे' हमारे द्विपद (पुत्र-पौत्रादि) तथा चतुष्पद (गाय, अश्व आदि) के लिए आप सदा कल्याण-प्रद बने रहें ।

२—

वास्तोष्पते प्रतरणो न एधि

गयस्फानो गोभिरश्वेभिरन्धो ।

अजरासस्ते सख्ये स्याम

पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व ॥२॥

पद-पाठः—वास्तोः । पतेः । प्र ऽ तरणः । नः । एधि । गय ऽ स्फानः ।

गोभिः । अश्वेभिः । इन्द्रो इति । अजरासः । ते सख्ये । स्याम । पिता ऽ इव ।

पुत्रान् । प्रति । नः । जुषस्व । ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वस्तोष्पते ! गृहपालक ! नः अस्माकं प्रतरणः उद्धारकृत् प्रवर्धको भव । एधि । गयस्फान इव एधि । अस्माकं धनानां वृद्धिक्ृद् भव । हे इन्द्रो ! परमैश्वर्यवान् ! आनन्दप्रद ! त्वया ऽ नुगृहीता वयं गोभिः अश्वैः सहिताः 'सख्ये ते' त्वदीये मैत्रीभावे 'अजरासः' बृहत्वरहिताः 'स्याम' भवेम । 'पिता इव' यथा पिता सदैव रक्षकत्वेनोपस्थितः पुत्रान् पालयति तथा त्वम् 'पुत्रान् प्रति नो जुषस्व' अस्मान् प्रति जुषस्व सेवस्व । तवाश्रये वयं वर्धेमहि ।

टिप्पणी—गयस्फानः—गयशब्दो धनवाचकः गृहापत्ययोरपि इति निषण्ठी । गयपूर्वस्य स्फायी + ल्युट् । यकारलोपश्छान्दसः । अजरासः—अजराः, जरा-रहिताः । इन्द्रुः—इन्द्रुशब्दः चन्द्रवाची, आह्लादकत्वात्; स च रात्रिप्रहरी । तयैव वास्तोष्पतिरपि ।

(२) राथ और पटोर्सन 'इन्दु' को रात का पहरेदार मानते हैं । हमारा 'वास्तोष्पति' भी प्रहरी ही है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! आप 'प्रतरणः नः एधि' ! हमारे लिए उद्धारकर्ता तथा 'गयस्फानः' धनप्रवर्धनकारी बने जिससे सदा सम्पन्न होकर हम सानन्द रहें । हे इन्द्रो ! आप हमारे पहरेदार हैं अतः हमारी गायों और अश्वों के लिए भी आप सदा कल्याणकारी बने रहें । हम सब भी 'अजरासः ते सख्ये स्याम' निरन्तर वृद्धत्वरहित होकर आपकी मैत्री-भावना में स्थिर रहें और आप भी कृपा करके पिता के तुल्य ही हम पुत्रों की 'पितेव पुत्रान् प्रति नो जुषस्व' सदैव प्रीति और विश्वास से रक्षा करते रहें ।

३—

वास्तोष्पते शम्भया संसदा ते

सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।

पाहि॑ क्षेम॑ उत॑ योगे॑ वरं॑ नो—

यूयं॑ पात॑ स्वस्तिभिः॑ सदा॑ नः ॥३॥

पद-पाठ — वास्तोः॑ । पते॑ । शग्मया॑ । सं ऽ सदा॑ । ते॑ । सक्षीमहि॑ ।

रण्वया॑ । गातु॑ ऽ मत्या॑ । पाहि॑ । क्षेमे॑ । उत॑ । योगे॑ । वरम् । नः । यूयम् । पात॑ ।

स्वस्ति ऽ भिः । सदा॑ । नः ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! गृहस्य पालयितः ! देव ! 'रण्वया गातुमत्या शग्मया संसदा ते वयं सक्षीमहि' तव रण्वया रमणीयया गातुमत्या गतिशीलया धनवत्या शग्मया शान्तिकर्या संसदा वयं सक्षीमहि सदैव संगता भवेम । त्वमपि च 'योगे' अप्राप्तस्य लाभाय 'क्षेमे च' प्राप्तप्य रक्षणे च 'वरम्' अस्मदीयं वरणीयं धनं पाहि सदैव रक्ष । 'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः' हे वास्तोष्पते ! यूयं सदा नो ऽ स्मान् स्वस्तिभिः कल्याणसाधनैः पात रक्ष । वयमपि श्रद्धया सेवेमहि ।

टिप्पणी—शग्मया—शम्पूर्वस्य गम्धातोः कः प्रत्ययः । उपधालोपः । शमः मकारलोपः छान्दसः । सक्षीमहि—'पच् समवाये' लिङ् (सीयुट्) उत्तमपुरुष बहुवचने ।

(२) लुङ्विग ने क्षेम और योग का अर्थ 'विश्राम के समय में तथा कार्य के समय में' किया है । पर सायण कृत अर्थ जो ऊपर लिखा गया है, उपयुक्त है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वास्तोष्पते ! हमारे घरों के पालक आप कृपा करके हमें समर्थ बनायें जिससे कि हम आपकी गतिशील, शान्तिदायक, सम्पन्न और रमणीय संसद् के साथ 'सक्षीमहि' सदा संगत रहें । 'योगे' अप्राप्त की प्राप्ति तथा 'क्षेमे' प्राप्त की रक्षा में हमारे प्रीतिकारी ऐश्वर्य (वरम्) की 'पाहि' आप सदा रक्षा करें । 'यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः' आप सदैव अपने कल्याण-साधनों से हमारी रक्षा करते रहें । हम भी श्रद्धा से आपकी सेवा करते रहें ।

मण्डल ७

वरुण-सूक्तम्

सूक्त ८६

ऋषिः—वसिष्ठ, देवता—वरुण, छन्द—भिष्टुप् ।

धीरा॒ त्वस्य॑ महि॒ना ज॒नूँषि॑

वि यस्तस्तम्भ॒ रोदसी॑ चिदुर्वी ।

प्र नाक॑मृष्वं॒ नुनुदे॑ बृहन्तं॒

द्विता नक्षत्रं॑ पप्रथ॒च्च भूम॑ ॥१॥

पद-पाठ—धीरा॑ । तु । अस्य॑ महि॒ना । ज॒नूँषि॑ । वि । यः । तस्तम्भ॑ । रोदसी॑

इति॑ । चित् । उर्वी॑ इति॑ । प्र । नाक॑म् । ऋष्वम् । नुनुदे॑ । बृहन्तम्॑ । द्विता॑ ।

नक्षत्रम् । पप्रथत् । च भूम॑ ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्य वरुणस्य महिना महिम्ना जनूँषि प्राणिनां जन्मानि धीरा धीराणि स्थिराणि भवन्ति । यः उर्वी रोदसी चिद् वितस्तम्भ द्यावापृथिव्यां खल्वपि दृढे स्वकीये स्थाने विस्तीर्णो स्वस्थे चाकरोत् । यश्च ऋष्वं महान्तं नाकमादित्यं दर्शनीयं प्रनुनुदे प्रेरयति । नक्षत्रमण्डलं च रात्रौ सूर्यं च दिवसे प्रेरयति—इति प्रकारद्वयम् । यश्च वरुणः भूम भूमिं पप्रथत् अप्रथयत् विस्तारितवान् ।

टिप्पणी—तस्तम्भ—स्तम्भ—लिट् । नुनुदे—णुद—प्रेरणे—लिट् । पप्रथत्—पृथु विस्तारे—लुङ्, वैदिक प्रयोगः ।

ऋष्वम्—ऋषी गतौ, वप्रथयः । ऋष्वम्—दर्शनीयम् । विशालम् ।

मैकुडानल ने धीरा का अर्थ बुद्धिमान्, महिना का अर्थ शक्ति, ऋष्वम् का अर्थ ऊँचा और बृहन्तम् का अर्थ विशाल किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(अस्य वरुणस्य महिना) इसी वरुण के माहात्म्य से (जनूँषि धीरा भवन्ति) प्राणियों के जन्म-जन्मान्तर सुधरते-बनते और स्थिर होते हैं । (यः तस्तम्भ रोदसी चित् उर्वी) जिस वरुण देवता ने विशाल द्युलोक एवं पृथ्वी लोक को अपनी व्यवस्था में धारण किया है । (यः वरुणः नाकं बृहन्तम् ऋष्वं प्रनुनुदे) जो वरुण देवता प्रतिदिन दिवस में प्रकाश और आनन्द उत्पन्न करने के लिए सूर्य भगवान् को अत्यन्त दर्शनीय रूप से प्रेरित किया है तथा दूसरे प्रकार से रात्रि में दमक-कान्ति प्राप्त करने के लिए नक्षत्र-मण्डल को नियन्त्रित किया है । ऐसे विशाल एवं महान् वरुण के प्रति मैं अपना नमन प्रस्तुत करता हूँ । यह व्यंग्य है ।

२-

उत स्वया तन्वा॑उसं॑ वदे॑ तत्

कदा नव॑न्त वरु॑णे भुवानि

किं मे॑ हव्यमह॑णानो जुषे॑त

कदा मृ॑डीकं सु॒मना॑ अभि॒ख्यम् ॥२॥

पद-पाठः—उत । स्वया । तन्वा । सम् । वदे । तत् । कदा । नु । अन्तः ।

वरु॑णे । भुवा॒नि । किम् । मे॒ । हव्यम् । अह॑णानः । जुषे॑त । कदा । मृ॒डीकम् । सु॒मनाः । अभि । ख्यम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(उत स्वया तन्वा संवदे) अहं स्वयमेव सकीयया तन्वा शरीरेण आत्मैव आत्मना सह संवदे पृच्छामि (कदा नु वरुणं अन्तः भुवानि) कः कालः स भविष्यति यदा वरुणेन सहान्तरं गता मे भविष्यति ? कदाऽन्तर्गमनः सन् वरुणस्य आनन्दं प्राप्स्यामि ? (हव्यं मे किम् अहणानः जुषेत) किमसौ मदीयमात्मानं हव्यं च संकोचरहितः सन् स्वीकारिष्यति प्रीतिपूर्वकं सेविष्यते ? (कदा सुमनाः तं मृडीकं वरुणम् अभि ख्यम्) कस्मिंश्चानन्दमये समये तं सुखस्वरूपं सानन्दः सन् अभि ख्यम् अभि पश्येयम् ?

टिप्पणी—सुमनाः—शोभनमनस्कः । मृडीकम्—मुखयितारम् । अहृणानः—
हृणीङ् शानच्, ई लोपः । नञ् । हव्यम्—स्तोत्रम्, हविः । भुवानि—भवानि ।
लोट् । खयम्—चक्ष—ख्या—लुङ् छान्दसः प्रयोगः ।

हिन्दी-व्याख्या—(उत स्वया तन्वा संवदे तत्) मैं स्वयं अपने ही आप
पूछता हूं (कदा नु अन्त वरुणे भुवानि) कब वह आनन्ददायक समय आयेगा जबकि
मैं अपने आपको तरुण देवता में अन्तर्मग्न कर दूंगा । (किं मे हव्यम् अहृणानः
जुषेत) वरुण देवता का मेरे हवि-पदार्थ को और मेरी स्तुतियों को संकोच रहित
होकर प्रीति से श्रवण करेंगे । (कदा मृडीकं सुमना अभिख्यम्) कब वह मगलप्रद
समय आयेगा जबकि मैं उस सुखदाता को प्रसन्नता के साथ देखूंगा ?

३-

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृशू—

पो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।

‘समानमिन्मे कवयश्चिदाहु-

रयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३॥

पद-पाठः—पृच्छे । तत् । एनः । वरुण । दिदृशू । उपो इति । एमि ।

चिकितुषः । वि ऽ पृच्छम् । समानम् । इत् । मे । कवयः । चित् । आहुः । अयम् ।

ह । तुभ्यम् । वरुणः । हृणीते ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(दिदृशू अहं हे वरुण ! तद् एनः पृच्छे । दर्शनाभिलाषी
खल्वहं हे वरुण ! तदेनः पापकं पृच्छामि येन हेतुनाहं न ते दर्शनं प्राप्नोमि ।
(चिकितुषः उपो एमि) अस्मिन् विषये ये ये वृद्धा विद्वांसः सन्ति तानपि (वि पृच्छम्)
विविधान् प्रश्नान् प्रष्टुमुपागाम् । (ते कवयः चित् समानम् इत् उत्तरं मे आहुः) ते
सर्वे क्रान्तदर्शना अस्मिन् विषये एकमतयः । एकरूपमेव एतेषामुत्तरम्—(हे स्तोतः
तुभ्यम् अयं ह वरुणः हृणीते) कोपकारणात् अयं वरुणः त्वाम् अभिक्रुध्यति । उपेक्षा-
भावं गतः ।

टिप्पणी—दिदृशू—दृश—सन्—उः । सुलोपश्छान्दसः । चिकितुषः—
कित + क्वसु । द्वित्वमभ्यासकार्यं च । द्वितीया बहुवचने । हृणीते—हृणीङ् लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! दर्शन की लालसा लेकर मैं आपसे ही अपने उस पाप को पूछता हूँ जिसके कि कारण आपका दर्शन मुझे दुष्प्राप्य हो गया है। (चिकितुषः उपो एमि) इस बारे में बड़े-बड़े वृद्ध-सिद्ध-आचार्यों तक मैं गया हूँ और उनसे भी उपेक्षा के बारे में नाना प्रकार से प्रश्न किये हैं। उन सभी महानुभावों का एक जैसा ही उत्तर है—‘वरुण देवता तुम्हारे प्रति अवश्य कुपित हैं।’

४-

किमाग आस वरुण ज्येष्ठं

यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।

प्र तन्मे वोचो दूलभ स्वधावो—

ऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४॥

पद-पाठः—किम् । आगः । आस । वरुण । ज्येष्ठम् । यत् । स्तोतारम् ।

जिघांससि । सखायम् । प्र । तत् । मे । वोचः । दुः ऽ दूलभ । स्वधा ऽ वः । अव ।

त्वा । अनेनाः । नमसा । तुरः । इयाम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! किं मे ज्येष्ठम् आगः आसः अपराधोऽस्ति । यत् येन सखायं स्तोतारमपि जिघांससि हन्तुमुद्यतोऽसि । दुर्दूलभ अन्यैर्वाधितुमशक्य ! स्वधावन् ! (प्र तन्मे वोचः) तम् अपराधं मह्यं ब्रूहि ये तस्य प्रायश्चित्तं कृत्वा यथा-शक्ति अनेनाः स्याम् निरपराधो भवेयम् । त्वां च निष्पापः सन् त्वरया शीघ्रमेव इयाम् उपगच्छेयम् ।

टिप्पणी—आगः=पापम् । दूलभ=दुर्दूलभ=शत्रुभिरधृष्य । स्वधावः स्वधावन्=तेजस्विन् । अनेनाः=एनसा रहितः । निष्पापः ।

(२) मैकुडानल ने ज्येष्ठ का अर्थ ‘प्रमुख’, दूलभ का अर्थ ‘जिसे ठगा न जा सके’, स्वधावः का अर्थ ‘आत्म-निर्भर’ और नमसा का अर्थ ‘पूजा के द्वारा’ किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(वरुण किम् ज्येष्ठम् आग आस) वह कौन-सा भयंकर अपराध था जिसके कारण हे वरुण ! आप अपने (सखायं स्तोतारम्) सखा एवं

स्तोता को भी (जिघांससि) मार डालना चाहते हैं । (स्वधावः दूडभ) हे महान् शक्ति-सम्पन्न (बाधा रहित) (दुर्दमनीय) (प्र तन्ये वोचः) आप कृपा करके बतलायें जिससे कि मैं (अनेताः) पाप रहित होकर (नमसा) अपनी नम्रता एवं सत्यशीलता से (त्वा तुर इयाम्) आपके सन्निकट पहुँच जाऊँ ।

५-

अव॑ द्रु॒ग्धानि॑ पि॒त्र्या॑ सृ॒जानो॑

ऽव॒ या व॒यं च॒क्रमा॑ त॒नूभिः॑ ।

अव॑ राजन् पशु॒तृपं॑ न ता॒युं

सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॑ वसि॒ष्ठम् ॥५॥

पद-पाठः—अव । द्रुग्धानि । पित्र्या । सृज । नः । अव । या । वयम् ।

चक्रम । तनूभिः । अव । राजन् । पशुऽतृपम् । न तायुम् । सृज । वत्सम् ।

न । दाम्नः । वसिष्ठम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्याः—हे वरुण ! (पित्र्या नो द्रुग्धानि अव सृज) अस्मकं पितृतः परम्परया प्राप्तानि द्रुग्धानि बन्धनहेतवः द्रोहान् अवसृज अस्मतः विश्लेषय । (या वयं चक्रम तनूभिः) तास्यपि बन्धनानि दूरी कुरु यानि वयं द्रोहजातानि स्व-शरीरैः चक्रम कृतवन्तः । (राजन् ! पशुतृपं न तायुम्) हे राजन् वरुण ! पशूनां तर्पयितारं तायुम् इव चौरम् इव कृतप्रायश्चित्तं (स यथा प्रायश्चित्तं कृत्वा घासादिनां पशून् तर्पयति न पुनश्चौरादिकं करोति तथा (वत्सं न दाम्नः) दाम्नः रज्जुबद्धं वत्सम् इव (वसिष्ठम् मां बन्धनात् विमुञ्च ।

टिप्पणीः—पित्र्या—पित्र्याणि पितृत आगताभि । यत्प्रत्ययः । छान्दसं रूपम् । द्रुग्धानि—द्रुह + क्त । चक्रम—कृ + लिट् । वसिष्ठ=वसु + इष्ठन् । प्राणी वै वसिष्ठः । तनूभिः—परम्पराभिः शरीरयात्राभिः । स्थूलसूक्ष्मकारणशरीरैर्वी । क्रियाचिन्तनसंस्काररूपाभिः तनूभिः । दाम्नः—रज्जोः ।

(२) मैकडानल ने पशुतृप् का अर्थ 'पशुओं को चुराने वाला' चोर किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे वरुण ! (प्रिया द्रुघानि नो अवमृज) पितृ—परम्पराओं से प्राप्त हमारे द्रोहात्मक बन्धनों को आप शिथिल कर दें । (या वयं चक्रमा तनूभि तान्यपि अवमृज) और भय-भ्रम से जो कुछ अनर्थ हमारे शरीरों से हो गया है, उस पाप-बन्धन से भी हमें छुटकारा दीजिये । (राजन् पशुतृपं न तायुम्) जिस प्रकार प्रायश्चित्त आदि का अनुष्ठान करके बन्धन-मुक्त चोर मानव-समाज में प्रेम और विश्वास का पात्र बन जाता है उसी प्रकार मुझे भी बन्धनों से छुटकारा देकर एक अवसर दे दीजिये ताकि मैं भी (दाम्नः वत्सम् इव वसिष्ठम्) रस्सी से बंधे बछड़े के समान मुक्त होकर वसिष्ठ बन जाऊँ । आपका कृपापात्र वसिष्ठ बनूँ ।

६-

न स स्वोदक्षो वरुण ध्रुतिः सा

सुरा मन्यु बिभीदको अचित्तिः ।

अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे

स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥

पद-पाठः—न । सः । स्वः । दक्षः । वरुण । ध्रुतिः । सा । सुरा । मन्युः ।

वि ऽ भीदकः । अचित्तिः । अस्ति । ज्यायान् । कनीयसः । उप ऽ अरे । स्वप्नः ।

चन । इत् । अनृतस्य । प्र ऽ योता ।

संस्कृत-व्याख्या—हे वरुण ! अस्मिन् पाप प्रवृत्तिविषये कारणं (न स स्वः दक्षः) पुरुषस्य स्वो दक्षः नास्ति । न खलु मानवः स्वकीयेनैव दुःसाहसेन पापकर्मणि प्रवृत्तिं लभतेऽपितु (ध्रुतिः सा) उत्पत्तिसमय एव निमिता स्थिरा दैवगतिः अत्र कारणम् । येन मानवः प्रमादकारिणीं सुरां सेवते, गुरुन् प्रति क्रोधं वा विस्तारयति, अनर्थहेतुं बिभीदकं द्यूतसाधनं वाऽङ्गीकरोति, अचित्तिं वा ऽ ज्ञानम् । अत एव ईदृशी देवरचना एव व्यामोहे पातयन्ती पुरुषान् पापप्रवृत्तौ प्रेरयति । अथापि च (अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे) उपागते समीपे ज्यायान् एवाधिकः समर्थः प्रभुः येन कनीयान् हीनः पुरुषः पापप्रवृत्तौ रमते । (स्वप्नश्चन इत् अनृतस्य प्रयोता) स्वप्नोऽपि

पापस्य कर्मणि प्रयोता मिश्रयिता भवति । अतः ममापराधे नाहमेवापि दैवगतिरपि कारणम् । क्षन्तव्योऽहम् इति प्रार्थना ।

टिप्पणी—ध्रुतिः—ध्रु + क्तिन् । अचित्तिः—चित् + क्तिन् । नञ् । कनीयसः—युवन् या अल्प + ईयसुन् (कनादेशः) । ज्यायान् = प्रशस्य + ईयसुन् । ज्यादेशः । प्रयोता—प्र + यु + तृच् ।

हिन्दी व्याख्या—(न स स्वः दक्षः) हे वरुण ! पापकर्म में प्रवृत्त करने वाला हमारा अपना ही दुःसाहस कारण नहीं है अपितु (ध्रुतिः सा) उत्पत्ति के समय ही देवगति का स्थिर-विधान भी कारण है । मदिरा (सुरा मन्थुः विभीषको अचित्तिः) क्रोध, जुए का पासा तथा अज्ञान आदि भी सहज ही में साहसिक कारण बने । छोटे के अपराध पर उपालम्भ भी तो बड़े को ही मिलता है अतः (अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे) छोटे के निकट यदि बड़ा है तो छोटे की प्रवृत्ति बुरे कर्म में क्यों होती है ? (स्वप्नश्चनेद् अनृतस्य प्रयोता) और आपका ही दिया हुआ यह स्वप्न है जिसके कारण मनुष्य की अधर्म में प्रवृत्ति होती है । अतः हे वरुण ! मेरे अज्ञान और प्रमाद का नाश कीजिये और मुझको अपनी शरण में लेकर कृतार्थ कीजिये ।

७-

अरं दासो न मीढुषे कराण्य—

—हं देवाय भूर्णये ऽ नागाः ।

अचेतयदचितो देवो अर्यो

गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७॥

पद-पाठः—अरम् । दासः । न । मीढुषे । कराणि । अहम् । देवाय ।

भूर्णये । अनागाः अचेतयत् । अचितः । देवः । अर्यः । गृत्सम् । राये । कवि ऽ तरः ।

जुनाति ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(अहम् अनागाः सन्) पाप हितो भूत्वाऽहम् (मीढुषे भूर्णये देवाय) सेक्रे कामानां पूरकाय देवाय जगतो भवन् स्वामिने वरुणाय (अरं कराणि) पर्याप्तं परिचरणं करवाणि (दासो न) सेवक इव । यथा निष्ठावान् सेवकः सम्यक्

परिचर्यां करोति तथाऽहमपि (स च देवः अचितः अचेतयत्) स चायं स्वामी अचितः अविवेकिनः अचेतयत् प्रजापयतु प्रचेतयतु (गृत्सं च कवितरः राये जुनाति) अयं च अयः स्वामी क्रान्तदर्शी देवः स्तोतारं राये धनप्राप्त्यर्थं जुनाति प्रेरयतु ।

टिप्पणी—भूणये—भृ धातोः क्तिन् । उरादेशः, रपरत्वं दीर्घत्वं णत्वम् । मोहूपे = सींचने वाले । अनागाः = अपापः । अयः = स्वामी । गृत्सम् = स्तोतारम् । राये = धनाय ।

(२) मैकूडानल ने भूणये का अर्थ 'क्रुद्ध' और गृत्सम् का अर्थ 'अनुभवी व्यक्ति' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(मोहूपे भूणये देवाय) कामनाओं की तृप्ति-पूर्ति करने वाले, जगत् का भरण-पोषण करने वाले वरुण देव के लिए (अनागा अहम् अरं कराणि) मैं निष्पाप होकर निरन्तर परिचर्या करता रहूँ । (दास इव) भृत्य के समान सदा निष्ठावान् रहूँ । (अयों देवो ऽ चितोऽचेतयत्) वह स्वामी वरुण सदा हम अज्ञानी पुरुषों को शुभकर्मों की ओर चेतन्य करते रहें (गृत्सं राये कवितरो जुनाति) और स्तुति करने वाले निष्पाप लोगों को बाह्य और अन्तराल की विभूतियों से सम्पन्न करें ।

८-

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो—

हृदि स्तोम उपश्रित इचिदस्तु ।

शं नः क्षमे शम् योगे नो अस्तु

यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पद-पाठः—अयम् । सु । तुभ्यम् । वरुण । स्वधा ऽ वः । हृदि । स्तोमः ।

उप ऽ श्रितः । चित् । अस्तु । शम् । नः क्षमे । शम् । ऊँ इति । योगे । नः ।

अस्तु । यूयम् । पात । स्वस्ति ऽ भिः । सदाः । नः ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—हे (स्वधावः ! वरुण) अन्नदातृत्वं वरुण ! (अयं स्तोमः चित् हृदि उपश्रितः अस्तु) अयम् अस्माभिः क्रिममाणः स्तुतिसमूह स्तव हृदि हृदये

सुष्ठु उपश्रितः उपागतो भवतु । 'शन्नः क्षेमे शमु योगे नो ऽस्तु' अप्राप्तस्य प्राप्ति विषये प्राप्तस्य रक्षाविषये चोपद्रवाणां सदा शमनमस्तु । (यूयम्) हे वरुणादयो देवाः यूयं नोऽमान् सदैव स्वस्तिभिः स्वकल्याणैः पात रक्षत ।

टिप्पणी—योगः=अप्राप्तस्य प्राप्तिः । क्षेमः—प्राप्तस्य रक्षणम् । स्वधा=अन्नम् । स्तोमः—स्तुतिसमूहः । उपश्रितः अस्तु=उपाश्रयं प्राप्नोतु । स्वधावः=स्वधावन् ।

२. मैक्डानल ने स्वधावः का अर्थ 'आत्म-निर्भर' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(हे स्वधावः वरुण !) हे अन्नों के धारण वरणीयतम वरुण ! (अयं स्तोमः हृदि उपश्रितः अस्तु) यह हमारी स्तुतियाँ आपके मंगलप्रद हृदय का स्पर्श करें । अप्राप्त की प्राप्ति के लिए तथा प्राप्त की रक्षा के लिए उत्पन्न विघ्नों का सदा शमन होता रहे और आप सभी देवता मिलकर हमारा कल्याण करते रहें ।

मण्डल-७

मण्डूक-सूक्तम्

सूक्त १०३

ऋषि—वसिष्ठः—देवता—मण्डूक—छन्दः—१—अनुष्टुप् शिष्टेषु त्रिष्टुप् ।

१-

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।

वाच पर्जन्य जिन्वितां प्र मण्डूको अवादिषुः ॥१॥

पद-पाठः—संवत्सरम् । शशयानाः । ब्राह्मणाः । व्रतं चारिणः । वाचम् ।

पर्जन्यं ऽ जिन्विताम् । प्र । मण्डूकाः । अवादिषुः ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—व्रतचारिणः संवत्सरसत्रात्भक्तं व्रतमाचरन्तः ब्राह्मणा इव सरत्कालमारभ्य वर्षाकालं यावत् पूर्णं सम्बत्सरं शशयानाः शिथ्याना वर्षणार्कं तप आचरन्तः इव विले एवं विलसन्तः एते मण्डूकाः पर्जन्यजिन्वितां यथा वाचा पर्जन्यः प्रीतो भवति तां वाचं मण्डूका अवादिषुः प्रवदन्ति ।

टिप्पणी—व्रतचारिणः—व्रत + चर + णिनि । शशयानाः शी + कानच्
छन्दसि । जिन्विताम्—जिवि + इट् + क्त + टाप् । अवादिषुः—वद + लुङ् प्रथम
पुरुषबहुवचने ।

(२) वर्षकामो वसिष्ठः पर्जन्यं तुष्टाव । तं मण्डूका अन्वमोदन्त । स मण्डू-
कान् दृष्ट्वा तथा विधांस्तुष्टाव ।

(३) मण्डूकाः—मण्ड एषामोकः, मञ्जूका मञ्जनात्, मदते वा मोदतिक मणः,
मन्दते वा तृप्तिकर्मणः, मण्डयते रिति वा । निरुक्त ६-१ ।

हिन्दी व्याख्या—संवत्सर को सत्ररूप मानकर व्रत का आचरण करने वाले
ब्राह्मणों के समान शरत् काल से लेकर वर्षा काल पर्यन्त पूरे वर्ष का मौनव्रत लेने
वाले 'शशयाना' विलों में गौन बैठने वाले (वर्षा के लिये तप का आचरण करने
वाले) 'पर्जन्य जिन्वितां वाचम्' जिस वाणी से पर्जन्य (मेघ) सन्तुष्ट होता है, उस
वाणी में प्रीति पूर्वक मण्डूक (अवादिषु) बोल रहे हैं ।

२-

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्

दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।

गवामह न मायु वत्सिनीनां

मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥२॥

पद-पाठः—दिव्याः । आपः । अभि । यत् । एनम् । आयन् । दृतिम् । न

शुष्कम् । सरसी इति । शयानम् । गवाम् । अह । न । मायुः । वत्सिनीनाम् ।

मण्डूकानां वग्नुरात्रा । अत्र । सम् । एति ।

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा दिव्या आपो दिवि भवानि जलानि सरसी सरस्यां
जलाभावात् शुष्कं शयानं शोषमुपगतम् एनं मण्डूकं प्रति आयन् अभिगच्छन्ति दृतिं
न दृतिमिव शुष्कं नीरसं मण्डूकं गणं प्रति यदा अभिगच्छन्ति तदा वत्सिनीनां गवां
सवत्सानां धेनूनां भिव मायू रम्भाध्वनिरिव एषां मण्डूकानां वग्नुरात्रा शब्दः समेति

संगच्छते । यथा वत्सः संगतानां गवां कलकलो जायते तथा वर्षति पर्जन्ये मण्डूकानां घोषो जायते ।

टिप्पणी—सरसी—महत्सरः । गौरादिलक्षणेन डीप् । सरस्याम् । सुषां सुलुगिति सप्तम्या लुक् । 'ईदूतौ च सप्तम्यर्थे' इति प्रगृह्य संज्ञा । वग्नः—'वच परिभाषणे' नु प्रत्ययः । दिव्याः—दिवि भवाः । शयानम्—शी + शानच् । आयन्—इ + लङ् प्रथम पुरुष बहुवचने । वत्सिनीनाम्—वत्स + इनि + डीप् । समेति—सम् + इ + लट् । प्रथमपुरुषैकवचने ।

हिन्दी-व्याख्या—'यत्' जब 'एनम्' इस मण्डूक गण के प्रति 'दिव्या आपः अभि आयन्' दिव्य (आकाशीय) जलधारायें प्राप्त होती हैं तब 'सरसी शयानम्' सरोवर में सोते हुये 'दृति न शुष्कम्' मशक की भाँति शुष्क इन मण्डूकों की (मण्डूकानां वग्नः) ध्वनि (अत्रा समेति) इधर सभी ओर सुनायी पड़ने लगती है मानों (वत्सिनीनां गवाम्) सवत्सा (बछड़े वाली) गायों की (मायुः) महान् ध्वनि (घोष) उठ रही हो ।

३-

यदीमेनां उ॒शतो॑ अ॒भ्यव॑र्षीत्-

तृ॒ष्याव॑तः प्रा॒वृ॒ष्याग॑तायाम् ।

अ॒ख॒खली॑कृत्या पि॒तरं॑ न पु॒त्रो-

अ॒न्यो अ॒न्यमु॑प॒ वद॑न्तमेति ॥३॥

पद-पाठः—यत् । ईम् । ए॒नान् । उ॒शतः । अ॒भि । अ॒व॒र्षीत् । तृ॒ष्या ऽ व॑तः ।

प्रा॒वृ॒षि । आ ऽ ग॑तायाम् । अ॒ख॒खली॑कृत्य । पि॒तरम् । न । पु॒त्रः । अ॒न्यः । अ॒न्यम् ।

उ॒प । व॑दन्तम् । ए॒ति ।

संस्कृत-व्याख्या—'यत् ईम् ए॒नान् उ॒शतः तृ॒ष्याव॑तः' तृ॒ष्याव॑तः तृ॒ष्णाव॑तः पिपासावतः उ॒शतः कामयमामान् ए॒नान् मण्डू॑कान् प्रति यदा 'प्रा॒वृ॒षि आ॑गतायाम् अ॒भ्यव॑र्षीत् वर्षायाम् आगतायां पर्जन्यं स्तुतिं तृ॒प्तौऽभि॑वर्षति तदा 'अ॒ख॒खली॑कृत्य' अ॒ख॒खल॑ इति (अ॒ख॒खा !) शब्दानुकरणं कृत्वा पि॒तरं प्रति पु॒त्र इव अ॒न्यो मण्डू॑कः इतरं वदन्तं मण्डूकं प्रति 'एति' प्राप्नोति ।

टिप्पणी—उशतः—वश + शतृ, संप्रसारणम्, द्वितीया बहुवचने । तृष्यावतः—
तृप् + वयप् + टाप् + मतुप् । द्वितीया बहुवचने । अभ्यवर्षीत्—अभि + वृष—लुङ् ।
अखलीकृत्य—अखल + चिव + कृ + लृक् (क्त्वो ल्यप्) । वदन्तम्—वद + शतृ ।

(२) मैक्डानल ने 'उशतः' का अर्थ 'उत्सुक' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'तृष्यावतः' तृष्णा (प्यास) से तड़पते हुए 'उशतः' जल की कामना के लिये विकल 'यत् ईम् एनान्' जब इन मण्डूकों के प्रति 'प्रावृषि आगता-
याम्' वर्षा काल के आने पर 'अभ्यवर्षीत्' स्तुतियों से तृप्त पर्जन्य इन पर वर्षा
करता है तब 'अखलीकृत्य' हर्ष से फूले न समाते हुए 'अखल, अखला' करके खिल-
खिलाकर प्रसन्न होते हुये 'पितरं न पुत्रः' पिता के प्रति पुत्र के समान 'अन्यो अन्यम्
उपवदन्तम्' बोलने वाले के पास दूसरा 'एति' पहुँच ही जाता है ।

४-

अन्यो अन्यमनुगृह्णात्येनो-

रपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।

मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्

पृश्निः संपृक्ते हरितेन वाचम् ॥४॥

पद-पाठः—अन्यः । अन्यम् । अनु । गृह्णाति । एनोः । अपाम् । प्र ऽ सर्गे ।

यत् । अमन्दिषाताम् । मण्डूकः । यत् । अभि ऽ वृष्टः । कनिष्कन् । पृश्निः । सुम् ऽ

पृङ्क्ते । हरितेन । वाचम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—'अपां प्रसर्गे' उदकानां प्रसर्जने वर्षणे सति 'यत्' यदा
'अमन्दिषाताम्' एतौ द्वौ मण्डूकौ हृष्टौ अभूताम् । तदा 'अन्यो अन्यम् एनोः अनु-
गृह्णाति' एको मण्डूकोऽन्यं मण्डूकं प्रति अनुगम्य गृह्णातीव अनुग्रहमिव करोति ।
कदा ? 'यत् अभिवृष्टः मण्डूकः' यदा पर्जन्येन अभिषिक्त एको मण्डूकः कनिष्कन्
उत्प्लवं कुर्वन् (प्लुति-प्रदर्शयन्) 'पृश्निः' पृश्निवर्णो मण्डूकः 'हरितेन' हरितवर्णेन
अन्येन सह 'वाचं संपृक्ते' स्वकीयां वाचं संयोजयति । तादृशार्थापि समानं शब्दं
कुर्वति, अत एव परस्परमनुग्रहमिव कुरुतः ।

टिप्पणी—अमन्दिषाताम्—‘मदी हर्षे’ लुङ् प्रथमपुरुषद्विवचने । गृह्णाति—
गृह्णाति—ग्रह—लट् । अभिवृष्टः—अभि + वृष + क्त । कनिष्कन्—स्कन्द यङ् लुक्,
शतृ । संपृक्ते—सम् + पृची संपर्क + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—जब सुखावह जल वृष्टि होने लगती है तब ‘अपां प्रसर्गे यद्
अमन्दिषाताम्’ जलवृष्टि से पूर्ण प्रसन्न हुए मण्डूक एक दूसरे पर ‘अनुगृह्णाति’ मानों
अनुग्रह-से कर रहे होते हैं । कब ? ‘यद् अभिवृष्टः’ जब कि जल से अभिषिक्त हुआ
‘कनिष्कन्- अपनी छलांग का प्रदर्शन करता हुआ ‘पृश्नि’ चित्तकबरा मण्डूक ‘हरितेन’
हरे वर्ण वाले से ‘वाचं संपृक्ते’ अपनी मधुर वाणी का संयोग मिलाता है ।

५—

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं

शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।

सर्वं तदेषां समृधेव पर्वं

यत् सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५॥

पद-पाठः—यत् । एषाम् । अन्यः । अन्यस्य । वाचम् । शाक्तस्य ऽ इव ।
वदति । शिक्षमाणः । सर्वम् । तत् । एषाम् । समृधा । इव । पर्वं । यत् ।
सु ऽ वाचः । वदथन । अधि । अप्सु ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—यत् यदा एषाम् एषां मण्डूकानां मध्ये अन्यः एको
मण्डूको ऽ न्यस्य वाचं वदति अनुवदति तदा एवं प्रतीयते शाक्तस्य शक्ति सम्पन्नस्य
शिक्षकस्य शिक्षमाणः शिष्यः कल्याणीं वाचम् अनुवदतीव । हे मण्डूकाः !
सुवाचः शोभनवाचः यत् यदा ‘अधि अप्सु’ वृष्टेषु उदकेषु तरन्तो यूयं वदथन वाचम्
उच्चारयथ तत् तदा एषां युष्माकं पर्वं (अध्ययनपर्वं, शरीरम्) समृधेव समृद्धमेव
भवति । ग्रीष्मकाले मृत्तिकायां विलीना मण्डूका वर्षाकाले पुनः अविकलाङ्गाः
सशरीराः प्रादुर्भवन्ति । इति ।

टिप्पणी—शिक्षमाणः—शिक्ष् + शप् + शानच् + मुक् । शाक्तस्य—शक् +
क्त + अण् । पर्वं—परुष्मच्छरीरम्, अध्ययन पर्वं च ।

(२) मैकुडानल ने समृधा इव का अर्थ ‘पाठ के समान’ । सुवाचः—एक-
स्वन्ता रखने वाले (आरोह-अवरोह की ध्वनियों में समरूपता वाले) ।

हिन्दी-व्याख्या—(यदेषामन्योन्यस्य वाचम्) जब इन मण्डूकों में एक दूसरे
की (वाचम्) वाणी को ‘शाक्तस्य इव वदति शिक्षमाणः’ समर्थ (सशक्त) शिक्षक की
वाणी को अभ्यासशील शिष्य के समान ‘अनुवदति’ बोलता है । यह सब पर्व
(अध्ययन—पर्व, शरीर—पर्व) इन मण्डूकों की समृद्धि के लिये ही मानों है जो यह
मण्डूकगण (सुवाचः) आनन्ददायक वाणी बोलने वाले (अधि अप्सु) वृष्टि के समय
जल के ऊपर तैरते हुए (वदथन) परस्पर तुम सब संभाषण करते हो ।

६—

गोमायुरेको अजमायुरेकः

पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।

समानं नाम बिभ्रतो विरूपा

पुरुत्रा वाचं पिपिशु वदन्तः ॥६॥

पद-पाठः—गो ऽ मायुः । एकः । अज ऽ मायुः । एकः । पृश्निः । एकः ।

हरितः । एकः । एषाम् । समानम् । नाम । बिभ्रतः । विरूपाः । पुरु ऽ त्रा । वाचम् ।

पिपिशुः । वदन्तः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—एषु मण्डकेषु को ऽ पि गोमायुः गोमायुरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशः । अन्यो अजमायुः अजस्य वृद्धवर्कस्य मायुरिव मायुः शब्दो यस्य तादृशः । को ऽ पि मण्डकः पृश्निवर्णः कर्बुरः, एकश्च हरितवर्णः । एते 'विरूपाः' नानारूपाः सन्तो ऽ पि समानम् एकं नाम 'मण्डकाः' इति बिभ्रति धारयन्ति । एते वदन्तश्च 'पिपिशुः' अवयवीभवन्ति, प्रादुर्भावं गच्छन्ति ।

टिप्पणी—पुरुत्रा—पुरुशब्दाद् 'देवमनुष्य०' ५-४-५६ इति सूत्रेण त्रा प्रत्ययः । पिपिशुः—'पिश अवयवे' लिट्, प्रथमपुरुष बहुवचने । बिभ्रतः—भृ + शतृ । घातो दित्वम् ।

हिन्दी-व्याख्या—इन मण्डकों में कोई 'गोमायु' है जो गाय की ध्वनि के समान रंभाता है । दूसरा 'अजमायु' बूढ़े बकरे की ध्वनि के समान ध्वनि करता है । एक पृश्नि (चितकबरा) है तो दूसरा हरे-पीले रंग का है । यद्यपि ये सब मण्डक 'विरूपाः' नानारूपों के हैं=आकार-प्रकार, रूप-रंग आदि की दृष्टि से इनमें विभिन्नता है तथापि इनका नाम (समानम्) एक ही 'मण्डक' ही है । सभी मण्डक 'वदन्तः' इस प्रकार बोलते हुए 'पिपिशुः' बहुत रूपों में प्रकट होते हैं ।

७—

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे

सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।

संवत्सरस्य तदहः परिष्ठ

यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७॥

पद-पाठः—ब्राह्मणासः । अति ५ रात्रे । न सोमे । सरः । न । पूर्णम् ।

अभितः । वदन्तः । संवत्सरस्य । तत् । अहरिति । परि । स्थ । यत् । मण्डूकाः ।

प्रावृषीणम् । बभूव ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे मण्डूकाः ! यद् अहः दिनं प्रावृषीणं प्रावृषेयं प्रावृषि भवं भवति तस्मिन्नहनि दिवसे यूयं परिष्ठ परितः सर्वतो भवथ । यथा संवत्सरस्य अतिरात्रे सोमयागे (रात्रिम् अतीत्य वर्तते इति अतिरात्रः) । यथा तस्यां रात्रौ पर्यायक्रमेण ब्राह्मणाः स्तुतशस्त्राणि पठन्ति तथा यूयमपि पूर्णां रात्रिं स्वकीयानि शास्त्राणि शंसथ । समस्तं सरः युष्माकं ध्वनिभिः परिपूर्णमिव वर्तते ।

टिप्पणी—ब्राह्मणासः—ब्राह्मणाः ब्रह्मावादिनः । 'आज्जसेरसुक्' । प्रावृषीणम्—प्रावृष् + ख (ईन) । परिष्ठ—परि + स्थ (अस + लट् । मध्यमपुरुषैकवचने) अतिरात्रः—रात्रिम् अतीत्य वर्तते इति अतिरात्रः सोमयागः । यस्यां रात्रावपि ब्राह्मणा स्तोत्राणि पठन्ति, 'एवमेते मण्डूकाः' इति ध्वनिः ।

(२) मैकुडानल ने 'परिष्ठ' का अर्थ 'कल्लोल करना', 'हर्षोल्लास प्रकट करना' लिखा है ।

हिन्दी-व्याख्या—ये मण्डूकगण ! उस रात्रि में जबकि वर्षाकालीन मेघ गर्जन के साथ जल-सेचन पृथ्वी पर करने लगते हैं, तुम भी अपनी ध्वनि से समग्र सरोवर को कम्पाकुल कर देते हो । अतिरात्र में सोमयागी ब्राह्मणों के समान; वे जैसे दिन के अनन्तर में बड़ी रात तक अपने मंत्र-पाठ से क्रमशः रात्रि को ध्वनि-संभूत कर देते हैं, उसी प्रकार तुम ही समग्र रात्रि में अपना ध्वनि-संयोजन करते रहते हो ।

८—

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत

ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।

अध्वर्यवो घमिणः सिष्विदाना—

आवि भवन्ति गुह्या न केचित् ॥८॥

पद-पाठः—ब्राह्मणासः । सोमिनः । वाचम् । अक्रत । ब्रह्म । कृण्वन्तः ।

परिवत्सरीणम् । अध्वर्यवः । घमिणः । सिष्विदानाः । आविः । भवन्ति । गुह्याः ।

न । के । चित् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—‘परिवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः’ साम्बत्सरिकं ब्रह्म मंत्रो-
च्चारणं कुर्वणाः ‘सोमिनः ब्राह्मणासः’ सोमसम्पादनो ब्राह्मणा इव ‘वाचम् अक्रत’
एते मण्डूका हृदयंगमां वाचम् उच्चारयन्ति । ‘अध्वर्यवः घमिणः सिष्विदानाः’
घमिणः घर्मतप्ताः अध्वरस्य नेतार इव एते मण्डूकाः सिष्विदानाः सस्वेदाः स्वि-
घृत्कायाः सन्ति । सर्वेषु कालेषु गुह्याः तिरोहिताः खत्वपि एते मण्डूकाः सम्प्रति
आविर्भूता भवन्ति न केचित् गुह्या न केचिदप्रकटाः ।

टिप्पणी—परिवत्सरीणम्—परिवत्सर + ख (ईत्) । कृण्वन्तः—कृवि +
शतृ । सोमिनः—सोम + इत् । अक्रत—कृ + लुङ् । सिष्विदानाः—स्विद + कानच्,
धातो द्वित्वमभ्यासकार्यं च । घमिणः—घर्मण प्रवर्गर्मेण चरन्तः ।

हिन्दी-व्याख्या—‘सोमिनः’ सोमयाग का सम्पादन करने वाले (ब्राह्मणासः)
ब्राह्मणों के समान (परिवत्सरीणं ब्रह्म कृण्वन्तः) वार्षिक ब्रह्म-सत्र का अनुष्ठान करने
वाले ये मण्डूक अब (गुह्या न केचित्) कोई छिपे हुए नहीं हैं । सभी (घमिण
सिष्विदानाः अध्वर्यवः) अध्वर (यज्ञ) के नेताओं के समान धर्म के कारण स्वेद से
सने के समान हैं और सभी अपने मंत्रात्मक पाठ के साथ ही साथ अविर्भाव कर
रहे हैं ।

६— देवहिंति जुगुपु द्वादशस्य
 ऋतुं नरो न प्रमिनन्त्येते ।
 संवत्सरे प्रावृष्यागतायां
 तप्ता घर्मा अशुवते विसर्गम् ॥६॥

पद-पाठः—देव ऽ हितिम् । जुगुपुः । द्वादशस्य । ऋतुम् । नरः । न ।
 प्रमिनन्ति । एते । सम्बत्सरे । प्रावृषि । आ ऽ गतायाम् । तप्ताः । घर्माः । अशुवते
 वि ऽ सर्गम् ।

संस्कृत-व्याख्या—एने नरः नेतारः अन्येष्वपि ऋतुषु वसन्तादिषु परस्परं
 भाषणान्यकृत्वा तमृतुं न प्रमिनन्ति न हि सन्तिनापवादविषयतां प्रापयन्ति । अनेन
 प्रकारेण ऋतु निन्दां प्रवर्जयन्त एते द्वादशमासान्वितस्य विधानस्य परिपोषणार्थं
 देवहिंति देवविधिं देवसम्बन्धि विधानं जुगुपू रक्षन्ति । पुनः सम्बत्सरे प्राप्ते प्रावृषि
 आगतायां वर्षाकाले सम्प्राप्ते घर्माः तप्ताः अतीव ग्रीष्मकालवशात् सन्तप्ताः सन्तः
 विसर्गम् 'जलसृष्टिमशुवते विलात्' विसर्गं विसर्जनं मोचनं वा अशुवते प्राप्नुवन्ति ।
 पर्जन्यकाल एव अनुमोदन विधिना वृष्टिहेतवो भवन्ति ।

टिप्पणी—देवहिंतिम्—देव + धा + क्तिन् । दधाते हिः । जुगुपुः—गुप् +
 लिट्, प्रथमपुरुष बहुवचने । मिनन्ति—मि + लट् । अशुवते—अश् + लट्, प्रथम-
 पुरुष बहुवचने ।

वर्षोत्सवमेते वर्षाकाले एव विदधति नान्येषु ऋतुषु । अत एव एते देव-
 विधानस्य रक्षकाः ।

(२) मैक्डानल ने 'नरः' का अर्थ मनुष्य तथा 'घर्माः' का अर्थ 'दुग्ध-दान'
 किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—ये मण्डूक वास्तव में 'नरः' नेता हैं जो 'एते ऋतु' न प्रमि-
 नन्ति' बसन्त आदि ऋतुओं में अपना वर्षोत्सव न मनाकर उस ऋतु को निन्दित
 होने से बचाते हैं और 'द्वादशस्य' बारह मास वाले 'देवहिंतिम्' देवों के विधान को
 (जुगुपुः) भली प्रकार सुरक्षित रखने में पूर्ण प्रयास करते हैं । पर हाँ, वर्ष के पूर्ण
 होने पर 'प्रावृषि आगतायाम्' वर्षा काल के सम्मुख आने पर 'घर्माः तप्ताः' गर्मी से
 व्याकुल ये मण्डूक 'अशुवते विसर्गम्' जल की सृष्टि का आनन्दोत्सव मनाने के लिए
 छिपे हुए स्थानों से बाहर निकल आते हैं ।

१०—

गोमायुरदादजमायुरदात्

पृश्निरदाधरितो नो वसूनि ।

गवां मण्डूका ददतः शतानि

सहस्रसावे प्रतिरन्त आयुः ॥१०॥

पद-पाठः—गो ऽ मायुः । अदात् । अज ऽ मायुः । अदात् । पृश्निः । अदात् ।

हरितः । नः । वसूनि । गवाम् । मण्डूकाः । ददतः । शतानि । सहस्र ऽ सावे । प्र ।
तिरन्ते । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—‘गोमायुः अदात्’ गो मायु रिब शब्दो यस्य तादृशोगोमायु मण्डूको ये वसूनि धनानि अदात् । ददातु । अजमायुः पूर्ण वर्करसदृश शब्दो ऽ पि मण्डूको मे वसूनि अदात् । ददातु । पृश्निः शबलवर्णो हरितः हरितवर्णो ऽ पि मण्डूकगणो मे वसूनि अदात् । ददातु । अस्मिन् सहस्रसावे सहस्रसंख्याका नानारूपा ओषधयः श्रूयन्ते उत्पद्यन्ते यत्र स वर्षाकालः सहस्रसावः । तस्मिन् समये गवां शतानि अपरिमितानि गवां ददतः प्रयच्छन्तः ‘प्रतिरन्त आयुः’ अस्माकंमायु जीवनं प्रवर्धयन्तु । वर्षाकाले मेघा गर्जन्ति । तान् दृष्ट्वा मण्डूका अनुमोदन्ते । अनुमोदमामान् मण्डूकान् दृष्ट्वा मेघास्तृप्ता भवन्ति जलं चापरिमितं सृजन्ति । तत ओषधयो गुल्मा स्तृणादयो लताश्च प्रजायन्ते । ततो ऽ स्माकं गावो जीवन्ति । ततो दुग्धादिना मानवा जीवन्ति । इति कार्याकरण व्यापारादेव मण्डूका आयुः प्रवर्धयन्ति तत्र कारण त्वं भजन्ते ।

टिप्पणी—अदात्—दा + लुङ्, प्रथमपुरुषैकवचने । सहस्रस्वने—सहस्र + सू + घञ् । ददतः—दा + शतृ । तिरन्ते—तृ + लट् ।

हिन्दी-व्याख्या—‘गोमायुः अदात्’ गो की भांति ध्वनि करने वाला अथवा ‘अजमायु’ बूढ़े बकरे की भांति ध्वनि करने वाला मण्डूक हमें ‘वसूनि अदात्’ धन की सम्पन्नता देवे । यह मण्डूक ही कारण हैं जिनसे गि हमारी ‘गवां मण्डूका ददतः शतानि’ गायें सैकड़ों प्रकार से वृद्धि पाती हैं और अपरिमित संख्या में बढ़ती हैं ‘सहस्रसावे प्रतिरन्ते आयुः’ सहस्रों प्रकार से जहाँ ओषधियाँ-वनस्पतियाँ, तृण, लतायें आदि उत्पन्न होती हैं उनके कारण मण्डूकगण ही हमारी आयु वृद्धि में कारण हैं क्योंकि वर्षाकाल में मेघ गरजते हैं उनका अनुमोदन मण्डूक करते हैं । उनके अनुमोदन से मेघ प्रसन्न होते हैं और प्रसन्न होकर जलवृष्टि करने लगते हैं जिससे लता-प्रसून तृणादि उत्पन्न होते हैं, उनसे गायों की वृद्धि होती है । गायों से दूध-घृत आदि की प्राप्ति से मानव-जीवन पूर्ण और सम्पन्न होता है । इस प्रकार मण्डूक ही हमारे जीवन को सम्पन्न और सुभाषी बनने में आशीर्वाद देते हैं ।

मण्डलं ८

सोम-सूक्तम्

सूक्त ४८

ऋषिः—कण्वं—पुत्रः प्रगाथः । देवता—सोमः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।
५—जगती ।

१—

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः

स्वाध्या वरिवोवित्तरस्य ।

विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो-

मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥१॥

पद-पाठः—स्वादोः । अभक्षि । वयसः । सु ऽ मेधाः । सु ऽ आध्यः ।

वरिवोवित् ऽ तरस्य । विश्वे । यम् । देवाः । उत । मर्त्यासः । मधुः । ब्रुवन्तः ।

अभि । सम् ऽ चरन्ति ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—यं यत् सोमाख्यम् अन्नं विश्वे देवा दिव्याः अमर्त्याः उत अपि च मर्त्यासः मरणधर्माणोऽपि मधु ब्रुवन्तः मधुरमेतदिति कामयमानाः अभि सञ्चरन्ति तदन्वेषणे कृत प्रयत्ना भवन्ति । प्रकृष्टगानकुशलः स्वाध्यः शोभनाध्ययनः सुमेधाः सुप्रज्ञः तत् वयसः अन्नम् स्वादोः स्वादुभूतस्य वरिवोवित्तरस्य अतिशयेन पूजां लभमानस्य अभक्षि । प्राप्नुयाम ।

टिप्पणी—स्वादोः वयसः वरिवोवित्तरस्य इत्यत्र कर्मणि षष्ठी । वरिवोवित्तरस्य वरिवस् + विद् + क्विप् + तरप् । अभक्षि—भक्ष् + लुङ् । ब्रुवन्तः—ब्रु + शतृ ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस सोम की प्रशंसा करते हुए सभी देवगण तथा मानव गवेपणा में संचरण करते रहते हैं। सभी जिसे मधुर, अमृत कह कर अपनी अभिरुचि प्रकट करते हैं; मैं भी उस स्वादुयुक्त, सबसे प्रशंसा प्राप्त सोम रूप अन्न को प्राप्त करके आत्मानन्द को पुलकित करूँ।

२-

अन्तश्च प्रागा अदिति भवा-

स्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।

इन्द्रविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः

श्रौण्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

पद-पाठः—अन्तरिति । च । प्र । अगाः । अदितिः । भवासि । अवऽ

याता । हरसः । दैव्यस्य । इन्द्रो इति । इन्द्रस्य । सख्यम् । जुषाणः । श्रौण्टीऽ इव ।

धुरम् । अनु । राये । ऋध्याः ॥२॥

संस्कृत व्याख्या—हे सोम ! 'अन्तश्च प्र अगाः' पीतः सन् हृदि प्रविष्टो भवसि । गत्वा च हृदि अदिति भवासि दैन्याभावं सम्पादयसि । अथ च सुशीलता-दिगुणान् सम्पाद्य दैव्यस्य हरसः क्रोधस्य अवयाता पृथक्कर्ता भवासि । त्वया सोम्य-भावं गमिते सति न देवसम्बन्धिनः क्रोधस्य उदयो भवितु मर्हति देवजुष्टे हविषि विद्यमानत्वात् । हे इन्द्रो ! इन्द्रुवद् आह्लादक सोम ! त्वमेव सम्यक् इन्द्रस्य सख्यं सखिभावं जुषाणः सेवमानः सर्वोत्कर्षेण वर्तसे । अतो रायेऽस्माकं धनोपलब्धये क्षिप्रगामी अश्व इव धुरमनु ऋध्याः अनुप्राप्नोषि । यथा क्षिप्रगामी अश्वो धुरं वृत्वा लक्ष्यभूतं देशं शीघ्रमेव प्रापयति तथा त्वं धनोपलाभाय अभिमतदेशं प्रापय ।

टिप्पणी—अन्तः—अन्तः इति हृदयस्य यागागारस्य वाज्जतराले इत्यर्थः । अदितिः—अदीनः । हरसः=क्रोधस्य । हर इति क्रोधनाम । श्रौण्टी—श्रुण्टी इति क्षिप्रनाम । तत्सम्बन्धी श्रौण्टी । अनुऋध्याः—ऋधिरत्र गत्यर्थः । जुषाणः—जुष + शानच् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! अन्तर्हृदय में पहुँच कर आप हमारी दीनता को दूर कर देते हैं। सोम्य भावना से हमारे अन्तःकरण को कोमल, शान्त और निरुपद्रव बना देते हैं जिससे दैवी क्रोध का पात्र मैं नहीं बनता। आप ही इन्द्र के सच्चे और अनुपम सखा हैं। और इन्द्र की प्रीति में दत्तचित्त रहते हैं। जिस प्रकार शीघ्रगामी अश्व अपने लक्ष्य प्रदेश को बिना विलम्ब के प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार हे सोम ! धनोपलब्धि के लिये अभिमत प्रदेशों को प्राप्त कराइये।

३- अपाम॑ सोम॑ममृ॒ता अ॒भूम॑-

गन्म॑ ज्योति॑रवि॒दाम॑ दे॒वान् ।

किं नू॒नम॒स्मान् कृ॑णव॒दरा॑तिः

किमु॑ धू॒तिर॑मृ॒त मर्त्य॑स्य ॥३॥

पद-पाठः—अ॒पाम॑ । सोम॑म् । अ॒मृता॑ । अ॒भूम॑ । अ॒गन्म॑ । ज्योति॑ः । अ॒वि॒-

दाम॑ । दे॒वान् । किम् । नू॒नम् । अ॒स्मान् । कृ॒णवत् । अ॒रातिः॑ । किम् । ऊँ इति॑ ।

धू॒तिः । अ॒मृ॒त । मर्त्य॑स्य ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीम् ऋषिः कृतसोमपानः प्राप्तामृतानन्दः ब्रूते—वयं सोमम् अपाम। प्रीतवन्तः। अमृता अभूम। अमृतं सोमं पीत्वा वयमपि अमरधर्मणः संवृत्ताः। अगन्म ज्योतिः। आनन्दमयं ज्योतिः। अगन्म। अविदाम देवान्। ज्ञातवन्तः। नूनम् इदानीम्। अरातिः शत्रुः किं कृणवत् किं कर्तुं समर्थः? न किमपि। मर्त्यस्य मरणं स्वीकृतवतोऽमरधर्मणः पुरुषस्य धूतिः हिंसकः किं कृणवत्? न किमपि।

टिप्पणी—अपाम—‘पा पाने’। लुङ्। ‘गातिस्था घुपा०’ इति सिचो लुक्। अभूम—‘भू सत्तायाम्’। लुङ्। सिचो लुक्। अगन्म—गम्—लुङ्। अविदाम—विद + लङ्। कृणवत्—कृवि + लेट्। अरातिः—‘रा दाने’। ‘मंत्रे वृष०’ इति क्तिन्। न विद्यते रातिदानं यस्य। धूतिः—धूर्वी हिंसार्थः। ‘क्तिच्क्ती च संज्ञायाम्’

इति क्तिच् । 'तिपुत्र तय सि०' इति इट् प्रतिषेधः । 'उपघायां च' इत्युपघादीर्घत्वम् । 'राल्लोपः' इति वकार लोपः । सोम-पानम्-उभया सह महेश्वरस्य ज्ञानरसपानम्, सोम पानम् । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिरितिवचनात् ।

हिन्दी व्याख्या—ब्रह्म जानी जिस सोम-रस का पान करते हैं, वह विलक्षण होता है । ऋषि कहते हैं—हमने सोम का रस-पान किया है । सोम स्वयं ही अमृत है अतः सोम-पान से अमरता की प्राप्ति हो गयी है । हमें आनन्द-ज्योति की प्राप्ति हुई है और अब देवों के दिव्यत्व की जानकारी हमें है । अब शत्रु हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता । हे अमृत सोम ! मरणधर्म स्वीकार कर लेने पर भी हम अमर स्वभाव रखते हैं अतः कोई हिंसक हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता ।

४-

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो

पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।

सखेव सख्य उरुशंस धीरः

प्र रा आयु जीवसे सोम तारीः ॥४॥

पद-पाठः—शम् । न । भव । हृदे । आ । पीतः । इन्दो इति । पिता ऽ इव ।

सोम । सूनवे । सु ऽ शेवः । सख्य ऽ इव । सख्ये । उरु ऽ शंस । धीरः । प्र । नः ।

आयुः । जीवसे । सोम । तारीः ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! ब्रह्म-रसायन ! त्वं पीतः सन् हृदे मनसे अन्तः करणाय कल्याणप्रद आ भव । हे इन्दो ! सुखाधानहेतो ! यथा शुभचिन्तकः पिता सूनवे पुत्राय सुशेवः सुखानन्दजनको भवति तथा त्वं हृदयानन्द जनने शुभो भव । यथा वा सखा सख्यु दोषान् दूरीकृत्य अहिताच्च निवार्य हितानन्दे स्थापयति तथा हे उरुशंस बहुभिः प्रशंसनीय सोम धीरो ध्यानवांस्त्वं धियं शुभे प्रेरयन् आयुः आयुष्यं प्रतारीः प्रकृष्टतया वर्धय ।

टिप्पणी—जीवसे—'तुमर्थे से०' असेन् । तारीः—तृ + लुङ् । सुशेवः—शेवमिति सुखनाम ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ब्रह्म-रसायन बनकर हमारे अन्तःकरण के लिये शान्तिदायक बनें । पिता के समान आनन्दोत्पादक तथा सखा के समान चिर प्रशंसक बने रहिये । हे सोम ! आप हमारे आयुष्य और मनीषा का सम्बर्धन करें ।

५-

इ॒मे मा॑ पी॒ता य॒शस॑ उ॒रु॒ष्य॒वो—

रथं॑ न गा॒वः स॒मना॑ह॒ पव॑सु ।

ते मा॑ रक्षन्तु वि॒स्रस॑श्च॒रित्रा॑—

दु॒त मा॑ स्ना॒माद्य॑व॒यन्त्वि॒न्दवः॑ ॥५॥

पद-पाठ—इ॒मे । मा॑ । पी॒ताः । य॒शसः॑ । उ॒रु॒ष्य॒वः । रथ॑म् । न । गा॒वः ।

सम् । अ॒नाह॑ । प॒र्व॑ ऽ सु । ते । मा॑ । रक्ष॑न्तु । वि॒ ऽ स्रसः॑ । च॒रित्रा॑त् । उ॒त । मा॑ ।

स्ना॒मात् य॒वय॑न्तु । इ॒न्दवः॑ ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—इमे सोमाः पीताः सन्तः यशसः यशस्कराः उरुष्यवः रक्षकाः भवन्तु । यथा गावः त्रिवृकृताः प्रग्रहाः पर्वसु बद्धाः सधारन्ति तथा शरीर ग्रन्थिषु सोमा दाढ्यं स्थापयन्ति । ते सोमा विस्रसः चरित्रात् विस्रस्तात् आचरणात् रक्षन्तु । अपि च मां स्नामात् व्याधेरपि पान्तु । रोगान् यवयन्तु दूरी कुर्वन्तु ।

टिप्पणी—उरुष्यवः—उरुष्यती रक्षाकर्मा इति यास्कः । गावः—गौः रज्जुः । अनाह—नह बन्धने । लुङ् । विस्रसः—विपूर्वात् संस धातोः क्विप् । पर्व = ग्रन्थिः । स्नामः—व्याधिः ।

हिन्दी-व्याख्या—पान के अनन्तर यह सोम हमारे भीतर यश का सम्पादन करें और संरक्षक बनें । जिस प्रकार जूए आदि ग्रन्थियों को दृढ़ रस्सियों से बाँध देने पर वह स्थान सुदृढ़ हो जाता है उसी प्रकार शरीर के समस्त जोड़ों को सोम-पान से दृढ़ता मिलती है । न केवल इतना ही अपितु सोम चरित्र-शैथिल्य को दूर कर देते हैं । वे समस्त विसंगतियों को दूर करें और आनन्ददायक सुख पहुंचाते हुए व्याधियों को भी हमसे दूर रखें ।

६-

अ॒ग्निं न मा॑ म॒थितं॑ सं दि॒दीपः॑

प्र चक्ष॑य कृ॒णु हि वस्य॑सो नः ।

अथा॑ हि ते म॒द आ सोम॑ मन्ये

रेवाँ॑ इ॒व प्र॑च॒रा पु॒ष्टि म॒च्छ ॥६॥

पद-पाठ—अ॒ग्निम् । न । मा । म॒थितम् । सम् । दि॒दीपः । प्र । च॒क्षय॒ ।

कृ॒णु हि । वस्य॑सः । नः । अथ॑ । हि । ते । म॒दे । आ । सोम॑ । मन्ये॑ । रेवा॑न् ऽ इ॒व ।

प्र । च॒र । पु॒ष्टिम् । अ॒च्छ ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! मथितं त्वम् अग्निमिव आधवनेन संस्कृतम् अग्निमिव मां संदिदीपः संदीपय । प्रचक्षय च प्रकाशोपेतं कुरु । कृणु नः वस्यसः अतिशयेन वसुमतः अस्मान् सम्पादय । हे सोम ! तव मदकरे मदे एवात्मानमहं भोगभागं मन्ये जानामि । धनहीनो ऽपि रेवान् धनवानिव अहमिति संभावयामि । अथ त्वम् अस्माकं पुष्टिं पोषणम् अच्छ प्रचर प्रभावय ।

टिप्पणी—वस्यसः—वसुमत् शब्दात् ईयमुनि 'विन्मतो लुक्' इति मतुपो लुकि । ईकारलोपश्छान्दसः । कृणुहि—'कृविहिंसाकरणयोः' लोटि ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! संस्कृत अग्नि के समान आप हमें दीप्त करें । हमारी अन्तर्दृष्टि में और अधिक उजाला दें । हमें अतिशय धन दें । हे सोम ! आपसे प्राप्त मद के कारण मैं निर्धन होता हुआ भी अपने को धनाढ्य ही मानता हूँ फिर भी आप हमें सभाचर शिष्ट पुरुष बनायें और धनपुष्टि से हमारे सारे अभाव-ग्रस्त शिथिल-जीवन को व्यवस्थित और प्रशंसनीय बनाने की कृपा करें ।

७-

इ॒षिरेण॑ ते मन॒सा सु॒तस्य॑

भक्षी॑महि पि॒त्र्यस्ये॒व रा॒यः ।

सोम॑ राज॒न् प्र॒ ण आयू॑ षि तारी—

रहानी॑व सूर्यो॑ वास॒राणि ॥७॥

पद-पाठः—इ॒षिरेण॑ । ते । मन॑सा । सु॒तस्य॑ । भ॒क्षीम॑हि । पि॒त्र्यस्य॑ ऽ इव ।

रा॒यः । सोम॑ । राज॒न् । प्र । नः । आयू॑ षि । तारीः । अ॒हानि॑ ऽ इव । सूर्यः॑ ।

वास॒राणि ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! यथा पित्र्यस्य रायः पितृसम्बन्धिनो धनस्य भोगः इषिरेण मनसा इच्छावता मनसा संकोचरहितेन क्रियते तथा सुतं त्वामभिषुतं भक्षीमहि । सेवेमहि । हे राजन् राजमान सोम त्वं न आयुः आयुष्यं प्रतारीः प्रवर्धय । यथा सूर्यः वासराणि वासकानि अहानि दिनानि स्वकीयेन भासा प्रवर्धयति तथा त्वमस्मान् प्रवर्धय ।

टिप्पणी—इषिरेण ईषणेन इति यास्कः । सुतस्य—अभिषुतस्य । पित्र्यस्य—पितृ + यत् । भक्षीमहि—भक्ष + लिङ् । तारीः—तृ + लुङि ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रकार पितृ-परम्परा के धन का भोग संकोचरहित मन से प्रसन्नतापूर्वक किया जाता है उसी प्रकार हे सोम ! आपका हम रुचिसम्पन्न मन से सेवन करते हैं । हे सोम ! जिस प्रकार भास्वर दिन को सूर्य अपने प्रकाश से सुवासित करते हैं उसी प्रकार आप भी हमारे आयुष्य को प्रसन्न और समृद्ध कीजिये ।

८-

सोम॑ राज॒न्मू॒लया॑ नः स्व॒स्ति

तव॑ स्मसि व्र॒त्या॑स्तस्य॑ वि॒द्धि ।

अ॒ल॒ति॑ दक्ष॑ उ॒त म॒न्युरि॑न्दो

मा नो॑ अ॒र्यो॑ अनु॒कामं॑ परा॑ दाः ॥८॥

पद-पाठः—सोम । राजन् । मूलय । नः । स्वस्ति । तव । स्मसि । व्रत्याः ।

तस्य । विद्धि । अलति । दक्षः । उत । मन्युः । इन्दो इति । मा । नः । अर्यः । अनु

५ कामम् । परा दाः ॥८॥

संस्कृत व्याख्या—हे सोम ! स्वस्ति दुःखाभावाय निरन्तरं मूलय मुख्य । वयं व्रत्याः व्रतशीलाः स्मसि तवैव स्मः । स्वकीयान् अस्मान् आशवासय । तस्य विद्धि । अस्मान् स्वकीयत्वेन नानीहि । हे सोम ! यदि अस्माकं दक्षः प्रबृद्धः शत्रुः अलति उदयं गच्छति उत वा मन्युः क्रोध उदयं गच्छति । तस्य अर्यः अरेः अनुकामं यथेच्छं नः अस्मान् परा दाः दरे कुरु ।

टिप्पणी—मूलय = मृद णिच् । लोट् । व्रत्याः—व्रत + यत् । स्मसि—स्मः । छान्दसः प्रयोगः । विद्धि—विद् + लोट् । अर्यः—अरेः । षष्ठी । छान्दसः प्रयोगः । दा—दा + लुङ् ।

हिन्दी व्याख्या—हे राजन् सोम ! आप निरन्तर कल्याण के लिए हमको सुखद-आनन्द देते रहें । हम सब व्रत-नियम का आचरण करने वाले आप से ही सम्बन्धित हैं, ऐसा ही विचार रखिये । यदि कोई समर्थ शत्रु अपना कुटिल आवेश प्रकट करता है अथवा यदि क्रोध उदित होकर हमारे शील को विकृत करता है, हे सोम ! ऐसे शत्रु को हमसे बहुत दूर कर दीजिये ।

६-

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा—

गात्रे गात्रे निषसत्था नृ चक्षाः ।

यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि

स नो मूल सुषखा देव वस्यः ॥९॥

पद-पाठः—त्वम् । हि । नः । तन्वः । सोम । गोपाः गात्रे ५ गात्रे । नि ५

ससत्थं नृऽचक्षोः । यत् । ते । वयम् । प्र (मिनाम् । व्रतानि । सः । नः । मूल ।

सुऽसखा । देव । वस्यः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! सोमाभिमानिन् देव ! त्वं हि त्वमेव हि नः अस्माकं तन्वः शरीरस्य गोपाः रक्षकोऽसि । त्वमेव नृचक्षाः सर्वेषां नेतृणां दृष्टत्वेन उपस्थितोऽसि । अतः गात्रे गात्रे अङ्गम् अङ्गं प्रति निषसत्था त्वमेव निषीदसि । हे सोम । भ्रमवशात् यत् ते व्रतानि यदि त्वत्सम्बन्धीनि व्रतानि कर्माणि वयं प्रमिनाम् हिंस्रः तथापि सुषखा शोभनसखा भवन् वस्यः श्रेष्ठान् न अस्मान् मूल आनन्दमय ।

टिप्पणी—तन्वः—तनु + षष्ठी । गोपा—गुपूरक्षणे + क्विप् । नृचक्षाः—नृ + चक्ष् + असुन् । निषसत्थ—नि + सद् + लिट् । प्रमिनाम्—प्र + मि + लट् । वस्यः—वसु + ईयसुन् । ईकारलोपः छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ही एकमात्र हमारे शरीर-रक्षक हैं । आप सभी नायक पुरुषों के उन्नायक तथा दृष्टा हैं अतः हमारे अंग-अंग में आप ही प्रविष्ट होकर हमारी देखभाल कर रहे हैं ! हे सोम ? मूल-भ्रम से आपके निर्दिष्ट व्रतों के पालन में हम शिथिल हो जाते अथवा उल्लंघन कर जाते हैं फिर भी आप सुन्दर सखा हैं अतएव हमारे कष्ट-निवारण में सदैव कृपा रखिये ।

१०-

ऋदूदरेण सख्या सचेय

यो मा न रिष्येद्वर्यश्व पीतः ।

अयं यः सोमो न्यधोऽयस्मे

तस्मा इन्द्र प्रतियमेस्यायुः ॥१०॥

पद-पाठः—ऋदूदरेण । सख्या । सचेय । यः । मा । न । रिष्येत् । हरिऽ

अश्व । पीतः । अयम् । यः । सोमः । नि । अधायि । अस्मे इति । तस्मै । इन्द्रम् ।

प्र ५ तिरम् । एमि । आयुः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—ऋषिः गमयते—अहं हि ऋदूदरेण मृदूदरेण कोमलाशयेन सोमेन सख्या मित्रभूतेन सांय संगतो भवानि । अयं पीतः सोमः मा मां प्रति न रिष्येत् न कुप्येत् । न मे हानि कुर्यात् । हे हर्यश्व ! इन्द्र ! भवानेव सोम स्वामित्वे प्रसिद्धः । अयं सोमः अस्मे अस्मासु न्यधायि संनिहितोऽस्ति, तस्मै सोमाय प्रतिरम् आयुः एमि याचे । तस्य चिरकालावस्थानं ततश्च अस्माकं भूयात् ।

टिप्पणी—ऋदूदरः सोमो मृदूदरः इति यास्कः । सचेय—सच् + लिङ् । रिष्येत्—रिप् + लिङ् । न्यधायि—नि + धा + लुङ् । चिण् । हर्यश्वः—इन्द्रः ।

हिन्दी-व्याख्या—मैं कोमल आशय वाले सोम की संगति में सदा रहूँ । पान के अनन्तर यः सोम मित्र बनकर ही रहें कभी किसी प्रकार की हानि न पहुँचायें । हे हर्यश्व = हरी—अश्व हैं जिसके = इन्द्र ! यह आनन्ददायक सोम मेरे अन्तःकरण में अवस्थित है । यह आनन्द चिरकाल तक (प्रतिरम्) बना रहे जिससे मैं भी चिर रमणीय बना रहूँ ।

११-

अप त्या अस्थुरनिरा अमीवा

निरत्रसन् तमिषीची रभेषुः ।

आ सोमो अस्माँ अरुह द्विहाया—

अगन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥११॥

पद-पाठः—अप । त्याः । अस्थुः । अनिराः । अमीवाः । निः । अत्रसन् ।

तमिषीचीः । अभेषुः । आ । सोमः । अस्मान् । अरुहत् । वि ५ हायाः । अगन्म ।

यत्र । प्र ५ तिरन्ते । आयुः ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—त्याः ताः अनिराः क्षेप्तुमशक्या अमीवाः सशक्ताः पीडाः अप अस्थुः दूरीभूता भवन्तु । याः तमिषीचीः सबलाः अस्मान् अभेषुः भयप्रदाने दक्षा

आसन् । याश्च अत्रसन् त्रासदायिन्यः । विहायाः महान् सोमः आ अरुहत् अस्मासु
आ विंशतु । यत्र यस्मिन् सोमे पीते सति मानवाः आयुः आयुष्यं प्रतिरन्त प्रवर्धयन्ति ।
स सोमोऽस्मासु प्रवृद्धिमाप्नोतु । हृदि सोमे प्रविष्टे सति सर्वे रोगा अपसरन्ति ।

टिप्पणी—अनिराः, अमीवाः—इरा अन्नम्, तदभावः अनिरा दारिद्र्यम् ।
अमीवा—रोगः । विहायाः—विविधगमनमुक्ताः । महती वा । विहाया इति महन्ताम्
नि० ३-३-१२ । तमिषीवीः—बलवती । अस्थु—स्था + लुङ् । 'गातिस्था०' इति
सिचो लुक् । 'आतः' इति ज्ञेजुस् ।

हिन्दी-व्याख्या—'अनिराः' दरिद्रता से उत्पन्न अथवा 'अमीवाः' रोगों से
उत्पन्न पीड़ा जो कि हमें भय-त्रस्त करके कमवाकुल बना रही थी जो बड़ी प्रबल थी
अब वे सभी दूर हो चुकीं क्योंकि महान् सोम हमारे अन्तःकरण को उमंगित कर
रहा है । सोम ही हमारे आयुष्य के सम्बर्धन में और कष्ट-निवारण में कारण है ।

१२-

यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतो—

ऽमर्त्यो मर्त्यो आ विवेश ।

तस्मै सोमाय हविषा विधेम

मृली के अस्य सुमतौ स्याम ॥१२॥

पद-पाठ—यः । नः । इन्दुः । पितरः । हृत् ऽसु । पीतः । अमर्त्यः ।

मर्त्यान् । आ ऽ विवेश । तस्मै । सोमाय । हविषा । विधेम । मृली के । अस्य ।

सु ऽ मतौ । स्याम ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पितरः ! पीतः हृत्सु यः इन्दु सोमः अमर्त्यः अमरधर्मा
मर्त्यान् मनुष्यान् आ विवेश प्रविष्टवान् । तस्मै सोमाय सोमाभिमानिने देवाय हविषा
विधेम विधिवत् परिचरेम । अस्य च सोमस्य देवस्य मृली के प्रसन्नतादायके सुखे
सुमतौ कल्याणायां बुद्धौ च सदा स्याम निवसेव ।

टिप्पणी—आविवेश—आ + विंश + लिट् । विधेम—विध + लिङ् ।
स्याम—अस् + लिङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे पितृगण ! यह आनन्ददायक सोम पान के अनन्तर हृदय में पहुँचकर अमरधर्मा होने पर भी समस्त पृथ्वी-पुरुषों में प्रविष्ट हो रहा है । उस महान् शुभकारी सोम के लिए हम निरन्तर पूजा करते रहें और सुख प्राप्त करते रहें । हम सब सदैव सोमाभिमानी देव की अनुग्रहपूर्ण भावना में आनन्द पाते रहें ।

१३-

त्वं सोम पितृभिः सविदानो-

ॐ नु द्यावापृथिवी आ ततन्थ ।

तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम

वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१३॥

पद-पाठः—त्वम् । सोम । पितृ ऽभिः । सम् ऽविदानः । अनु । द्यावा-

पृथिवी इति । आ । ततन्थ । तस्मै । ते । इन्द्रो इति । हविषा । विधेम । वयम् ।

स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे सोम ! त्वं पितृभिः संविदानः संगत्या वर्तमानः सन् द्यावापृथिवी विस्तारयति । एवं भूताय तस्मै ते वयं हविषा पूजा सामग्रया सदैव विधेम परिचरेम । वयं रयीणां धनानां पतयः स्वामिनो भवेम । त्वदनुकम्पया सधना रोगरहिताः स्याम ।

टिप्पणी—संविदानः—सम् + विद + शानच् । ततन्थतनु विस्तारे । लिट् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! पितृ-गण की सङ्गति में रहते हुए आप द्युलोक तथा पृथिवी लोक को सुख-सुविधा में विस्तृत करते हैं । ऐसे गुण स्वभाव वाले आपके लिये हम सदैव उत्तम हविष्य से परिचर्या करके आनन्दित होते रहें और बाधाओं से रहित होकर निरन्तर हम धन-ऐश्वर्य एवं मोक्ष-सुख के भागी बनें ।

१४-

त्रातारो देवा अधि वोचता नो-

मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पः ।

व॒यं सोम॑स्य वि॒श्वह॑ प्रि॒यासः॑

सु॒वीरा॑सो वि॒दथ॑मा वदे॒म ॥१४॥

पद-पाठः—त्रा॑तारः । दे॒वाः । अधि॑ । वो॒चत॑ । नः । मा । नः । नि॒ऽद्रा ।

ई॒शत॑ । मा । उ॒त । जल्पिः॑ । व॒यम् । सोम॑स्य । वि॒श्वह॑ । प्रि॒यासः॑ । सु॒ऽवीरा॑सः ।

वि॒दथ॑म् । आ । वदे॒म ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे त्रातारो देवाः ! सर्वदैव अस्मान् स्वकीयेन अधिवचनेन सावधानान् कुरुत । नास्मान् निद्राः स्वप्नप्रमादा अभिभवेयुः । नैव जल्पिः निन्दकः समर्थो भवतु । वयं विश्वह सर्वेषु अहःसु दिनेषु सोमस्य प्रियासः प्रिया भवेम । सुवीरासः कल्याणवीराः सन्तः विदथ स्तोत्रं वदेम ।

टिप्पणी—त्रातारः—त्रा + तृच् । वोचत—वच + लोट् । ईशत—ईश + लोट् । विदथम् = स्तोत्रम्, गृहम् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे त्राण करने वाले देवगण ! आप अपने अधिवचनों से हमें सावधान करते रहें जिससे प्रमाद अथवा निद्रा हमें विवश न करे और निन्दक पुरुष भी हमें कर्त्तव्य से बाधित न करें । हम सदा ही सोम के प्रिय पात्र बने रहें और कल्याणकारी पुत्र-पोत्रों के साथ सदैव हमारा सदन मंगल प्रद बना रहे जहाँ से निरन्तर ऋचाओं का पाठ अपनी मंगल-ध्वनि से आमोद-प्रमोद बिखेरता रहे ।

१५-

त्वं नः सोम वि॒श्वतो॑ वयो॒धा-

स्त्वं स्व॒विदा॑ वि॒शा नृ॒चक्षाः॑ ।

त्वं न इन्द्र ऊ॒तिभिः॑ स॒जोषाः॑

पा॒हि प॒श्चाता॑दु॒त वा पु॒रस्ता॑त् ॥१५॥

पद-पाठः—त्वम् । नः । सोम । विश्वतः । वयः ऽ धाः । त्वम् । स्वः ऽ

वित् । आ । विश । नृ ऽ चक्षाः । त्वम् । नः । इन्दो इति । ऊति ऽ भिः । स ऽ

जोषाः । पाहि । पश्चातात् । उत । वा । पुरस्तात् ॥१५॥

संस्कृत व्याख्या—हे सोम ! त्वम् अस्मभ्यं विश्वतः सर्वतः वयोधाः अन्न-
धाता भवसि । ऐहिकसुखं सर्वं त्वमेव प्रयच्छसि । अन्नस्य प्रतीकात्मक त्वात् त्वमेव च
स्ववित् । स्वः स्वर्गसुखस्य लम्भकः । विद्लू लाभे । आमुष्मिकसुखस्यापि त्वमेव
दाता । त्वं नृचक्षाः । कृताकृतद्रष्टा । त्वम् आविश । स्वागमनेन हृदयं पुनीहि ।
त्वम् अस्माकं सोम ! ऊतिभिः रक्षाभिः सह सदैव सजोषाः प्रीयमाणो भव । यद्वा
ऊतयः गन्तरो मरुतः तैः सह प्रसन्नः सन् सदैव रक्षातत्परो भव । पश्चात् पुरस्ताच्च
सर्वदा पाहि रक्ष ।

टिप्पणी—वयोधाः—वयस् + धा + क्विप् । स्ववित्—स्वः + विद् + क्विप् ।
पश्चातात्—पश्चात् ।

हिन्दी-व्याख्या—हे सोम ! आप ही सब ओर से अन्न-प्राप्ति के साधन-
निर्माण करते हैं । इस प्रकार ऐहिक समस्त सुख आपकी ही कृपा पर निर्भर हैं ।
आप ही 'स्ववित्' स्वर्ग-सुख के देने वाले हैं । इस प्रकार परलोक-सुख की प्राप्ति के
लिये भी आप ही प्रमुख कारण हैं । आप ही 'नृचक्षाः' मनुष्यों के समस्त कृत-
क्रियमाण कर्मों के द्रष्टा हैं इस कारण 'सजोषाः' प्रीति और तृप्ति के साथ आप
'ऊतिभिः' अपने रक्षा-साधनों से हम पर सदैव कृपा करते रहें । अथवा सहगामी
मरुद्गण के साथ सर्वदा कृपालु बने रहें । अग्रगामी होकर तथा पृष्ठगामी होकर
आप सदैव हमारी देख-भाल करते रहें । हम सदैव आप की प्रीति भरी दृष्टि में
बने रहें ।

१०-१४

यम-सूक्तम्

ऋषिः—१-१६ यमः । देवता १-५, १३-१६ यमः । ६ लिङ्गोक्ताः ।
७-६ लिङ्गोक्ताः पितरो वा । १०-१२ श्वानौ । छन्दः—१-१२ त्रिष्टुप् । १३,
१४, १६ अनुष्टुप् । १५-बृहती ।

१-

परेधिवासं प्रवतो महीरनु-

बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।

वैवस्वतं संगमनं जनानां

यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

पद-पाठः—परेयि ऽ वासम् । प्र ऽ वतः । महीः । अनु । बहुभ्यः । पन्थाम् ।

अनु ऽ पस्पशानम् । वैवस्वतम् । सम् ऽ गमनम् । जनानाम् । यमम् । राजानम् ।

हविषा । दुवस्य ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—त्वं राजर्न पितृणां स्वामिनं यमं हविषा दुवस्य परिचर । कौदृशं यमम् ? प्रवतः प्रकृष्टकर्मवतो जनान् पुरुषान् महीः कर्मो चित्तभोगान् प्रापित-
वन्तम् । तथा च बहुभ्यः पुण्यकृद्भ्यः पन्थां पुण्योचितं मार्गमनुपस्पशानम् बाधमानम् ।
ये पापिन स्तानेव दुःखदे नरके प्रापयति नान्यान् । तादृशं वैवस्वतं विवस्वतः सूर्यस्य
पुत्रं संगमनं जनानां पापिनां संगमनं यथावत्—स्थानं प्रापयितारम् ।

व्याकरणम्—परेयिवासम्—परा + इण् गती क्वसुः । द्वितीया । प्रवतः
प्रकृष्टकर्मवतो जनान् । प्र + मतुप्—द्वितीया । अनुपस्पशानम्—अनु + स्पश +
कानच् ।

पीटर्सन ने 'महीः' का विशेषण मानकर प्रवतः का अर्थ अस्थुक्च किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे मेरे मन ! तू यमराज की हवि आवि से यथावत्
सर्त्कार कर जो कि श्रेष्ठ कर्म करने वाले लोगों के शुभ मार्ग को (अनुपस्पशानम्)
बाधा रहित बनाते हैं । (जनानां संगमनम्) जो पापी लोगों को निकृष्ट नरक की
ओर ले जाने वाले हैं (वैवस्वतम्) जो निवस्वान् (=सूर्य) के पुत्र और प्राणियों के
लिये गन्तव्य स्थान हैं ।

२-

यमो नो गतुं प्रथमो विवेद

नैषा गव्यूति रपभर्त्तवा उ ।

यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयु-

रेना जज्ञानाः पथ्या ३ अनु स्वाः ॥२॥

पद-पाठः—यमः । नः । गातुम् । प्रथमः । विवेद । न । एषा । गव्यूतिः ।

अप ५ भर्तवै । ऊँ । इति । यत्र । नः । पूर्वे । पितरः । परा ५ ईयुः । एना ।

जज्ञानाः । पथ्याः अनु । स्वाः ।

संस्कृत-व्याख्या—प्रथमः सर्वेषां श्रेष्ठो यमो नो स्माकं गातुं शुभाशुभ-
निमित्तं सम्यग् विवेद जानाति । एषा गव्यूति न अपभर्तवैः—अतिशयज्ञानयोगादियं
गव्यूतिः शक्तिर्न केनाप्यपहर्तुमपनेतुं वा शक्यते । 'यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः'
अयमेव यम—निर्दिष्टो मार्गो येनास्माकं पूर्वे पूज्याः पितरो गताः । अन्येऽपि गन्तारः
पुरुषा अस्यैव निर्देशने गमिष्यन्ति ।

व्याकरणम्—गातुम्=मार्गम् । गाङ्गतौ (=अथवा 'इणो गा' आदेशः)
अपभर्तवै—अप + भृ + तवै =अपहर्तुम् । तुमुनर्थे तवै । हकारस्य भकारो वा ।
एना—एनेत् । जज्ञाना-जनी-कानच् ।

प्रथम का अर्थ सायणाचार्य ने प्रमुख माना है । मैक्डानल ने कौटि अर्थ में
प्रथम माना है, प्रथम कोटि का । गातु का अर्थ वे 'मार्ग' मानते हैं तथा 'स्वाः' का
अर्थ 'अनेक' किया है । गव्यूति का अर्थ घास का क्षेत्र करते हैं ।

हिन्दी व्याख्या—'प्रथम यमो नो गातुं विवेद' देवों में प्रमुख यम देवता ही
हमारे शुभ-अशुभ के निमित्तभूत मार्ग को जानते हैं और 'एषा गव्यूतिः' यह मार्ग
'न अपभर्तवै' यमराज से कोई छीन नहीं सकता । यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः)
जिस मार्ग से हमारे पूर्वज पितर गए हैं और 'एना' इसी मार्ग से 'जज्ञानाः' उत्पन्न
होने वाले भी सभी प्राणी 'स्वा पथ्याः' अपने-अपने कर्मनुकूल मार्गों का अनुचयन
करते हैं ।

३-

मातली कव्यं यमो अङ्गिरोभि—

बृहस्पति ऋक्विभिर्वावृधानः ।

याँ इ॒च दे॒वा वा॒वृ॒धु र्ये च दे॒वान्

स्वा॒हान्ये स्व॒धयान्ये म॒दन्ति ॥३॥

पद-पाठः—मा॒त॒ली । क॒व्यैः । य॒मः । अ॒ङ्गि॒रः ऽ भिः । वृ॒ह॒स्प॒ति । ऋ॒क्व

ऽ भिः । व॒वृ॒धा॒नः । या॒न् । च । दे॒वाः । वा॒वृ॒धुः । ये । च । दे॒वान् । स्वा॒हा । अ॒न्ये ।

स्व॒धया । अ॒न्ये । म॒द॒न्ति ।

संस्कृत-व्याख्या—मातलिः इन्द्रसारथिः, तद्वान् इन्द्रो मातली । स च कव्यैः कव्यभागिभिः पितृभिः सह वावृधानः ववृधानः वर्धमानः समुल्लसति । यमश्च अङ्गिरौभिः पितृविशेषैः सह, बृहस्पतिश्च ऋक्वभिः पितृविशेषैः सह उत्लासं तनुते । तत्र देवाश्च इन्द्रादयः कव्यभागादीन् पितृन् वावृधु वर्धयन्ति । ये चान्ये कव्यभागादयः पितरः ते इन्द्रादीन् देवान् वर्धयन्ति । तेषां मध्ये एते इन्द्रादयः खलु स्वाहा मदन्ति स्वाहा कारणे हृष्टा भवन्ति, अन्ये च पितर स्वधया स्वधाकारेण हृष्यन्ति ।

व्याकरणम्—मातली = मतलस्यापत्यं पुमान् मातलिः इन्द्रसारथिः, तद्वान् इन्द्रो मातली । वावृधानः—वृधु + कानच् ।

टिप्पणी—कव्य, अंगिरः, ऋक्व ये पितरों के विशेष नाम हैं । इनमें इन्द्र के साथ कव्य, यम के साथ अंगिरा तथा ऋक्व के साथ बृहस्पति देवता का प्रयोग होता है । ऋचाओं से सम्बन्ध होने के कारण ऋक्व वे पुरोहित माने जाते हैं जो प्रमुख रूप से स्तोता हों । कर्मकाण्ड विधियों के अनुसार 'स्वाहा' से देवता तथा 'स्वधा' से पितर सन्तुष्ट होते हैं ।

मैकडानल ने वावृधानः का अर्थ किया है—दृढता के साथ वृद्धि ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र जिनका कि सारथी मातलि है, कव्य नामक पितरों के साथ प्रसन्न होते हैं, यम अङ्गिरा नामक पितरों से तथा बृहस्पति देवता ऋक्व नामक पितरों से आनन्दित होते हैं । इनमें इन्द्र आदि देवगण (यान् देवा वावृधुः) जिनका सम्बर्धन करते हैं अथवा (ये च देवान्) जो पितर इन्द्र आदि देवों का संवर्धन करते हैं; वे (स्वाहा अन्ये स्वधया अन्ये मदन्ति) इन्द्र आदि देवता स्वाहा से अथवा वषट्-कार से तथा अङ्गिरा आदि पितृगण स्वधा से प्रसन्न होते हैं ।

४—

इ॒मं॑ य॒म प्र॒स्तर॒मा हि॑ सी॒दा—

अ॒ङ्गि॒रोभिः॑ पि॒तृभिः॑ सं॒वि॒दानः॑ ।

आ त्वा मंत्राः कवि॒श॒स्ता वह॑न्तु—

ए॒ना राज॑न् ह॒विषा॑ मा॒दय॑स्व ॥४॥

पद पाठः—इ॒मम् । य॒म । प्र ऽ स्तर॒म् । आ । हि । सी॒द । अ॒ङ्गि॒रः ऽ भिः ।

पि॒तृभिः । स॒म् ऽ वि॒दानः । आ । त्वा । मंत्राः । क॒वि ऽ श॒स्ताः । वह॑न्तु । ए॒ना ।

राज॑न् । ह॒विषा । मा॒दय॑स्व ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—हे यम ! अङ्गिरोभिः पितृभिः ऐकमत्यं गतस्त्वम् इमं प्रस्तरं विस्तीर्णं यज्ञविशेषमासीद आगत्य उपविष्टो भव । 'आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्तु' कविभिः क्रान्तदशिभिः शस्ताः प्रशस्ता ऋतिवग्भिः प्रयुक्ता मंत्रास्त्वामा वहन्तु त्वां हि अत्र प्रापयन्तु । हे राजन् ! 'एना हविषा मादयस्व' एतेन प्रयुज्यमानेन तृप्तिवर्धनेन हविषा त्वं सन्तुष्टः सन् अस्मान् अपि हर्षय ।

व्याकरणम्—प्रस्तरम्—प्र + स्तृ + अच् । संविदानः—सं विदधातोः शानच् । कविशस्ताः + कविभिः प्रशस्ताः । मंत्राः—मनधातो ऽद्रन् । मादयस्व—मदीहर्षे णिच्, लोट् । मध्यमपुरुषैकवचने ।

मैकुडानल ने प्रस्तर का अर्थ 'विस्तीर्ण कुशासन' तथा मादयस्व का अर्थ 'प्रसन्न करो' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे यम ! 'इमं प्रस्तरमाहि सीद' इस विस्तीर्णं यज्ञ में 'संविदानः' सहमति के साथ आकर 'अङ्गिरोभिः पितृभिः' अङ्गिरा आदि पितरों के साथ विराजिये । 'आ त्वा मंत्राः कविशस्ता वहन्तु' विद्यासम्पन्न ऋषियों के द्वारा प्रयुक्त हमारे ये मन्त्र आपका इस यज्ञ में पूजा के साथ आवाहन करें । 'एना राजन् हविषा मादयस्व' हे देदीप्यमान यम ! राजन् ! आप हमारी इस हवि-सामग्री से प्रसन्न और सन्तुष्ट होकर हमें भी हृष्ट-पुष्ट कीजिये ।

५—

अङ्गि॑रोभि॒राग॑हि य॒ज्ञिये॑भि—

य॑म वैरू॒पैरि॑ह मादयस्व ।

विव॑स्वन्तं हु॒वे यः पि॒ता ते—

ऽस्मिन् य॒ज्ञे ब॒र्हिष्या॑ निषद्य ॥५॥

पद-पाठः—अङ्गि॑रः ऽ भिः । आ । ग॒हि । य॒ज्ञिये॑भिः । य॑म । वैरू॒पैः । इ॒ह ।

माद॑यस्व । वि॒वस्व॑न्तम् । हु॒वे । यः । पि॒ता । ते । अ॒स्मिन् । य॒ज्ञे । ब॒र्हिषि॑ । आ ।

नि ऽ सद्य ॥५॥

संस्कृत व्याख्या—हे यम ! (वैरूपैः अङ्गिरोभिः यज्ञियेभिः आ गहि) विविध-
रूपैः यज्ञयोग्यैः अङ्गिरोभिः सह आगहि आ गच्छ । (इह मादयस्व) आगत्य चास्मान्
मादयस्व हर्षयुक्तान् कुरु । यः विवस्वान् ते तव पिताऽस्ति, अस्मिन् यज्ञे तं विवस्वन्तं
हुवे अहम् आह्वयामि । सोऽपि अस्मिन् यज्ञे उपविश्य अस्मान् हर्षयतु ।

व्याकरणम्—आ गहि—आ गच्छ इति स्थाने वैदिक प्रयोगः । यज्ञियेभिः
यज्ञाहैः, यज्ञियैः = यणमर्हति घः, घस्येयादेशः । तृतीया । निषद्य = नि + सद्
क्त्वा—त्यप् ।

सैक्डानल ने यज्ञिय का अर्थ आराध्य किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे यम ! 'वैरूपैः अङ्गिरोभिः यज्ञियेभिः आगहि' विविध
प्रकार के मन्त्रों से सुसज्जित तथा अलङ्कृत यज्ञ के योग्य अङ्गिरा आदि पितरों के
साथ आप इस यज्ञ को गौरान्वित कीजिये । (विवस्वन्तं हुवे) मैं उस विवस्वान् का
आवाहन करता हूँ जिनके कि आप सुपुत्र हैं; वे भी (अस्मिन् यज्ञे बर्हिषि आ निषद्य)
इस विस्तीर्ण यज्ञासन पर आसीन हों और हम सबको आनन्दित करें ।

६—

अङ्गि॑रसो नः पि॒त्रो न॑वग्वा—

अथ॑र्वा॒णो भृ॑गवः सो॒म्यासः॑ ।

तेषां वयं सुमती यज्ञियाना—

मपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

पद-पाठः—अङ्गिरसः । नः । पितरः । नवऽग्वाः । अथर्वाणः । भृगवः ।

सोम्यासः । तेषाम् । वयम् । सुमती । यज्ञियानाम् । अपि । भद्रे । सौमनसे ।
स्याम ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः नः पितरः) अङ्गिरो नामधेयाः अथर्वनामकाः भृगु संज्ञकाश्च अस्माकं ते सोम्याः सोमम् अहन्तीति सोम्या नवनीताकृतयः प्रसन्नपुलकितवदना मृदवः पितरः अस्माकं नवग्वाः अभिनवगमनयुक्ताः सदैव नवनवप्रीत्युत्पादकाः सन्तुः (तेषां यज्ञियानां सुमती वयम्) तेषां कल्याणप्रदायां बुद्धौ वयं सदैवानन्दमनुभवामः अपि च (भद्रे सौमनसे स्याम) सौमनसस्य कारणे कल्याणप्रदे फले स्याम तिष्ठेम ।

व्याकरणम्—नवग्वा—नवपूर्वस्य गम धातो इर्वन् । सोम्यासः सोममर्हति यत् प्रत्ययः । सोम्याः । बहुवचने । सौमनसे—शोभनं मनः सुमनस्, तस्य भावः इति अण् प्रत्यये ।

टिप्पणी—नवग्व (णु स्तुती) से नव स्तुति में अर्थ प्रयुक्त होता है । इसका अर्थ यह हुआ प्रणव (=प्रकर्ष स्तुति में) चतुर । वे पूर्वज पुरोहित जो स्तुतियों के प्रयोग में कुशल पुरोहित्य का कार्य करते थे । गौ वाग्देवता को भी कहते हैं, इससे वे पुरोहित स्पष्ट होते हैं जो कि अभिनव गौ (वाक्-गौ) के आवाहन अथवा लाने में कुशल हों । अभिनव गमना कहकर सायण ने उन पुरोहितों की ओर संकेत दिया है जो अतिथि के समान अपने प्रिय-आगमन से सन्तुष्ट-प्रसन्न करते हैं । राय ने नवग्व, अथर्वा इन दोनों को प्राचीनकाल की धार्मिक जातियाँ बतलाया है और सोम्यासः का अर्थ उन्होंने किया है—सोमरस प्रदान करने वाले ।

हिन्दी-व्यख्या—(अङ्गिरसः अथर्वाणः भृगवः सोम्यासः नः पितरः) अङ्गिरा, अथर्वा, भृगु नामक हमारे कल्याण-प्रद पितर (नवग्वाः) नित नूतन ज्ञानमय आनन्द-दायक सन्देश के साथ हमारे यहाँ पधारे । (तेषां वयं सुमती) उन यज्ञार्ह पितरों की आनन्ददायक सुमति में और (अपि भद्रे सौमनसे स्याम) कल्याण-प्रद शुभ कार्यों में हम सदा लगे रहें ।

७—

प्रेहि॒ प्रेहि॑ प॒थिभिः॑ पू॒र्व्येभिः॑—

यत्रा॑ नः पू॒र्वे पि॒तरः॑ परेयुः ।

उ॒भा राजा॑ना स्व॒धया॑ म॒दन्ता॑

य॒मं प॑श्या॒सि व॑रुणं च दे॒वम् ॥७॥

पद-पाठः—प्र । इ॒हि । प्र । इ॒हि । प॒थि ऽ भिः । पू॒र्व्येभिः । यत्र । नः ।

पू॒र्वे । पि॒तरः । परा॑ ऽ ईयुः । उ॒भा । राजा॑ना । स्व॒धया॑ । म॒दन्ता॑ । य॒मम् ।

प॑श्या॒सि । व॑रुणम् । च । दे॒वम् ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे अस्मात् संसारात् जिगमिषो जीव ! त्वं (यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः स्थानं प्रति प्रेहि-प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिः) यत्र यास्मिन् कल्याणप्रदे स्थाने नः अस्माकं पुरातनाः पितरः पितामहादयः परेयुः गताः पूर्व्येभिः पूर्वकालभवंः अनादिकालत एव, गतागति कुर्वद्भिः मार्गैः तत्स्थानं त्वमपि प्रेहि प्राप्नुहि । तत्र (राजानौ उभौ स्वधया मदन्तौ यमं वरुणं च देवं पश्यासि) गत्वा च स्वधया ऽ मृतेन तृप्यन्तौ उभौ राजानौ ययं वरुणं च द्रष्टा ऽ सि । तौ द्योतमानौ देवौ दृष्ट्वा सुखं शान्तिं चाप्नुहि ।

व्याकरणम्—पूर्व्येभिः—पूर्वैः, भवे ऽ र्थे यत् । तृतीया । परेयुः—परा—इण्—लिट्—बहुवचने । उभा राजाना—उभौ राजानौ मदन्ता—मदन्तौ—मदी हर्षं शत्रु द्विवचनम् । पश्यासि—पश्यसि—पश्य—लेट् ।

टिप्पणी—यहाँ यम और वरुण को राजा कहा गया है । पुराणों में यमराज प्रसिद्ध ही है । छन्दावस्था में भी इन्हें राजा कहा गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—यत्र नः पूर्वे पितरः परेयुः) जिस मार्ग से हमारे पुराने पितृगण गये हैं (पूर्व्येभिः पथिभिः प्रेहि-प्रेहि) हे संसार से गमन करने वाले जीव ! आप भी उसी भाग से शुभगमन कीजिये । वहाँ पर (उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम्) उन दोनों राजाओं को अमृत के अन्न से तृप्त होते हुए आप देखेंगे, उनमें से एक तो यही यमराज हैं और दूसरे महाराज वरुण हैं ।

८—

संगच्छस्व पितृभिः सं यमेन—

इष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।

हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि

संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

पद-पाठः—सम् । गच्छस्व । पितृभिः । सम् । यमेन । इष्टापूर्तेन । परमे ।

वि ऽ ओमन् । हित्वाय । अवद्यम् । पुनः । अस्तम् । आ । इहि । सम् । गच्छस्व ।

तन्वा । सु ऽ वर्चाः ।

संस्कृत-व्याख्या—(संगच्छस्व पितृभिः परमे व्योमन्) हेजिगभिषो जीव ! त्वं परमे उत्कृष्टे व्योमनि तृप्तिप्रदे स्थाने स्वपितृभिः सहानन्द मनुभवन् संगच्छस्व । इष्टापूर्तेन श्रुतिसम्पादितेन स्मृतिप्रतिपादितेन च दानफलेन रक्षितः सन् संगच्छस्व । तत्र च (अवद्यं हित्वाय अस्तं पुनः एहि) समग्रपापमलान् दूरीकृत्य प्रक्षालित शरीरः सन् पुनः इच्छितं शरीररूपं गृहं प्राप्नुहि । अथ च (तन्वा सुवर्चाः) सुवर्चसा तेजस्विना शरीरेण युक्तः पुनरानन्दममान् भोगान् स्वीकुरु ।

व्याकरणम्—इष्टापूर्तेन=इष्टेन पूर्तेन च कर्मणा । दीर्घः । व्योमन्—व्योमनि । विभक्तिलोपश्छान्दसः । हित्वायओहाक् त्यागे क्त्वा—हित्वा, यकारो-पजनश्छान्दसः । सुवर्चाः सुवर्चसा—तृतीया । छान्दसो लोपः । अस्तम्—गृहम्, अस्यतेः ।

टिप्पणी—इष्टापूर्त का अर्थ राय ने इच्छाओं की पूर्ति लिखा है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे यम की ओर उन्मुख जीव ! (संगच्छस्व पितृभिः) अपने पितृ-पितामहों के साथ (परमे व्योमनि) तृप्तिप्रद स्थानों में सुख-शान्ति का अनुभव करते हुए जाइये । (इष्टापूर्तेन संगच्छस्व) अपने पूर्वं रूप शुभ संकल्पों को पूर्ण करने वाले कर्मों के साथ तथा दान आदि इष्ट के साथ सदा सुरक्षित रहते हुए आप अनुगमन करें । (हित्वाय अवद्यं पुनः अस्त मेहि) समग्र पाप रूप मलों का

प्रक्षालन करके पुनः इच्छित शरीर रूपी गृह को प्राप्त करें तथा (तत्त्वा सुवर्चाः) अपने तेजस्वी शरीर से पुनः उत्कृष्ट कर्म करके स्वर्ग लोक की आनन्ददायक प्राप्ति करें ।

६—

अपेत॑ वीत॑ वि च॑ सर्प॑तातो—

ऽस्मा॑ ए॒तं पि॒तरो॑ लो॒कम॑क्रन् ।

अ॒होभि॑र॒द्भि॒र॒क्तु॒भि॒ वर्य॑क्तं

य॒मो द॑दात्यव॒सान॑ यस्मै ॥६॥

पद-पाठः—अप॑ । इत॑ । वि । इत॑ । वि । च॑ । सर्प॑त । अतः॑ । अस्मै॑ ।

एत॑म् । पि॒तरः॑ । लो॒कम् । अ॒क्रन् । अहः॑ ऽभिः । अद् ऽभिः । अ॒क्रु ऽभिः ।

वि ऽ अक्र॑म् । य॒मः । द॒दाति॑ । अव॑ ऽसान॑म् । अस्मै॑ ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—हे पिशाचादयः ! (अपेत वीत वि सर्पत अतः) इतः प्रमृज्यमानदहनस्थानात् यूयं अपेत अपगच्छत, वीत विशेषतया इत गच्छत । वि सर्पत च । इदं स्थानं व्यक्तवा दूरं पृथक् भवत । (अस्मै एतं पितरो लोकम् अक्रन्) अस्मै परित्यक्तदेहाय पुरुषाय एतं लोकम् इदं दहन स्थानं पितरः अक्रन् कृतवन्तः । यमस्याज्ञया सम्पादितवन्तः । यमो ऽपि (अहोभिः अद्भिः अक्रुभिः) दिनैः अभ्युक्षण जलैः रात्रिमिश्र व्यक्तम् कालजलादिभिः शोधितम् दहनस्थानयस्मै मृताय पुरुषाय ददाति दत्तवान् ।

व्याकरणम्—अक्रन्—कृ लुङि बहुवचने छान्दसः प्रयोगः, अकुर्वन् व्यक्तम्—विपूर्वस्य अञ्जू + क्तः । अक्रुभिः रात्रिभिः अनक्ति सिञ्चत्यवश्यायेन । अवसानम्—अवपूर्वस्य षो ऽन्तकर्मणि ल्युट् ।

हिन्दी-व्याख्या—(अपेत वीत विसर्पत अतः) हे पिशाचादि ! तुम सब यहाँ से दूर हटो । (अस्मै एवं पितरो लोकम् अक्रन्) इस परित्यक्त शरीर वाले देही के के लिए इस दहन-स्थान को पितरों ने संगत किया है । यम की ही आज्ञा से इस दहन-स्थान का निर्माण हुआ है । यम ने भी (अहोभिः अद्भिः अक्रुभिः) अपने दिवस,

जल तथा विश्रामदायिनी रात्रियों के द्वारा (अवसानम् अर्घ्यं ददातु) इस मृत पुरुष के लिए शान्ति प्रदान करें ।

१०—

अति॑ द्रव॑ सार॒मेयौ॑ श्वानौ॑

चतुर॑क्षौ श॒बलौ॑ सा॒धुना॑ प॒था ।

अथा॑ पि॒त॒न् सु॒विद॒त्राँ उपे॑हि

यमे॒न ये स॒धमा॒दं म॑दन्ति ॥१०॥

पद-पाठः—अति॑ । द्रव॑ । सार॒मेयौ॑ । श्वानौ॑ । चतुः॑ ऽ अक्षौ॑ । श॒ब॒लौ॑ ।

सा॒धुना॑ । प॒था । अथा॑ । पि॒त॒न् । सु॒ ऽ विद॒त्रान् । उपे॑ । इ॒हि । यमे॒न । ये ।

स॒ध ऽ मा॒दम् । म॑दन्ति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—(एतौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ श्वानौ अति द्रव साधुना पथा) हे अग्ने ! इमं प्रेतं यौ श्वानौ प्रेतस्य बाधकौ तौ अतिक्रम्य परित्यज्य साधुना पथा तमीचीनेन मार्गेण द्रव गच्छ नय । कीदृशौ श्वानौ सारमेयौ सरमा देवशूनी तस्या पुत्रौ । चतुरक्षौ उपरिभागे ऽ पि नयनद्वयं ययोः, पुनः कीदृशौ श्वानौ शबलौ कर्बुरवणौ । (अथ पितॄन् सुविदत्रान् उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति) अनन्तरं ये पितरः यमेन सह सहर्षं मदन्ति आनन्दं लभन्ते तान् सुविदत्रान् शोभनज्ञानान् पितॄन् उपेहि प्रा० हि ।

व्याकरणम्—सारमेयौ—सरमाया अपत्यं पुमान्, ढक् । द्विवचनम् । सुविदत्रान्=शोभनं विदत्रं ज्ञानं येषां ते सुविदत्राः, तान् । सधमादम्—सह मदनीयम् । हकारस्य धकारः छान्दसः । द्रव—द्रुधातो लोटि । मध्यमपुरुषकवचने ।

टिप्पणी—मिश्र के प्राचीन पिरामिडों में भी ऐसे कुक्कुरों का चित्र मिलता है जो मृतक के बाहर रक्षक के रूप में सावधान रहते हैं । अवेस्ता में भी चार आंखों वाले कुत्ते का वर्णन मिलता है ।

मैक्डानल ने 'सुविदत्रान्' का अर्थ दानशील और सधमादम् का अर्थ 'उत्तम भोजन' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(चतुरक्षौ श्वलौ सारमेयौ श्वानौ अतिक्रम्य साधुना पथ द्रव) हे अग्ने ! इन चार आँखों वाले चितकवरे सारमेय (सरमा के पुत्र) कुत्तों से बचाकर भले मार्ग से इस मृतक पुरुष को ले जाना । 'अथ' इसके अनन्तर (यमेन ये सधमादं मदन्ति) जो अङ्गिरा आदि पितर यम के साथ आनन्द-भोग करते हैं (तान् सुवित्रान् पितॄन् उपेहि) उन पवित्र ज्ञान वाले अङ्गिरा पितरों के साथ परम सुख को प्राप्त करो ।

११—

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ ।

चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।

ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्

स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

पद-पाठः—यौ । ते । श्वानौ । यम । रक्षितारौ । चतुः ५ अक्षौ ।

पथिरक्षी इति पथिरक्षी । नृ ५ चक्षसौ । ताभ्याम् । एनम् । परि देहि । राजन् ।

स्वस्ति । च । अस्मै । अनमीवम् । च । धेहि ।

संस्कृत-व्याख्या—हे राजन् यम ! (यौ ते श्वानौ) यौ ते श्वानौ विद्येते (ताभ्यामेनं परिदेहि) ताभ्यां रक्षणार्थमेनं प्रेतं परिदेहि प्रयच्छ । कीदृशौ श्वानौ (रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ) यौ यमग्रहस्य रक्षकौ चतुरक्षौ नयनचतुष्टययुक्तौ पथिरक्षी मार्गस्य द्रष्टारौ नृचक्षसौ नृभिः नैतृभिः मनीषिभिः ख्याप्यमानपौरुषौ श्रुतिस्मृतिपुराणे तिहासामिज्ञाः पुरुषास्तौ प्रख्यापयन्ति । (स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि) ताभ्यामित्थं श्वभ्यां दत्त्वा ऽस्मै प्रेताय स्वस्ति शोभनमस्तित्वं क्षेमं च सम्पादय, अथ च अनमीवं च नैरोग्यमपि च धेहि ।

व्याकरणम्—पथिरक्षी—इनि—मार्गस्य रक्षकौ । नृचक्षसौ—नृभिः ख्याप्यमानौ । नरः चक्षते—अमुनि । अनमीवम्—अमीवाया अभावः ।

मैकुडानल ने नृचक्षसौ का अर्थ 'मनुष्यों को देखने वाले' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यौ ते श्वानौ रक्षितारौ ताभ्यामेनं परिदेहि राजन्) हे राजन् ! यम जो आपके द्वार-रक्षक कुत्ते हैं, रक्षा के लिए इस प्रेत के निमित्त उन्हें

छोड़ दीजिये । ये कुत्ते (चतुरक्षी पश्चिक्क्षी तृचक्षसौ) चार आँखों वाले, मार्गद्रष्टा और वेद-स्मृति-पुराणों के विद्वान् पुरुषों के द्वारा स्थापित हैं । (स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि) इस प्रकार अपनी रक्षा में ही इस प्रेत पुरुष को लेकर इसके लिए शुभ अस्तित्व की चिन्ता कीजिये तथा ऐसा कीजिये जिससे कि विविध तापों से दूर रहकर यह पुरुष पुनः शान्ति और आनन्द के अस्तित्व को प्राप्त कर सके ।

१२—

उरुणासा वसुतृपा उदुम्बलौ

यमस्य दूतौ चरनौ जनां अनु ।

तावस्यभ्यं दृशये सूर्याय

पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥

पद-पाठः—उरु ऽ नसौ । असु ऽ तृपा । उदुम्बलौ । यमस्य । दूतौ । चरतः ।

जनान् । अनु । तौ । अस्मभ्यम् । दृशये । सूर्याय । पुनः । दाताम् । असुम् । अद्य ।

इह । भद्रम् ।

संस्कृत-व्याख्या—(यमस्य दूतौ जानान् अनु चरतः) यमस्य दूतौ सम्बन्धिनौ जनान् अनु प्राणिनः प्रति लक्ष्यीकृत्य अवाधगत्या विचरतः । तौ श्वानौ कीदृशौ ? उरुणसौ दीर्घनामिकायुक्तौ असुतृपा परकीर्यः प्राणं स्तृप्यन्तौ उदुम्बलौ उरु बलौ बहुसाहसयुक्तौ (तौ उभौ दूतौ दृशये सूर्याय) सूर्यस्य दर्शनार्थम् अद्य भद्रम् असुं समीचीनं प्राणं पुनरस्मभ्यं दाताम् दद्यास्ताम् ।

व्याकरणम्—उरुणसौ उरु विस्तीर्णं नासिके ययोः । तौ । असुतृपा—असुभिः तृप्यन्तौ—असु + तृप् + क्विप् । द्विवचने । उदुम्बलौ—उरु बलं ययोस्तौ । रेफस्य दकारः, मुमागमश्च । दृशये—दृश + कि = चतुर्थी । दाताम्—दातामिति स्थाने छान्दसः प्रयोगः ।

मैक्डानल ने 'जनां अनु' का अर्थ किया है मनुष्यों के बीच में । भद्रमसुम् का अर्थ किया है—श्रेष्ठ जीवन । पीटर्सन ने उदुम्बलौ का अर्थ 'कृष्ण वर्ण वाले' किया है ।

‘पुनर्दाताम्’—यह कहकर पुनर्जन्म की सिद्धि को प्रामाणिक आधार दिया गया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यमस्य दूतौ चरतो जनान् अनु) मनुष्यों को लक्षित करके यम के ये दोनों दूत निर्वाध गति से विचरते रहते हैं । ये दूत (उरुणसो असुतृषौ उदुम्बलो) लम्बी नाक वाले, प्राणियों के प्राणों से तृप्ति पाने वाले और महान् बलशाली हैं । (दृश्ये सूर्याय) सूर्य भगवान् के रमणीय दर्शन के निमित्त वे (अस्मभ्यम् अमुं भद्रम् अद्य पुनर्दाताम्) हमें प्राणप्रद शक्ति से सम्पन्न करें जिससे कि हम पुनः जीवन का नव संचार पा सकें ।

१३—

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।

यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निं दूतो अङ्कृत ॥१३॥

पद-पाठः—यमाय । सोमम् । सुनुत । यमाय । जुहुत । हविः । यमम् । ह ।

यज्ञः । गच्छति । अग्निं ऽ दूतः । अरम् ऽ कृतः ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—हे ऋत्विजः ! यमाय यममेव देवं लक्ष्यीकृत्य सोमं सुनुत सोममभिषुणुत ! यमार्थं च हवि जुहुत । अग्निरेव दूतस्थानीयो यस्मिन् सो ऽग्नि-दूतः ‘अग्निं हि देवानां दूत आसीत्’ । इत्यन्यत्राप्याम्नातम् । अरंकृतः बहुभिर्द्रव्यैरलङ्कृतस्तादृशो यज्ञो यमं ह यममेव प्राप्नोति ।

व्याकरणम्—सुनुत—‘षुञ् अभिषवे’ लोट् मध्यमपुरुषैकवचने । अरंकृतः = अलङ्कृतः । अरम् + कृ + क्त ।

मैकडानल ने अरंकृतः का अर्थ ‘भली प्रकार किया गया’ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे ऋत्विग्—गण ! आप लोग यम के लिए ही सोम रस का सम्पादन कीजिये । (यमाय जुहुत हविः) और नाना प्रकार के हवि से यम को ही उद्देश्य मानकर हवन कीजिये । अग्नि रूप दूत से अलङ्कृत तथा विविध प्रकार की सामग्री से सुसज्जित यज्ञ यम को ही प्राप्त होता है ।

१४—

यमाय घृतवद्धवि जुहोत प्र च तिष्ठत ।

स नो देवेष्वा यमदीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

पद-पाठः—य॒माय॑ । घृ॒त ऽ व॑त् । ह॒विः । जु॒होत॑ । प्र । च । ति॒ष्ठत॑ । सः ।

नः । दे॒वेषु॑ । आ । य॒मत् । दी॒र्घम् । आ॒युः । प्र॒जीव॑मे ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(यमाय घृतवद् हवि जुहोत) हे ऋत्विजः ! यूयं पुरोडाशादिना हविषा यमाय घृतवद् घृतेन संयुक्तं च हवि जुहुत । (प्र च तिष्ठत) तमेव यमं लक्ष्मीकृत्य उपतिष्ठध्वं च । (स नो देवेषु प्रजीवमे दीर्घमायुः आ यमत्) देवेषु प्रकृष्टतमः सः यमो देवः प्रजीवसे उत्कृष्टजीवनं प्राप्तये नोऽस्माकं दीर्घमायुः आयमत् प्रयच्छतु ।

व्याकरणम्—प्रतिष्ठत —प्र + स्था + लोट् । मध्यम पुरुष बहुवचने । आ यमत् —लोट्—आयच्छतु । प्रजीवसे —तुमुनर्थे असे प्रत्ययः । प्रजीवनाय ।

पीटर्सन ने 'प्रतिष्ठत' का अर्थ निकट पहुंचना । मैक्डानल ने घृतवत् क । अर्थ घृत सम्पन्न किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे ऋत्विक् लोगों ! आप (यमाय) यम देवता के लिये (घृतवद् हवि) घृत से सम्पन्न आहुति देकर प्रसन्न करें । (प्र च तिष्ठत) यम के लिए ही उपासना करें । (स नो देवेषु) वही हमारे देवों में श्रेष्ठतम देव हैं । (दीर्घम् आयुः प्रजीवसे स नो आ यमत्) वही प्रसन्न होकर श्रेष्ठ जीवन तथा दीर्घायुष्य प्रदान करते हैं ।

१५- य॒माय॑ मधु॒मत्त॑मं॒ राज्ञे॑ ह॒व्यं जु॒होत॑न ।

इ॒दं न॑म॒ ऋषि॑भ्यः॒ पूर्व॑जेभ्यः॒ पूर्व॑भ्यः पथि॒कृद्भ्यः॑ ॥१५॥

पद-पाठ—य॒माय॑ । मधु॒मत् ऽ त॑मम् । रा॒ज्ञे । ह॒व्यम् । जु॒होत॑न । इ॒दम् ।

नमः । ऋषि॑भ्यः । पूर्व॑ ऽ जेभ्यः । पूर्व॑भ्यः । पथि॒कृद्भ्यः॑ ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे ऋत्विजः ! (यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन) यमाय अतिमधुरं पुरोडाशारिकं हव्यं जुहोतन जुहुत । (पूर्वभ्यः पूर्वजेभ्यः पथिकृद्भ्यः ऋषिभ्य इदं नमोऽस्तु) पूर्वजेभ्यः सृष्ट्यादा वृत्पन्नेभ्योऽस्मत्पूर्वभ्यः पथिकृद्भ्यः जीवन-सरणिस्म्पादकेभ्यः ऋषिभ्यः श्रद्धया इदं नमो भवतु । यैरस्माकं जीवनमार्ग उपदिष्टः ।

व्याकरणम्—मधुमत्तमम्—मधु + मतुप् + तमप् । हव्यम्—हुं + यत् ।
जुहोतन—जुहुत छन्दांसि जुहोतन । पथिकृद्भ्यः—पथिन् + कृ + क्विप् ।

हिन्दी-व्याख्या—(यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन) हे ऋत्विग्-गण आप राजा यम के लिए अतिशय मधु हव्य-सामग्री से हवन करें । (पूर्वजेभ्यः पूर्वभ्यः पथिकृद्भ्य इदं नमोऽस्तु) सृष्टि के आदि से ही हमारे मार्ग का प्रदर्शन करने वाले उन श्रेष्ठ ऋषियों हमारे पूर्व-पूर्वजों को हमारा नमन स्वीकार हे जिन्होंने हमारी पवित्र एवं प्रसिद्ध जीवन-प्रणाली निर्धारित की है ।

१६- त्रिकद्रुकेभिः पतति षड्वीं रेकमिद् बृहत् ।

त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥

पद-पाठः—त्रि ऽ कद्रुकेभिः पतति । षट् । उर्वीः । एकम् । इत् । बृहत् ।

त्रि ऽ स्तुप् । गायत्री । छन्दांसि । सर्वा । ता । यमे । आहिता ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—कौमारं यौवनं जरा इति त्रिकद्रुकान् । (पतति) तान् प्रत्यङ्ग भावाय संरक्षणार्थं च पतति । अथवा त्रिकद्रुका यागविशेषा ज्योतिरायुगौ-रिति ख्याताः, तान् यमः प्राप्नोति । षड्वींः षट्पदी षडवाधा तद्यथा—उत्पन्नस्य क्षुत्पिपासे प्ररुढस्य शोकमोहौ वृद्धस्य जरामृत्यु—ता एताः षड्वीरिति प्रसिद्धाः । अथवा षण्मा उर्वीरहसस्पातु द्यौश्च पृथिवी चापश्चोषधयश्चोर्कं च सूनृता चेति । तत्र एक भित् बृहत् महज्जगत् परिपालनीयं यमश्च प्रतिपालनीयः अथ च यानि त्रिष्टुप् गायत्र्यादीनि छन्दांसि सन्ति तानि सर्वाणि (सर्वा ता यम आ हिता) यमे एव आहितानि स्तुतित्वेन तत्रैव अवस्थितानि सन्ति ।

व्याकरणम्—त्रिकद्रुकेभिः—त्रि + कद्रु + कन् । तृतीया बहुवचने । आ हिता = आ + धा + क्त । आ हितानि । सर्वा ता आ हिता = सर्वाणि तानि आ हितानि ।

मैक्डानल ने त्रिकद्रुक का अर्थ किया है—सोम योग के तीन दिन । यही अर्थ ग्रिफिथ और पीटर्सन ने भी किये हैं । ग्रिफिथ ने इसे 'अभिप्लोव' भी कहा है । षड्वीं का अर्थ गेलडनर और मैक्डानल ने तीन स्वर्ग लोक और तीन पृथ्वी लोकों की गणना की है ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्रिकद्रुकेभिः पतति षड्वींः एकमिद् बृहत्) कुमारावस्था-यौवनावस्था तथा वृद्धावस्था को त्रिकद्रुक कहा गया है । अथवा-ज्योति-आयु और

गौ जो याग विशेष हैं उन्हें त्रिकद्रुक कहा गया है। पट्टी को पट्टपदी भी कहते हैं—शुधा—पिपासा, क्रोध—मोह, जरा और मृत्यु; अथवा द्यौ—पृथिवी, आपः—ओषधि, उर्क और सून्ता; ये पट्ट भूमियाँ कही गयी हैं। इनसे युक्त यह एक संसार परिपालन के योग्य है अथवा यह अधिष्ठाता रूप में विराजमान यम की उपासना के योग्य हैं। त्रिष्टुप्—गायत्री आदि छन्द सब कुछ यम के ही अन्तर्गत सन्निहित रहते हैं। वही सुख-दुःख का एक मात्र प्रणामक अधिष्ठाता है।

१०-३४

अक्ष-सूक्तम्

ऋषि—कवष ऐलूपः। ऋक्षो वा मौजवान्। देवता—अक्ष—ऋषि छन्द—त्रिष्टुप्। ७ जगती।

१- प्रावेपामा बृहतो मादयन्ति

प्रवातेजा इरिणे ववृतानाः।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो-

बिभीदको जागृवि मंह्यमच्छान्॥१॥

पद-पाठः—प्रावेपाः। मा। बृहतः। मादयन्ति। प्रवातेऽजाः। इरिणे।

ववृतानाः। सोमस्यऽइव। मौजऽवतस्य। भक्षः। बिऽभीदकः। जागृविः।

मह्यम्। अच्छान्॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(एते बृहतो मा मादयन्ति) एते बृहतो बिभीतकस्य फल-
त्वेन वर्तमाना अक्षा मां मादयन्ति। कीदृशा अक्षाः (प्रावेणः, इरिणेववृतानाः)

प्रावेपाः प्रवेपिणः कम्पनशीलाः इरिणे ववृत्तानाः स्फारे देशे वर्तमानाः । (प्रवातेजाः) प्रवणे देशे जाताः । एते हर्षयन्तो मां मोहाकुलं विदधति । (जागृविः विभीदकः) जयपराजयाभ्यां हर्ष—शोकदानेन विभीदको विभीतकविकारोऽक्षो (मह्यम् अच्छान्) मह्यम् अचच्छदत् अत्यर्थं मादयति । सोमस्येव मौजवतस्य मुजवति पर्वते जातो मौजवतः, तत्र हि उत्तमसोमोत्पत्तिः । भक्षः पानं देवान् यजमानांश्च मादयति, तद्वत् ।

व्याकरणम्—जागृविः—जागृ + विन् । अच्छान् = अचच्छदत् । मौजवतस्य मुजवति जातस्य ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने जागृवि का अर्थ स्फूर्तिदायक और अच्छान् का अर्थ 'प्रसन्नकारी' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृत्तानाः) बृहत् विभीतक के फलरूप में विद्यमान प्रवातेजाः पवन-प्रकम्पित विस्तीर्ण भूमि में उत्पन्न ये अक्ष मुझे मद-मत्त बना रहे हैं । जय और पराजय के कारण हर्ष-शोक के चढ़ाव-उतार में यह द्यूत (जागृवि) सदा ही मुझे जगाता रहता है और अच्छान् = सदा ही मूढ़-मद से आच्छादित करता रहता है (सोमस्येव मौजवतस्य भक्षः) मुञ्ज-वान् पर्वत पर उत्पन्न उत्कृष्ट सोम के समान यह अक्ष (= द्यूत) मुझे सोम-पान के समान ही हर्षोत्कर्ष में डुबाता रहता है ।

२- न मा॑ मिमेथ॑ न जिहीड॑ एषा॑

शिवा॑ सखिभ्य॑ उत॑ मह्य॑मासीत् ।

अक्ष॑स्याह॑ मेक॑परस्य॑ हेतो॑-

रनु॑व्रता॑मप॑ जा॒याम॑रोधम् ॥२॥

पद-पाठः—न । मा॑ । मिमेथ॑ । न॑ । जिहीड॑ । एषा॑ । शिवा॑ । सखि॑ ऽभ्यः ।

उत॑ । मह्य॑म् । आसीत्॑ । अक्ष॑स्य॑ । अहम्॑ । एक॑ ऽ परस्य॑ । हेतोः॑ । अनु॑ ऽ व्रताम् ।

अप । जायाम् । अरोधम् ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(एषा मदीया जाया न मा मिमेथ न जिहीडे) इयं मदीया धर्मानुरागिणी पत्नी न कदापि मां प्रति मिमेथ उल्लंघनं कृतवती नैव च जिहीडे प्रियाकांक्षायां संकोचं कृतवती । अपि चेयं (शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्) मम सन्धचरेभ्यो मह्यं चातीवोदारहस्ता प्रसन्नाऽनुकूला चासीत् । (अक्षस्याहम् एकपरस्य हेतोः) स एवंविधोऽपि प्राप्तसमग्रसुखोऽपि शुभजानिरपि एकेनैव अक्ष प्रधानेन दोषेण दूषितः सन् (अनुव्रतां जायामप अरोधम्) अनुव्रतां शिवामपि तावृणीं पत्नीं दुर्भाग्य-परवशां कृतवानस्मि ।

व्याकरणम्—एकपरस्य—एकः परः प्रधानं यस्य तस्य ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने मिमेथ का अर्थ तर्जना देना तथा जिहीडे का अर्थ कुपित होना किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(एषा मदीया जाया न मिमेथ न जिहीडे) यह मेरी धर्मानुरागिणी पत्नी कभी भी मेरी बात का उल्लंघन नहीं करती थी और न तो प्रियकारी कार्य में किसी प्रकार का संकोच ही करती थी । (शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्) और मेरे लिये तथा मेरे मित्रों के लिये सदैव सोदसाह तथा प्रसन्न रहती थी पर बड़े खेद की बात है कि केवल एक जुवे के ही दोष के कारण आज मैं अपनी ऐसी अनुकूल धर्मपरायण पत्नी से भी बिछुड़ गया हूँ (अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोः अनुव्रताम् जायाम् अप अरोधम् ।

३-

द्वेष्टि॑ श्वश्रू॑रप॑ जा॒या रु॑णद्धि॒

न ना॑थितो वि॒न्दते म॑डितारम् ।

अश्व॑स्येव॒ जर॑तो व॒स्यस्य॑

नाहं॑ वि॒न्दामि कि॒तव॒स्य भो॑ ॥३॥

पद-पाठः—द्वेष्टि॑ । श्वश्रूः॑ । अप॑ । जा॒या । रु॑णद्धि॒ । न । ना॑थितः । वि॒न्दते॒

मडितारम् । अश्वस्य ऽ इव । जरतः । वस्यस्य । न । अहम् । विन्दामि ।

कितवस्य । भोगम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(द्वेष्टि श्वश्रूः) जायाया माता खल्वपि द्वेषभावमाचरति (जाया अप रुणद्धि) गृहाभिमुखमागच्छन्तं मां दृष्ट्वा सा तादृशी जायापि द्वारपिधानं करोति । (न नाथितो विन्दते मडितारम्) परयन्त्रप्रपीडितः कितवो न कुतोऽपि सुखयितारं सहायकमाप्नोति । (जरतो वस्यस्य अश्वस्य इव कितवस्य भोगं नाहं विन्दामि) मूल्यपतितस्य वृद्धाश्वस्य इव कितवस्य न क्वापि भोगसुखं खलु जानाभ्यहम् । सर्वथा निकृष्टतां गतः कितवः खलु भवति वृद्धाश्व इव ।

व्याकरणम्—वस्यस्य—वस्नं मूल्यं तदर्हति वस्यस्य । नाथितः = याचितः, उपतप्त्यः ।

टिप्पणी—मैकडानल ने 'अपरुणद्धि' का अर्थ 'भगा देती है' और वस्य का अर्थ 'विक्रयार्थ ले जाया गया' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(द्वेष्टि श्वश्रूः) पत्नी की मां भी जुवारी से घृणा करने लगती है और (जाया अप रुणद्धि) पत्नी भी आते हुए देखकर घर के किवाड़ बन्द कर लेती है । ऋणदाताओं की ओर से (न नाथितो विन्दते मडितारम्) पीड़ित होने पर कहीं भी सुखदाता सहायक उसे नहीं मिलता । जुवारी की दशा उस घोड़े के सदृश है जो कभी बहुत मूल्यवान् आँका जाता था पर (अश्वस्य इव जरतो वस्यस्य) आज बूढ़ा हो चला है और अब उसका मूल्य वृद्धत्व के कारण घट गया है । जुवारी भी जूवे में हार जाने के कारण जीवन के समस्त मूल्यवान् क्षणों से हार जाता है । (नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम्) अब रक्खा ही क्या है, कहीं धूतकर के लिये भोग-सुख की कल्पना मैं नहीं कर सकता ।

४- अन्ये जायां परिमृशन्त्यस्य

यस्यागृधद् वेदने वाज्य १ क्षः ।

पिता माता भ्रातर एनमाहुः

न जानीमो नयता बद्धमैतम् ॥४॥

पद-पाठः—अन्ये । जायाम् । परि । मृशन्ति । अस्य । यस्य । अगृधत् ।

वेदने । वाजी । अक्षः । पिता । माता । भ्रातरः । एनम् । आहुः । न जानीमः ।

नयत । वद्धम् । एतम् ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या— (यस्य वेदने वाजी अक्षः अग्रधत्) यस्य कितवस्य वेदने धनमभिलक्ष्य वाजी बलवान् अक्षः अग्रधत् गृद्धदृष्टिं निक्षिपति तस्य (अन्ये कितवा अस्य जायां परिमृशन्ति) वस्त्रकेशाद्याकर्षण दुर्भाषणादिना परिसृशन्ति पराभवदृष्टया संस्पर्शं कुर्वन्ति । न तावदेतावदेव अपितु (पिता माता भ्रातर एन माहु नं जानीमः नयत एतं वद्धम्) अनुकम्पनशीलः पिताऽपि स्नेहैकहृदया मातापि सोदर्यं प्रीतिपुष्टा भ्रातरोऽपि जल्पन्ति 'न वयमेनं जानीमः', यत्र कुत्रचिदिच्छथ वद्धमेनं तत्र-तत्र नयत ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने वाजी का अर्थ 'विजयी' किया है तथा परिमृशन्ति का अर्थ—'आलिंगन करते हैं' ।

हिन्दी व्याख्या—(यस्य वेदने वाजी अक्षः अग्रधत्) जिसके धन की ओर लालच भरी गृद्धदृष्टि से बलवान् जुआ निहारता है उस जुवारी की (जायाम्) पत्नी को (अन्ये परिमृशन्ति) दूसरे जुवारी वस्त्र-केशाकर्षणा आदि कष्ट से अपमान-पूर्वक संस्पर्श करते हैं । अन्य की तो बात ही क्या है ? (पिता, माता भ्रातर एनम् आहुः) स्नेहसौजन्य की मूर्ति बने पिता भी, माता भी और भ्राता भी कह देते हैं (न जानीमः) हम इसे नहीं पहचानते । जहाँ चाहो (नयत बहमेतम्) इसे बाँध कर ले जाओ । इससे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है ।

५-

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः

परायद्भ्यो ऽ व हीये सखिभ्यः ।

न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमकृतं-

एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥

पद-पाठः—यत् । आ ऽ दी॒ध्ये । न । द॒वि॒षा॒णि । ए॒भिः । प॒रा॒य॒त् ऽ भ्यः ।

अ॒व । ही॒ये । स॒खि ऽ भ्यः । नि ऽ उ॒प्ताः । च व॒भ्रवः । वा॒चम् । अ॒क्र॒त । ए॒मि ।

इत् ए॒षाम् । निः ऽ कृ॒तम् । जा॒रि॒णी ऽ इव ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(यद् आदी॒ध्ये) यदा—यदाऽहं॒द्यायामि चिन्ता॑परवशो भवमि (न द॒वि॒षा॒णि ए॒भिः) नाहं पुनः अक्षैः सह दे॒वि॒ष्यामि । अथ च (प॒रा॒य॒द्भ्यः स॒खि॒भ्यः अ॒वही॒ये) स्वयमेव परागच्छद्भ्यः स॒खि॒भ्यः अ॒वही॒येऽव॒हितो भ॒वि॒ष्यामि । पृथग्भूतः सन् स्थास्यामि परं (एते ब्र॒भ्रवः अक्षाः न्यु॒प्ताः सन्तः वा॒चम् अ॒क्र॒त) व॒भ्रु-
वर्णाः कितवैराक्षिप्ता अक्षाः शब्दं कुर्वाणा माम् आ॒द्व॒भ्यन्ती॒व द॒रीदृ॒श्यन्ते । परव-
शोऽहं (जा॒रि॒णी इव) स्वच्छन्दचारिणी योषिदिवाहं व्यसनाभिभूतः सन् एमीत्
गच्छाम्येव एषामक्षाणां निष्कृतं स्थानम् ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने 'इत्' का अर्थ सीधा किया है । एमीत् मैं सीधे वहाँ चला जाता हूँ ।

हिन्दी-व्याख्या—(यद् आदी॒ध्ये) मैं जब-जब चिन्तन करता हूँ कि (न द॒वि॒षा॒णि ए॒भिः) इन पासों से अब नहीं खेलूंगा और (प॒रा॒य॒द्भ्यः स॒खि॒भ्योऽव॒ही॒ये) इस मित्र मण्डली से दूर ही रहूंगा । पर विडम्बना देखिये कि (ब्र॒भ्रवः न्यु॒प्ताश्च वा॒चम् अ॒क्र॒त) जब ये भूरे वर्ण वाले शब्द करने लगते हैं तब मैं विवश होकर (एषां निष्कृतं जा॒रि॒णी इव ए॒मि इत्) इनके स्थान पर स्वच्छचारिणी कुलटा के समान व्यसनाभि-
भूत होकर चला ही जाता हूँ ।

६-

स॒भामे॒ति कित॒वः पृ॒च्छ॒मानो-

जे॒ष्यामी॒ति त॒न्वा ३ शू॒शु॒जानः ।

अ॒क्षासो॑ अ॒स्य वि॒तिर॑न्ति का॒मं

प्र॒ति॒दी॒प्ते द॒ध॒त आ कृ॒तानि ॥६॥

पद-पाठः—सभाम् एति । कितवः । पृच्छमानः । जेष्यामि । इति । तन्वा ।

शूशुजानः अक्षासः । अस्य । वि । तिरन्ति । कामम् । प्रति ५ दीन्ते । दधत । आ ।

कृतानि ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(तन्वा शूशुजानः कितवः सभामेति) तन्वा शरीरेण शूशु-
जानः शोशुचानः कितवः दीप्यमानः पुलकपूर्णं विकसितं शरीरः सभां प्राप्नोति ।
क्व वर्तते विजेता (जेष्यामि इति पृच्छमानः) इतस्ततः पृच्छन् जेष्यामि-जेष्यामि-
इत्येव कितवस्य चेतसि संकल्पः । (तत्र प्रतिदीन्ते) प्रतिदेवित्रे कितवाय (कृतानि)
देवनोपयुक्तानि कर्माणि (आदधतः) जयार्थं धारयतः (अस्य) कितवस्य (अक्षासः
कामं वितिरन्ति) अक्षाः कामं संकल्पं संवर्धयन्त्येन उल्लासं तन्वन्नसौ क्रीडत्येव
न विरतिं गच्छति ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने 'तन्वा शूशुजानः' का अर्थ किया है 'लड़खड़ाता
हुआ' । कामं वितिरन्ति = इच्छानुसार पासे पड़ते हैं । कृतानि का अर्थ किया है—
भाग्यशाली पासों का पड़ना ।

हिन्दी-व्याख्या—(तन्वा शूशुजानः पृच्छमानः कितवः) झूतकर धन की गर्मी
में दमकता हुआ—मेरा मित्र कहाँ गया—ललकारता हुआ (सभाम् एति) जूवे के
रंग-मंच पर उतरता है (जेष्यामि इति) साहस उसे उत्तेजित करता रहता है, जय-
शील भावना उसे उकसाती रहती हैं 'आज तो जीतूंगा ही ।' (= क्यों नहीं, मानों
ओझे की मुद्रिका पहन आया है !) (प्रतिदीन्ते दधत आ कृतानि) उस समय दूसरे
जुवारी के साथ खेलते-खेलते (अक्षासः अस्य कामं वितिरन्ति) इसकी विजयिनी इच्छा
को पासे और भी उन्मादित करते हैं । वह इस उन्माद का पिंजर-पंछी बन
जाता है ।

७-

अक्षास इदङ्कुशिनी नितोदिनो-

नि कृत्वानस्तपना स्तापयिष्णवः ।

कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो

मन्वा संपृक्ताः कितवस्य वर्हणा ॥७॥

पद-पाठः—अक्षासः । इत् । अङ्कुशिनः । नि ऽ ततोदिनः । नि ऽ कृत्वानः ।

तपनाः । तापयिष्णवः । कुमार ऽ देष्णाः । जयतः । पुनः ऽ हनः । मध्वा । सम् ऽ

पृक्ताः । कितवस्य बर्हणा ॥९॥

संस्कृत-व्याख्या—अक्षास इत् अंकुशिनः) एते अक्षा अंकुशवन्तः (नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः) कितवगजस्योपरि अंकुशा इव नितोदिनः व्यथा-कारकाः कशा इव, निकृत्वानः निकर्तनशीलाः तापयिष्णवः समस्तमेव कुटुम्बं संतापयुक्तं विदधति तपना दहनशीलाः । (कुमारदेष्णाः) जयशीलस्य कितवस्य गृहे जातवत्सोत्सवाः खल्वक्षा धनवृद्ध्या कुमारदायिनो भवन्ति परं (जयतः पुनर्हणः) जयिनोऽपि कितवस्य पुनः नाशनशीलाः (कितवस्य बर्हणा मध्वा संपृक्ताः) बर्हणा सर्वस्व हरणेनापि एते मधुना संपृक्ताः सन्ति । विषकुम्भा पयोमुखाः ।

टिप्पणी—मैकडानल ने अंकुशिनः का अर्थ नोकदार किया है । निकृत्वानः = प्रवंचना करने वाले और बर्हणा का अर्थ इन्द्रजाल की शक्ति से किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(अक्षासः इत् अंकुशिनः नितोदिनः निकृत्वानः तपनाः तापयिष्णवः) ये जूवे निश्चय ही जुवारी रूपी हाथी के लिए अंकुश हैं, जुवारी रूपी घोड़ के लिये क्षण-मात्र को उल्लसित करने वाले चाबुक हैं । ये हृदय पर चलने वाले तीक्ष्ण कर्त्तनशील आरे हैं और निरन्तर दाह देने वाले ठण्डे अंगारे हैं, सारे कुटुम्ब को झूलसा देने वाले प्रचण्ड आग हैं । (कुमारदेष्णाः जयतः पुनर्हणः) जीतने वाले जुवारी के लिये ये पासे पुत्रोत्सव-सा आनन्द देते हैं और धन की अज्ञात वृद्धि से पुत्रानन्द का भी सम्पादन करते हैं परन्तु अन्त में पुनर्नाश ही करते हैं । सर्वस्व (मध्वा संपृक्ताः कितवस्य बर्हणा) हरण कर लेने पर भी ये पाशों मधु से संसृष्ट जान पड़ते हैं—मधु से पूर्ण गरल-घट जैसे ।

८-

त्रिपञ्चाशः क्रीडति व्रात एषां

देव इव सविता सत्य धर्मा ।

उग्रस्य चि त्मन्यवे ना नमन्ते

राजा चिदेभ्यो नम इत्कुणोति ॥८॥

पद-पाठः—त्रि । पंचाशः । क्रीडति । व्रात । एषाम् । देवः ऽ इव । सविता ।

सत्य ऽ धर्मा । उग्रस्य । चित् । मन्यवे । न । नमन्ते । राजा चित् । एभ्यः । नमः ऽ
इत् । कृणोति ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(एषां व्रातः त्रिपंचाशः क्रीडति) एषाम् अधाणां संघः
त्रिपंचाशः आस्फारे क्रीडति विहरं तनुते (सत्य धर्मा सविता देव इव) सत्यधारकः
सर्वप्रेरकः सूर्यदेव इव ।। (उग्रस्य चित् मन्यवे ना नमन्ते) एते अक्षाः क्रूरस्यापि
कोपाय न नम्रा भवन्ति । (राजा चिद् एभ्यो नम् इत् कृणोति) राजा खल्वपि
प्रशासकोऽपि यदि कितवसक्तस्तदा सोऽपि एभ्यो नगस्कारमेव करोति । नैते वश-
वर्तिनः कस्यापि ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्रिपंचाशः=एषां व्रातः क्रीडति देव इव सविता सत्य
धर्मा) सत्य के धारक सूर्य भगवान् के समान इन जुवारियों के ५३ तिरपन लोगों
का संघ जुवा में क्रीडा-विहार करता है । (उग्रस्य चित् मन्यवे ना नमन्ते) उग्र कर्कश
क्रोधी के भी सामने नहीं झुकते हैं (राजा चिद् एभ्यो नम् इत् कृणोति) राजा को
भी इनके सामने हाथ जोड़ते ही बनता है । जुवा किसी के वश में नहीं रहता, सबको
अपने वश में ही रखता है ।

६-

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति-

अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।

दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः

शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

पद-पाठः—नीचाः । वर्तन्ते । उपरि । स्फुरन्ति । अहस्तासः । हस्तः ऽ

वन्तम् । सहन्ते । दिव्याः । अङ्गाराः । इरिणे । नि ऽ उप्ताः । शीताः । सन्तः ।

हृदयम् । निः । दहन्ति ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(नीचा वर्तन्ते) एते निचीनस्थले वर्तमाना अथापि (उपरि स्फुरन्ति) सर्वोपरि चमत्कुर्वन्ति । एते (अहस्तासः खल्वपि हस्तवन्तं सहन्ते) स्वयं खलु हस्तरहिता अथापि पराजयदानेन सिद्धहस्तमपि पुरुषं तिरस्कुर्वन्ति । (दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः) इन्धनरहिते आस्फारे उप्ता एते अक्षा दिव्या विलक्षणाः खलु; (शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति) शीतस्पर्शाः सन्तो ऽपि हृदयं निर्दहन्ति, दग्धं कुर्वन्ति ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने—उपरि स्फुरन्ति का अर्थ किया है—ऊपर को उछलते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्ति) ये पासे नीचे अक्ष-पट पर लहराते हैं पर नीचे रहते हुए भी ऊपर उछलते हैं । (अहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते) बिना हाथ के हैं फिर भी बड़े-बड़े हाथ वालों पर अपने हाथ दिखा देते हैं । (दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः) जुवा के ये पासे बहुत विलक्षण है, ये दिव्य अंगारे हैं जो अक्ष-पट पर फेंके जाते हुए (शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति) शीतल स्पर्श देते हैं पर हृदय को दग्ध कर देते हैं ।

१०-

जाया तप्यते कितनस्य हीना

माता पुत्रस्य चरतः क्व सिवत् ।

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानो-

ऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

पद-पाठः—जाया । तप्यते । कितनस्य । हीना । माता । पुत्रस्य । चरतः ।

क्व । सिवत् । ऋण ऽ वा । बिभ्यत् । धनम् । इच्छमानः । अन्येषाम् । अस्तम् ।

उप । नक्तम् । एति ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या— (कितवस्य हीना जाया तप्यते) द्यूतकरस्य पत्नी सर्वथा निर्वेदभावमापन्ना दैन्यमनुभवन्ती अभावग्रस्ता त्रस्ता सती पीड्यते सन्तप्ता भवति । (क्वस्वित् चरतः पुत्रस्य माता खल्वपि) क्व सम्प्रति कथं वा भविष्यतीति चिन्ता-कुला तस्य माता खल्वपि नितरां पीडामनुभवति । (धनमिच्छमानश्च ऋणावा विभ्यत्) अक्षपराजयाद् इतस्ततो धनमिच्छन् स ऋणवान् सर्वतो विभेति । (अन्येषां चास्तमुपनक्तमेति) रात्री च प्राप्तायां धनार्थं च चोरकार्यं कर्तुमन्येषां गृहं प्रति दत्त दृष्टि भवति ।

टिप्पणी—मैक्डानल ने विभ्यत् का अर्थ डरता हुआ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या— जुवारी की पत्नी (जाया तप्यते कितवस्य हीना) हीनावस्था में अभावग्रस्त होकर निरन्तर पीड़ित रहती है (माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्) उसकी माता भी पुत्र की चिन्ता में व्याकुल रहती है— न जाने इस समय कहाँ पर होगा ? (ऋणावा विभ्यद् धनमिच्छमानः) जूवे में पराजय पाने के कारण ऋण के भार से सदा दबा रहता है और धन की इच्छा से (अन्येषाम् अस्तम् उपनक्तम् एति) चोरी करने के लिए अन्य घरों पर दृष्टि डालता रहता है ।

विशेष—ऋणावा = ऋणवान् । अस्तम् = गृहम् ।

११— स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप-

अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम् ।

पूर्वाहणे अश्वान् युयुजे हि बभूवन्

सो अग्ने रन्ते वृषलः पपाद ॥११॥

पद-पाठः—स्त्रियम् । दृष्ट्वाय । कितवम् । तताप । अन्येषाम् । जायाम् ।

सु ५ कृतम् । च । योनिम् । पूर्वाहणे । अश्वान् । युयुजे । हि । बभूवन् । सः । अग्नेः ।

अन्ते । वृषलः । पपाद ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—(स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप अन्येषां जायां सुकृतं च योनिम्) परनारी साधवलङ्कृतां शोभमानां सुभूषितं तस्या गृहं स्वभावमधुरं चतुरं विलासं च दृष्ट्वा नितरां संतापं प्राप्नोति । तस्य पत्नी धनाभावादसंस्कृता गृहं चाव्यवस्थितं चेति कामयमानः । अयं स एव द्यूतकरः (पूर्वाह्णे, अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्) यः बभ्रुवर्णान् रमणीयान् अश्वान् पूर्वप्रहरे अक्षपटेऽश्वान् युयुजे स एव सम्प्रति (सोऽग्नेरन्ते वृषलः पपाद) रात्रौ वृषलधर्मा अग्ने निकटे शीत पीडितः समयं गमयति ।

टिप्पणी—मैकुडानल ने अश्वान् का अर्थ घोड़े तथा वृषल का अर्थ भिखारी किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्) जुवारी संस्कृत तथा अलंकृत पर नारी को तथा उसके व्यवस्थित घर को देखकर अपनी शोचनीय दशा पर आँसू बहाता है । (पूर्वाह्णे अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्) जो दिन के पहले पहर में भूरे वर्ण वाले पासों से क्रीडा-विहार करता था वही अब (सोऽग्नेरन्ते वृषलः पपाद) अग्नि के किनारे धर्महीन होकर रात काट रहा है ।

१२-

यो वः सेनानी महतो गणस्य

राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव ।

तस्मै कृणोमि न धना रुणधिम

दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि ॥१२॥

पद-पाठः—योः । वः । सेनाऽनीः । महतः । गणस्य । राजा । व्रातस्य ।

प्रथमः । बभूव । तस्मै । कृणोमि । न । धना । रुणधिम । दश । अहम् प्राचीः ।

तत् । ऋतम् । वदामि ॥१२॥

संस्कृत व्याख्या—(यो वः सेनानीः महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव) अधुना द्यूतकरः पुनः दृढं संकल्पं प्रथयति, हे अक्ष राजन् ! महतो गणस्य यो राजा व्रातस्य चास्य प्रमुखः (तस्मै दश प्राचीः अहं कृणोमि) तस्मै दशभिरंगुलीभि

युक्तमञ्जललिमहं वधनामि नेतः परमहं (धना रुणधिम) द्यूतार्थं धनसंग्रहं करिष्यामि ।
(तदहमृतं वदामि) सत्यमेव तद् यदहं सम्प्रति निश्चयेन ब्रवीमि ।

टिप्पणी—गणत्रातयोर्मध्येऽल्पीयानेव भेदः ।

हिन्दी-व्याख्या—(यो वः सेनानीः महतो गणस्य राजा त्रातस्य प्रथमो बभूव) हे अक्षाधिराज ! तुम्हारे गण का जो राजप्रमुख है, (तस्मै कृणोमि दश प्राचीः अहम्) उसके लिए दश अंगुलियों से युक्त मैं अब अंजली जोड़ रहा हूँ । अब बहुत हो चुका । अब आगे जूवे के लिये मैं (त धना रुणधिम) धनावरोध नहीं करूँगा । (तद् ऋतं वदामि) यह मैं सत्य ही कह रहा हूँ । आज से द्यूत कर्म से मैं अपने आपको विरत करता हूँ ।

विशेष—मैकडानल ने 'राजा' का अर्थ राजा के तुल्य किया है और रुणधिम का अर्थ किया है—रोकता हूँ ।

१३-

अक्षै मा दीव्यः कृषि॑मित्कृ॒पस्व

वित्ते॑ रमस्व॒ बहु॑ मन्यमानः ।

तत्र॑ गावः॒ कितव॑ तत्र॒ जाया॑

तन्मे॑ विच॒ष्टे सवि॑तायमर्थः ॥१३॥

पद-पाठः—अक्षैः । मा । दीव्यः । कृषिम् । इत् । कृपस्व । वित्ते । रमस्व ।

बहु । मन्यमानः । तत्र । गावः । कितव । तत्र । जाया । तत् । मे । वि । चष्टे ।

सविता । अयम् । अर्थः ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—(बहु मन्यमानः) सम वचने विश्वासं प्रकटयन् (अक्षैः मा दीव्यः) द्यूत मा कुरु । (कृषिमित् कृपस्व) कृषि मेव कुरु । (वित्ते रमस्व) कृष्यादिना सम्पादिते धने शुभं लभस्व । (तत्र गावः कितव तत्र जाया) तत्र नियमपूर्वकं सम्पादितायां कृषिक्रियायां गावो विलसन्ति जाया खल्वपि सस्नेहं सुखम् उत्पादयति । (सविताऽयमर्थः तन्मे विचष्टे) सविता सर्वस्य प्रेरकः खलु महेश्वरः अयम् एवं विचष्टे विविधप्रकारेण आख्यापयति ।

टिप्पणी—अर्थ = ईश्वरः ।

सविता = श्रुतिस्मृतिसम्पादयिता । जगत्प्रेरकः ।

विचष्टे = विविध चष्टे ख्यापयति ।

अयम् = अन्तर्यामितयाऽवस्थितः ।

अक्षैः = इन्द्रियादिभिरयि क्रीडां मा कार्षीः । इयमपि क्रीडा द्यूतकरस्येव मोहजननी । दिङ्मोहप्रवर्तिका च ।

हिन्दी व्याख्या—(बहु मन्यमानः) मेरे वचन में विश्वास रखो । (अक्षैर्मा दीव्यः) जूवा खेलना बन्द करो । (कृषिमित् कृषस्व) कृषि के ही कार्य का सम्पादन करो (वित्ते रमस्व) कृषि आदि से उत्पन्न धन में ही प्रीति पूर्वक व्यापार तथा विश्वास करो । (तत्र गावः कितव तत्र जाया) नियम और धर्म से सम्पादित कृषि के ही आय से सुन्दर स्वस्थ प्रसन्न गायें मिलती हैं और पत्नी का भी विश्वास और अनुराग मिलता है । (सविताऽयमर्थः तन्मे विचष्ट) संसार का प्रेरक सविता महेश्वर यहीं विविध प्रकार से उपदेश देता हुआ विस्थापित करता है ।

१४-

मित्रं कृणुध्वं खलु मृडतां नो

मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।

नि वो नु मन्यु विशतामराति-

रन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥

पद-पाठः—मित्रम् । कृणुध्वम् । खलु । मृडत । नः । मा । नः घोरेण ।

चरत । अभि । धृष्णु । नि । वः । नु । मन्युः । विशताम् । अरातिः । अन्यः ।

बभ्रूणाम् । प्रसितौ । नु । अस्तु ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—(मित्रं कृणुध्वम्) अस्माभिः सह मैत्री सम्पादयत । (खलु मृडत नः) अस्मान् सुखयत च । (मानो घोरेण चरताभिधृष्णु) घोरेणासहनेन माभि-

चरते । न गच्छत । धृष्णुना वर्षणशीलेन व्यवहारेण मा क्षोभं जनयत । (नि वो नु मन्यु विंशताम् अरातिः) ये दानहीनाः चंचला मानवास्तान् प्रति युष्माकं कोपः प्रविशतु । (अन्यो बभ्रूणां प्रसितौ नु अस्तु) ये नानामतयो निष्कृष्ट-गतयोऽस्मद्भिन्नास्त एव बभ्रुवर्णानां युष्माकं प्रसितौ प्रबन्धने बद्धा भवन्तु । नान्ये सत्पुरुषाः ।

टिप्पणी—धृष्णुना इत्यत्र तृतीयार्थे प्रथमा धृष्णु इति । खल्विति पाद-पूरणः । घोरेण—असहनेन । मन्युः—क्रोधः । प्रसितौ=बन्धने ।

मैकुडान्तल ने मृडत का अर्थ दयालु बनो, घोरेण का अर्थ इन्द्रजाल की शक्ति से, अभिचरत का अर्थ जादू करो और धृष्णु का अर्थ बलपूर्वक किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(मित्रं कृणुध्वम) अब तुम हमसे मैत्री कर लो । (खलु मृडत नः) और हमें सब प्रकार से सुख पहुंचाओ (मा नो घोरेण चरताभिधृष्णु) असह्य वर्षणशील व्यवहार से अब मुझे क्षुब्ध और पीड़ित मत करो । (नि वो नु मन्युविंशतामरातिः) जो हमसे भिन्न दया-दान रहित दूषित लोग हैं उनके प्रति तुम्हारा कोप उजागर हो और (अन्यो बभ्रूणां प्रसितौ नु अस्तु) भूरे वर्ण वाले इन पासों के प्रति अब वे ही लोग प्रबन्धन स्वीकार करें ।

१०—७२

देव-सूक्तम्

ऋषि—बृहस्पतिः, अदिति दाक्षायणी । देवता—देवाः । छन्दः—अनुष्टुप् ।

देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम विपन्यया ।

उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

पद-पाठः—देवानां॑ । नु । वयम् । जाना॑ । प्र । वोचाम॑ । वि ५ पन्यया॑ ।

उक्थेषु॑ । शस्यमानेषु॑ । यः । पश्यात् । उत्तरे॑ । युगे॑ ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम) अदिति दीक्षायाणी बृहस्पति वा ऽऽ दित्योत्पत्तिप्रकारं ब्रूते—वयं देवानाम् आदित्यानां जाना जन्मानि प्रवोचाम प्रवक्तुं प्रवृत्ता भवाम । (विपन्यया) विश्वासार्यं वचनम्, विपन्यया वाचा स्पष्टया व्यवहारदक्षया वाण्या । (उत्तरे युगे) अनन्तरं वर्तमानं (उक्थेषु शस्यमानेषु) यागेध्वनुष्ठीयमानेषु स्तोतारं स्तुवन्तं (यः पश्यात्) यो देवगणः पश्यति ।

टिप्पणी—विपन्यया = वि + पन्य + अच् + टाप् । तृतीया ।

जाना—जन्मानि ह्यन्दसः प्रयोगः ।

पश्यात्—पश्यति । लेट् प्रयोगः ।

(२) पीटर्सन ने विपन्यया का अर्थ 'चमत्कृत शब्द-चित्र में सुन्दर प्रणाली से कहना' किया है । ग्रिफिथ ने 'ध्वन्यात्मक-वक्रोक्ति-विषय में वर्णन' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—अदिति अथवा बृहस्पति देवोत्पत्ति (आदित्य आदि की) के विषय में कहते हैं (देवानां नु वयं जाना) हम देवों के जन्मों के विषय में (विपन्यया) दक्षतापूर्ण वाणी में (प्रवोचाम) कहने को प्रवृत्त होते हैं । (यः) जो देवों का समूह (उक्थेषु शस्यमानेषु) यागों के अनुष्ठान के समय में (उत्तरे युगे) अनन्तर समय में स्तोतृजनों को (स्तुति करने वाले महापुरुषों को) देखता है ।

२-

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मार इवाधमत् ।

देवानां पूर्व्ये युगे ऽ सतः सदजायत ॥२॥

पद-पाठः—ब्रह्मणः । पतिः । एता । सम् । कर्मार ऽ इव । अधमत् । देवा-

नाम् । पूर्व्ये । युगे । असतः । सत् । अजायत ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(ब्रह्मणस्पतिः एता कर्मार इव समधमत्) ब्रह्मणः अन्नस्य-पतिः अदितिः एता एतानि देवानां जन्मानि कर्मार इव स्वर्णकार इव स यथा भस्त्रायामग्निमुपधमति तथा अदितिः देवानां प्रज्वलनार्थम् आदिसृष्टौ उदपादयत् । देवानां पूर्व्ये युगे ऽ सतः सद अजायत) अस्मात् कार्यव्यापाररूपात् संसारात् प्राक् नाम-रूपादिरहिताद् ब्रह्मणः सकाशाद् असद् रूपात् इदं सद् अजायत नामरूपादिकं जगद् अजायत निष्पन्नं जातम् ।

टिप्पणी—अधमत्—ध्मा धातो धर्मादेशः । लङ् प्रथमपुरुषैकवचनम् । ब्रह्म = अन्नम् ।

(२) पाश्चात्य विद्वान् असत्का अर्थ करते हैं 'जिसकी सत्ता न हो' । सत् का अर्थ करते हैं 'जिसकी सत्ता हो' ।

(३) लुङ्विग ने 'एता' का अर्थ 'इमान् लोकान्' किया है जो उचित नहीं है ।

(४) पूर्व्ये युगे का अर्थ ग्रिफिथ ने 'देवताओं के आरम्भिक युग में' तथा पीटर्सन ने 'सर्जना के आरम्भ में' किया है ।

(५) तै० उ० २-७ में असत् से सत् की उत्पत्ति तथा छान्दोग्य ६-२-२ में सत् से ही सत् की उत्पत्ति का प्रतिपादन हुआ है । इसका समाधान यह है कि नाम-रूप आदि योजना से शून्य (अव्याकृत-अवस्था) तथा नाम-रूप आदि योजना से युक्त (व्याकृत-अवस्था) अवस्थाओं का यहाँ निदर्शन है ।

हिन्दी-व्याख्या — (ब्रह्मणः पति) अन्नदाता परमात्मा ने (एता) इन देवों के जन्म-संस्कार को प्रोज्ज्वल बनाने के लिए (कर्मा इव सन् अधमत्) स्वर्णकार के समान (= वह जिस प्रकार भट्ठी में अग्नि को धौंकनी से शुद्ध करता है, उसी प्रकार) दीप्त किया । (देवानां पूर्व्ये युगे) इस दिव्य-सृष्टि के आदि में (असतः सत् अजायत) असत् से सत् की उत्पत्ति हुई । असत् से सत् की सृष्टि का अभिप्राय यही है कि यह कार्यरूप में दृष्टिगोचर जगत् पहले अपने कारणरूप जगत् में जिसकी व्याख्या नाम-रूप देकर नहीं हो सकती थी — उस असत् से सत् की सृष्टि हुई ।

३-

देवानां युगे प्रथमे ऽ सतः सदायतः ।

तदाशा अन्व जायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

पद-पाठः—देवानाम् । युगे । प्रथमे । असतः । सत् । अजायत । तत् ।

आशाः । अनु । अजायन्त । तत् । उत्तान ऽ पदः । परि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(प्रथमे युगे देवानाम्) प्रकृष्टतमे तस्मिन् देवानां प्रथम-सृष्टिप्रसरे तेषामुपादानभूतात् कारणात् (असतः) असत्समानात् स्रष्टुः सद् अजायत देवादिकमुत्पन्नम् । (तद् अनु) आशाः दिशो (अजायन्त) ततोऽनन्तरं च (उत्तानपदः) ऊर्ध्वशाखाः वृक्षा अजायन्त उत्पन्नाः ।

टिप्पणी—(१) उत्तानपदः—उत्तानाः पादा येषां ते, उत्तानपदः । ते ह उत्तानाः पद्यन्ते । उत्तान + पद + क्तिप् ।

(२) असतः सद् अजायत । ततः सतः आशा दिशः, ततश्च वृक्षादिकम् उत्पन्नम् ।

(३) ओल्डेन वर्ग ने 'उत्तानपदः' का अर्थ 'ऊर्ध्व विस्तीर्ण' किया है । ग्रिफिथ ने जगत्-जननी अदिति को 'उत्तानपदः' कहा है जिसका अर्थ 'ऊपर को

फैल गए हैं चरण जिसके' किया है । पीटसंन ने भी इसी अर्थ का समर्थन किया है । वालिस ने सायण का समर्थन करते हुए अर्थ किया है 'ऊर्ध्व-विस्तीर्ण वृक्ष' ही किया है ।

(४) आशाः = दिशः ।

हिन्दी-व्याख्या—(देवानां प्रथमे युगे) देवों की उस प्रोज्ज्वल आदि-सृष्टि की पावन-बेला में (असतः सद् अजायत) असत् से ही सत् की सृष्टि हुई । कारण—जगत् से कार्य-जगत् का प्रादुर्भाव हुआ । जो दृग्गोचर नहीं हो रहा था वह अनुभूयमान स्थिति में आया । (तद् अनु आशा अजायन्त) उसके अनन्तर उस अनुभूयमान अवस्था के अनन्तर दिशाओं की सृष्टि की अनुभूति हुई । (तद् उत्तानपदः परि) दिशा की सर्जना के अनन्तर ऊपर की ओर शाखाओं वाले वृक्षों की सृष्टि हुई ।

४-

भूज्ज उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।

अदिते दक्षो अजायत दक्षाददितिः परि ॥४॥

पद-पाठः—भूः । जज्जे । उत्तान पदः । भुवः । आशाः । अजायन्त ।

अदितेः । दक्षः । अजायत । दक्षात् । ऊँ इति । अदितिः । परि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(उत्तानपदः) ऊर्ध्वविस्तीर्णात् ततः सतः (भूः जज्जे) इयं पृथिवी प्रादुर्भूता । 'भुव आशा अजायन्त' पृथिवीसृष्टेरनन्तरम् आशा दिशः प्रादुर्भूताः । 'अदितेः दक्षः अजायत' अदिति रेव दक्षजननी ततस्तस्य प्रादुर्भावात् (दक्षाद् उ अदितिः परि) दक्ष देव वा अदितिरुत्पन्ना । नोत्पन्नं कार्यं स्वस्यैव कारणमपि संभवति विरोधात् । उपपन्नमेतत् एकप्रकृतीनां देवानाम्, इतरेतरजन्मानो हि देवाः । आत्म-दृष्ट्या समग्रमुपपन्नम् ।

टिप्पणी—उत्तानपदः का अर्थ करते समय बहुत से लोग भ्रान्त हो जाते हैं । जगत् को देखकर ही सृष्टि-प्रपञ्च को देखना-समझना है तो सादृश्य अर्थ लगाकर समझें । जैसे कि हम वृक्ष-धर्म देखते हैं कि ऊपर को फैला है, इसी प्रकार इस आकाश वृक्ष को देखें जो कि ऊपर को विस्तीर्ण होकर फैला है ।

(२) अदिति से दक्ष और दक्ष से अदिति यह सृष्टि-व्यापार की अनिवार्य-नीयता प्रतीत होती है जो आजकल भी चलती है कि पहले बीज उत्पन्न हुआ कि वृक्ष ? यह सृष्टि-प्रक्रिया का नैरन्तर्य प्रतिपादित है जैसा कि नासदीय प्रकरण में भी कहा गया है 'कामस्तदग्रे ०' ।

(३) यास्क ने भी इसे इसी प्रकार समझाया है—‘समानजन्मानौ वा स्याता-
मित्यपिवा देवधर्मोत्तरजन्मानौ स्यातामितरेतरप्रकृतौ ? (नि० ११-२३) इति ।

हिन्दी-व्याख्या—(उत्तानपदः भूः जज्ञे) ऊर्ध्वविस्तीर्णं उस आकाश-वृक्ष से यह पृथिवी प्रकट हुई । (भुवः आशा अजायन्त) इस पृथ्वी से दिशायें जानी गयीं । (अदितेः दक्षः अजायत) अदिति से दक्ष (दक्षात् उ अदितिः परि) और दक्ष से भी अदिति का जन्म हुआ । कहीं भी उत्पन्न कार्य अपने ही लिए उत्पादक नहीं बनता, अतएव दिव्य-सृष्टि के कारण सदैव कारण-कार्य समन्वय रहता है । प्रत्येक ज्ञात अज्ञात की ओर तथा अज्ञात ज्ञात की ओर उन्मुख रहता है इसी को असत्-सद्विलक्षण कहा गया है ।

अदिति॑ ह्य॑जनि॑ष्ट दक्ष॑ या दु॒हिता॑ तव॑ ।

तां दे॒वा अ॒न्वजा॑यन्त भ॒द्रा अ॒मृत॑बन्धवः ॥५॥

पद पाठः—अदितिः । हि । अजनिष्ट । दक्ष । या । दुहिता । तव । ताम् ।

देवाः । अनु । अजायन्त । भद्राः । अमृत ५ बन्धवः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—हे दक्ष ! (या तव दुहिता) या तव दोहन करी पुत्री-स्थानीया अदितिरभूत् सैव (अदितिः अजनिष्ट) स्वजन्मनाऽन्यानपि भावयामास । (ताम् अनु एव देवाः अमृतबन्धवः भद्रा अजायन्त) ततोऽनन्तरं जनमीमनु भद्रा भजन-स्वभावा अमृतबन्धवः अमृतबन्धना देवाः प्रादुर्भूताः ।

टिपणी—अमृतबन्धवः = अमृतबन्धनाः । अमृतेमेव बन्धु येषां ते । बन्धु = बन्धकम् ।

(१) दक्ष की पुत्री अदिति और अदिति को देवों की भगिनी कहा गया है, ऐसा पीटर्सन मानते हैं पर सर्वत्र अदिति को देवमाता ही कहा गया है । जैसा कि इसी सूक्त में आठवाँ मंत्र ।

(३) अमृतबन्धवः का अर्थ मैक्समूलर तथा ग्रिफिथ ने अमरजीवन के संगी, प्रासमान और पीटर्सन ने अमरजीवन के लब्धप्रतिष्ठ किया है । वर्गेन ने अमृत जीवन में भागीदार बताया है ।

हिन्दी-व्याख्या—हे दक्ष (या तव दुहिता अदितिः) जो आपकी पुत्री (रस-दोहनी) अदिति है । उसने ही (देवान् आदित्यान् हि अजनिष्ट) समग्र आदित्यों को प्रकट किया । और उसी की कृपा से (ताम् अनु) (देवा अजायन्त) समग्र देवों का

प्रादुर्भाव हुआ । कैसे हैं वे देव ? (भद्राः) कल्याण करने वाले एवं स्तुतियों से पूजा योग्य हैं और (अमृतबन्धवः) अमर-बन्धु-स्नेह से पुलकित रहने वाले हैं ।

६-

यद् देवा अदः सलिले सुसंरब्धा अतिष्ठत ।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रेणुरपायत ॥६॥

पद-पाठः—यत् । देवाः । अदः । सलिले । सु संरब्धाः । अतिष्ठत । अत्र ।

वः । नृत्यताम् ऽ इव । तीव्रः । रेणुः । अप । आयत ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदः सलिले यद् देवाः) अदः अस्मिन् सलिले सलिलवद् विद्यमाने शान्ते ब्रह्मणि देवाः (सुसंरब्धाः) लब्धधियः (अतिष्ठत) स्थिता यूयम् । (नृत्यताम् इव) अभिनयवता गात्रविक्षेपणशीलानां वः युष्माकं (अत्र वः तीव्रः रेणुः अपायत) तीव्रो धूलिसमूहः अपायन उदञ्चित् ।

टिप्पणी—(१) नृती गात्रविक्षेपे शतृ नृत्यताम् । इव । उत्प्रेक्षालङ्कारः । सुसंरब्धाः—सुसम् पूर्वस्य रमधातो निष्ठा ।

(२) आपो वा इदं सर्वम् । तै० आ० १०—१२ । अप एव ससजादौ—मनु० ।

(३) सायणः प्रतिपादयति—अस्मिन् मंत्रेऽग्रे चादित्याः स्तूयन्ते ।

(४) पीटर्सन कहते हैं कि इस मंत्र में देवों को विश्वोत्पादक-शक्ति से युक्त दर्शाया गया है । वालिस ने नृत्य करते हुए ही सहज भाव से उन परमाणु शक्तियों का उद्बोधन किया जिनसे कि पृथ्वी की सृष्टि हुई । ग्रिफिथ ने कहा है कि देवगण यहाँ नटरूप में चित्रित किये गए हैं, उनके चमत्कारपूर्ण नृत्य-झनकार से घनीभूत रेणु-मेघ उठ पड़े ।

हिन्दी-व्याख्या—(अदः सलिले यद् देवाः) इस सलिल के समान शान्त शुभ्र ब्रह्म में हे देवगण ! (सुसंरब्धा अतिष्ठत) आप ध्यानस्थ होकर स्थित हुए और (अत्र वः नृत्यतामिव) नाट्य-कला कुशल आपके अभिनव-गात्र-विक्षेप से मानों (तीव्रो रेणुः अप आयत) धूलि-समूह का तीव्र-संघात उदञ्चित हुआ । उठ पड़ा ।

७-

यद् देवा यतथो यथा भुवनान्य पित्वत ।

अत्रा समुद्रागूढ मा सूर्यमजभर्तनः ॥७॥

पद-पाठः—यत् । देवाः । यतयः । यथा । भुवनानि । अपिन्वत । अत्र ।

समुद्रे । आ । गूढम् । आ । सूर्यम् । अजभर्तन ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—हे देवाः ! यथा यतयो मेघा जलवर्षणेन भुवनानि अपिन्वत पूरयन्ति तद्वद् यूयमपि स्वकर्मभिर्भुवनानि प्रपूरयथ । तथा च सूर्यं समुद्रे आगूढं तिरोहितं मग्नं यूयम् आ अजभर्तनं अद्भुतवन्तः ।

टिप्पणी—(१) यत् = यदा । देवाः = सम्बोधनम् अत्र । यतयः—यम धातोः क्तिन् । बहुवचने । मेघाः—वर्षणेन नियमयन्ति ।

(२) पीटर्सन ने अजभर्तन का अर्थ किया है—दूध को मथकर बाहर निकालना अर्थात् जिस प्रकार दूध को मथकर भक्खन बाहर निकाल लेते हैं उसी प्रकार समुद्र-मन्थन के द्वारा देवों ने सूर्य को बाहर निकाला ।

(३) यतयः का अर्थ सायण ने मेघ किया है । पीटर्सन 'ग्वाला' अर्थ करते हैं । ग्रिफिथ ने 'ईश्वर-पूजक' अर्थ किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यतयो यथा भुवनानि अपिन्वत) जिस प्रकार घने मेघ भुवनों को नियंत्रित करते हैं अथवा जल-वर्षा से प्रेरणा देते हैं, उसी प्रकार (यद् देवाः) हे देवगण ! आप भी अपने तेजस्वी क्रिया-कलाप से भुवनों को पूर्ण कर देते हैं । आपने ही (समुद्रे आ गूढं सूर्यम्) समुद्र के अन्तराल में अन्तर्निहित सूर्य को अपने सामर्थ्य से (आ अजभर्तन) बाहर निकाला है ।

८-

अष्टौ पुत्रासो अदिते र्ये जाता स्तन्वश्स्परि ।

देवाँ उपप्रेत् सप्तभिः परा माताण्डमास्यत् ॥८॥

पद-पाठः—अष्टौ । पुत्रासः । अदितेः । र्ये । जाताः । तन्वः । परि । देवान् ।

उप । प्र । ऐत् । सप्त ५ भिः । परा । माताण्डम् । आस्यत् ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदितेः अष्टौ पुत्रासः ये जाताः तन्वः परि) अदितेः मित्रा-दयः अष्टौ पुत्राः तन्वः परि शरीराज्जाताः । सा सप्तभिः पुत्रैः देवान् उपप्रेत् उपा-गच्छत् । अष्टमं च पुत्रं माताण्डं सूर्यम् उपरि परास्यत् प्राप्तिपत् ।

टिप्पणी—(१) अष्टौ पुत्रासः = ताननुक्रमिष्यामः, मित्रश्च वरुणश्च, धाता अर्यमा च अंशश्च भगश्च । विवस्वानादित्यश्च । तै० सं० ६-५-६-१ ।

पुत्रासः—पुत्राः आज्ञसेरसुक् । आस्यत्—असु क्षेपणे—आ + अस्यत् ।

(२) पीटर्सन ने मार्ताण्ड का अर्थ 'मृतम् + अण्डम्' किया है जिसे अदिति ने मरा अण्डा (मृत-पक्षी) समझकर फेंक दिया । उनके अनुसार ऋ० २-३८-८ में भी यह विवरण दिया गया है ।

(३) ग्रिफिथ ने परा आस्यत् का अर्थ किया है—'दूर फेंक दिया' ।

हिन्दी व्याख्या—(अदितेः तन्वः परि अष्टौ पुत्रासः जाताः) अदिति के शरीर से आठ पुत्र निष्पन्न हुए । उनमें से (सप्तभिः पुत्रैः देवान् उप प्रैत्) सात पुत्रों के साथ वह देवों से मिलने गयी और आठवें पुत्र मार्ताण्ड को (मार्ताण्डं परा ऽऽस्यत्) ऊपर फेंक दिया । मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् और आदित्य ये अदिति के आठ पुत्र हैं ।

६-

सप्तभिः पुत्रैरदितिरूपप्रैत्पूर्व्यं युगम् ।

प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्माताण्डमाभरत् ॥६॥

पद-पाठः—सप्त ऽभिः । पुत्रैः । अदितिः । उप । प्र । ऐत् । पूर्व्यम् ।

युगम् । प्रजायै । मृत्यवे । त्वत् । पुनः । मार्ताण्डम् । आ । अभरत् ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(अदितिः सप्तभिः पुत्रैः) अदितिः तैः मित्रादिभिः सप्तभिः पुत्रैः (पूर्व्यं युगम् उप प्रैत्) पुराणं युगं प्राप्ता । (प्रजायै मृत्यवे त्वत्) प्राणिनां प्रजायै प्रजननार्थं मरणार्थं च (मार्ताण्डम्) मृतादण्डाज्जातं सूर्यं (पुनः आभरत्) आहरत् द्युलोके स्थापितवती । उदयास्तवेलाभिः सूर्य एव जन्ममरणावधारकः । तै० सं० ६-५-६-१ ।

टिप्पणी—पीटर्सन लिखते हैं कि अदिति ने उस फेंके हुए पक्षी का फिर उठा लिया और जनन-मरण रूप परिवर्तन के लिए पुनः उसे स्थापित किया ।

पूर्व्यम्—पूर्वं भवम् = पूर्व्यम् । यत् प्रत्ययः ।

हिन्दी-व्याख्या—(अदितिः सप्तभिः पुत्रैः) अदिति उन सप्त पुत्रों के साथ (पूर्व्यं युगम् उप प्रैत्) उन पूर्व युग के देवताओं के पास मिलने गयी । और (प्रजायै मृत्यवे त्वत्) प्रजाओं की उत्पत्ति और विनाश के लिए (पुनः मार्ताण्डम् आभरत्) द्युलोक में उसने सूर्य को सुबद्ध किया । सूर्य ही अपने उदय-अस्त रूप प्रपंच से प्राणियों में जन्मोत्साह तथा मरण-भय स्थापित करता है ।

मण्डल १०

पुरुष-सूक्तम्

सूक्त ६०

ऋषिः—नारायणः । देवता—पुरुषः

छन्द—१—१६ अनुष्टुप्—१५—त्रिष्टुप्

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वा त्यतिष्ठदशाङ्गुलम् ॥१॥

पद-पाठः—सहस्र ऽ शीर्षा । पुरुषः । सहस्र ऽ अक्षः । सहस्र ऽ पात् । स ।

भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दश ऽ अङ्गुलम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—समष्टिरूपेणावस्थितो यो ऽ यं ब्रह्माण्डशरीरः पुरुषः स सहस्रशीर्षा सहस्राण्यसंख्यातानि शिरांसि यस्य सो ऽ यं सहस्रशीर्षा । सहस्र-शब्दो ऽ त्र्योपलक्षणम् । सर्वप्राणिनां शिरांसि तद्देहान्तर्गतत्वात्तस्येव तानि । एवमेव सहस्राण्यसंख्यातानि अक्षीणि नेत्राणि यस्य, सहस्राण्यसंख्याताः पादा यस्येति च । स विराट् पुरुषः भूमिं ब्रह्माण्डगोलकं विश्वतो वृत्वा सर्वतः समावेष्ट्य दशाङ्गु-परिमाणं देशमधिष्ठाय अत्यतिष्ठत्—अतिक्रम्य उपस्थितः । दशाङ्गुलमिति त्र्योप-लक्षणम् । ततो ऽ पि बहिर्वर्तते इत्यर्थः ।

व्याकरणम्—सहस्र शीर्षा, सहस्राक्षः, सहस्रपात् = सहस्राणि शिरांसि यस्य स सहस्रशीर्षा, सहस्राणि अक्षीणि यस्य स सहस्राक्षः, सहस्राणि असंख्याताः पादा यस्य स सहस्रपात् । पुरुषः—पुरि शेते । दशाङ्गुलम् = दशानामङ्गुलीनां समाहारः । दश + अंगुली + अच् (समासान्तः) रि लोपः । दशाङ्गुलम् ।

टिप्पणी—वृत्वा के स्थान पर स्पृत्वा का भी पाठ मिलता है ।

हिन्दी-व्याख्या—यह परम् विराट् पुरुष सहस्रों शिर, नेत्र, पैर वाला है । समस्त प्राणियों के अन्तर्गत विराजमान होने के कारण सबके सिर, सबकी आंखें, सबके चरणः उसी के सिर, उसी के नेत्र और उसी के चरण हैं । वह (स भूमि विश्वतो वृत्वा) इस समग्र ब्रह्माण्डगोलक को सभी ओर से आवृत करके इसे परे

पार भी दशाङ्गुल बढ़ा हुआ है। वह सबके भीतर विद्यमान होने पर भी सबसे बाहर अवस्थित है।

२—

पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।

उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ॥२॥

पद-पाठः—पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च

भाव्यम् । उत । अमृतम् । त्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अति । रोहति ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(इदं सर्वं विद्यमानं जगत् तत्सर्वं पुरुष एव) यदिदं दृश्य-
मानं जगत् विराजते ऽत्र अस्ति-भाति-प्रीणातिरूपः पुरुष एव । तस्यैव सत्तया
इदं भाति-प्रीणाति = तस्य भासा सर्वमिदं विभातीत्युक्तत्वात् । यदतीतं यच्चानागतं
(भद् भूतं यच्च भाव्यम्) तदपि सर्वं पुरुष एव (यच्चान्यत्रिकालातीतं तत् सर्व-
मोङ्कार एव) । यथा ऽस्मिन् कल्पे सर्वे प्राणिनस्तस्यैव पुरुषस्यावयवास्तथैव जीताना-
गतयोरपि कल्पयोजातिव्यम् । (उत अमृतत्वस्य ईशानः) अपि चायमेव पुरुषो देवत्व-
कर्मणि ईशानः स्वामी, अमृतत्वस्य तदधीनत्वात् । (यद् अन्नेन अतिरोहति) यत्
यस्माद् हेतोरयम् अन्नेन भोग्येन प्रपंचेन स्वीयां कारणावस्थामतिहाय अतिरोहति
प्राणिनां कर्मफलभोगाय जगदवस्थां स्वीकरोति ।

टिप्पणी—(१) भाव्यम्—भू + ण्यत् । ईशानः—ईश् + शानच् ।

(२) पीटर्सन ने 'यदन्नेनातिरोहति' का अर्थ किया है—जो वस्तु अन्न से
उत्पन्न होती अथवा पुष्ट होती है, पुरुष उसका स्वामी है ।

(३) अमृत शब्द इसी मंत्र के साथ अन्यत्र भी आया है । अथर्ववेद—१६-६-४
में भी आया है । अमृत शब्द अमृत (सुधा) अन्न और जल का वाचक है । अर्थात्
स्थलवर्ती, जलवर्ती तथा अन्तरिक्षवर्ती जड़-चेतन (चराचर जगत्) का वही एकमात्र
ईशान (= प्रभु, स्वामी) है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् भूतं यच्च भाव्यं तस्य सर्वस्य स एव स्वामी = इदं
सर्वं पुरुष एव) जो यह वर्तमान जगत् दृष्टिगोचर होता है, यह सब उस पुरुष का
का ही उल्लास है । इसी प्रकार इसी प्रमाण से सहजतया यह जान लेना चाहिये कि
भूत-भविष्यत् का भी नियंत्रक वही एक पुरुष है । वही अन्न, जल तथा सुधा का
दान करके अमृतत्व का सम्पादक है, पर वही (उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति)

प्राणियों के भोग्य प्रपंचरूप अन्न का सम्पादन करने के लिए कारणावस्था का उल्लंघन करके जगदवस्था को स्वीकार करता है ।

३—

ए॒तावान॑स्य॒ महि॒मा तो॒ ज्यायां॑ इ॒ च॒ पू॒ठषः॑ ।

पा॒दो ऽ॒स्य॒ वि॒श्वा॒भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्यामृतं॒ दि॒वि ॥३॥

पद-पाठः—ए॒तावान् । अ॒स्य । महि॒मा । अतः । ज्या॒यान् । च । पु॒रुषः ।

पा॒दः । अ॒स्य । वि॒श्वा । भू॒तानि॑ । त्रि॒ ऽ पा॒त् । अ॒स्य । अ॒मृत॑म् । दि॒वि ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—(एतवान् अस्य महिमा अतो ज्यायान् च स पुरुषः) अतीत-वर्तमान-अनागतरूपं यावज्जगदस्ति स सर्वो ऽप्यस्यैव महिमा—ऐश्वर्यचमत्कारः । स पुरुषो नैवावधारित रूपः अतो ज्यायानपि अतो ऽप्युल्लंघ्य स्थितः । (पादो ऽस्य विश्वाभूतानि) एतानि समग्राणि भूतजातानि अस्य पादमात्रतां भजन्ते, चतुर्थ एवांशे स्थितमिदं जगत् । (त्रिपादस्यामृतं दिवि) अवशिष्टं च त्रिपास्वरूपम् तदमृतं नाशरहितं दिवि द्योतनात्मके तस्य स्वे महिम्नि वर्तते । यद्यपि तस्य परब्रह्मणो नास्ति इयत्ता तथापि निरूपयितुमशक्यत्वात् पुरुषापेक्षया ऽत्यल्पमिदं जगदिति द्योतयितुं श्रुतिः कामयते ।

टिप्पणी—ए॒तावान्—एतत् + सतुप् । ‘आ सर्वनाम्नः’ । महत् + इमनिच्—महिमा । ज्या॒यान्—‘ज्य च’ इति प्रशस्यस्य स्थाने ‘ज्य’ आदेशः, ईयमुनि, ईकारस्य ‘आ’ आदेशः त्रिपात्—त्रयाणां पादानां समाहारः, ‘पादस्य लोपोः’ ।

मैक्डानल ने दिवि का अर्थ स्वर्ग और पीटर्सन ने आकाश किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(ए॒तावान् अस्य महिमा) यह भूत-भविष्यत् वर्तमान रूप समस्त जगत् उसी एक ईश्वर के आदर्श का चमत्कार है । (अतो ज्यायांश्च पुरुषः) पर वह पुरुष इतना ही सीमित नहीं है, वह इससे भी अत्यधिक है । (पादो ऽस्य विश्वा भूतानि) यह समस्त प्राणिमात्र उसके चतुर्थांश में ही अवस्थित है पर अवशिष्ट तीन चतुर्थांश उसकी अपनी ही अमृत-विभूति में जगनगा रहा है । यद्यपि इस ब्रह्म की सीमा का वर्णन नहीं हो सकता परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह समस्त भुवन उस पुरुष की अपेक्षा अत्यन्त अल्प है (त्रिपादस्यामृतं दिवि) ।

४—

त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः पादो ऽ स्येहाभवत्पुनः ।

ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि ॥४॥

पद-पाठः—त्रि ऽ पात् । ऊर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य ।

इह । अभवत् । पुनदिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशने इति ।

अभि ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः) अयं त्रिपात्पुरुषः ऊर्ध्वं उदैत् = एवमात् कार्यात् संसाराद् दूरवर्ती विद्यते ऽ स्पृष्टत्वात् । (पादो ऽ स्येहाभवत् पुनः) अस्यायं पादः चतुर्थांश इह मायायां स्वकीयं वैभवं व्यतनोत् । पुनः पुनश्च सृष्टिदशायां स्वकीयमैश्वर्यं प्रख्यापयति । 'एकांशेन स्थितो जगत्' इति ख्यापनात् । (ततो विष्वङ् व्यक्रामत्) मायाप्रविष्टो ऽ यं पुरुषो विष्वङ् देव-मनुष्यतियं गारुह्येण विविधं व्याप्तवान् । कथमिव ? साशनानशने अभि—साशनानशने अभिलक्ष्य भोजनादि-व्यवहारोपेतं भोक्तृप्रपञ्चं तद्रहितं च भोग्यप्रपञ्चमुभयविविधं सम्यक् संस्थाप्य अवस्थितः ।

टिप्पणी—साशनानशने—अश + ल्युट् = अशनम्, अशनेन सहितः साशनः, अशनं च = साशनानशने ते अभिलक्ष्य साशनानशने अभि । विष्वङ्—विषु सर्वत्राञ्चतीति विषु + अञ्चु + क्विप् ।

(२) मैकडानल ने साशनानशने का अर्थ भोजन करने वाले तथा न करने वाले और पीटर्सन ने सजीव-निर्जीव जगत् किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(त्रिपादूर्ध्वं उदैत् पुरुषः) वह पुरुष इस माया-जगत् से उत्कृष्ट = बहुत दूर है । इस जगत् के संस्पर्श से रहित होने के कारण वह सदा अपने अमृतधाम में अवस्थित रहता है । (पादो ऽ स्येहाभवत् पुनः) वह अपने चतुर्थांश से ही अपनी माया-वैभव का विस्तार विविध रूप से प्रदर्शित करता रहता है । वही उत्पत्ति और प्रलय का मूल कारण है । (ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि) वही स्रोत-प्रपञ्च तथा भोग्य प्रपञ्च = चेतन और जड़ रूप से समग्र सृष्टि को विधिवत् व्यवस्थापित करके इसी में अनुप्रविष्ट हो रहा है ।

५-

तस्माद् विराडजायत विराजो अधिपुरुषः ।

स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

पद-पाठः—तस्माद् । वि ५ राट् । अजायत । वि ५ राजः । अधि । पुरुषः ।

सः । जातः । अति । अरिच्यत । पश्चात् । भूमिम् । अथो इति । पुरः ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(तस्माद् विराड् अजायत) तस्मात् पुरुषात् कारणात्मनो विराड् ब्रह्माण्डदेहोऽजायत प्रादुर्भूतः । विविधानि भूतानि राजन्तेऽत्रेति विराट् । (विराजो अधिपुरुषः) तदनन्तरं विराजमधिकृत्य तद्देहाभिमानी पुरुषः प्रकटीभूतः । (स जातो अत्यरिच्यत) ततोऽतिरिक्तो व्यभवत् देवमनुष्यतिर्यग रूपपतितः कोषांश्च सृष्ट्वा प्रविश्यामूढो मूढ इव भावयन्नास्ते । (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) अनन्तरमेषां जीवानां भावाय भूमिः सृष्टवान् पुनः जीवानां पुरः पूर्यन्तेऽत्र कामाः, पूर्यन्ते घातु-भिरिति पुरः शरीराणि सृष्टवान् ।

टिप्पणी—विराट्—विविधं राजते, राजृ + क्विप् । पुरः = पूः—पुरी—पुरः पृ + क्विप् । पूर्यन्तेऽत्र कामाः, पुरः शरीराणि ।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् विराड् अजायत) उस आदि पुरुष से विराट्-देह उत्पन्न हुआ, यही ब्रह्माण्ड अथवा यह व्यक्त संसार है (विराजो अधि पुरुषः) उस ब्रह्माण्ड रूप विराट् का आश्रय लेकर पुरुष-सृष्टि हुई । (स जातो अत्यरिच्यत) वह उत्पन्न पुरुष सृष्टि के अन्य प्रपंचों से अतिरिक्त हो गया । चेतनता के कारण वह भोक्तृरूप से सृष्टि का संचालक बना । (पश्चाद् भूमिम् अथो पुरः) इसके अनन्तर इस भोग्य प्रपंच के रूप में भूमि-जल आदि का विस्तार हुआ तथा नाना कामनाओं की पूर्ति जिससे सम्भव हो सके उन शरीरों की रचना सम्भव हुई ।

६-

यत्पुरुषेण हविषा देवा यजमतन्वत ।

वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः ॥६॥

पद-पाठः—यत् । पुरुषेण । हविषा । देवाः । यजम् । अतन्वत । वसन्तः ।

अस्य । आभीत् । आज्यम् । ग्रीष्मः । इध्मः । शरद् । हविः ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(देवा यत् पुरुषेण हविषा यज्ञम् अतन्वत) ब्राह्मद्रव्याभावात् पुनः सृष्टिसिद्ध्यर्थं मनसा हविर्भावं तु संकल्प्य पुरुषेणैव पुरुषाख्येन हविषा मानसं यज्ञम् अतन्वत—अन्वर्तितवन् । (वसन्तो अस्यासीद् आज्यम्) वसन्तमृतमेव देवा आज्यत्वेन घृतत्वेन संकल्पितवन्तः । (ग्रीष्म इध्मः) ग्रीष्मश्चेध्मस्थानीय आसीत् । तेषां (शरद् हविः) शरच्च हविर्भूता । हवी रूपेण पूर्वं पुरुष एव सामान्यरूपेण संकल्पितः, पुनश्च वसन्तादय आज्यादिविशेषरूपतया सम्पादिताः ।

टिप्पणी—यत् = यदा । अतन्वत—तनु—लङ् । प्रथमपुरुषैकवचने । आज्यम्—घृतम् । अञ्जू + ण्यत् । इध्मः—इन्ध—निपातनात् ।

(२) उव्वटः कथयति—वसन्त—ग्रीष्म—शरत् = एते ऋतवः सत्त्वरजस्तमो-
ऽभिव्यञ्जकास्तत एव सृष्टेः प्रादुर्भावात् ।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञम् अतन्वत) जब देवताओं ने सृष्टि-प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए पुरुषरूप हवि से मानस-यज्ञ का संकल्प किया । उस समय वसन्त को घृत, ग्रीष्म को समिधा तथा शरत् को हवि का रूप दिया । अर्थात् पहले सामान्य रूप से पुरुष को ही हवि का रूप दिया । इसके अनन्तर वसन्त आदि ऋतुओं को विशेषरूपता प्राप्त हुई ।

७-

तं यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।

तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पद-पाठः तम् । यज्ञम् । बर्हिषि । प्र । औक्षन् । पुरुषम् । जातम् ।

अग्रतः । तेन । देवाः । अयजन्त । साध्याः । ऋषयः । च । ये ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(तं यज्ञं बर्हिषि प्रोक्षन्) यज्ञरूपं तं पुरुषं बर्हिषि मानसे सकलरूपे यज्ञे प्रोक्षितवन्तः । (तेन देवा अयजन्त) तं जातं पुरुषम् अग्रतः कृत्वा देवास्तं मानसं यज्ञं सम्पादितवन्तः । के ते देवा आसन् ? साध्याः सृष्टिव्यवहार-हेतवः प्रजापति प्रमुखाः, ऋषयो मंत्रद्रष्टरश्च ये आसन् सर्वे ते मिलित्वाऽयजन्त ।

टिप्पणी—प्रोक्षन्—प्र + उक्ष + लङ् बहुवचने । साध्याः साध + ण्यत् ।

(२) ग्रिफिथ और पीटर्सन ने 'साध्याः' का अर्थ किया है देवों की विशेष श्रेणी, सर्वप्रथम हविष्य निरूपण करने वाले ।

हिन्दी-व्याख्या—(पुरुषं जातम् अग्रतः) इस पुरुष की सृष्टि के बारे में पहले निर्देश किया जा चुका है। उसी पुरुष को लेकर (तं यज्ञं वह्निं प्रौढन्) देवों ने संकल्परूप मानस-यज्ञ में जल-प्रोक्षण से सिद्ध किया और (तेन देवा अयजन्त) उसी पुरुष से मानस-यज्ञ का सम्पादन किया गया। कौन थे जिन्होंने इस यज्ञ का इस रूप में सम्पादन किया? (साध्याः ऋषयश्च ये) ये हमारे सृष्टि व्यवहार को कुशल नेतृत्व देने वाले साध्य श्रेणी के देवगण थे और मंत्रों के आदि द्रष्टा मनीषी ऋषि लोग थे।

८-

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभूतं पृषदाज्यम् ।

पशून् ताँश्चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये ॥८॥

पद-पाठः—तस्मात् । यज्ञात् । सर्वं हुतः । सम्भूतम् । पृषत् ।

आज्यम् । पशून् । तान् । चक्रे । वायव्यान् । आरण्यान् ग्राम्याः । च । ये ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः) तादृशात् मानस-रूपाद् यज्ञात् (संभूतं पृषदाज्यम्) सर्वहुतः पुरुषात् पृषदाज्यं दधिमिश्रितमाज्यं संभूतम् । दधि च आज्यं च यद् भोग्यजातं तत्सर्वं सम्पादितम् । (पशून् तान् चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये) तथा च वायव्यान् वायुदेवता सम्बन्धिनः पशून् उत्पादितवान् । आरण्यका हरिणादयः ग्राम्याश्च गवादयः तान् सर्वानपि चक्रे उत्पादितवान् ।

टिप्पणी—सर्वहुतः—सर्वं + हु + क्विप् । पृषदाज्यम् = पृषच्च आज्यं च पृषदाज्यम् । वायव्यान्, ग्राम्याः, यत् प्रत्ययः । आरण्यान्—ण प्रत्ययः ।

(२) वायव्य कहकर वन्यचारी तथा आकाशचारी प्राणियों का ग्रहण है। वन्य तथा ग्राम्य प्राणियों का पृथक् ग्रहण किया गया है।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः) सर्वव्यापक उस पुरुष रूप मानस-यज्ञ से (पृषद्—आज्यं संभूतम्) दधि और घृत का सम्पादन हुआ। दधि और घृत के कथन से सभी प्रकार के भोग्य-पदार्थों का सृजन हुआ, यह सूचना मिलती है। (पशून् तान् चक्रे वायव्यान् आरण्यान् ग्राम्याश्च ये) इसके साथ ही वायु-सम्बन्धी प्राणी उत्पन्न हुए और वे भी पशु उत्पन्न हुए जो कि वन में ही रहते हैं तथा गौ-अश्व आदि ग्रामीण पशुओं की भी सृष्टि हुई।

६-

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजु स्तस्माद् जायत ॥६॥

पद-पाठः—तस्मात् । यज्ञात् । सर्व ऽ हुतः । ऋचः । सामानि । जज्ञिरे ।

छन्दांसि । जज्ञिरे । तस्मात् । यजुः । तस्मात् । अजायत ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे) सर्वद्रष्टा सर्वव्यापकः पुरुषो यस्मिन् यज्ञे हुतः तस्मात् पुरुषरूपात् यज्ञादेव ऋचः सामानि च जज्ञिरे उत्पन्नानि । तस्मादेव (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्माद् अजायत) छन्दांसि गायत्र्यादीनि यज्ञाच्छन्दांसि जज्ञिरे तस्मादेव यज्ञाद् यजुरप्यजायत ।

टिप्पणी—ऋचः = ऋग्वेदः, सामानि = सामवेदः, छन्दांसि = अथर्ववेदः, यजुः = यजुर्वेदः । ऋचः = ऋच् + क्विप् । बहुवचनम् । जज्ञिरे = जनी + लिट् । अजायत = जनी + लङ् ।

हिन्दी-व्याख्या—(सर्वहुतः तस्मात् यज्ञात् ऋचः सामानि जज्ञिरे) सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापक पुरुष जिस संकल्पात्मक यज्ञ में हवन कर दिया गया, उसी से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन्न हुए । (छन्दांसि जज्ञिरे तस्मात् यजुः तस्माद् अजायत) अथर्ववेद तथा गायत्र्यादि नाना प्रकार के छन्द और यजुर्वेद भी उसी पुरुष से प्रकट हुए ।

१०-

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

पद-पाठः—तस्मात् । अश्वाः । अजायन्त । ये । के । च । उभयादतः ।

गावः । हः । जज्ञिरे । तस्मात् । तस्मात् । जाताः । अजावयः ॥१०॥

संस्कृत-व्याख्या—(तस्माद् अश्वा अजायन्तः) उसी यज्ञ रूप पुरुष से अश्व उत्पन्न हुए । (ये के चोभयादतः) ऊर्ध्वाधोभागयोर्दन्तयुक्ताः प्राणिनो ऽप्युत्पन्ताः । (गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः) तस्मादेव यज्ञरूपाद् ब्रह्मणः सकाशाद् गाव उत्पन्ताः अजाश्च अवयश्च जाताः ।

टिप्पणी—उभयादतः—उभयतो दन्ता येषां न उभयादतः । दन्तस्य दत्—
छान्दसो दीर्घश्च ।

हिन्दी-व्याख्या—(तस्माद् अश्वः अजायन्त ये के च उभयादतः) उस यज्ञरूप
पुरुष से अश्व उत्पन्न हुए । दोनों ओर दाँत वाले पशु प्रवट हुए । (गावो ह जजिरे
तस्मात्) गायें उत्पन्न हुई और (तस्माज् जाता अजावयः) बकरी, भेड़, गध्रा,
खच्चर, ऊँट आदि पशु उसी से उत्पन्न हुए ।

११- ।
यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।

मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पद-पाठः—यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् ।

मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरू । इति । पादा । उच्येते

इति ॥११॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना प्रश्नोत्तररूपेण ब्राह्मणादिमुष्टि विषये वक्तुं प्रारभ्यते—
(यत् पुरुषं व्यदधुः) प्रजा-तेः प्राणभूता देवा यदा पुरुषं संकल्पेनोत्पादयामासुः तदानीं
(कतिधा व्यकल्पयन्) कियद्भिः प्रकारैः विविधं कल्पितवन्तः ? (मुखं किमस्य कौ
बाहू का ऊरू पादा उच्येते) अस्य पुरुषस्य किम् मुखमासीत् ? बाहुरूपेण कौ
अभूताम् ? का ऊरू ? कौ च पादौ जातौ ?

टिप्पणी—प्रथमतस्तु सामान्यरूपेण प्रश्नः कृतः पुनः मुखं किमित्यादिना
विशिष्टाः प्रश्नाः कृताः ।

(२) कति + धा । प्रकारार्थे धा ।

हिन्दी-व्याख्या—(यत् पुरुषं व्यदधुः) जब देवों ने उस विराट् पुरुष को
विभक्त किया तब (कतिधा व्यकल्पयन्) कितने प्रकार से विकल्पित किया ? इस
पुरुष का मुख कौन था (मुखं किमस्य, कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते) भुजा के रूप
में कौन था ? ऊरू तथा पैर के स्थान में कौन-कौन उपयुक्त माने गये ।

१२-

ब्राह्मणो ऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

पद-पाठ—ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहू इति । राजन्यः ।

कृतः । ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत् ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत ॥१२॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुनोक्तप्रश्नानामुत्तराणि दीयन्ते—(ब्राह्मणोऽस्य मुख-
मासीत्) अस्य प्रजापतिरूपस्य पुरुषस्य ब्राह्मण एव मुखस्थानीयः । (बाहू राजन्यः
कृतः) राजन्यः क्षत्रियश्च बाहूकृतः । प्रजायतेः (ऊरू तदस्य यद्वैश्यः) ऊरूभूतो वैश्यः
सम्पन्नः । (पदभ्यां शूद्रोऽजायत) पादाभ्यां च शूद्रो जातः ।

टिप्पणी—चारों वर्णों की रचना का विकास-क्रम यहां देखने को मिलता
है । यजुर्वेद में भी इसका स्पष्ट निर्देश है । अवेस्ता में भी इसी प्रकार वर्णों का
विभाजन किया गया है ।

(२) राजन्यः—राजन् (राजश्वसुराद्यत्) यत् प्रत्ययः ।

(३) ब्रह्मन् + अण् = ब्राह्मणः ।

हिन्दी-व्याख्या—(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्) उस प्रजापति रूप ब्रह्म का
मुखस्थानीय ब्राह्मण बना । (बाहू राजन्यः कृतः) भुजा बन कर क्षत्रिय उत्पन्न
हुआ । (ऊरू तदस्य यद् वैश्यः) ऊरू के स्थान पर वैश्य तथा पदभ्यां शूद्रोऽजायत)
चरण-स्थानीय शूद्र हुआ ।

१३-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।

मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद् वायुरजायत ॥१३॥

पद-पाठ—चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत । मुखात् ।

इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥१३॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा दध्याज्यादीनि द्रव्याणि गवादयः पशवः ऋगादयो
वेदाः ब्राह्मणादयो मानवा स्तस्माद्यज्ञरूपात् पुरुषात् उत्पन्नाः, एवम् (चन्द्रमा मनसो
जातः) प्रजापते मनसः सकाशात् चन्द्रमा उत्पन्नः । (चक्षोः सूर्योऽजायत) चक्षुषः
सूर्य उत्पन्नः । अस्य प्रजापते मुखाद् इन्द्रश्च अग्निश्च देवौ प्रादुर्भूतौ (प्राणाद्
वायुरजायत) प्राणाच्च वायुरुत्पन्नः ।

टिप्पणी—पुरुषस्य मनसि या शान्तिः स चन्द्रगुणः चक्षुषि यः प्रकाशः स

सूर्यगुणः वाचि या प्रकाशनात्मिका शक्तिः सा चाग्नेः प्राणे च पायोः पक्षपातजन्यता दृश्यते ।

(२) चक्षोः—चक्षुषः इति स्थाने ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस प्रजापति से दधि-धृत आदि पदार्थ, गाय आदि पशु, ऋग् आदि वेद, ब्राह्मण आदि मानव उत्पन्न हुए उसी यज्ञ-पुरुष से (चन्द्रमा मनमो जातः) मानस शक्ति द्वारा चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । (चक्षोः सूर्योऽजायत) चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ । मुख शक्ति से इन्द्र और अग्नि उत्पन्न हुए और प्राण-शक्ति से वायु उत्पन्न हुआ ।

१४-

मंत्र—नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमि दिशः श्रोत्रात्तथा लोकां अकल्पयन् ॥१४॥

पद-पाठः—नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् ।

अवर्तत । पत् ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् अकल्प-
यन् ॥१४॥

संस्कृत-व्याख्या—यथा यज्ञ पुरुषस्य मनः प्रभृतिभ्यः चन्द्रादीन् अकल्पयंस्तथा (नाभ्या आसीद् अन्तरिक्षम्) प्रजापतेः नाभेः अन्तरिक्षं जातम्, शीर्ष्णः शिरसः सकाशात् शिरःस्थानीया द्योर्उत्पन्ना । (पद्भ्यां भूमिः दिशः श्रोत्रात्) पादाभ्यां भूमिरुत्पन्ना श्रोत्राच्चास्य दिश उत्पन्नाः । एवम् अस्य पुरुषस्य सामर्थ्यात् लोका उत्पन्नाः ।

टिप्पणी—नाभ्याः—नाभि शब्दात्पंचमी । शीर्ष्णः—शिरसः शीर्षन् आदेशः ।

हिन्दी-व्याख्या—(नाभ्या आसीदन्तरिक्षम्) उस यज्ञ पुरुष की नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से द्युलोक, चरण से भूमि और श्रोत्र से दिशाओं उत्पन्न हुई । इसी प्रकार लोकों की भी रचना हुई ।

१५-

मंत्र—सप्तास्यासन् परिधय स्त्रिः सप्त समिधः कृता ।

देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबधन्त् पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पद-पाठः—सप्त । अस्य । आसन् । परि ऽ धयः । त्रिः । सप्त । सम् ऽ

इधः । कृताः । देवाः । यत् । यज्ञम् । तन्वानाः । अवधन् । पुरुषम् । पशुम् ॥१५॥

संस्कृत-व्याख्या—(सप्तास्य आसन् परिधयः) अस्य यज्ञपुरुषस्य गायत्र्या-
दीनि सप्तच्छन्दांसि परिधय आसन् । सप्त परिधयोऽत्र सप्तच्छन्दोरूपाः । तथा
समिधः त्रिः सप्त त्रिगुणिताः सप्त-संख्याका एकविंशतिः कृताः । द्वादश मासाः,
षडृतवः त्रयो लोका इत्येकविंशतिः । (यद् यज्ञं तन्वाना देवाः पुरुषं पशुम् अवधन्)
देवाः प्रजापतिप्राणेन्द्रियरूपा यज्ञं तन्वानाः तं मानसं यज्ञं कुर्वाणाः विराट् पुरुषमेव
पशुत्वेन कल्पितवन्तः ।

टिप्पणी—परिधि—परि + धा + किः । परिधयः । समिधः सम्-इन्ध-विवप् ।
बहुवचने । तन्वानाः—तनु + उ + शानच् । बहुवचने ।

हिन्दी व्याख्या—इस प्रकार सर्वद्रष्टा पुरुष को देवों ने अपने विचार-बन्धन में
सम्पादन किया । (सप्तास्यासन् परिधयः) गायत्री आदि सात छन्द ही इस यज्ञ-
पुरुष के परिधि बने और (त्रिः सप्त समिधः कृताः) द्वादश—मास, षट् ऋतु, तीन
लोक=मिलकर इक्कीस समिधायें इस यज्ञ की बनीं (=सायण ने १२मास +
५ ऋतु + ३ लोक और १ सूर्य को गिनकर २१ भेद बताये हैं) देवों ने (प्रजापति—
प्राण तथा इन्द्रिय) इस प्रकार यज्ञ का विस्तार करते हुए विराट् पुरुष को ही पशु
रूप में भावित किया ।

१६-

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा-

स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त

यत्र पूव साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

पद-पाठः—यज्ञेन । यज्ञम् । अयजन्त । देवाः । तानि । धर्माणि । प्रथमानि ।

आ॒सन् । ते । ह । ना॒कम् । म॒हि॒मा॒नः । स॒च॒न्त । यत्र । पूर्वे । सा॒ध्याः स॒न्ति ।
दे॒वा ॥१६॥

संस्कृत-व्याख्या—(यज्ञेन देवा यज्ञम् अयजन्त) ते देवाः मानससंकल्पेन यज्ञं तं पूजनीयं प्रजापति यथोक्तम् अयजन्त, पूजितवन्तः । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) तस्मात् तानि प्रसिद्धानि धर्माणि धारकाणि जगद्रूपविकाराणां पोषकाणि तत्त्वानि प्रथमानि मुख्यानि आसन् । एतान्येव सृष्टिप्रतिपादनपराणि मुख्यानि सूक्तानि अधुना उपासना तत्फलानुवादश्च संगृह्यते । (यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः) यत्र विराट् प्राप्तिरूपे दुःखाभाव—जनके जाके पूर्वे साध्याः विराडुपासनतत्पराः साधकाः देवाः सन्ति ते देवाः (महिमानः सचन्त) विराट् प्राप्तिरूपं ते समासाद्य महिमानस्तदुपासका महात्मानः स्वर्गं सचन्ते प्राप्नुवन्ति ।

टिप्पणी—धृ—मनिन् । प्रथमा बहुवचन । नाकम्—कर्मिणि सुखनाम, तत्प्रतिषेधः, अकम्, न अकम् नाकम् । महिमानः—महद् + इम निच् । प्रथमा—बहुवचन । सचन्त—पच + लङ्, अङभावः । साध्याः, साध + ण्यत् ।

(२) विराट् का अर्थ मैकडानल ने यज्ञ-शक्ति किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(यज्ञेन देवा यज्ञम् अयजन्त) उन देवों ने यज्ञ रूप उस प्रजापति की पूजा की । (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) जगत् रूप विकारों के धारक वे तत्त्व ही मुख्य थे । यह सृष्टि-प्रतिपादन के विषय में कहा गया । अब उसके फल के रूप में (उपासना और उपासना के फल को दिखाते हैं) जहाँ पर दुःख की अत्यन्ताभाव रूपी दशा में उपासना तत्पर साध्य लोग अपनी महिमा का सम्पादन करते हुए ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं ।

१०-१२१

हिरण्यगर्भ-सूक्तम्

ऋषि—हिरण्यगर्भः । देवता—कः, प्रजापतिः । छन्दः—त्रिष्टुप् ।

१-

हिर॒ण्यग॒र्भः स॒मव॑र्तता॒ग्ने

भू॒तस्य॑ जा॒तः प॒तिरे॑क आसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पद-पाठः—हिरण्य ऽ गर्भः । सम् । अवर्तत । अग्रे । भूतस्य । जातः । पतिः ।

एकः । आसीत् । सः । दाधार । पृथिवीम् । द्याम् । उत । इमाम् । कस्मै । देवाय ।

हविषा । विधेम ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—(हिरण्यगर्भः समवर्तत अग्रे) हिरण्याभि हिरण्यवद्वर्तमानानि सूर्यचन्द्रग्रहनक्षत्रादीनि गर्भे विद्यमानानि यस्यासौ सूत्रात्मा परमात्मा हिरण्यगर्भः । स एवाग्रे समजायत मायाध्यक्षत्वेनात्मनः प्रकटयामास । (भूतस्य जातः पतिरेक-आसीत्) स एव जातमात्रः सन्नेको ऽ द्वितीयः पतिरासीत् । (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्) स एव इमां पृथिवीं दिवं च धारयति (कस्मै देवाय हविषा विधेम) तं देवं प्रजापतिं वयं हविषा विधेम परिचरेम ।

टिप्पणी—कस्मै = कम् (क्रिया ग्रहणं कर्तव्यम् कर्मणः सम्प्रदानत्वाच्चतुर्थी कः = प्रजापतिः, सुखस्वरूपः, अनिर्जातरूपः प्रजापतिः, कस्मै देवाय = कं देवमभिलक्ष्य ।

(२) पीटर्सन ने हिरण्यगर्भ का अर्थ 'स्वर्ण-बीज' किया है ।

हिन्दी व्याख्या—(हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे) सृष्टि के आदि में परमात्मा ने (हिरण्यगर्भ) रूप में सर्वप्रथम अपने को अभिव्यक्त किया । अंधकारावृत्त लोक में ग्रह-नक्षत्र, सूर्य-चन्द्र, स्वर्ण आदि रमणीय-वमनीय पदार्थों में सर्व-प्रथम चमक-दमक जानी गयी । (भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्) वही एकमात्र जगत् का आदि नियन्ता था । (स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्) वही पृथिवी और द्यौलोक को निरन्तर धारण कर रहा है । (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उसी सुखस्वरूप देव की हम नित्य ही परिचर्या करें ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व

उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य॑ च्छाया॑मृतं॒ यस्य॑ मृत्युः॒

कस्मै॑ देवाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥२॥

पद-पाठः—यः । आत्म S दा । बल S दा । यस्य । विश्वे । उप S आसते ।

प्र S शिषम् । यस्य । देवाः । यस्य । छाया । अमृतम् । यस्य । मृत्युः । कस्मै ।

देवाय । ह॒विषा॑ विधेम ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(य आत्मदा) यः प्रजापतिः आत्मनां शोधयिताऽस्ति । (बलदा) = बलस्य दाता शोधयिता वा । (यस्य विश्वे उपासते प्रशिषम्) यस्य प्रशिषं प्रकृष्टं शासनमाज्ञां विश्वे सर्वे प्राणिन उपासते प्रार्थयन्ते । (यस्य देवाः) देवाः खल्वपि यस्याज्ञां सेवन्ते । (यस्यच्छायामृतम्) यस्यामृतं सुधा छायेव वशवर्ति विद्यते (यस्य मृत्युः) मृत्युश्च यस्यच्छायेव विद्यते तस्मै कस्मै देवाय हविषा परिचरेम ।

टिप्पणी—प्रशिषम्—प्र + शास् + क्विप् । 'शास इदङ् हलोः' इतीत्वं, 'शासिर्वसिधसीनां च' इति षत्वम् ।

आत्मदा—बलदा = दैप् शोधने—क्विप् ।

अमृतम् = सुधा, मोक्षः, नास्ति मृतं मरणम् = अमृतम् ।

(२) आत्मदा-बलदा का अर्थ सायण ने आत्मा अथवा बल को देने वाला अथवा शोधन करने वाला किया है । उक्वट और महीधर ने भुक्ति-मुक्ति का प्रदाता माना है 'यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः' का अर्थ दयानन्द, उक्वट और महीधर ने किया है—'जिसकी कृपा अमृतरूप मोक्ष का कारण है तथा जिसकी अकृपा ही मृत्युरूप आवागमन का कारण है ।'

(३) पीटर्सन ने 'आत्मदा' का अर्थ 'प्राणदाता' तथा उक्वट और महीधर ने 'आयुष्य प्रदान करने वाला' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—जो परमात्मा (आत्मदा बलदा) प्रत्येक प्राणी में जीवन का संचार करके शुद्धि देता है, जो सबमें बलाघायक है । (यस्य प्रशिषं विश्वे उपासते यस्य देवाः) जिसकी आज्ञा के पालन और सम्पादन में सभी प्राणी लगे रहते हैं जिसकी देवगण भी सेवा में लगे लगते हैं । (यस्य च्छायामृतम्, यस्य मृत्युः) अमृतरूप आनन्द छाया के समान जिसके वशवर्ती हैं और मृत्यु भी जिसकी छाया के समान है, उस आनन्दप्रद प्रभु की हम परिचर्या सदा करते रहें ।

३-

यः प्राणतो निमिषतो महित्वक—

इद्राजा जगतो बभूव ।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पद-पाठः—यः । प्राणतः । नि ऽ मिषतः । महि ऽ त्वा । एकः । इत् ।

राजा । जगतः । बभूव । यः । ईशे । अस्य । द्वि ऽ पदः । चतुः ऽ पदः । वस्मै ।

देवाय । हविषा विधेम ॥ ॥

संस्कृत-व्याख्या—यः परमात्मा (प्राणतः निमिषतः जगतः महित्वा एक इत् राजा बभूव) समग्रस्य प्राणिजातस्य स्वकीयेन महत्वेन एक एव राजा महेश्वरो ऽ स्ति । (अस्य द्विपदः चतुष्पदः य ईशे) यश्च पादद्वय युक्तस्य मनुष्यादेः पादचतुष्टयो-पेतस्य च गावादेश्च यः परमात्मा शासको ऽ स्ति । तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा परिचरेम ।

टिप्पणी—प्राणतः का अर्थ श्वास—प्रश्वास लेने वाले अर्थात् चेतन और निमिषतः का अर्थ सोने वाले अर्थात् अन्तः संज्ञा वाले अचेतन वृक्षादि; पीटर्सन भी कहते हैं—जो सक्रिय हैं अर्थात् जो सांस लेते हैं, जो निद्रिय हैं अर्थात् सोते हैं ।

(२) प्राणतः, निमिषतः—शतृ प्रत्ययः ।

(३) महित्वा—महत्त्व । तृतीया छान्दसः प्रयोगः । द्विपदः चतुष्पदः द्वौ पादौ यस्य = द्विपात्, षष्ठ्येकवचने । तथा चतुष्पदः । चत्वारः पादा यस्य । ईशे—ईश्टे—तकार लोपश्छान्दसः ।

हिन्दी-व्याख्या—(यः प्राणतो निमिषतो महित्वा एक इद्राजा जगतो बभूव) जो श्वास लेने अथवा न लेने वाले (=केवल सोने वाले) प्राणियों (जड़-चेतन प्राणियों) का एक मात्र व्यवस्थापक राजा है और अपनी ही महिमा से सब पर छाया हुआ है (य ईशे अस्य द्विपदः चतुष्पदः) जो दो पैर वालों तथा चार पैर वालों

(समस्त मनुष्य-पक्षी-पशु आदि प्राणियों) का एक मात्र ईश्वर है, उसी मुख स्वरूप देव की हम सब स्तुति—उपासना आदि करें—करते रहें ।

४-

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा

यस्य समुद्रं रसयो सहाहुः ।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू—

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पद-पाठ—यस्य । इमे । हिम ऽ वन्तः । महित्वा । यस्य । समुद्रम् ।

रसया । सह । आहुः । यस्य । इमाः । प्र ऽ दिशः । यस्य । बाहू इति । कस्मै ।

देवाय । हविषा । विधेम ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—(यस्य इमे हिमवन्तः महित्वा यस्य समुद्रं रसया सह आहुः) हिमसम्बन्धित एते महान्तः प्रलयाद्रयः यस्य महत्त्वमैश्वर्यं माहात्म्यमाहुः प्रथयन्ति । (रसया सह यस्य समुद्रम् आहुः) रसाभिर्नदीभिः सह सर्वान् समुद्रान् यस्य माहात्म्यम् आहुः । (यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू) यस्य इमा दिशः प्रदिश बाहवः सन्ति । तस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा विधेम परिचरेम ।

टिप्पणी—हिम + मतुप्—बहुवचने—हिमवन्तः । रसया = रसो जलम् अस्या अस्तीति रसा नदी (मत्तुवर्थेऽच्) जातावेकवचनम् । समुद्रम् इत्यत्रापि जातावेकवचनम् । 'बाहू' द्विवचन प्रयोगो बहुवचनार्थे ।

(२) 'रसा' एक नदी का नाम है, ऐसा पीटर्सन कहते हैं । हिमवन्तः का अर्थ उन्होंने 'हिमयुक्त पर्वत' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(हिमवन्तः यस्य इमे महित्वा आहुः यस्य च समुद्रं रसया सह आहुः) बड़े-बड़े हिमवान् पर्वत जिसके महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं और बड़ी-बड़ी नदियों के साथ ये महान महासागर जिसके मौभाग्य के प्रतीक हैं । (यस्य इमाः प्रदिशो यस्य बाहू) विशाल व्यापक दिशाएँ जिसकी भुजा बन कर कीर्ति का ख्यापन कर रही हैं । हम सब उसी आनन्दमात्र कमनीय प्रजापति को स्तुतियों द्वारा हवि प्रदान करें ।

५-

येन द्यौरग्रा पृथिवी च दृढा

येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

पद-पाठ—येन । द्यौः । उग्रा । पृथिवी । च । दृढा । येन । स्वः । रिति स्वः ।

स्तभितम् । येन । नाकः । यः । अन्तरिक्षे । रजसः । विमानः । कस्मै । देवाय ।

हविषा । विधेम ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) येन सर्वशक्तिमता परमात्मना इयमुग्रा द्यौः स्थिरीकृता पृथिवी च गृह्णेत्यं स्वतेजोभिः स्थापिता (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) स्वर्गश्च येन दृढीकृतः सूर्यश्च येनोपरि स्थापितः । (यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः) यो अन्तरिक्षे लोके रजसः उदकस्य निर्माता विद्यते तस्मै कस्मै सुखस्वरूपाय देवाय हविषा तृप्तिं सम्पादयेम ।

टिप्पणी—उग्रा—उद + गुरी उद्यमने, क प्रत्ययः । टाप् । स्तभितम्—स्तब्धम् । निपातनात् । विद्यमानः=विविध मानं निर्माणं यस्यासी विमानः । वि + मा + ल्युट् ।

(२) सायणः उग्रेति पृथिव्या विशेषणं मनुते, उद्वटमहीधरो वृष्टिदात्री द्यौरिति । पीटर्शनः उग्रा=महती इति अर्थं करोति । स्वः इत्यस्य सायणः स्वर्गः, महीधर आदित्यः, पीटर्शनः विस्तृत आकाश इति अर्थं मन्वते । नाकः इत्यस्य सायणः आदित्य इति महीधरः स्वर्गो लोक इति अर्थं कुर्वति ।

हिन्दी-व्याख्या—(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) सर्वशक्तिमान् जिस परमात्मा ने विशाल द्यौः लोक का निर्माण किया है और पृथ्वी लोक को अपने नियम में दृढ़ किया है । जिसने स्वर्ग लोक का सृजन किया है । अन्तरिक्ष लोक में जो उदक-संघात का निर्माता है, उसी मुख स्वरूप दिव देन की हम सदा पूजा-उपासना आदि किया करें ।

यं क्रन्दसी अवसा तस्तमाने

अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।

यत्राधि सूर उदितो विभाति

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पद-पाठ—यम् । क्रन्दसी इति । अवसा । तस्तमाने इति । अभि ।

ऐक्षेताम् । मनसा । रेजमाने इति । यत्र । अधि । सूरः । उत् ५ इतः । वि ५ भाति ।

कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ।

संस्कृत व्याख्या—(तस्तमाने क्रन्दसी अवसा यम् अभ्यैक्षेताम् मनसा रेजमाने) राजमाने दीप्यमाने यावापृथिव्यौ क्रन्दन शीले अवसा रक्षणेन यम् निरन्तरं पश्यत इव दृश्येते । (यत्राधि सूर उदितः विभाति) आधारभूते च यस्मिन् प्राजापती उदयं प्राप्तोऽयं सूरः सूर्यं विभाति राजते, तस्मै परमात्मने हविषा विधेम ।

टिप्पणी—क्रन्दसी—क्रन्दतेः अमुन् स्थियां द्विवचने । तस्तमाने—स्तम्भ + कानच् + टापि, प्रथमा द्विवचने । रेजमाने—राज् + शानच् । उपधा—एकारः ।

(२) 'अवसा' इत्यस्य रक्षणेन सायणः, हविषाऽन्तेन च उव्वटमहीधरो कुरुतोऽर्थम् । रेजमाने इत्यस्यार्थं सायणः करोति (दीप्यमाने) महीधरश्च 'शोभमाने' उव्वटश्च 'कम्पनशीले' ।

हिन्दी-व्याख्या—जिस परमात्मा को यह क्रन्दनशील पृथिवी और आकाश देखते रहते—से प्रतीत होते हैं । जो परमात्मा के नियम में स्थिर-से हैं और सदा शोभायमान (= सुहावने से) लगते हैं । जिस परमात्मा के स्वामित्व में यह उदित होता हुआ सूर्य जगमगा रहा है । उसी सुख प्रदाता परमेश्वर के लिये हम सेवा किया करें ।

७-

आपो ह यद् बृहती विश्वमायन्

गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।

ततो देवानां समवर्ततासुरेकः

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पद-पाठ—आपः । ह । यत् । बृहतीः । विश्वम् । आयन् । गर्भम्

दधानाः । जनयन्तीः । अग्निम् । ततः । देवानाम् । सम् । अवर्तत । असुः । एकः ।

कस्मै । देवाय । हविषा । विधेम ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—(आपः ह यद् बृहतीः विश्वम् आयन् गर्भं दधाना जनयन्तीः अग्निम् । आप एव बृहत्यः महत्यः अग्निं जनयन्तीः (आकाश-वायु-अग्निप्रभृतीन् उत्पादयन्त्यः गर्भं दधानाः गर्भभूतं प्रजापतिं दधाना धारयन्त्यः प्रथमतएव महति ब्रह्माण्डे सर्वं जगद् व्याप्नुवन् । (ततो देवानाम् असुः एकः समवर्तत) आप एव विश्वमायन् विश्वात्मनावस्थिताः, अनन्तरं प्रजापतेः सकाशाद् देवानां प्राणभूतों वायुः समवर्तत अजायत । अथवा तत् एव अद्भ्यः असुः प्राणात्मकः प्रजापतिं निष्क्रान्तः ।

टिप्पणी—गर्भं का अर्थ पीटसंन ने बीज किया है । बृहतीः बृहत्यः के स्थान पर वैदिक प्रयोग । आयन्-इण्गती-प्रथमपुरुष लङ्, बहुवचन ।

हिन्दी-व्याख्या—विश्व में जलीय-शक्तियाँ (आपः) ही अपने बृहत् रूप में व्याप्त हो गयीं । (गर्भं दधाना जनयन्तीः अग्निम्) अग्नि आदि पाँचों भूतों को अभिव्यक्त करती हुई और अपने अन्तराल में गर्भ रूप प्रजापति का इन जलीय-तत्वों ने ही प्रथम अनावरण किया । (ततो असुः एकः) उन जलीय-शक्तियों से ही देवों ने प्राणात्मक वायु का स्पन्दन किया । उस दिव्य विधान धारण करने वाले विश्वात्मा प्रजापति के लिए हवि का श्रुद्धापूर्वक हम सम्पादन करें ।

८-

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्—

दक्षं दधाना जनयन्ती यज्ञम् ।

यो देवेष्वधि देव एक आसीत्

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पद-पाठः—यः । चित् । आयः । महिना । परि ऽ अपश्यत् । दक्षम् ।

दधानाः । जनयन्तीः । यज्ञम् । यः । देवेषु । अधि । देवः । एकः । आसीत् ।

कस्मै । देवाय हविषा विधेम ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(यज्ञं जनयन्तीः) समस्त जगद् व्यापार रूप विकार की सृष्टि करती हुई (दक्षं दधानाः) प्रपंचात्मा वर्धिष्णुं दक्षं प्रजापति धारणशीलाः अपः यः महिना स्वकीयेन माहात्म्येन स्वयमेव पर्यपश्यत् परितो दृष्टवान् । यश्च देवेष्वपि ईवश्रत्वेनाधिष्ठाता सन् एक एवाद्वितीय आसीत् विद्यते तस्मै सुखात्मने परमात्मेन वयं हविषा विधेम ॥

टिप्पणी—महिना-महिम्ना । आपः=अपः व्यत्ययेन प्रयोगः । द्वितीया बहुवचनमिष्टं पर्यपश्यत्=अपः दृष्टवान् । आसीत् इति भूतकालः छान्दसः प्रयोगः अस्ति, आसीत्, भविष्यति ।

(२) निहारिका रूपाणि जलान्येवात्र कारणत्वेनोक्तानि । यथा च ऋग्वेदे १०-१२६-३ इत्यत्र (सजिलं सर्वमा इदम्) यत्र तत्र सर्वत्र समुद्र एवासीत् प्रकाश-रहितः 'तम् आसीत्' ।

(३) दक्ष का अर्थ सायण ने 'प्रपंचात्मक वर्धिष्णु प्रजापति' महीधर ने 'कुशल प्रजापति, पीटर्सन ने 'उत्साह-शक्ति' किया है । यज्ञ का अर्थ सायण ने 'यज्ञ रूप विकार-प्रपंच' महीधर ने 'सृष्टि-यज्ञ' पीटर्सन ने 'यज्ञ' ही किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—'दक्षं दधाना जनयन्तीः यज्ञम् । प्रजापति रूप दक्षता को धारण करने वाली तथा विश्वप्रपंच को प्रकट करने वाली जिन (आपः महिना परि अपश्यत्) जल शक्तियों को अपनी ही महिमा से प्रथम जिस परमात्मा ने साक्षात्

देखा (यो देवेषु अधि देव एक आसीत्) जो समग्र देवों में एक अद्भुत अधिष्ठाता है। उसी आनन्दमय परमात्मा की हम सदा भक्ति-उपासना आदि किया करें।

६-

मा नो हि॑सी ज्ज॒निता यः पृ॒थि॒व्या—

यो वा दि॒वं स॒त्य॒ध॒र्मा ज॒जान॑ ।

यश्चाप॑श्चन्द्रा बृ॒हती ज॒जान॑—

कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ वि॒धेम ॥६॥

पद-पाठः—मा । नः । हि॒सीत् । ज॒निता । यः । पृ॒थि॒व्याः । यः ।

वा । दि॒वम् । स॒त्य॒ध॒र्मा । ज॒नान॑ । यः । च । अपः । चन्द्राः । बृ॒हतीः । ज॒जान॑ ।

कस्मै॑ । दे॒वाय॑ । ह॒विषा॑ वि॒धेम ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—(मा नः हि॒सीत् ज॒निता यः पृ॒थि॒व्याः) । यः परमात्मा पृथिव्या जनिता जनयिता उत्पादकोऽस्ति स नोऽस्मान् मा हि॒सीत् न कदापि बाधताम् । (यः सत्य धर्मा दि॒वं ज॒जान॑) यः सत्य धर्मा समस्तस्य जगत् आधारत्वेन धारकः यो वा समस्तम् आकाशं वायुम् अग्निं जलं चोत्पादयामास । (यः बृ॒हतीः चन्द्राः अपः ज॒जान॑) यश्च आह्लादनस्वभावा बृ॒हतीः अपः जनयामास । तस्मै परमेश्वराय वयं हविषा विधेम ।

टिप्पणी—मा हि॒सीत्—(न माङ् योगे) इत्यद्रभावः । ज॒निता—जनयिता । 'जनिता मन्त्रे' इति निपातनात् । चन्द्राः—चदि—अचि नुमागमः ।

सत्यधर्मा—सत्यं धर्मो यस्य । धर्मः जगतो धारणरूपं कर्म यस्य ।

(२) पीटर्सन ने सत्यधर्मा का अर्थ 'विश्वसनीय' किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(मानो हि॒सीत् ज॒निता यः पृ॒थि॒व्याः) पृथ्वी का जनक हमें विध्वंस न करे । (यो वा दि॒वं स॒त्य॒ध॒र्मा ज॒जान॑) जिस परमात्मा ने आकाश-वायु-अग्नि-जल आदि चमत्कार पूर्ण भूत प्रपञ्च की रचना की है वह परमेश्वर हमें अवाधित सुख देता रहे । (यश्चापः चन्द्राः बृ॒हती ज॒जान॑) जिस प्रजापति की कृपा से आनन्ददायक जलीय-तत्व की सृष्टि हुई है, उसी प्रभु की लीलाओं का गुण-गान करते हुये सेवा किया करें ।

१०-

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो

विश्वा जातानि परि ता बभूव ।

यत्कामास्ते जुहुम स्तन्नो अस्तु

वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

पद-पाठ—प्रजापते । न । त्वत् । एतानि । अन्यः । विश्वा । जातानि ।

परि । ता । बभूव । यत् । कामाः । ते । जुहुमः । तत् । नः । अस्तु । वयम् ।

स्याम । पतयः । रयीणाम् ॥१०॥

संस्कृत व्याख्या—(प्रजापते न त्वद् एतानि अन्यः विश्वानि जातानि परि बभूव) त्वां विहाय हे जगदात्मन् ! नास्ति कस्याप्यपरस्य शक्ति र्यः इमानि सर्वाणि चराचररूपेणावस्थितानि समग्र-विकारभाजि भूतजातानि परि भवति परितो व्याप्य स्थितो भवति । त्वमेव खल्वेतादृशः । त्वमेव विधाता विधर्ता च । (वयं यत्कामाः यत्-यत् कामयमाना वयं ते तुभ्यं जुहुमः हवीषि प्रयच्छामः । (तत् नोऽस्तु) स स कामः अस्माकं सफलो भवतु शुभपरिणामः । तथा (वयं स्याम पतयः रयीणाम्) वयमभ्युदय निःश्रेयस-धनानामधिपतयो भूयास्म ।

टिप्पणी—विश्वा = विश्वानि । ता = तानि । 'शेषेच्छन्दसि बहुलम्बी ।

(२) जुहुमः का अर्थ भारतीय व्याख्याकारों ने हवि प्रदान करते हैं, पीटमंन ने 'पुकारते हैं' अर्थ किया है ।

हिन्दी व्याख्या—हे प्रजाओं के स्वामिन् ! (विश्वा जातानि एतानि न त्वद् अन्यः परिवभूव) अन्य किसी में ऐसा सामर्थ्य नहीं है जो कि इस समस्त भवनों के की रचना प्रपंच में अधिव्याप्त हो सके । आप ही अपनी लीला-सामर्थ्य से सहज स्वभाव से ही इन समस्त भुवनों को धारण करके प्रकाशित कर रहे हैं । (यत् कामास्ते जुहुमः) जिस-जिस संकल्प को हृदय में रखकर हम आपकी स्तुति-पूजा-उपासना हवि-सम्प्रदान आदि करते हैं (तद् नोऽस्तु) वह-वह हमारी कामनयें आपकी असीम कृपा से परिपूर्ण हों । (वयं स्याम पतयो रयीणाम्) हम सब इस संसार में अभ्युदय प्राप्त करें और आध्यात्मिक शान्ति भी हम परमानन्द के साथ प्राप्त हो ।

वाक्-सूक्तम्

अस्य सूक्तस्य देवता परमात्मा । ऋषिर्वाक् (अम्मृणस्यापत्यं स्त्री) छन्दः-
त्रिष्टुप्, द्वितीये तु जगती ।

१-

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि—

अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।

अहं मित्रावरुणोभो बिभर्मि—

अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

पद-पाठः—अहम् । रुद्रेभिः । वसुभिः । चरामि । अहम् । आदित्यैः । उत ।

विश्वदेवैः । अहम् । मित्रावरुणा । उभा । बिभर्मि । अहम् । इन्द्राग्नी इति । अहम् ।

अश्विना । उभा ॥१॥

संस्कृत व्याख्या—जगत्त्वकारणं ब्रह्म, तद्रूपा वाक् सा चैवंभूता रुद्रेरेका-
दशभिः अहं तदात्मना चरामि, विचरामि । एवं चाहं वसुभिरपि तदात्मना चरामि ।
अथ च मित्रं च वरुणं च ब्रह्मीभूताऽहमेव बिभर्मि, धारयामि । अहमेव च इन्द्रम् अग्निं
च धारयामि । उभौ चाश्विनावपि अहमेव धारयामि । मयि हि सर्वं जगत् ओतं
प्रोतं च । वागेव जगदाकारेण विपरिणमते । एतादृश्यां वाचि चाधारत्वेन स्थितायां
सर्वस्य जगत् उत्पत्तिः ।

व्याकरणम्—रुद्रै इत्यस्य स्थाने रुद्रेभिः । मित्रावरुणा, उभा, अश्विना
इत्यत्र लोके भाषायां मित्रावरुणी, उभौ, अश्विनौ इति प्रयोगः ।

हिन्दी व्याख्या—अम्मृण ऋषि की पुत्री वाक् ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव
करती हुई कहती है (अहं रुद्रेभिर्वसुभिः चरामि) मैं ही रुद्रों, वसुओं के साथ विच-

रण करती हूँ। (एकादश रुद्र, आठ वसु, द्वादश आदित्य और युगलमूर्ति अश्विनो कहे जाते हैं) (अहम् आदित्यः उत विश्वदेवैः) मैं ही आदित्यों और विश्वदेवों के रूप में विचरण करती हूँ। (अहं मित्रा वरुणोभा विभर्मि) मित्र और वरुण देवताओं को मैं ही धारण करती हूँ। (अहम् इन्द्राग्नी अहम् अश्विनोभा) मैं ही इन्द्र और अग्नि को तथा अश्वि देवताओं को भी मैं ही धारण करती हूँ।

२-

अहं सोममाह्नसं विभर्मि--

अहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम् ।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते

सुप्राव्येउ यजमानाय सुन्वते ॥२॥

पद-पाठः—अहम् । सोमम् । आह्नसम् । विभर्मि । अहम् । त्वष्टारम् ।

उत । पूषणम् । भगम् । अहम् । दधामि द्रविणम् । हविष्मते । सु प्र । आव्ये ।

यजमानाय सुन्वते ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—(आह्नसं सोमम् अहम् विभर्मि) आहन्तव्यम् अभिपोतव्यं सोमम् आह्नतारं वा शत्रूणां आत्मानं द्योतनात्मके दिवि वर्तमानम् अहमेव विभर्मि धारयामि । त्वष्टारं पूषणं भगं चाहमेव विभर्मि । (अहं दधामि द्रविणं हविष्मते) अहं हविष्मते हविर्भि र्युक्ताय (सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते) सोमाभिषवं कुर्वते शोभनं हविः प्रापयित्रे तर्पयित्रे यजमानाय भागफलरूपं द्रविणं धनम् अहमेव दधामि धारयामि ब्रह्मैव सर्वथाऽत्र फलदातृत्वेन समर्थितम् ।

हिन्दी-व्याख्या—आह्नन करके अभिषव करने योग्य सोम-रस को अथवा आह्नन करने वाले सोम देवता को मैं ही धारण करती हूँ । व्याप्त होने वाले त्वष्टा देवता को, पोषण करने वाले सूर्य देवता को तथा भजनीय ऐश्वर्य के देवता को भी मैं ही धारण करती हूँ । (सु प्राव्ये यजमानाय हविष्मते) देवताओं को तृप्त प्रसन्न करने वाले एवं सुन्दर हवि पहुँचाने वाले यजमान के लिये फलस्वरूप मैं ही धनवैभव की रक्षा एवं वृद्धि करती हूँ ।

व्याकरणम्—आहनसम्—आहन्तव्यम् । आङ् पूर्वक हन् धातोरमुन् ।
द्वितीयायाम् । त्वष्टारम्—तृच्, द्वितीया । हविष्मते—हविष्—मतुपि, चतुर्थी ।
सुप्राव्ये—सुप्रपूर्वकस्य अवधातोः ई प्रत्ययः । चतुर्थी ।

सुप्राव्ये का अर्थ पीटर्सन ने 'धार्मिक', राथ ने सतर्क एवं उत्साही किया है ।

३-

अह॑ रा॒ष्ट्री॑ सं॒गम॑नी वसू॑नां

चि॒कितु॑षी प्रथ॒मा य॒ज्ञिया॑नाम् ।

तां मा॑ दे॒वा व्य॑दधु पुरु॒त्रा—

भूरि॑स्थात्रां भूय॒विशय॑न्तीम् ॥३॥

पद-पाठः—अहम् । रा॒ष्ट्री । सम् ऽ गम॑नी । वसू॑नाम् । चि॒कितु॑षी । प्रथ॒मा ।

य॒ज्ञिया॑नाम् । ताम् । मा॑ । दे॒वाः । वि॑ । अ॒दधुः । पुरु॑ ऽ वा । भूरि॑ ऽ स्थात्रा॑म् ।

भूरि॑ । आ ऽ वे॒शय॑न्तीम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—अहं सर्वस्य संसारस्य रा॒ष्ट्री रा॒ष्ट्राभि॑मानिनी देवता ।
तथा वसू॑नां निवासहेतूनां धनानां भक्तानां वा संगमनी गमयित्री प्राययित्री । चि॒कितु॑षी
चेतनाविषयं यत् परं ब्रह्मचैतन्यं तद्विषयकज्ञानवती साक्षात्कारिणी । अत एव ये
यज्ञार्हा देवा स्तेषु प्रथमा उत्तमा । तामेवं विधां मां भूरि॑स्थात्रां बहुधाप्रकारेण
प्रपञ्चात्मनाऽवस्थितां भूरि॑ भूरीणि बहूनि भूतजातानि जीवभावेन आत्मानं प्रवेशयन्तीं
मामीदृशी पुरु॒त्रा बहुषु॑ स्थानेषु देवा व्यदधुः । विदधति परिचरन्ति । विश्वरूपता-
मास्थाय विराजमानत्वात् । यत् किमपि ते कुर्वन्ति तत्सर्वं कृत्वा मामेव परिचरन्ति ।

व्याकरण—रा॒ष्ट्री मतुबर्थे इति । म्त्री लिंगम् । संगम॑नी—संपूर्वागमे—ल्युट् ।
डीप् । चि॒कितु॑षी—कित—निवासे क्वसु, डीप् । य॒ज्ञिया॑नाम्—यज्ञमर्हन्ति, घ । इय् ।
पुरु॒त्रा—त्रल्—टाप् । भूरि॑स्थात्रा॑म्—स्था—तृच्—टाप् । लोके दीप्—भूरि॑स्थात्री ।
राथ, लुड विग, ग्रासमान ने चि॒कितु॑षी का अर्थ जानने वाली किया है । यज्ञिय का
अर्थ 'देवता' करते हैं ।

हिन्दी-व्याख्या—(अहं राष्ट्री संगमनी वसूताम्) मैं ही सारे जगत की राष्ट्राभिमानिनी देवता हूँ । निवास चाहने वाले भक्तों, उपासकों एवं समग्र ऐश्वर्यों की मैं ही अधिष्ठात्री (=प्रापयित्री, संगमन कराने वाली हूँ ।) (चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्) समस्त देवों में सर्वोत्तम मैं हूँ क्योंकि मैं ही प्रथम ब्रह्म का साक्षात् करने वाली हूँ । (भूरि स्थात्रां भूरि आवेशयन्तीं तां मा देवाः पूरुत्रा व्यदधुः) बहुत से स्थलों पर रहने वाली तथा सब कुछ अपने में समेट लेने वाली ही मुझको जानकर देवों में सर्वत्र ही मुझे स्थान दिया है । सर्वत्र मेरी ही पूजा-प्रशंसा होती है ।

४-

मया सो अन्नम॑त्ति यो वि॒पश्य॑ति,

यः प्राणि॑ति य ईं॑ शृ॒णोत्यु॑क्तम् ।

अ॒मन्तवो॑ मां त उप॑क्षियन्ति,

श्रु॒धि श्रु॑त श्रद्धि॒वं ते॑ वदामि ॥४॥

पद-पाठः—मया॑ । सः॑ । अन्न॑म् । अत्ति॑ । यः॑ । वि॒पश्य॑ति । यः॑ ।

प्राणि॑ति । यः॑ । ईम् । शृ॒णोति॑ । उ॒क्तम् । अ॒मन्तवः॑ । माम् । ते॑ । उप॑ । क्षि॒यन्ति॑ ।

श्रु॒धि । श्रु॑त । श्रद्धि॒वम् । ते॑ । वदामि॑ ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—यो ऽयि भोग्यं भुनक्ति स भोक्तृ शक्ति परया मयेव शक्ति-मासाद्य अन्नमत्ति । न मया विना कोऽपि उपस्थितमपि भोगं भोक्तुं समर्थः । यो विपश्यति यो वा प्राणिनि यो वा उक्तं शृणोति एते सर्व एव द्रष्टारः स्वासव्यापार-वन्तः श्रोतारो वा मत्त एव शक्तिमासाद्य विविधं पश्यन्ति जिघ्रन्ति शृण्वन्ति वा । ईदृशीमन्तर्यामितया सर्वशक्ति शालिनीं मां ये अमन्तवः अमन्यमानास्त उपक्षियन्ति उपक्षीणा भवन्ति । मद्भिषयकज्ञानरहिताः संसारदशायां क्षीणाः सन्तो दुःख मानु-वन्ति । अत एव हे श्रुत ! बहुश्रुत ! विश्वासयोग्य मे वचनं शृणु । मदीयं वचनं श्रद्धिवम् = श्रद्धायुक्तम् । ईदृशं श्रद्धालभ्यं प्रयत्नेन प्राप्यं वस्तु ब्रह्मात्मकं त उप-दिशामि ।

व्याकरणम्—अमन्तवः—नञपूर्वस्य मन्धातोः तुः, बहुवचने । श्रुधि—श्रु
धातो लोटि मध्यमपुरुषैकवचने वैदिकं रूपम् । श्रद्धिवम्=श्रदा—श्रद्धि—मतुवर्थे
व प्रत्ययः । केशवः, अर्णव इति यथा ।

लुङविग, ग्रासमान, राश ने श्रुत और श्रद्धिव को जोड़कर कर्मधारय माना
है । उनका अर्थ—जो प्राचीन परम्परा से श्रुत एवं श्रद्धा के योग्य है ।

हिन्दी-व्याख्या—यो विपश्यति, यः प्राणिति, य ईं शृणोति—उक्तम् इस
संसार में जो कि विविध प्रकार से देखता है, जो सत्ता के लिये श्वासधारी है अथवा
जो कही गयी बात को श्रवण-शक्ति से सुनता है; यह सब सारा व्यापार मेरे ही
कारण से होता है । मैं ही शक्ति देती हूं तभी (मयासोऽन्नमत्ति) प्राणी अन्न-भोग
में सामर्थ्य पाते हैं । (अमन्तवो मां त उपक्षियन्ति) जो इस प्रकार अन्तर्यामिरूप
अवस्थित होकर शक्ति प्रदान करने वाली मुझको नहीं मानते वे नाना प्रकार से
उपक्षीण होकर दुःख उठाते हैं । (श्रुत श्रुधि श्रद्धिवं ते वदामि) श्रवण में निपुण हे
मानव ! तू सुन । तेरे लिये श्रद्धासय वचन मैं बोल रही हूं ।

५-

अहमेव स्वयमिदं वदामि

जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।

यं कामये तं तमुग्रं कृणोभि

तं ब्रह्माणं तमृषि तं सुमेधाम् ॥५॥

पद-पाठः—अहम् । एव । स्वयम् । इदम् । वदामि । जुष्टम् । देवेभिः ।

उत । मानुषेभिः । यम् । कामये । तम् । तम् । उग्रम् । कृणोभि । तम् । ब्रह्माणम् ।

तम् । ऋषिम् । तम् । सु । मेधाम् ॥५॥

संस्कृत-व्याख्या—अहमेव स्वयं ब्रह्मात्मकमिदं प्रीत्यासेवन-योग्यं वदामि—
उपदिशामि । ममैतद्वचनं देवैरिन्द्रादिभिः मानवैश्च सम्यक् सेवितम् । यं यं
रक्षितुमहमिच्छामि तं तं पुरुषमहमुग्रं प्रकर्षं करोमि । तं ब्रह्माणं सृष्टे विधातारं तं

च ऋषिं कृणोमि येनासौ अतीन्द्रियानपि पदार्थान् पश्यति । तमेव सुमेधां शोभन-
प्रज्ञानं संपादयामि ।

व्याकरणम्—जुष्टम्—जुष धातोः क्तः । देवेभिः मानुषेभिः देवैः, मानुषैः ।
वैदिकप्रयोग । सुमेधाम्—सुमेधसम् ।

हिन्दी-व्याख्या—इन्द्र आदि देवता तथा श्रेष्ठ मानव जिस ब्रह्म की प्रीति-
पूर्वक सेवा करते हैं, उस आदि ब्रह्म का निर्देश मेरे द्वारा ही होता है । यह मेरी
(वाग्देवी) की ही कृपा है कि जिसको-जिसको मैं चाहती हूँ उसको-उसको बलाधिक
बना देती हूँ । विधाता की शक्ति, ऋषि की दृष्टि और देवता की प्रज्ञा मैं ही
तो हूँ ।

६-

अहं रुद्राय धनुरातनोभि

ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ ।

अहं जनाय समदं कृणोमि—

अहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पद-पाठः—अहम् । रुद्राय । धनुः । आ । तनोमि । ब्रह्म ऽ द्विषे । शरवे ।

हन्तव । ऊँ इति । अहम् । जनाय । स ऽ मदम् । कृणोमि । अहम् । द्यावापृथिवी ।

इति । आ । विवेश ॥६॥

संस्कृत-व्याख्या—अपकारिणं रुद्राय अहमेव धनुषसंधानं करोमि येन
समर्थः सन्नसौ ब्रह्मद्विषे ब्रह्म विद्वेषिणे हननप्रबलो भवति । त्रिपुर निवासिनो ऽ
सुराश्च विहता भवन्ति । स्तोतृजयार्थं संप्राममहमेव करोमि । दिवं च पृथिवी च
व्यापितया ऽ हमेव प्रविश्य स्थिता वर्ते ।

व्याकरणम्—रुद्राय—पठ्यर्थे चतुर्थी । ब्रह्मद्विषे—ब्रह्म + द्विष् + क्विप् ।
चतुर्थी । शरवे—शृ हिंसायाम्—उ प्रत्ययः । चतुर्थी । हन्तव—तुमर्थे तव । समदम्-
समानं माद्यन्त्यस्मिन्निति समत्संग्रामः ।

पीटसंन ने ब्रह्म का अर्थ परमात्मा, शरु का अर्थ वाण किया है ।

हिन्दी व्याख्या—ब्रह्म द्वेषी असुरों के वध के लिये मैं ही रुद्र की प्रत्यंचा को चढ़ाती हूँ । मैं ही उपासकों के कल्याण के लिये संग्राम करती हूँ । मैं ही धु लोक तथा पृथ्वी लोक में व्याप्त हूँ । त्रिपुर निवासी असुरों का विध्वंस मैं ही करती हूँ ।

७-

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्,

मम योनिरप्स्व १ न्तः समुद्रे ।

ततो वितिष्ठे भुवनानु विश्वा—

उतामू द्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥७॥

पद पाठः—अहं । सुवे । पितरम् । अस्य । मूर्धन् । मम । योनिः । अप्

१ सु । अन्तरिति । समुद्रे । ततः । वितिष्ठे । भुवना । अनु । विश्वा । उत ।

अमूम् । द्याम् । वर्ष्मणा । उप । स्पृशामि ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—अहं पितरं दिवं प्रसुवे उत्पादयामि । द्यौः पिता । समुद्रवन्ति भूतजातान्यस्मादिति समुद्रः परमात्मा । अस्य परमात्मनो मूर्धनि परम-कारण भूतेऽन्तरिक्षादि कार्यजात तन्तुषु पट इवाहं जनयामि तत्रापि व्यापनशीलामु धीवृत्तिष्वन्तर्मध्ये यद् ब्रह्म चैतन्यं तदे मम योनिः कारणम् । एवंभूताहं विश्वानि भुवनानि सम्यगनुप्रविश्य विविधं व्याप्य तिष्ठामि । उतापि च स्वकीयेन वर्ष्मणा कारणभूतेन मायात्मकेन शरीरेण समग्रं विकार जातमुपस्पृशामि यद्वा—अस्य भूत-मात्रस्य मूर्धनि पितरमाकाशमह मुत्पादया समुद्रे जोदकेषु मम कारणभूतो ऽ म्मयेषु देवशरीरेषु परम विद्यते । एवं कारणात्मिका सती सर्वाणि भुवनान्यह जन-यामि ।

व्याकरणम्—मूर्धन्—मूर्धनि । वर्ष्मणा शरीरेण—वृषु सेवन मनिन् । तृतीया ।

राश ने वर्मणा का अर्थ उच्चतम स्थान किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—इस भूत मात्र की मुर्धा पर मैं आकाश को देती हूँ जो कि जगत् का आदि पिता है । मेरा मूल कारण ब्रह्म है कि प्राणिमात्र का मूल कारण है । पद्मकारण रूप आकाश से ही तन्तुओं से पट के समान जगत् की सृष्टि होती है । मैं ही किसी प्रकार से व्याप्त होकर सकल भुवन में अनुप्रवेश कर रही हूँ । मैं ही अपने मायामय शरीर से समग्र विकारों का स्पर्श कर रही हूँ ।

८-

अहमेव वात इव प्रवामि—

आरभमाणा भुवनानि विश्वा ।

परो दिवा पर एना पृथिव्या—

एतावती महिना सबभूव ॥८॥

पद-पाठः—अहम् । एव । वातः । इव । प्र । वामि । आ । रभमाणा ।

भुवनानि । विश्वा । परः । दिवा । परः । एना । पृथिव्या । एतावती । महिना ।

सम् । बभूव ॥८॥

संस्कृत-व्याख्या—(अहम् एव वात इव प्रवामि) यह वातः परेणा—प्रेरितोऽपि स्वेच्छयैव प्रवाति तथा ऽहमपि सर्वाणि भूतजातानि कार्याणि आरभमाणा कारणरूपेण जनमन्ती स्वयमेवाप्रेरिता सती प्रवृत्ता भवामि । दिव आकाशस्य परस्तात् अस्याः पृथिव्याः च परस्तात् = एतत्सहिता, समस्तादेव विकारजातात् सङ्गोदासीनकूटस्थब्रह्म चैतन्यरूपा ऽहं स्वकीयेन महिना महिम्ना एतावती सबभूव सर्वजगदात्मनाऽहं संभूता प्रवृत्ता चास्ति ।

व्याकरणम्—आरभमाण—आपूर्वस्य रभेः शानच्, टाप् । परः परस्त-त्यर्थे । एना—इदम् शब्दस्यान्वादेशे एना—एनेन । तृतीय एतावती—एतत्—समुप्—ङीप् । 'आ सर्वनाम्नः' इत्याकारादेशः महिना—महत् इमनिच् । तृतीया । महिम्ना ।

हिन्दी-व्याख्या—किसी भी प्रेरणा के बिना ही मैं पवन के समान स्वेच्छा से कारण रूप में अवस्थित होकर समस्त भूतमात्र का सृजन करती हूँ । पृथ्वी से भी आगे और आकाश से भी आगे व्याप्त होकर ब्रह्म चैतन्य रूप में अवस्थित मैं अपने कार्य में व्यापृत और प्रवृत्त होती हूँ । अपनी ही स्वयम्भू नाम से मैं सबको अतिक्रान्त करती हुई महान् परिणाम कार्य करती हूँ ।

१०-१२६

नासदीय-सूक्तम्

अस्यां सृष्टेः प्रागवस्थायां शास्त्रकारा विवादं तन्वते । केचन् तावदाहुः असतः सज्जायते नानुपमृद्य प्रादुर्भावात् । अर्थात् क्षेत्रे निर्गलितादेव बीजाद् अङ्कुरोत्पत्ति दृश्यते, ते मन्यामहे असतएव कारणात्सज्जायते । बौद्धानां वचनं मण्डयन्तः खण्डयन्तश्च नैयायिका आहुः—असत् एव सज्जायते, यतः कार्या, प्रागवस्थायां कार्यम-सद्रूपेणैवावस्थितमासीत् यद्यभविष्यत्कार्यं तदा कारणसामग्र्या आवश्यकतैव का ? अतो निमित्तरूपेणोपादानरूपेणावस्थितया कारणशक्या किमपि व्यापारदृशा कार्य सम्पादितमतः कार्यरूपस्य जगत उत्पत्तिर्जाता । वेदान्तिनस्त्वाहुः एकं समग्रं ब्रह्मैव सद्वस्तु, अन्यत् सर्वम् असत् अतः सतः खल्वसज्जायते । सांख्यवृद्धास्त्वाहुः सत् एव सज्जायते यतो हि पूर्वोक्तेषु सिद्धान्तेषु प्रधानं न सिद्ध्यति—प्रधीयते ऽ स्मिन् कारणसामग्रीति । अतः सतः कारणात् सद्रूपा सृष्टिरुचिता यथा दुग्धाद् दधि, तिलात् तैलम्, काष्ठाद् अग्निरिति ।

एवं दर्शनबीजमुदभावयन्ती श्रुति राह—

प्रस्तावना—हिन्दी—इस सृष्टि की प्रागवस्था के बारे में शास्त्रकारों ने बहुत से सम्भावित प्रश्न उठाये हैं । बौद्धों का कहना है कि 'असत् से ही सत् की उत्पत्ति होती है । बीज जब तक गल नहीं जाता अंकुर की उत्पत्ति नहीं हो सकती । इसी प्रकार सृष्टि की प्रागवस्था असद् रूप में ही थी । नैयायिक कहते हैं कि असत् से ही सत् की उत्पत्ति होती है क्योंकि कार्य व्यापार से पहले यह कार्य-जगत् नहीं था । यदि था तो सृष्टि की आवश्यकता ही क्या थी ? अतः यह प्रमाणित होता है कि कारण सामग्री ने निमित्त रूप से अथवा उपादान रूप से कुछ कार्य प्रस्तुत किया जिससे कि सृष्टि की उपस्थिति हुई । वेदान्ती इन समस्त पक्षों का विरोध करते हैं । उनका कहना है कि सृष्टि की यह सद्रूपता असद्रूपता का ही उल्लास है क्योंकि ब्रह्म ही एक सद्वस्तु है । यह अस्ति-भाति-प्रीणाति रूप जो

सृष्टि का है, यह सब ब्रह्म ही के कारण है। यह जगत् शिव के बिना श्व है। अतः सत् से असत् की उत्पत्ति होती है। सांख्याचार्य इन सभी पक्षों का विरोध करते हैं। उक्त तीन कल्पों को स्वीकार कर लेने पर 'प्रधान' की सिद्धि नहीं हो सकती क्योंकि प्रधान उसे कहते हैं जिसमें कारण सामग्री रखी जाये। इस कारण सत् से ही सत् की उत्पत्ति माननी चाहिये जैसा कि दूध से दही, तिल से तेल तथा काष्ठ से अग्नि की सिद्धि मानी जाती है।

१-

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं

नासीद्वज्रो नो व्योमा परोयत् ।

किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्-

नम्भः किमासीद् गहनं गभीरम् ॥१॥

पद-पाठः—न । असत् । आसीत् । नो इति । सत् । आसीत् । तदानीम् ।

न आसीत् । रजः । नो इति । वि ऽ ओम । परः । यत् । किम् । आ । अवरीवरिति ।

कुह । कस्य । शर्मन् । अम्भः । किम् । आसीत् । गहनम् । गभीरम् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—इदानीं निरस्तसमस्तप्रपञ्चा प्रलयावस्था सृष्टेः प्रागवस्था वा वर्ण्यते। तदानीं प्रलयकालीने समये जगतो मूलं कारणं यदासीत्तदसद् रूपेण विद्यमानं नासीत् । न खलु तस्मात्तादृशादसतः कारणात् सदरूपेण विद्यमानस्य जगतः सृष्टिः सम्भवति । अस्तु तर्हि 'सदेव सोम्य' इति निर्देशात् सदात्मकं निर्वाच्यं कारणं स्यात् । श्रुतिराह—नो सदासीत् तदानीम्' तदानीं सृष्ट्युत्पन्न वेलायां कल्याणप्रचुरं कारणं सदात्मभूतमपि नो नैवासीत् । सदसदात्मकं विलक्षणमेव सृष्टिप्रपञ्चरूपमेतत् । तम—आभीतमसा गूढमिति प्रतिपादयिष्यते । पृथिव्यादीनां भावानां सत्ता तदा स्वीकारात् कथं 'नो सद' इत्युच्यते ? तत्राह—'नासीद् रज' इति 'लोका रजांस्युच्यन्ते' (निरु० ४-१६) सामान्येनैकवचननिर्देशः । पृथिव्यन्ताः सर्वे लोका नासन्नित्यर्थः । अथ च व्योम आकाशं तदपि नो नैवासीत् । परो व्योम्न आकाशादपि परः परस्तात् किमपि नासीत् । अनेन लीलाभाञ्जि चतुर्दश भुवनानि

ब्रह्माण्डरूपाणि सर्वाण्ये सद्रूपेण निषिद्धानि । एवम् आवार्यरूपं किमपि नासीत् तर्हि तस्यावरकरूपमपि निषिद्धं भवति । 'किमावरीवः' इति । आत्रियमाणरूपमावरकरूपं किमपि तत्त्वं तदा नासीत् । 'कुह' कुत्र देशे स्थित्वाऽऽवरकतत्त्वमावृणुयात् ? कोऽप्याधारोऽपि नासीदित्यर्थः 'कस्य शर्मन्' कस्य भोक्तुर्जीवस्य सुखदुःखसाक्षात्काराय शर्मणि निमित्तमासाद्य तदावरकं तत्त्वमावृणुयात् ! भोक्तृ प्रपञ्चस्य भोगार्था हि सृष्टिः । सत्यामेव सृष्टौ ब्रह्माण्डस्य भूतैरावरणमुचितम् । प्रलयदशायां तु जीवाः प्रलयं गता उपाधेरयावात् । अतो न कश्चिद् भोक्ता नापि भोग्यम् । भोक्तृप्रपञ्च भोग्यप्रपञ्चे तदा नैवास्ताम् । 'इदमग्रे सलिलमासीत्' (नै० स० ७-१-५-१) इति श्रुत्या सलिलस्य सद्भावोऽपि नासीदित्युक्तम् — अम्भः किमासीत् गहनं गभीरं किमम्भस्तदानीमगाधमासीत् । नैवासीत् । सृष्टेरनन्तमेव सलिलं न ततः प्रागिति ।

व्याकरण—किमावरीवः वृणोते यङ्लुङन्ताच्छन्दसि लङि तिपि । कुह किं शब्दात् सप्तम्यर्थं ह प्रत्ययः । कु तिहोः (७-२-१०९) शर्मन् शर्मणि । सप्तम्या लुक् 'सुपां सुलुक्' ।

मैकडानल ने 'रजः' का अर्थ वायु और 'शर्मन्' का अर्थ रक्षा किया है ।

हिन्दी व्याख्या—इस सूक्त का परमेष्ठी प्रजापति ऋषि है, देवता — परमात्मा (उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का कर्ता) छन्दः—त्रिष्टुप् ।

'तदानीं न असद् आसीत्' सृष्टि उत्पत्ति से पहले प्रलयावस्था में 'असत्' अभाव रूप कुछ भी तत्त्व नहीं था । (न सद आसीत्) और सत्ता रूप में भी विराजमान कोई तत्त्व नहीं था । (न रजः आसीत्) पृथ्वी आदि कोई लोक सत्ता में नहीं थे । (न व्योमा परो यत्) आकाश और आकाश से परे भी कुछ नहीं था । (किम् आवरीवः) आवरण करने वाला तत्त्व भी नहीं था । 'कुह' किस आधार पर अवस्थित होकर आवरक-तत्त्व आत्रियमाण-तत्त्व का आवरण करें ? (= न कोई ढक्कन योग्य वस्तु ही थी और न तो उसका कोई ढक्कन ही था) 'कस्य शर्मन्' किसकी सुख-सुविधा के लिये यह सृष्टि कार्य करे जबकि सभी जीव अपने-अपने कारण में लीन थे ? यद्यपि सावरण ब्रह्माण्ड का निषेध हो जाने से उसके अन्तर्गत सलिल तत्त्व का भी निराकरण हो गया फिर भी सृष्टि के आदि में जल तत्त्व की सत्ता का वर्णन आता है अतः जल की सत्ता की भी आशंका दूर करते हैं 'किं गहनं गभीरम् अम्भः आसीत्' यह गहन-गभीर सलिल क्या था ? वह भी नहीं था । सृष्टि के अनन्तर ही सलिल आदि की सत्ता का निरूपण हो सकता है, पहले नहीं ।

२-

न मृत्यु रासीदमृतं न तर्हि

न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः ।

आनीद॒वातं॑ स्व॒धया॑ तदेकं॑

तस्माद्वा॒न्यन् न॒ परः॑ किं च॒नास॑ ॥२॥

पद-पाठः—न । मृत्यु । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः ।

अह्नः । आसीत् । प्र ऽ केतः । आनीत् । ऋवातम् । स्वधया । तत् । एकम् ।

तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥२॥

संस्कृत-व्याख्या—अस्याः सृष्टेः संहारदशायां सर्वमेवादर्शनं गतमित्युक्तम् । तर्हि कोऽपि संहर्ता सृष्टेः कवलयिता कोऽपि महाकालः स्यात् । स च प्रधानभूतो मृत्यु विद्यत एव । आह—‘न मृत्युः आसीत्’ कुतः संहर्त्रपेक्षा ? मृत्यु रेव नासीत् । एवं तर्हिः मृत्योरभावरूपम् अमृतं स्यात् ? श्रुतिराह—(अमृतं न तर्हि) तदानीम् मृत्योरभावात्मकं तत्त्वम् अमृतमयि नासीत् । अस्तु तर्हि महाकालरूपा रात्रिः स्याद् अथवा प्रकाशात्मकं दिनं स्यात् ‘न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः) प्रकेतः प्रज्ञानं तदानीं रात्र्या अह्नो वा प्रज्ञानं नासीत् । तद्वेतुभूतयोः सूर्याचन्द्रमसोरभावात् सर्वेषां प्राणिनां भोगहेतुभूतं परिपक्वं कर्म फलोपमुक्तमासीत् तदानीं भोगाभावाद् भोक्तृ-प्रपञ्चस्य प्रलीनाच्च सर्वं भोग्यं निष्प्रयोजनमेवासीत् । तदैव संजिहीर्षा जायते । अत एवोक्तम्—

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनम् ।

मृत्युर्यस्पोपसेचनं क इत्या वेद यत्र सः ॥ क० उ० ३-२५

(आनीत् अवातम्) तदा एकमेवाद्वितीये ब्रह्म प्राणितवत् । ननु प्राणन क्रिया जीव धर्म इति कथं ब्रह्मणि निरूप्यते ? आह—‘आनीत्’ इति कथनेन क्रियाव्यापारः, तत्कारणं, कालसम्बन्धश्च द्योतन्ते । ‘अप्राणो ह्यमनाः शुद्ध’ इति निर्देशात् स शुद्धः प्राणसम्बन्धाभावात् । इदानीमिति कीर्तितं यद् ब्रह्म तस्यैव प्रागपि सत्ता विधीयते । एवं तर्हि एवं विधस्य ब्रह्मणो मायया सह सम्बन्धाभावात् सांख्याचार्यैरभिमतता स्वतंत्रा सद्रूपा प्रकृतिरेव सत्त्वरजस्तमोवहुनाऽन्वाख्यातेति चेत् कथं ‘नो सत्’ इत्युच्यते । उच्यते—‘स्वधया तदेकम्’ स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्तते इति स्वधा माया । तया तद् ब्रह्म एकं मिश्रीभूतम् अविभागापन्नमाभीत् । ननु—आनीदवातमिति स्वधया इति दग्—दृश्यरूपमुभयं स्वीक्रियते चेत् ‘नासीद् रजः’ इत्यादिना कथं प्रतिषेधः क्रियते ? अत आह—‘तस्माद्वा॒न्यन् न॒ परः॑ किं च॒नास॑ ।

तस्मात् स्वधा (माया) सहिताद् ब्रह्मणो नान्यत् किञ्चन वस्मुतत्त्वमासीत् । परः परस्मात् वर्तमानमिदं जगत् तदानीं नैवासीत् ।

व्याकरणम्—प्रकेतः—प्र + कित ज्ञाने ध्व । स्वधया तदेकम्—सह युक्ते ऽ प्रधाने (२-३-१६) इति तृतीया । सह शब्दयोगाभावे ऽ पि वृद्धो यूना (१-२-६५) इति निर्देशात् ।

मैक्डानल के अनुसार आनीत का अर्थ श्वास लेने वाला । अवातम् का अर्थ वायु से रहित । स्वधया का अर्थ अपनी शक्ति से ।

हिन्दी-व्याख्या—(न मृत्युः आसीद् अमृतं न तर्हि) उस प्रलय काल में जगत् का संहार करने वाली मृत्यु नहीं थी और न तो मृत्यु का अभाव रूप अमृत ही था । रात्रि और दिन का भी कोई संकेत नहीं मिल रहा था (न रात्र्या अल्ल आसीत् प्रकेतः) क्योंकि सूर्य-चन्द्र का भी कहीं पता नहीं था । फिर भी यह तदानीम् = उस समय यह प्रयोग गौरवरूप से ही किया गया है । (आनीद् अवातम् स्वधया तद् एकम्) केवल एक ब्रह्म तत्त्व ही निष्क्रिय होकर प्राणवान् स्थिति में अपनी माया के साथ मिश्रित था = पृथक्-पृथक् इनका विभाग नहीं हो रहा था । अविभक्त होकर दोनों 'एक' में अवस्थित थे । (तस्माद् ह अन्यत् न परः किञ्चन आस) उस मायामिश्रित ब्रह्म से भिन्न कुछ भी अनुभूयमान नहीं था । उससे आगे भी अविभागापन्न अवस्था के कारण कुछ भी प्रतीत नहीं होता था ।

३—

तम आसीत्तमसा गूलहमग्रे—

ऽ प्रकेतं सलिल सर्वमा इदम् ।

तुच्छयेनाभवपिहितं यदासीत्

तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥३॥

पद-पाठः—तमः । आसीत् । तमसा । गूलहम् । अग्रे । अ प्र ऽ केतम् ।

सलिलम् । सर्वम् । आः । इदम् । तुच्छयेन । आभु । अपि ऽ हितम् । यत् ।

आसीत् । तपसः । तत् । महिना । अजायत । एकम् ॥३॥

संस्कृत-व्याख्या—‘अग्रे’ मृष्टेः प्रागवस्था या मिदं जगत् (तमसा गूढम तम आसीत्) आसीददं तमोभूतमिति मनो निर्देशात् । तमसा ऽ अन्धकारेण गूढम् आवृतं तम एव आसीत् । अत्र शङ्कोदेति—यदि जगदिदं नासीत् कथं तर्हि जगतो जन्म समजनि ? कारणस्य च नियतपूर्ववर्तित्वात् सर्व एव भोग्य प्रपञ्चो भोक्तृप्रपञ्चश्च सिद्धो भवति । उच्यते=‘स्वधया तदेकम्’ इति प्रतिपिपादयिषया मृष्टेः कारणं ब्रह्मेति प्रतिपादितम् अधुना तदेव सप्रपञ्चं निरूप्यते । तम एव भावरूपम् अज्ञान मूलकारणनावस्थितम् आसीत् (अप्रकेतं सलिलं सर्वम् आ इदम्) तच्च तमः अप्रकेतम् अप्रज्ञायमानम् सलिलम् सरणशीलं जलमिवेदं सर्वं दृश्यमानं जगद् आः आसीत्) (तुच्छयेन आभु अपिहितं यद् आसीत्) आसमन्ताद् भवतीति आभु, तुच्छयेन तुच्छ-कल्पेन निःसारेण भावरूपात्यकेन अज्ञानेन अपिहितम् आच्छादितम् एकम् एकीभूतम् अविभागापन्नम् विद्यमानम् आसीत् । कारणरूपेण तमसा पृथाभूतं न जायतेस्म । (तपसः तद् महिना अजायत एकम्) मृष्टि व्यापारपर्यालोचनरूपस्य तपसः महिना महिना महात्म्येय तद् एकीभूतम् अजायत प्रजायमानायाम् अवस्था यामागतम् ।

व्याकरणम्—सलिलम्—पल गतौ—इलच् । आः अस्ते—

मैकुडानल ने लंडि ‘आः इदम्’ का अर्थ भावरूप में आने वाला किया है । ‘तपसः’ का अर्थ उष्णता तथा महिना का अर्थ शक्ति किया है ।

हिन्दी-व्याख्या—(तम आसीत् तमसा गूढम् अग्रे) पहले प्रलय दशा में सारा जगत् तम=अज्ञान से आच्छादित था । यह जगत् में मूल कारण में अवस्थित ‘तम’ रूप में ही था, जैसा कि मनु कहते हैं—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।

अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥१—५॥

जिम प्रकार रात्रि का घना अन्धकार सारे पदार्थों को आवृत कर लेता है उसी प्रकार दृक् शक्ति तथा दृश्य दोनों ही अन्धकार से आवृत थे । आत्मा का आवरक होने के कारण यह अज्ञान (ज्ञान का अभाव नहीं अपितु) भावात्मक था । यही तम कारण के रूप में अवस्थित होकर जगत् का आच्छादक बना । उस आच्छादक तम से पृथक् होकर नाम-रूप में इस जगत् का आविर्भाव ही इसका जन्म कहलाया । इससे कारण अवस्था में असत् रूप में अवस्थित कार्य की उत्पत्ति होती है, इस कथन का प्रत्याख्यान हो गया । असत्कार्यवादी यह कह रहे थे कि असत् से सत् की उत्पत्ति होती है । यहाँ पर फिर यह शङ्का उठती है कि आवरक तो तम है और यह जगत् आवृत है, दोनों में (जगत् कर्म, तम कर्ता) एकात्मकता कैसे मानी जाय ? इसी हेतु कहा—अप्रकेतम्=कुछ भी जाना-पहिचाना नहीं जाता था । यद्यपि यह बात युक्ति से सिद्ध की जा सकती है कि तम के द्वारा जगत् आवृत था फिर भी व्यवहार दशा में नाम-रूप आदि का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो रहा था । क्यों नहीं प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा था ? (सलिलं सर्वम् आः) सभी जगत् कारण से सङ्गत था । विभागापन्न—अवस्था में नहीं था । जिस प्रकार दूध के साथ अवि-

भागापन्न—अवस्था में सलिल (जल) का ज्ञान सुगम नहीं है इसी प्रकार तम से मिश्रित जगत् का ज्ञान आशक्त था । तुच्छयेन आभु अपिहितं यद् आसीत्) क्षीर के समान तम भी बलवान् है, फिर तो अशक्त जगत् का प्रादुर्भाव ही संभव नहीं—इस हेतु कहा—तुच्छ सदृश सत् और असत् से विचित्र भाव रूप अज्ञान से 'अपिहितम्' यह जगत् आच्छादित था । (तपसः तद् महिना ऽ जायत एकम्) कारण रूप तम से मिश्रित यह जगत् अपने सृष्टा के माहात्म्य से प्रकट हुआ । कहा भी है—यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।

४—

काम॑ स्तद॒ग्रे॑ सम॒वर्त॑ताधि॒

मन॑सो रे॒तः प्र॒थमं॑ यदासीत् ।

स॒तो ब॑न्धुम॒सति॑ निरवि॒न्दन्

हृ॒दि प्र॒ती॒ध्या क॒वयो॑ मनी॒षा ॥४॥

पद-पाठः—कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि । मनसः । रेतः ।

प्रथमम् । यत् । आसीत् । सतः । बन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् । हृदि ।

प्रति ऽ इष्ट्य । कवयः । मनीषा ॥४॥

संस्कृत-व्याख्या—अधुना पुनः पृश्न उदेति जगतः पुनरुत्पत्ती किं कारणम् ? उच्यते (कामः तद् अग्रे समवर्तत) अस्य विकाररूपेणावस्थितस्य जगतः प्रागवस्थायां परमात्मनो मनसि कामः समवर्तत । काम एवाजायत । स्रष्टुश्चेतसि सर्जनाय संकल्पः समजनि । 'मनसो रेतः प्रथमं यद् आसीत्' मनसो ऽन्तः करणस्य मायायां विलीने सति वासनाशेषतया ऽन्तः करणे समवेतं रेत एव कारणपक्षे निक्षिप्तम् । अथ सामान्येनैकवचनम् । सर्वेषां प्राणिनामन्तः करणे संगृहीतम् इति यावत् । गुणो मनसो धर्मः, नात्मन इत्येतेनोक्तं भवति । तादृशं भाविनः प्रपञ्चस्य बीजभूतं रेतः कारणमासीत् । तच्च यद्यत् प्राणिभिः प्रथमे कल्पे कृतं कर्म परिणामोन्मुखमासीत्, तदेव ऋतमित्युक्तम् । (मनसो रेतः प्रथमं यद् आसीत्) तदेव परिपक्वं तत् फलोन्मुखं

वर्धमानम् आसीत् । अत एव सर्वाध्यक्षस्य सर्वसाक्षिणः परमात्मनश्चेतसि सिमृक्षा जाता उक्तं च (सो ऽ कामयत बहु स्याम् तै० आ० ८-६) सतो बन्धुम् असति निरविन्दन् हृदि प्रतीप्य कवयो मनीषा' सत्तात्मकस्य सर्वजनानुभूयमानस्य जगतो बन्धुं बन्धन हेतु भूतं कल्पान्तरे प्राणिभिः कृतं कर्मसमूहं कवयः क्रान्तदर्शिन ऋषयः अतीतानागतवर्तमानविषयायाभिज्ञा हृदि हृदये निरुद्धया मनीषया बुद्धया प्रतीप्य सम्यङ् निभात्य असति सद्बिलक्षणे ऽ व्याकृते कारणे निरविन्दन् निष्कर्षतया-
ऽलभन्त । सम्यक् प्रकारेण निष्कृष्य अजानन् ।

व्याकरणम्—प्रति + इप् ल्यप् ।

हिन्दी-व्याख्या—'कामः तद् अग्रे समवर्तत' परमात्मा की—ईक्षण—रूप महिमा से (=ज्ञानरूप तप से) इस विकार मात्र मृष्टि की प्रथमावस्था में कामः समवर्ततः सम्यगुत्पन्नः । सिमृक्षा = सृजन की इच्छा प्रकट हुई । समस्त संहार दशा में (मनसः रेतः प्रथमं यदासीत्) मनसः अन्तःकरण की वासना ही शेष थी । समग्र प्राणियों के अन्तःकरण की यह एकत्र वासना ही आगे आने वाली मृष्टि का बीज बनी । यही रेत जो भावी जगत्-प्रपञ्च का कारण बना, यह प्राणियों के पिछले कर्म ही अब परिपक्व होकर फलोन्मुख हो रहे थे । (सतो बन्धुम् असति निः अविन्दन् हृदि प्रतीप्य कवयो मनीषा) सद् अवस्था में आकर जो यह जगत् अनुभव का विषय बन रहा था, यह जगत् का बन्धक (= हेतुभूत अन्य कल्पों में सम्पादित कर्म-समूह ही) कविजन (= क्रान्तदर्शी महर्षि जो कि अतीत-अनागत एवं वर्तमान के द्रष्टा के थे) द्वारा हृदय प्रदेश में निरुद्ध मनीषा शक्ति से विचार करके असत् में (सद्बिलक्षण में अव्याकृत कारण में जाना गया । निरविन्दन् (= निष्कृष्य अविन्दन् विविच्य अजानन्) ।

५—

ति॒ र इ॒चीनो॑ वि॒ततो॑ र॒श्मिरेषा॑—

म॒धः स्वि॒दासी॑ ३ दु॒परि॑ स्वि॒दासीत् ।

रेतो॑धा आ॒सन् म॒हिमान् आ॒सन्

स्व॒धा अ॒वस्तात् प्र॒यतिः॑ प॒रस्तात् ॥५॥

पद-पाठः—तिरश्चीनः । वि ऽ ततः । रश्मिः । एषाम् अधः । स्वित् ।

आसी इत् । उपरि । स्वित् । आसी इत् । रेतः ऽ धाः । आसन् । महिमानः ।

आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्र ऽ यतिः । परस्तात् ॥१॥

संस्कृत-व्याख्या—एवम् अविद्या वा स्यात् कामो वा स्यात् पूर्वं संचितानि कर्माणि वा स्युः कारणत्वेनोक्तानि सृष्टेः, नासदासीदित्य विद्यायाः प्रतिपादनं कृतम्, 'कामस्तदग्रे' इत्यादिना कामः प्रतिपादितः, 'मनसो रेतः' इति संचितानि कर्माणि प्रोक्तानि । (तिरश्चीनो विततो रश्मिः एषाम्) एषामविद्याकामकर्मणाम् आकाशादिभूतिजातानि सृजतां यथा सूर्यरश्मिरुदयानन्तरं क्षिप्रमेव सर्वं जगद्व्याप्नोति तद्वत् समग्र एव कार्यवर्गो विस्तृतः समजायत् ।—'एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूत आकाशद्वया ब्रह्मणोः तै० आ० ८-१' इति निर्देशात् विद्युत्सम्पातवत् शीघ्रमेव क्रमस्य दुर्लक्ष्यत्वात् सर्वं जगदुत्पन्नम् । इयमधुना या सृष्टिर्दृश्यते सा तिरश्चीना मध्य उत्पत्तिता, अधोवर्तमाना, उपरि वाऽवलम्बिता वर्षभयो ऋतुमयी, अन्नमयी शीतोष्णवर्षाभिरनुक्रान्ताऽण्डाकारा ब्रह्माण्डवृत्तिः सा न वक्तुं भव्यतेऽधो वा, तिर्यग् वा, मध्ये वा, उपरि वाऽवलम्बिता विद्यते । अस्मिन् ललीलामये ब्रह्माण्ड प्रपञ्चे चेषान् विशेषः—केचन भावाः (रेतोऽधा आसन्) रेतसः कर्म—बीजभूतस्य धारकाः कर्तारो भोक्तारश्च विधारका जीवाः आसन् । एवं सा मायावान् समस्तं सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत् । अनु प्रविश्य च भोतृभोग्यरूपेण प्रपञ्चेनाव—स्थाय प्रविभागं कृतवान् । (महिमान आसन्) एते च महान्त आकाशादयो भोग्यरूपेणावस्थिता आसन् । तत्र च (स्वधा अवस्तात्, प्रयतिः परस्तात्) स्वधेति अन्न नाम । स्वधा भोगप्रपञ्चोऽवस्तान् निकृष्ट आसीत् प्रयतिः प्रयत्नशीलश्च भोक्तृप्रपञ्चः परस्ताद् उत्कृष्ट आसीत् । भोगप्रपञ्चो भोक्तृप्रपञ्चस्याधिकारे स्थापितवान् इत्यर्थः ।

व्याकरणम्—आसी इत् । विचार्यमाणानाम् ८-२-६७ इति प्लुतः । अवस्तात्—अस्ताति च ५-३-४० इति अवरणवद्भव्य अवादेशः । प्रकृतिभावः ।

हिन्दी-व्याख्या—पूर्व निर्देश में सृष्टि-प्रक्रिया के तीन कारण बताये गये—'नासदासीत्, से अविद्या, 'कामस्तदग्रे' । से संकल्प और 'मनसोरेतः' से प्राणियों के पूर्व कर्म रूप बीज—इन तीन कारणों को देखकर स्रष्टा ने वस्तुओं में सूर्य-किरण के समान शीघ्र ही सृजन का काम प्रारम्भ कर दिया । एक वस्तु से दूसरी वस्तु के निर्माण-क्रम में अति सूक्ष्मता थी । इस अण्डाकार वृत्त के कारण दिन-मास-ऋतु-वर्ष

बनने लगे । नहीं कहा जा सकता कि यह वृत्त तिर्यक था, नीचे था, मध्य में था या ऊपर था । इतना विशेष है कि (रेतोधा आसन्, महिमान आसन्) इस सृष्टि में रेत रूप कर्म-विपाक के धारक-तत्त्व जो कि भोक्तृ-प्रपञ्च के रूप में अवस्थित थे और दूसरे भोग्य प्रपञ्च में अवस्थित तत्त्व अपनी महिमा में विद्यमान थे । 'स्वधा अवस्तात्' इनमें अन्न आदि रूप में अवस्थित जड़ जगत् निकृष्ट रूप में तथा (प्रयतिः परस्तात्) प्रयत्नशील जीवजगत् जो कि चैतन्य होने के कारण इस सृष्टि का विधारक था, वह उत्कृष्ट रूप में सामने आया ।

मैक्डानल ने तिरश्चीनः का अर्थ आर-पार, विततः का अर्थ फैला हुआ, रश्मि का अर्थ रस्सी, महिमानः का अर्थ शक्तियाँ, प्रयतिः का अर्थ मानसिक आवेग किया है ।

६—

को अद्वा वेद क इह प्रवोचत्

कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टिः ।

आर्वादेवा अस्य विसर्जनेना—

था को वेद यत आ बभूव ॥६॥

पद-पाठः—कः । अद्वा । वेद । कः । इह । प्र । वोचत् । कुतः ।

आ ऽ जाताः । कुतः । इयम् । वि ऽ सृष्टिः । अर्वाक् । देवाः । अस्य । वि ऽ सर्जनेन ।

अथ । कः । वेद । यतः । आ ऽ बभूव ॥६॥

संस्कृत व्याख्या—जड़चेतनमयी खल्वियं सृष्टि भोग्य-प्रपञ्चभोक्तृ-प्रपञ्च-रूपात्मिका प्रतिपादिता । इदमन्नमयमन्नाद इति । कथं नेदं विधे विधानं सृष्टिसम-

बन्धि विस्तरेण प्रतिपादितम् ? अत आह—(को अद्वाद वेद) कः खलु सम्यक् प्रकारेणेदमित्यमिति वेद ज्ञातुं शक्नोति ? (क इह प्रवोचत्) को वाऽस्मिन् संसारे तथा विद्वान् यः प्रवक्तुं शक्नुयात् ? 'कुत आ जाता कुत इयं विसृष्टिः' इयं विविधाकारा सृष्टिः क्वचिद् भोग्यरूपेणावस्थिता क्वचिच्च भोक्तृप्रपञ्चात्मिका, सापि बहु प्रकारा कुतः कस्मादुपादानस्वरूपा, कारणात् कस्माद्वा निमित्तरूपात् कारणादा विभूता । न कोऽपि सम्यगेतद्—भयं जानाति प्रवक्तुं शक्नुयाद्वापि । ननु देवाः सन्ति चास्मिन् विषये प्रवक्तारो ज्ञातारो वा । सर्वज्ञाः खलु ते । कथं न वदिष्यन्ति ? अत आह—(अवाग् देवा अस्य विसर्जनेन) अस्य विसर्जनेनानन्तरं देवा उत्पन्नाः । स्वतः प्रागुत्पन्नायाः सृष्टे विषये कथमिव ते वक्तुं शक्नुयुः । वयं तु तां सृष्टिमाश्रित्य वदामो या दैवत सृष्टेरपि प्राग्जाता । आकाशाद्यनन्तरं विविधं भौतिकं सर्जनं जातं ततो देवाउत्पन्नाः । सत्यं वादिनः खलु देवाः । पूर्वकालीमायाः सृष्टे विषये स तेऽपि किमपि जानन्ति । एतेन सृष्टे दुर्विज्ञानत्वं प्रतिपादितं भवति यस्मिन् विषये देवा अपि न जानन्ति तस्मिन् विषये कः खलु वराको मानवो वक्तुं ज्ञातुं वा शक्नोति । (अथा को वेद यत आ बभूव) यतः कारणात् समग्रमिदं जगज्जातं तत् कारणानां कारणमति दुर्बोधम् ।

हिन्दी व्याख्या—(को अद्वाद वेद) वास्तविक रूप से भला कौन इस विषय को जानता है ? (क इह प्रवोचत्) और इस सृष्टि की उत्पत्ति का विवरण भला कौन दे सकता है ? (कुत आ जाता कुत इयं वि सृष्टिः) यह विविध प्रकार से उत्पन्न हुई सृष्टि किस उपादान कारण से अथवा किस निमित्त कारण से प्रकट हुई है ? यदि यह कहें कि देवगण सर्वज्ञ हैं, वे ही यथावत् वर्णन कर सकते हैं तो (अवाग् देवा अस्य विसर्जनेन) हम उस सृष्टि प्रपञ्च के सम्बन्ध में जिज्ञासा कर रहे हैं जो कि देवों से भी पूर्व प्रागवस्था में प्रकट हुई । देव सत्यवादी हैं और ? अनन्तर उत्पन्न हुए हैं, अपने से पूर्व उत्पन्न हुई सृष्टि के बारे में कैसे विवरण दे सकते हैं ? और जिस विषय को देवगण भी दुर्बोध समझते हैं उस विषय में (अथा को वेद यत आ बभूव) अन्य दुर्बल मानव की शक्ति ही क्या है कि कुछ भेद बता सके ?

७—

इयम् विसृष्टिं यत आ बभूव

यदि वा दधे यदि वा न ।

यो अस्माध्यक्षः परमे व्योमन्

सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

पद-पाठः—इयम् । वि ऽ सृष्टिः । यतः । आ ऽ वभूव । यदि । वा । दधे ।

यदि । वा । न । यः । अस्य । अधि ऽ अक्षः । परमे । वि ऽ ओमन् । सः । अङ्ग ।

वेद । यदि । वा । न । वेद ॥७॥

संस्कृत-व्याख्या—इत्थं यथैत सर्जनं बुर्वोधं तथेदं जगद् दुर्धमपि । (इयं विमृष्टि र्यत आ वभूव) यतः परमात्मन उपादानकारणादियं विविधि प्रपञ्चा सृष्टि संवभूव (यदि वा दधे यदि वा न) स सर्वशक्तिमान् सृष्टिमिमां दधे धारयति, अथवा न धारयति, एतदपि ज्ञातुं कः शक्नुमात् । स एवास्याः सृष्टेर्धारकः, स एवोपादान-कारणत्वं च भजते । अत्र सन्ताः सन्तः केचन प्रकृतिमेव, अपरे स्वभावमेव, अन्ये पराणूनेवोपादानभूतानाहुः । अनेन तु मंत्रेण स्रष्टुः सृष्टेश्च दुर्वोधत्वमेव सूच्यते । यस्मादुपादानभूताद् ईश्वरादियं सृष्टिरावभूव जगज्जन्म जातं तं परमात्मनं को ज्ञातु-मित्थं शक्नोति ? स एव परमात्मा सृष्टे रूपादान भूतः स एव च निमित्तभूतोऽपि (यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्) योऽस्य समग्रस्य भोक्तृभोग्यप्रपञ्चस्य जगतोऽक्षोऽस्ति स व्योमनि आकाशवत्स्वप्रकाशे स्वे महिम्नि विशेषेण तृप्ते निरतिशयानन्द स्वरूपे ज्वस्थितः । (सोऽङ्ग वेद यदि वा न वेद) सोऽपि जानाति यदि वा न जानाति, इति को विजानीयात् । स एव निरतिशयानन्दमज्जुलो जानीयान्नवा जानीयादिति सर्वं स एव जानाति ।

व्याकरणम्—व्योमन्—व्योमनि स्वप्रकाशमये आकाशे । स्वमहिम्नि । यतः—‘जनिकर्तुः प्रकृतिः १-४-३० इत्युपादानसंज्ञायां पञ्चम्यास्तसि ल यस्मात् परमात्मन् उपादानभूतान् ।

मैकुडानल ने दधे का अर्थ विदधे = धारण करना । परमव्योमन् का अर्थ उक्चतम अध्ययन । अध्यक्ष का अर्थ निरीक्षण करने वाला ।

हिन्दी-व्याख्या—(इयं विसृष्टिः यत आ बभूव) यह विविध प्रकार की सृष्टि जिस कारण रूप ब्रह्म से उत्पन्न हुई (यदि वा दधे यदि वा न) वह शक्तिपुञ्ज परमात्मा इस सृष्टि को धारण कर रहा है, अथवा धारण नहीं कर रहा है। जनि धातु की प्रकृति में अपादान कारक होता है, पाणिनि के इस निर्देश के अनुसार यह सिद्ध है कि परमात्मा ही इस सृष्टि का उपादान कारण तथा वही निमित्त कारण भी है। (यो अस्माध्यक्षः परमे व्योमन्) वह अध्यक्ष रूप से अवस्थित परमात्मा इस सृष्टि का कर्ता और धारक होता हुआ भी अपने आकाशवत् प्रकाशित आनन्दप्रद तृप्तिकारी स्वरूप में अवस्थित रहता है। (सो अङ्गवेद यदि वा न वेद) वह अपनी अध्यक्षता में अवस्थित इस सृष्टि प्रवंच को जानता है, अथवा नहीं जानता, यह भी वही जानता है।

ਏ
ਰ-
ਰੁ
ਫ
।
ਟ
-
-
ੀ

